

आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा
पर
पार्श्चात्य प्रभाव

[राजस्थान विश्व विद्यालय द्वारा पी एच डी की
उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध]

डा० हरिकृष्ण पुरोहित
प्राध्यापक, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

उपमा प्रकाशन

प्रकाशक

उपमा प्रकाशन

बापू बाजार,

उदयपुर

कोपी रायट लेखक

मूल्य ३२,००

मुद्रक

राजधानी प्रिन्टर्स

लालजी साईड का रास्ता,

जयपुर

सादर

श्रद्धेय डा० सोमनाथ जी गुप्त को

जिनकी छत्रच्छाया मे मैंने हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया

और वो सदैव मुझे प्रेरणा व प्रोत्साहन देते रहे



प्राक्कथन

प्राधुनिक हिन्दी साहित्य के अध्ययन के सदन में पाश्चात्य प्रभाव का मूल्यांकन महत्वपूर्ण है। यद्यपि श्रेष्ठ व मौलिक साहित्य प्रभावों का ध्यायानुवर्ती नहीं होता, किन्तु नवीन विचारों के सम्पर्क में आने पर एक संवेदनशील साहित्यकार में प्रतिक्रिया जगना स्वामाविक होता है। अथ भारतीय भाषाओं के समान हिन्दी का प्राधुनिक साहित्य पश्चिमी प्रभाव के पार्श्व में ही विकसित हुआ। अतः यह कथन अयथा नहीं होगा कि बहुत अर्थों में प्राधुनिकता और पाश्चात्य प्रभाव परस्पर पर्याय जान पड़ते हैं।

“प्राधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा (१८७०-१९५०)—पाश्चात्य प्रभाव” शीर्षक विषय पर मैने डॉ० सोमनाथ जी गुप्त के निर्देशन में शोध-कार्य किया जिसको राजस्थान विश्व विद्यालय ने पी एच डी उपाधि के लिए स्वीकार किया है। अनुसंधान के बारे में अब यह धारणा ऊठोर नहीं रही कि विषय कुछ शताब्दियों पुराना होना ही चाहिए। फिर भी निर्धारित काल सीमा एक अनुसंधान व समीक्षा के प्रणालीगत भेद के कारण विषय को वर्तमान तक लाना या कि सामयिक चर्चाओं का समावेश कर पाना सम्भव नहीं हो सका है। वस्तुतः प्राधुनिक साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव एक सतत प्रक्रिया है जिसके आकलन की भविष्य में भी आवश्यकता बनी रहेगी।

भारतीय साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव के अध्ययन की धार प्रायः अद्भुत शताब्दी पूर्व ही विद्वानों का ध्यान गया था। इस सम्बन्ध में डा. सत्यद अम्बुल की सदन विश्व विद्यालय द्वारा पी एच डी उपाधि के लिए स्वीकृत थीसिस द इन्फ्लुएंस ऑफ इंग्लिश लिटरेचर ग्रान उडू लिटरेचर (१९२४) तथा कलकत्ता विश्व विद्यालय से प्रकाशित प्रियरजन सेन की पुस्तक वेस्टन इन्फ्लुएंस इन बंगाली लिटरेचर (१९२४) का उल्लेख करना आवश्यक है। हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव का अध्ययन कुछ शोध प्रबन्धों के रूप में उपलब्ध है—डॉ० विश्वनाथ मिश्र का इंग्लिश इन्फ्लुएंस ग्रान हिन्दी लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर (१८७०-१९२०), डॉ० रवीन्द्रसहाय चर्मा का द इन्फ्लुएंस ऑफ इंग्लिश ग्रान माडर्न हिन्दी पोएट्री एण्ड क्रिटिसिज्म, डा. उषा सक्सेना का द इन्फ्लुएंस ऑफ इंग्लिश ग्रान द डवलपमेंट ऑफ हिन्दी फिक्शन (१८८१-१९३६) डा० गणेशन का ‘हिन्दी उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव,’ डा. श्रीपति शर्मा का ‘हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव’ तथा डा० शांतगोपाल पुरोहित का ‘हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव।’ उपरोक्त शोध प्रबन्धों की सूची ही विषय के महत्व एवं उसके प्रति बढ़ती

हुई परिशोध का प्रारंभ करती है। इन शोध पत्रों में मात्रा एवं शब्द साहित्यिक विषयों पर पारस्परिक प्रभाव का विवेचन किया गया है। इसी तरह ऐसे ग्रन्थ की प्रावण्यरूपा बनी हुई थी जिनमें विचारपारा को केन्द्र में रख कर पारस्परिक प्रभाव का आकलन किया जाय। प्रस्तुत शोध ग्रन्थ इसी दृष्टि से किया गया प्रयास है जो तत्सम्बन्धी घटायन को एक गया आयाम देता है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में पारस्परिक विचारपाराओं की पृष्ठभूमि में प्रायुक्तिक दृष्टि साहित्य की विचारपारा का विवेचन तथा विचार-वस्तु का वर्गीकरण कर उसमें एकमूर्तता का विधान किया गया है। प्रथम अध्याय 'नीटिका' में पारस्परिक प्रभाव के स्रोतों का उल्लेख है। अगले तीन अध्यायों में भारतीय जीवन पर प्रतिक्रिया होनेवाले पारस्परिक प्रभावों को जिनका परिचय प्रायुक्तिक दृष्टि साहित्य के माध्यम से विवृत है धारा गया है। इन अध्यायों में पानिह, सामाजिक और राजनीतिक-सांख्यिक विचारपाराओं का विवेचन किया गया है। पाँचवें, छठे और सातवें अध्यायों में प्रायुक्तिक दृष्टि साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों—आध्यात्मिक-रहस्यवाद, प्रगतिवाद, मनोवैज्ञानिक धारा पर पारस्परिक प्रभाव का विवेचन है। अंतिम अध्याय में अन्तर्धारा रूप में विद्यमान अनेकानेक नव व्यापक किन्तु पारस्परिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों—राष्ट्रीयता, समाजशास्त्र एवं प्रयोगवाद का विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में ही साहित्य के सभी वर्गों का विवेचन नहीं है, किन्तु जिज्ञासा है उती से विरल अत्यधिक व्यापक बन गया है। मेरा उद्देश्य साहित्यिक विशयों का विवेचन करना नहीं है बल्कि उनमें समिन्धित विचारपारा की ही विवेचना करना है। विचार तत्त्व को स्पष्ट करने की दृष्टि से इतस्तत अथन प्रवृत्ति का ही मैंने आशय लिया है।

पारस्परिक प्रभाव से स्वतंत्र प्रायुक्तिक दृष्टि साहित्य का निश्चय ही मौलिक विकास भी हुआ है। परन्तु वह प्रस्तुत ग्रन्थ का विवेच्य विषय नहीं है। अतः इस सम्बन्ध में यत्र तत्र इंगित ही किया गया है।

अतः में, श्रद्धेय डॉ० सोमनाथ जी गुप्त के प्रति विनम्रता प्रकट करना मैं अपना पावन कर्तव्य समझता हूँ। उनकी प्रेरणा और सतत प्रोत्साहन के बिना यह शोध प्रबन्ध लिखना सम्भव नहीं था। शास्त्रों ने 'ऋषि ऋण' की गणना ऐसे ऋण में की है जिससे उऋण नहीं हुआ जाता।

—हरिकृष्ण पुरोहित

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

पीठिका

१-३६

आधुनिक युग में पश्चात्य जातियों का आगमन एवं आंग्ल शासन की स्थापना—पोपु गालियों का आगमन, प्रभाव, ढर्चों का आगमन, फ्रांसिसियों का आगमन प्रभाव, देन व जमन जातियों का आगमन जमन प्रभाव आंग्ल शासन की स्थापना १-७ नवीन आतावरण ७-६ पश्चात्य शिक्षा का आरम्भ ६ फोट विलियम वॉल्टे और हिंदी साहित्य ६-१२ पश्चात्य शिक्षा का विकास प्रभाव १२-१५ ईसा मिशनरियों की देन १५-१८ योस्वीय विद्वानों, रायल ऐशियाटिक सोसायटी का पुरातत्व विभाग की देन १८-२१ सांस्कृतिक आन्दोलन राजनीतिक आवश्यकता की उपज—ब्रह्म समाज आय समाज, रामकृष्ण मिशन एवं धियोसाफिकल सोसायटी २१-२४ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं स्वतंत्रता आन्दोलन २४-२६ पश्चिम की देन प्रेस पत्रकारिता का विकास २६ साहित्यिक सस्याएँ—उद्देश्य पश्चात्य सस्याओं के अनुरूप २७ नवीन पाठ्य क्रम एवं धनुवादों द्वारा पश्चात्य प्रभाव—कविता नाटक, उपन्यास कहानी, निबंध २६-३६

द्वितीय अध्याय

धार्मिक विचारधारा का स्वरजात्मक प्रवृत्ति

४०-८३

पश्चात्य सभ्यता का भौतिकवादी रूप—आध्यात्मिकता के स्थान पर लौकिक समस्याओं की प्रमुखता—ईसाई धर्म—प्रचार के विरुद्ध भारतीय प्रतिनिधा आहारण व सामाजिक प्रगति में बाधक मंदिरों में दुराचार का विरोध, मंदिर में मदिरा पान का आस भक्षण का विरोध, पढितों व पुजारियों की स्वायत्तता का विरोध ४०-५० धर्म सत्त्वों की बुद्धिवादी व्याख्या ५१-५८ बुद्धिवाद इस्लाम की महत्ता का प्रतिपादन भक्ति का स्वरूप स्वर्ग के बदले धर्म—बैतुत, अवतारवाद ईश्वरावतारों का मानव रूप में चित्रण, प्रति प्राकृत-सत्त्व के बदले स्वानाविकता का समावेश, स्वामाविक रूपत्रण धोराणिक धर्मों में मानव मुलम धर्मजोरियों के प्रति सहानुभूतिहीनता नतिक मान्यताओं की बुद्धिवादी परिणति ५८-७० मानववाद—पाजिटिस्ट दर्शन का मानववादी आधार रवीन्द्र-नाथ क मध्यम से, मानव सेवा ही ईश्वर सेवा ७१-७७ ईश्वर व धर्म सम्बन्धा मान्यताएँ धर्म में नतिकता ७७-८२

हुई बने रहने का प्रयत्न करती है। इन शोष प्रयोगों में भाषा एक कुछ साहित्यिक विषयों पर पारचात्य प्रभाव का विवेचन किया गया है। सभी तब ऐसे शोष की आवश्यकता बनी हुई थी जिनमें 'विचारधारा' को केन्द्र में रखा कर पारचात्य प्रभाव का आकलन किया जाय। प्रस्तुत शोष प्रबन्ध इसी दृष्टि से किया गया प्रयास है जो तत्सम्बन्धी अध्ययन को एक नया आयाम देता है।

प्रस्तुत शोष प्रबन्ध में पारचात्य विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में प्राधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा का विवेचन तथा विचार-वस्तु का वर्गीकरण कर उसमें एकनूतता का विधान किया गया है। प्रथम अध्याय 'चौटिका' में पारचात्य प्रभाव के स्रोतों का उल्लेख है। अगले तीन अध्यायों में भारतीय जीवन पर प्रतिकलित होनेवाले पारचात्य प्रभावों को जिनका परिचय प्राधुनिक हिन्दी साहित्य के माध्यम से मिलता है, आशा गया है। इन अध्यायों में धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक-धार्मिक विचारधाराओं का विवेचन किया गया है। पाँचवें, छठे और सातवें अध्यायों में प्राधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों—आयावाद-रहस्यवाद, प्रगतिवाद, मनोवैज्ञानिक धारा पर पारचात्य प्रभाव का विवेचन है। अन्तिम अध्याय में अन्तर्धारा रूप में विद्यमान अथ ताज्जत नाम व्यापक किन्तु पारचात्य दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों—राष्ट्रीयता, महापुरुष एवं प्रयोगवाद का विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में हिन्दी साहित्य के सभी प्रयोगों का विवेचन नहीं है, किन्तु जिनका उद्देश्य विषय-धार्मिक व्यापक बन गया है। मेरा उद्देश्य साहित्यिक विषयों का विवेचन करना नहीं है बल्कि उनमें अभिमुखित विचारधारा की ही विवेचना करना है। विचार तत्व को स्पष्ट करने की दृष्टि से इतस्ततः अथ प्रवृत्ति का ही मैंने आशय लिया है।

पारचात्य प्रभाव से स्वतंत्र प्राधुनिक हिन्दी साहित्य का निरचय ही मौलिक विकास भी हुआ है। परन्तु, यह प्रस्तुत प्रबन्ध का विवेच्य विषय नहीं है। अतः इस सम्बन्ध में यत्र तत्र उचित ही किया गया है।

अतः मैं, अक्षय डा० सोमनाथ जी गुप्त के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना पावन कर्तव्य समझता हूँ। उनकी प्रेरणा और सतत प्रोत्साहन के बिना यह शोष प्रबन्ध लिखना सम्भव नहीं था। शास्त्रों ने 'ऋषि ऋण' की गणना ऐसे ऋण में की है जिससे उऋण नहीं हुआ जाता।

—हरिकृष्ण पुरोहित

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

पोठिका

१-३६

प्राधुनिक युग में पाश्चात्य जातियों का आगमन एवं आंग्ल शासन की स्थापना—पोपु गालियो का आगमन, प्रभाव, डर्चों का आगमन, फ्रांसिसियो का आगमन प्रभाव, डेन व जर्मन जातियों का आगमन जर्मन प्रभाव, आंग्ल शासन की स्थापना १-७ नवीन वातावरण ७-९ पाश्चात्य शिक्षा का आरम्भ ९ फोट विलियम कॉलिमोर हिन्दी साहित्य ९-१२ पाश्चात्य शिक्षा का विकास, प्रभाव १२-१५ ईसा मिशनरियों की देन १५-१८ श्रेणीय विद्वानों, रायल ऐशियाटिक सोसायटी ए पुरातत्व विभाग की देन १८-२१ सांस्कृतिक आन्दोलन राजनीतिक आवश्यकता की उपज—ब्रह्म समाज धर्म समाज, रामकृष्ण मिशन एवं वियोसोफिकल सोसायटी २१ २४ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं स्वतन्त्रता आन्दोलन २४ २६ पश्चिम की देन प्रेस पत्रकारिता का विकास २६ साहित्यिक संस्थाएँ—उद्देश्य पाश्चात्य संस्थाओं के अनुरूप २७ नवीन पाठ्य क्रम एवं अनुवादों द्वारा पाश्चात्य प्रभाव—कविता नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध २९-३६

द्वितीय अध्याय

धार्मिक विचारधारा स्वरूपात्मक प्रवृत्ति

४०-८२

पाश्चात्य सभ्यता का भौतिकवादी रूप—आध्यात्मिकता के स्थान पर लौकिक समस्याओं की प्रमुखता—ईसाई धर्म—प्रचार के विरुद्ध भारतीय प्रतिप्रिया, आहार्य वगैरे सामाजिक प्रगति में बाधक मंदिरों में दुर्गाचार का विरोध, मंदिर में मदिरा पान व मांस भक्षण का विरोध, पंडितों व पुजारियों की स्वाधरता का विरोध ४०-५१ धर्म सत्वों की बुद्धिवादी व्याख्या ५१ ५८ बुद्धिवाद इस्लाम की महत्ता का प्रतिपादन, भक्ति का स्वरूप स्वर्ग के बदले भू-केन्द्रित, अवतारवाद ईश्वरावतारों का मानव रूप में चित्रण भक्ति प्राकृत-तत्त्व के बदले स्वाभाविकता का समावेश, स्वाभाविक रूपकरण पौराणिक चरित्रों में मानव सुलभ कमजोरियों के प्रति सहानुभूतिशीलता नतिक मान्यताओं की बुद्धिवादी परिणति ५८-७० मानववाद—पाजिटिविस्ट दृष्टान्त का मानववादी आधार रवींद्र-काव्य के मध्यम से, मानव सेवा ही ईश्वर सेवा ७१ ७७ ईश्वर व धर्म सम्बन्ध का मत ए धर्म-प्रेरक नतिकता ७७-८२

तीसरा अध्याय

सामाजिक विचारधारा सुधारपरक दृष्टि ८३-११२

समाज सुधार (धरसर और स्वरूप) ८३-८७ सब-इस्लामवाद का प्रसार
सामाजिक सुधारों का नवीन स्रोत ८७ ८६ नारी उत्थान की प्रवृत्ति ८६-६३,
विधवा विवाह एवं वेश्यावृत्ति ६३ ६५ नारी महत्ता का प्रतिपादन ६५-६६ अछूत
जातियों के प्रति सहानुभूति ६६-१०० विवाह समस्या १००-१०५ प्रेम सम्बन्धी
काइवेल की विचारधारा का आरोपण प्रेम जीवन के साधन-रूप में १०५-१०८
ढहती मायताएँ १०८-११२

चौथा अध्याय

राजनीतिक धार्मिक विचारधारा सधप व माय कांसा ११३-१७

पृष्ठभूमि ११३-११४ मुसलमानों के प्रति दृष्टिकाण ११५-११८, राजमक्ति
की भावना ११६ भारते दु युग के लेखक व १८५७ का विद्रोह ११६-१२०, सामंत
वाद का विरोध १२१ १२३ राजमक्ति एवं देशमक्ति की सम्मिलित धारा १२४ १२७,
विदेशी शासन के विरोध के कुछ मनोवैज्ञानिक कारण-रंगभेद, अंग्रेजों के बभ्रव
प्रदर्शन का विरोध, इलवट बिल-माय की दुर्व्यवस्था, ग्राम्स एक्ट व प्रस एक्ट
भाषा नीति, गोत्र १२७ १३३ ग्राम शासन के धार्मिक शोषण का विरोध-माम्राज्य-
वादी शोषण, विदेशी युद्धों का व्यय, व्यापार और उद्योग, व्यापार की दुदशा,
गरीबी व महगाई का चित्रण १३३-१४३ भारते-दु युग के लेखकों की राजनीतिक
व धार्मिक चेतना १४३-१५०, द्विवेदी युग राजनीतिक सधप-साम्राज्यवाद का
विरोध, बग-मग मा-दोलन की धर्मव्यक्ति हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्रयत्न, काप्र स
के नर्तन नीति का प्रभाव १५०-१६० छापावाद युग माधीवाद का सद्धार्मिक
पन् १६०-१६४ धार्मिक सधप जमींदारी प्रथा का विरोध १६४-१६८ प्रगतिवादी
युग सामर्थ्य राजनीति १६८-१७३

पाचवा अध्याय

छापावा-रहस्यवा काव्य चेतना का प्रसार १७४-२७०

पृष्ठभूमि १७४ ग्राम रोमांटिक काव्य-इतिहास रूसों की विचारधारा
प्रकृति दर्शन परमिणी चरित की प्रतिक्रिया, प्रवृत्तिया-भादर्शात्मक विद्रोह, सौ न्य,
धरमाद, कल्पना प्रेम १७५ १८१ छापावादी कविता एवं रोमांटिक काव्य में समानताएँ
१८१ १८३ धारमिक स्व-द-वा-प्रकृति प्रेम १८३-१६० द्विवेदीयुगीन काव्य
रुद्धियों का प्रति विद्रोह काव्य की धर्ममुखी प्रवृत्ति १६०-१६३ प्रकृति चित्रण-प्रकृति
में प्रेरणा, प्रकृति सञ्जीव सत्ता का रूप में, प्रकृति का मानव मन पर प्रभाव, प्रकृति स
त्तिया प्रहण, प्रकृति सत्ता का प्रकृति का उग्र रूप प्रकृति के माध्यम से ऐतिहासिक

प्रनुपगों की उद्भावना प्रकृति का मानवीकरण प्रकृति व साहचर्य में सरल जीवन
 ११२-२१२ नारी-सौन्दर्य भोग लालसा के बन्ने भाव सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य-वर्णन म
 प्रकृति से उपमानों का प्रयोग, एन्द्रिय सौन्दर्य का चित्रण, प्रेम-देवता व भ्रष्टरा के
 विस्मय रूप का चित्रण २१२-२२५ पातिसौ प्रतीकवाद का प्रभाव-प्रतीकवाद
 व्याख्या सांगीतिकता एवं चित्रात्मकता २२६-२३१ मद्रम वसा व निराशावाद
 २३१-२४० रहस्यवाद २४१-२४३ हैगलीय अध्यात्मवाद-परम भाव विश्व की प्राण
 भूत सत्ता २४३-२६७ भारत रोमांटिक काव्य का प्रभाव-वालक से स्वर्गा भावना,
 सर्वात्मवाद दर्शन २४७-२४८ ईसाई सनों का रहस्यवाद २५४-२६७ अग्नि यजनावाद
 २६७-२७७

छठा अध्याय

प्रगतिवादी साम्यवाद का साहित्यिक प्रतिरूप

२७८-३२७

सिद्धांत-साहित्य में वर्ग-भावना की अभिव्यक्ति, साहित्य दलगत राजनीति
 के प्रचार का साधन, कला की प्रेरणा सामूहिक-भाव, सौन्दर्यगत मान २७८-२८७
 इतिहास रूसी क्रांति से पूर्व रूसी क्रांति के पश्चात्, अंग्ल साहित्य में भावसवादी
 प्रवृत्ति, प्रगतिशील लेखक सघ २८७ २९१ आलोचना के मान २९१-२९३ सामाजिक
 लयित्व एवं व्यक्तिगत चेतना का सघ २९३-३०० प्रगतिवादी विचारधारा और
 फायडीय मनोविज्ञान नारी का जागृत रूप, कुण्ठित वासना का चित्रण ३००-३१०
 साहित्य रचना साधन रूप में वर्ग-सघ की गावना विज्ञान श्रमिक क्रांति में
 विश्वास ३११-३२४ रूस की प्रशस्ति ३२५-३२७

सातवा अध्याय

साहित्य और मनोविश्लेषण (सदम उपवास)

३२८-३७९

मनोविश्लेषण सिद्धांत-कला काम वासना का उदात्तकरण मानसिक अत
 इन्द्र और कला काम वासना का विकास और मानसिक अश्रिया, कला सृजन म
 भाव की स्मृतियों का महत्व, कला जीवन से पलायन के लिए, मनोविश्लेषण
 और सौन्दर्यगत मान, कला और नैतिकता फायडीय मत, प्रतीक विज्ञान
 ३२८-३३७ व्यक्ति मन विज्ञान-सिद्धांत-हीन भावना की प्रथि, कला
 हीन भावना की प्रथि का क्षतिपूर्क प्रयास, कला और नैतिकता एडलरीय
 मत ३३७-३४१ विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान-सिद्धांत-मन के स्तर और जातीय
 अवचेतन कला के माध्यम से जातीय अवचेतन की अभिव्यक्ति कला का निर्व्यक्तिक
 स्वरूप ३४१-३४५ हिंदी का साहित्य की अतमुही प्रवृत्ति ३४६-३४७ जनेद्र
 के उपवासों में पर-पीडक व आत्म-पीडक चरित्र सृष्टि-सुनीता में शोकाव
 के चरित्र में पर-पीडन का भाव, त्याग पत्र की बुद्धा में आत्म पीडन की

३४७-३५२ 'श्याम पत्र' में नये मूल्यों की खोज-गेस्टाल्ट पथी मनोविज्ञान की प्रवृत्ति
३५२-३५४ बाल मनोविज्ञान बाल मन के अध्ययन का महत्व स्वीकार, 'शेखर एक
जीवनी' में मनोविज्ञान ३५४-३६३ 'शेखर एक जीवनी' में वय सधि अवस्था
का मनोविज्ञान ३६३-३६५ परिवार का 'युक्तित्व पर प्रभाव ३६५-३६६ व्यक्तित्व
की असाधारणता ३६६-३६९, मानसिक कुठारा का चित्रण सामाजिक बंधनों के
विरुद्ध प्रकृत जीवन की मांग आडीपस व एलेक्ट्रा ग्रिय, प्रेम में घात प्रतिघात
हीन भावना की ग्रिय ३६९ ३७५ अथ मानसिक प्रक्रियाएँ ३७५-३७९

आठवा अध्याय

अंतर्धारा रूप में प्रवृत्तियाँ (राष्ट्रीयता यथायवाद प्रयोगवाद) ३८०-४२०

राष्ट्रीयता आधुनिक अर्थ में राष्ट्रीयता की भावना पश्चिम की देन, सांस्कृ-
तिक पुनरुत्थान के अक्षर वर्तमान हीनावस्था की प्रतिक्रिया, पाजिटिविस्ट दशन के
अनुरूप सांस्कृतिक विशिष्टता की देन सबंधी विचारधारा रवीन्द्र के माध्यम से
३८०-३९९, यथायवाद ४००-४१३ प्रयोगवाद अस्तित्ववाद का प्रभाव, अर्थ के
'नदी के द्वीप' उपन्यास में अस्तित्ववाद ४१३-४२०

उपसंहार

४२१-४४०

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास विगत सौ वर्षों का इतिहास है। इस काल में साहित्य के मूल्य व आदर्शों में परिवर्तन हुआ है, विविध विषयों का समावेश हुआ है उसके विभिन्न अंगों का विकास हुआ है तथा अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ व वादों का प्रचलन हुआ है। इस विशद परिवर्तन के विविध कारणों में से प्रमुख कारण भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना और पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव है।

(१) आधुनिक-युग में पाश्चात्य जातियों का आगमन एवं आंग्ल शासन की स्थापना

आधुनिक युग में भारत में पाश्चात्य प्रभाव का अनुभव अंग्रेजी शासन की स्थापना के पश्चात् किया गया। अंग्रेजों के अतिरिक्त आधुनिक-काल में हम पोर्चुगीज, डच, फ्रांसिसिया आदि के सम्पर्क में भी आये किन्तु भारत में पाश्चात्य सभ्यता का प्रतिनिधित्व आंग्ल जाति ने ही किया।

पोर्चुगालियों का आगमन

भारत कोने की चिड़िया के रूप में योरोपीय देशों में सदियों पूर्व से प्रसिद्ध था एवं भारत व योरोप के बीच फारस के व्यापारियों के माध्यम से प्रायः घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध रहे। सातवीं शताब्दी में भिन्न व फारस पर अरब निवासियों का अधिकार हो गया। कस्तुनतुनिया पर अरबों का अधिकार (सन् १४५३) हो जाने से भारत और योरोप के बीच थल-मार्ग से व्यापार बंद हो गया। किन्तु, पूर्वी देशों और योरोप का सम्बन्ध केवल व्यापारिक लाभ अथवा साम्राज्य-विस्तार के लिए ही आवश्यक नहीं था वरन् योरोप निवासियों के जीवन-यापन की कुछ आवश्यक वस्तुएँ भी इस व्यापार पर आधारित थीं। अतः योरोप व पूर्वी देशों के बीच पुनः व्यापार

* G F Hudson in 'Europe and China' quoted by K M Fannikar in his 'Asia and Western Dominance' George Allen and Unwin Ltd. London 1953 P 24

Spices which became more and more essential for European cookery could not be obtained except from India and Indonesia and must come through Persia or Egypt. This indispensable and naturally monopolist trade came to be

को स्थापित करने के लिए उत्साही लोगो ने जल-मार्ग में भारत पहुँचने का रास्ता खोज निकालने का प्रयत्न किया। इस मार्ग की खोज में कोलम्बस भारत के बंदे अमरिका (सन् १४९६) पहुँच गया था। जल मार्ग से योक्षीय जानिया में सबसे पहल पोचु गोज भारत पहुँच। लिस्बन से रवाना होकर आशा अतरीप (Cape of Good-hope) होते हुए वास्को ड गामा २७ मई १४९८ ई० को तीन जहाज लिए कालिकट पहुँचा। वास्को ड गामा के कालिकट पहुँचने की घटना के महत्व को इसी बात से समझा जा सकता है कि दो सौ वर्षों से जिस स्वप्न को योक्षीय निवासी देख रहे थे तथा जिस फलोभूत करने के लिये वे पचहत्तर वर्षों से प्रयत्नशील थे वह इस दिन पूरा हुआ। एशिया में प्रवेश करने के समय पोचु-गालिया के सामने तीन उद्देश्य थे-गरम मसाला के व्यापार पर अगता प्रभुत्व जमाना, इस्लाम के प्रभाव को नष्ट करना ईसाई मत का प्रचार करना।

कालिकट के राजा जमोरिन ने वास्को ड-गामा का स्वागत किया तथा उसके साथ वस्तुओं का आदान-प्रदान किया। किन्तु शाह ही पोचु गालिया के साथ संबंध बिगड़ गया। पोचु गालियो ने भारतीयों के विरुद्ध गाला-बारूक का प्रयोग किया एवं स्थानीय जनता में भय की भावना फैलायी। पोचु गालियो में अलबुकुक याग्य शासक था एवं उसने भारत में पोचु गोज शासन को पर्याप्त सुदृढ़ बना दिया। बंगाल, मलाबार कोरोमडल का तट व सूरत पर उनका अधिकार हो गया। किन्तु पोचु गालियो का ध्यान मुद्र पूव के व्यापार पर अगता अधिकार जमाने की ओर अधिक केन्द्रित हो गया। स्पेन के सम्राट फिलिप द्वितीय के शासन-काल में स्पेन व पोचु गाल का शासन संयुक्त हो गया (सन् १५८० ई०)। तब स्पेन के शासक ने पोचु गाल के

the Chief bone of contention in the politics of Levant and was the most powerful single factor in stimulating European expansion in the fifteenth century. The Tartar ascendancy in Persia before the conversion of the Ilkhanate to Islam, allowed Italian traders to go direct to India and cut prices against the Egyptians who were wont to raise them three hundred percent as middleman between India and Europe as a result Europeans knew where spices were produced and at what cost so that when they were again cut off from the Indian market by a hostile Islam and by incessant wars in the Levant they were well aware of the opportunities awaiting any power that could find a new route to the Indies where the spices grow.

पूर्वी राज्यों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। अतः पोचु गाल की शक्ति क्षीणतर होती गयी। डच शासकों ने पूब म लका व मलक्का के राज्य पाचु गालिया से छीन लिये। उन्होंने बंगाल कोरोमडल के तट व मलाबार के तट क भागों को भी पोचु-गालियों से छीन कर अपने हस्तगत कर लिया। अतः म अंग्रेजों ने मूरत, बंगाल, कोरोमडल के तट व मलाबार के तट पर पोचु गालियों से अनन्व युद्ध लडे जिनम पोचु गोज पराजित हुए तथा भारत म उनका अधिकार क्षेत्र अत्यधिक सीमित हो गया। यद्यपि गोम्हा, डामन, ड्यू जिनका क्षेत्र कुछ ही वर्गमीन है— म पोचु गोज शासन भारतीय स्वतन्त्रता के कुछ काल बाद तक बना रहा किन्तु, इन स्थिति मे वह भारतीय सम्पत्ता व सस्कृति को प्रभावित करने म समर्थ नहीं हो सका।

प्रभाव

आरम्भ मे पोचु गालियों का भारतीय जीवन पर विषय प्रभाव पडा। लगभग १५० वर्ष तक अकेली पोचु गोज जाति ही भारत म योक्ष्य की प्रतिनिधि थी। पोचु गालियों ने भारतीय स्त्रिया से विवाह सम्बन्ध भी जाडे। भारत म पोचु गालियों के सम्पर्क से एक नवीन जाति का ही उद्भव हुआ जिसकी यूरोपियन सम्प्रदाय म गणना की गयी। पोचु गोज भाषा का भारत म व्यापक प्रसार हुआ था। जब डच, फ्रांसिसी व अंग्रेज भारत म आये तो उन्हें अपना वात ममभने व समझाने के लिये शुल् म पोचु गोज भाषा का ही आश्रय लेना पडा। पोचु गोज भाषा का अधिकांश भारतीय नौकरो व व्यापारियों में प्रसार हुआ था। भारत म बोली जाली जाने वाली पोचु गोजी भी शुद्ध रूप म नहीं रही तथा उसमे देशी भाषाओं के बहुत से शब्द प्रवेश कर गये थे। इसी प्रकार भारतीय भाषाओं म भी पोचु गोज भाषा के सकडा शब्द प्रवेश पा गये। हिन्दी म अनेक पोचु गोज शब्द इस प्रकार घुल मिल गये हैं कि उन्हें अलग करना कठिन है। * आधुनिक योक्ष्यीय भाषाओं म अंग्रेजी के वाच पाचु गालीज भाषा के ही हिंशे म सर्वाधिक आगत शब्द हैं एव फ्रेंच जर्मन डेनिश आदि के नगण्य है। पोचु गालियों की दूसरी महत्वपूर्ण दान प्रेस है। भारत मे सब प्रथम पाचु गालियों ने गाम्ना म प्रस आरम्भ किया।

डचों का आगमन

स्पेन के 'अजय वेडे' की पराजय न अन्व योक्ष्यीय जातियों का भी पूर्वी देशा से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। हालण्ड का ध्यान व्यापारिक कम्पनी की स्थापना की ओर गया तथा मूरत मे डच इस्ट इंडिया कम्पनी (सन् १६१६) की स्थापना की गयी। भारत म डच व्यापार की दृष्टि से आये व। पोचु गालियों की तरह ईसाई धर्म का प्रचार उनका लक्ष्य नहीं था। अंग्रेज, जो स्वयं भारत म व्यापार की दृष्टि से आये स्थानीय लोगों को डच व्यापारियों का विरोध करने

* देखिए धीरेन्द्र वर्मा 'हिन्दी भाषा का इतिहास' पृष्ठ ७५

के लिए उत्साहित करने लग। जब वभी डच भारतीयों के साथ दुश्मनवहार करत ता अंग्रेज, जो भारत में डचा के बाद आये, भारतीयों की सहायता किया करत। डचा ने चिनसुरा में अपनी बस्ती बसायी। चिनसुरा से व अपने व्यापार का प्रबंध करते थे। डचा का एक बहुत बड़ा व्यापारिक जहाज जब चिनसुरा से बगाल की ओर गया तब उस पर अंग्रेजों और बगाल के नवाब ने मिलकर आक्रमण कर दिया। डचों का व्यापारिक बड़ा नष्ट भ्रष्ट हो गया। अतः व डचा ने सुमात्रा के परिवर्तन में चिनसुरा ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिया। (सन् १८०५)।

फ्रांसिसियों का आगमन

फ्रांसिसियों ने भी डचों की तरह फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनी (La compagnie des Indes orientales) की स्थापना की (सन् १६०४)। उन्होंने पाण्डीचेरी नगर का निर्माण किया। फ्रांसिसियों के विरुद्ध लड़ाई में डचों ने पाण्डीचेरी पर अपना अधिकार कर लिया, किन्तु योरोप में रेस्वीक की संधि (Treaty of Ryswick) के अनुसार उसे पुनः फ्रांसिसियों को लौटा दिया गया। बगाल में चन्द्र गुरु ने फ्रांसिसियों की व्यापारिक बस्ती थी। वहाँ से बगाल विहार और उड़ीसा के महत्वपूर्ण नगरों में उठने वाली शाखाएँ खोली। दक्षिण भारत में राजनीति में अधिक भाग लेने के कारण लोगों में फ्रांसिसियों के प्रति अविश्वास होने लगा। बगाल का नवाब सिराजुद्दौला अपने प्रांत में योरोपीय बस्तियों के विरुद्ध था। बलाइव ने सिराजुद्दौला से चन्द्रनगर पर आक्रमण करने की अनुमति प्राप्त कर ली और फ्रांसिसियों पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण से फ्रेंच शक्ति को बहुत बड़ा धक्का लगा। फ्रांसिसी गवर्नरों में यद्यपि डूप्ले बुसी काउण्ट लेली जैसे योग्य शासक थे किन्तु फ्रांस सरकार की सहायता के अभाव में उन्हें अधिक सफलता नहीं मिल सकी।

प्रभाव

फ्रांसिसियों ने भारतीयों को सब प्रथम पश्चिमी ढंग की सैनिक शिक्षा दी। फ्रांस की राज्य प्राप्ति के दिनों में मसूर के सुलतान टीपू ने प्रांतिकारी फ्रांस से संधि की और श्रीरंगपट्टम में स्वतंत्रता का उद्घोष किया। हैदराबाद निजाम के सेनापति फ्रांसिसी मोहम्मद रैमान्ड ने फ्रांस में प्रचलित प्राप्ति के विद्वानों का हैदराबाद में प्रचलन किया था। फ्रांसिसी प्राप्ति से भारत का यह किंचित सम्बंध कहा जा सकता है। फ्रांस योरोप में क्रांति की उन्नति का केन्द्र रहा है। अंग्रेजों के माध्यम से भारतीय साहित्य व कलाओं पर भी फ्रांसिसी प्रभाव प्रतिफलित हुआ यद्यपि यह प्रभाव प्रति प्राधुनिक है और इसका भारत पर तत्कालीन फ्रांसिसी राज्य से कोई संबंध नहीं है।

डेन व जमन जातियो का आगमन

पोर्चुगालिया, फ्रांसिसियो, डचो एव अंग्रेजो के अतिरिक्त भारत में व्यापार के लिए योरूपीय जातियो मे डेन (डेनजियम) व जमन जातियो का भी आगमन हुआ । डेना ने डेनिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना (१६१६ ई०) की । उन्हाने मलाबार व तट पर अपनी फक्ट्रिया एव बंगाल मे हुगली के तट पर श्रीरामपुर नामक एक सुन्दर नगर बसाया (१६७६ ई०) । श्रीरामपुर उत्तर भारत मे ईसाई मिशनरियो का सबसे प्रमुख केन्द्र था । आंग्ल शासन-वाल म जब कमी प्रेस एक्ट आदि के कारण ईसाई मिशनरियो का कलकत्ता व आसपाम के स्थानो म रहना कठिन हो जाता तो वे श्रीरामपुर पहुँच कर अपनी रक्षा करत थे । सन १७६६ ई० म इंग्लण्ड के वेपटिस्ट मिशन के भारत स्थित घम-प्रचारका डा० विलियम बरे, माजमन तथा बाड ने श्रीरामपुर मे डेनिश मिशन की स्थापना की । आगमन प्रधिकारियो के हस्तक्षेप का विरोध कर डेन गववरा न एन मिशनरियो को सदैव सुरक्षा प्रदान की । श्रीरामपुर जो डेनमाक के सम्राट के नाम पर ' फ्रेडिक सगोर ' कहलाता था तथा कारामण्डल तट पर स्थित टेंक्वेबार व वालासोर की एक फेक्टरी को डेनमाक सम्राट से बारह लाख पचास हजार रुपये देकर इंग्लण्ड की ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्राप्त किया । श्रीरामपुर मिशन का हिंदी बंगला व उर्दू म रचिन इमाई साहित्य के लिए इन माध्यामों के इतिहास म महत्वपूर्ण स्थान है । श्रीरामपुर के मिशनरियो न प्रेम खोल तथा अखबार व पुस्तकें प्रकाशित की । उन्हाने मद्य म नवीन ज्ञान की शिक्षापयोगी पुस्तकें लिखी ।

जमन प्रभाव

बंगाल मे बाकी बाजार ग्राम म जमनो ने भी " प्राम्टेंट कम्पनी " स्थापित की । यह कम्पनी आस्टिया के सम्राट के सरक्षण म स्थापित की गयी थी । आस्टिया के सम्राट ने राजनीतिक कारणो से इस कम्पनी को स्थगित कर दिया । डच और अंग्रेजो ने हुगली के फौजदार व अली बर्नी खा (बंगाल के नवाब) के जमनो के विरुद्ध कान भरे जिसमे उन्होने बंगाल स्थित जमना पर आक्रमण कर दिया एव जमनों को भारत छोड कर जाना पडा । जमनों व भारतीयो का मद्यपि अधिक सम्पर्क नहीं रहा किन्तु, भारतीय दर्शन व साहित्य की ओर जमन विद्वानो की विशेष रुचि रही । जमन विद्वाना ने सस्कृत भाषा व सस्कृत साहित्य क अध्ययन म महत्वपूर्ण योग दिया जिससे परात्न रूप म भारतीय सस्कृति के पुनरुत्थान म योग मिला ।

आंग्ल-शासन की स्थापना

भारत मे पश्चात्य प्रभाव की सबसे महत्वपूर्ण माध्यम आंग्र जाति रही है । अथ योरूपीय जातियो की तरह अंग्रेज भी भारत में व्यापार के लिए आये थे ।

उन्नीस सत्र प्रथम सत्र १९१३ ई० म सुप्रीम म कोर्टनी क १ गोपी । धारणम म के
 स्थापना क सत्र २० परसु बा ५ उन्नीस सत्री मतिर कति चम्पनी तथा कुन्नीति
 म बाव क प्रयोग म सत्र १७४० म १८४७ ई० क बाव धारण म जिनम कुन्नी
 राजनीतिक शक्तिया का ता कर धारा १८४७ रारः स्थापित कर रिया । २१ १७
 म गोपु मतिरवा का उन्नीस हुं कति का शक्ति क रिय उन्नीस रिय बनवास तथा
 नी नरवा क साथ साथ विपद कर उन्नीस सत्री प्रसार बना रिया । कदा क
 नवास का शक्ति क सत्र (सत्र १७४७) म पराजित करने पर धारण म उन्नीस कति
 घट गयी तथा म शासन-विस्तार का स्वरूप तथा ३८ ।

प्रायम कतिरानी मुगम मन्त्र धोरणदर क शरण-का म ही मुगम
 साधारण क पात क मिर, प्रकट शान मग मग म । धोरणदर क पत्र क का । म
 शक्तिया ही मगर गही हुवा का साधारण की शक्ति हुं रिय का गृह करण ।
 शक्ति म मुगम बागनामी को हुवा (जुलियरिया १७१३ परमगार १७१६)
 शक्तिरवाह का प्रायमण (१७३६) क उमक द्वारा शि म कतर प्राय बगाम,
 शिरावा शि म तथा अधम म मुगम नयाको द्वारा स्वतन्त्र राज्या की स्थापना, शिरा
 राजपूत म गहटा क विरोध धारणा का मारा सू-मार शक्ति मन्त्राया म शिरामीन
 पुग की राजनीतिक विजयता का पना चल जाता है । म मम म जना शक्ति
 की इच्छुन भी परतु प्राय शि क मुन्नी के कारण जना क शि क दुलभ होतो
 जा रही थी । शिरा म दाता मुगम का शासना की हुवा होने पर शाह धानम मपने
 जीवन की रक्षा क शि यगान म अध जा की कारण म माण जिनकी शक्ति घटा
 पनामी क मुद (सत्र १७४७) म शिरा प्रण करने से स्थापित हा चुकी थी । शिरी
 की राजगद्दी की माली टर कर एक धोर स अधगान य दूसरी धोर मे गहटा उस
 पर अधिकार करने क शि क है । दोनो शक्तिया क शि रिय, म-प्रमिद्ध वानेप
 का तीमरा युद्ध (सत्र १७०९) हुआ जिसम मरहटा शक्ति पराजित हुं । अधगान की
 भी घरेलू मामलो के कारण वापस लौटना पडा । प्रथम क नयाव यजोर क साथ
 अर्जेजे ने बक्सर का युद्ध (१७६४) लडा जिसने परिलामस्वरूप अर्जेजे के अधिकार
 खट गये । जब शाह धालम बगाल से नीट कर शिरा प्राय (सत्र १७६४) उस
 समय वह ईस्ट इंडिया कम्पनी से केवल पेंशन पाता था तथा उमक अधिकार समाप्त
 प्राय ही चुके थे । परिस्थितियों के दबाव स उत्तर बगान की नीवाना का अधिकार
 कम्पनी को द दिया या जो वस्तुतः (De Facto) पहले से ही अर्जेजे क अधिकार
 म था । उत्तर भारत म अर्जेजे का प्रभाव बढ़ने लगा । उत्तर के युद्ध की विजय
 (१३ अक्टूबर १७६४) से हिन्दी भाग भापी क्षेत्र पर अर्जेजे के अधिपत्य का
 सूत्रपात होता है ।

बक्सर के युद्ध से हिन्दी-प्रदेश मे अर्जेजे का शासन-विस्तार धारण हा
 गया । अधम के नयाव उजार ने बगाल के नयाव भीर कासिम को जो पनामी के युद्ध

म अंग्रेजों से हार कर भागा था, अपने यहाँ सुरक्षा प्रदान की। अतः अंग्रेजों ने अश्वघ पर घातकण कर दिया। शाह आलम ने भी नवाब वजीर को सहायता दी। बक्सर के युद्ध में अंग्रेजों की विजय हुई तथा नवाब वजीर व मुगल सम्राट शाह आलम उनके हाथों में आ गये। कलाइव न नवाब वजीर के साथ इलाहाबाद की संधि की जिससे अंग्रेजों का अश्वघ पर प्रभाव बढ गया। इसके पश्चात् युद्ध एवं संधियाँ का तारतम्य चलता रहा। कलाइव, वारेन हास्टिंग्स, कानवालिस सर जान फोर प्रभृति गवर्नर-जनरल अश्वघ पर अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहे। अतः मैन्टलेजनी ने अश्वघ के नवाब पर अत्यधिक प्रभाव डाला (सन् १७६८) तथा उसे सेना रखने की मनाही करदी और दोआब की भूमि को अंग्रेजों के अंतर्गत ले लिया। नवाब की मृत्यु व पश्चात् भी प्रत्येक दशक में अंग्रेजों की सहायता मिलती रहे इस दृष्टि से उसने राज्य-प्रबंध भी अंग्रेजों के हाथ में रखने के लिए दबाव डाला। इस प्रकार, अश्वघ पर अंग्रेजों का सम्पूर्णतया अधिकार हो गया।

मरहटा पश्चात् महादाजी सिंधिया शक्तिशाली मरहटा शासक था। सिंधिया ने शाह आलम को इलाहाबाद से ले जाकर दिल्ली की गद्दी पर बिठा दिया। महादाजी सिंधिया की मृत्यु (सन् १७६४) के पश्चात् दौलतराव सिंधिया पेशवा बना। अंग्रेजों की ओर से लाड लक को सेना देकर दिल्ली पर अधिकार करने के लिए भेजा गया। उसने पहले अलीगढ पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया व आगे दिल्ली की ओर बढ़ा। लेकिन दिल्ली पर अधिकार कर शाह आलम को अपनी निगरानी में ले लिया। इसके बाद उसने आगरा पर घेरा डाल कर उसे भी अपने अधिकार में कर दिया। अतः मलासवाडी के युद्ध (सन् १८०३) में कठिन संघर्ष के बाद सिंधिया की सेना की अन्तिम रूप में पराजय हो गयी। इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों का आगरा मथुरा मेरठ व मथुरा के आसपास बहुत से स्थानों पर अधिकार हो गया। इन्होंने लैपस नीति (Doctrine of Lapse) के द्वारा सतारा, नागपुर, झांसी आदि भी अंग्रेजी राज्य में मिला लिये गये। अस्तु, बनारस, इलाहाबाद आगरा लखनऊ कानपुर, मथुरा आदि जो आगे चल कर हिन्दी-साहित्य-निर्माण के महत्वपूर्ण केन्द्र बने अंग्रेजी राज्य के अंतर्गत आ गये।

(२) नवीन वातावरण

भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कारण एक नवीन वातावरण की सृष्टि हुई। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् देश में कोई सुन्दर केंद्रीय शासन नहीं था। सत्ता के लिए प्रतिस्पर्धित लड़ने वाले युद्धात् जनता तब आयी हुई थी। अतः जब भारत में अंग्रेजों का मुहम्मद शासन स्थापित हुआ गया तब जनता को उससे प्रसन्नता ही हुई क्योंकि अन्ध-सन्तों से बढकर उस शासित की चाह थी। किन्तु, प्राचीन भारतीय शासक वर्ग की दशा इससे भिन्न थी। यह वर्ग अपनी सत्ता खो देने के कारण विक्षोभ था तथा उसे पुनः प्राप्त करना चाहता था। फलतः सन् १८५७ के विद्रोह में

उन्होंने अपनी सत्ता की सुरक्षा का अंतिम हतया प्रयत्न किया जिसमें उनकी पराजय हुई। गंदर के पश्चात् दश म शांति की स्थापना हुई। महाराणी विक्टोरिया ने सब प्रथम घोषित किया कि आम जनता का सतुष्ट करना तथा उनके सुख व समृद्धि का ध्यान रखना ही अंग्रेजी शासन का उद्देश्य है। इससे देश में एक नवीन भाषा का संचार हुआ। शासन काय व शिक्षा पद्धति में एक रूढ़ता स्थापित हुई व रेल, तार समाचार पत्र आदि से जुड़ कर सारा देश एक बन गया। स्वेज नहर के खुलने (सन् १८६६) के पश्चात् भारतवासी भी योह्य जाने लगे तथा वहा के जीवन व विचारा में प्रभावित होने लगे। अंग्रेजी शिक्षा ने राष्ट्रीय विचारा को पनपान में सहयोग दिया। विदेशी शासन हमारे देश में राष्ट्रीय भावना को पनपानेवाला सिद्ध हुआ यह कथन आश्चर्यपूर्ण लगता है। तथापि यह सत्य है कि राजनीतिक प्रशासन एवं प्रबंध की दृष्टि से साम्प्रदायिक भाषायी एवं अथ सांस्कृतिक विभेदा को भुला सम्पूर्ण देश को एक एकाई मानने की भावना हमें अंग्रेजों से मिली है। इस भावना को साकार रूप राष्ट्रीयता की भावना में मिला जो पूर्णतः अंग्रेजी देन नहीं है क्योंकि अंग्रेजी नीकरशाही देश की जनता को एकना रखने के लिए कभी इच्छुक नहीं थी। आधुनिकता से परिपूर्ण जिस पश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से हमारे देश में नवीन भावनाओं एवं विचारों का एक बार आरम्भ हुआ गया उसके अवशमभावी परिणामों को रोकने का विदेशी शासकों ने प्रयत्न किया। *

परन्तु भारत माना के रूप में देश की कल्पना के साथ ही यह भावना भी बलवती होती गयी कि देश का शासन अंग्रेजों के हित की दृष्टि से न होकर

- * Jawaharlal Nehru *The Discovery of India* Singnet Press Calcutta Sixth edition 1956 pp 307

The impact of Western culture on India was the impact of a dynamic society of a modern consciousness on a static society wedded to medieval habits of thought which, however sophisticated and advanced in its way could not progress because of the inherent limitations. They encouraged and consolidated the position of the socially reactionary groups in India and opposed all those who worked for political and social change. change came to India because of this impact of the West but it came almost inspite of the British in India. They succeeded in slowing down the pace of change to such an extent that even today the change is very far from complete

भारतीयों के हित की दृष्टि से किया जाना चाहिए। अंग्रेजी साहित्य एवं आंग्ल भाषा में व्यक्त देश प्रेम व राष्ट्रीयता की भावना से भी हमारे देशवासी अनुप्रेरित हुए। इसी प्रकार वैज्ञानिक दृष्टिकोण, बुद्धिवाद आदि पाश्चात्य विचारधारायें भी भारतीय जीवन तथा चिंतन को प्रभावित करने लगीं।

(३) पाश्चात्य शिक्षा का आरम्भ

पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव के सबसे महत्वपूर्ण माध्यम पाश्चात्य शिक्षा पद्धति है। यूरोपीय जातियों का शिक्षा का आरम्भिक कार्य धार्मिक प्रचार की भावना से प्रेरित था तथा ईसाई मिशनरियां न इस दृष्टि से अनेक स्कूल व अस्पताल खोले। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी व आरम्भिक शिक्षा प्रयत्नों में दक्षिण भारत में फोर्ट सेंट जॉर्ज (१६६१-१७१४), फोर्ट सेंट डेविड तथा सेंट मेरी स्कूल प्रमुख थे। बंगाल में पूर्णतया अंग्रेजी राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् अंग्रेजी शासक भारतीय भाषाओं को न जानने के कारण असुविधा अनुभव करने लगे। विशेषतः फौजी अफसर देशी भाषाओं को न जानने से भारतीय सिपाहियों के सम्पर्क में आ पाते थे। कंपनी के गवर्नरों में वारेन हेस्टिंग्स (१७७२-१७७४, १७७६-१७८५) न सबसे पहले भारतवासियों के रीति-रिवाज, स्वभाव आदि से परिचित होने का प्रयत्न किया। हेस्टिंग्स का मत था कि जिस देश से अंग्रेजों को इतना अधिक लाभ होता हो वहां पर जब तक उन्हें कोई हानि न पहुँचे सुव्यवस्थित शासन करना चाहिये। शासन में योग्यता प्राप्त करने की अंग्रेज शासकों के लिए भारतीय इतिहास व साहित्य आदि का परिचय आवश्यक था। अतः हेस्टिंग्स ने अपने अधीनस्थ अंग्रेज कर्मचारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। वारेन हेस्टिंग्स ने अरबी व फारसी के अध्ययन के लिए कलकत्ता मरदसा (१७८१) की स्थापना की। लाड कानवालिस ने संस्कृत अध्ययन के लिए बनारस में संस्कृत कालेज (१७६१) स्थापित किया। परन्तु यह विद्यालय अधिक सफल नहीं हो सके।

(४) फोर्ट-विलियम कालेज और हिन्दी साहित्य

आधुनिक भारतीय भाषाओं के इतिहास में 'फोर्ट विलियम कालेज' का महत्वपूर्ण स्थान है। वलजली (१७६८-१८०५) ने अंग्रेज अधिकारियों को भारतीय भाषाएँ सिखाने तथा उन्हें सुयोग्य बनाने के उद्देश्य से कलकत्ता में इस कालेज की स्थापना (सन् १८००) की। हेस्टिंग्स की तरह वलजली की आकांक्षा अंग्रेजों को सुव्यवस्थित शासकों के रूप में देखने की थी। 'फोर्ट विलियम कालेज' की स्थापना का कंपनी के बोर्ड के अधिनारियां ने विरोध किया और कुछ वर्ष तक कालेज 'बंगाल सेमिनरी' के रूप में चला। फिर भी आर्थिक सहायता में उत्तरोत्तर कमी की जाती रही और अंत में कालेज तोड़ दिया गया। कालेज में गिलनाइस्ट ने उर्दू को प्रोत्साहन दिया मोडट न पुस्तक की रचना को महत्व दिया, टैलर ने संस्कृत

बोली के शब्दों का अर्थ देकर एक कोष तैयार किया। लल्लूनाल ने “ब्रजभाषा व्याकरण” (सन् १८१२) भी तैयार की। कालेज से ईसप की कहानिया का ब्रजभाषा किन्तु, रोमन लिपि में अनुवाद प्रकाशित हुआ। प्राचीन हिंदी साहित्य की पुस्तकों में तुलसी की रामायण और बिठारी की सतसई का प्रकाशन भी कालेज से हुआ। ‘यू टस्टामेंट’ का हिंदी अनुवाद भी प्रकाशित किया गया।

कालेज से प्रकाशित दो गद्य पुस्तकें लल्लूजीलाल के ‘प्रेमसागर’ और सदलमिश्र के “नासिनेतोपाख्यान” का हिंदी साहित्य के गद्य के विकास की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेख किया जाता है किन्तु, इस युग के साहित्य के विशेषण डा० लक्ष्मीसागर वाष्णोय के मत में इस दृष्टि से उनका कोई महत्व नहीं है। *

जहां तक हिंदी गद्य के विकास में फोट विलियम कालेज की देन का प्रश्न है यह स्मरण रखना चाहिए कि हिंदी गद्य का निर्माण सब प्रथम कालेज में ही नहीं हुआ था। नाथ पंथी योगिया के ब्रजभाषा गद्य, विद्यापति के मैथिली गद्य राजस्थानी वार्ताधा के गद्य वैष्णव साहित्य के गद्य तथा लखिनी हिंदी के गद्य की विश्रुत परम्परा तो हिंदी के आरंभिक युग से ही थी किन्तु, जिस समय कालेज में हिंदी की उपरोक्त पुस्तकें रची जा रही थी लगभग उसी समय और उससे थोड़े स पूर्व कालेज की सीमाओं में बाहर भी ऐसे ग्रंथों की रचना हो रही थी जिनका गद्य अधिक परिमाजित था। राम प्रसाद निरंजनी का “भाषा योग वाशिष्ठ” (सन् १७४१) का गद्य ‘श्रुतला बद्ध साधु और व्यवस्थित भाषा’ में था। दौलतराम के “पथपुराण” सन् (१७६१) की भाषा “योगवाशिष्ठ” से कम तथापि परिमाजित थी। कालेज में जब हिंदी पुस्तकों की रचना हो रही थी उसी काल में कालेज से बाहर मुंशी सत्सुख निवाज ने “विष्णुपुराण” की कथाओं पर आधारित पानोपदेश की एक पुस्तक रची। मुंशी इशगल्ला खा ने ‘उदयमान चरित या रानी केतकी की कहानी की ‘हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले’ के उद्देश्य से रचना की। फोट विलियम कालेज में अवश्य

* डा० लक्ष्मीसागर वाष्णोय “फोट विलियम कालेज, इलाहाबाद युनिवर्सिटी सन् २००४ पृष्ठ १७२

लल्लूनाल और सदल मिश्र की रचनाओं के नाते हिंदी साहित्य के इतिहास में फोट विलियम कालेज का उल्लेख करना तो आवश्यक है किन्तु हिंदी भाषा और गद्य साहित्य के विकास या उन्हें एक कदम आगे बढ़ाने की दृष्टि से उसका कोई महत्व नहीं है। कालेज में हिंदुस्तानी या उर्दू गद्य को प्रोत्साहन मिला न कि हिंदी की। जो कार्य करने में बंगला के लिये किया वह कार्य किसी ने हिंदी के लिये नहीं किया। हा, कोष व्याकरण, टाइप, विराम चिह्न आदि आधुनिक विषयों का सूत्रपात की दृष्टि से कालेज आधुनिक भाषाओं के इतिहास में चिर स्मरणीय रहेगा।

सन्तूजीलाल व 'प्रमत्तागर' की भाषा की प्रघातता दी गयी। किन्तु सन्तूजीलाल व गद्य म प्रजभाषा व शब्दा व प्रयोग बहुत अधिक व जिनका परवर्ती हिन्दी गद्य म यहि प्रकार किया गया। अतः हिन्दी गद्य की भाषा व विकास की दृष्टि स फोर्बिलियम कालज का अधिक महत्व नहीं था। कालज का वास्तविक महत्व नयी काय प्रणाली व नय विषय व सूत्रपात के कारण था। रायल एजियाटिक सोसायटी की तरह यहाँ भी हस्तलिखित प्रतिया का संग्रह किया जाने लगा। 'गमचरित मानस व बिहारी सतसई व सय प्रथम प्रकाशन का थय कालज को ही है। ईसप की कहानिया के अनुवाद के रूप म कालज १ कटाना के आरम्भ म यागिया। प्रकरण, अनुच्छेद विरामादि चिह्नों का प्रयोग भी कालज म रच जान वाल गद्य से आरम्भ हुआ जा स्पष्ट ही अंग्रेजी गद्य शली व प्रभाव को सूचित करता है।

(५) पाश्चात्य शिक्षा का विकास

भारत म अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिए १८ वीं शती के अंत तथा १९ वां शती व आरम्भ म कतिपय मानवता-वादी सुधारका ने इ गल्लड म आग्लेन किया। फलत इ ग्लण्ड की पार्लियामेंट ने भारत मे ज्ञान-विज्ञान के प्रसार व लिए एक लाख रूपये की स्वीकृति दी (१८१३)। किन्तु इस दशा म अधिक उन्नति नहीं हो सकी। सन् १८१६ मे डेविड हेभर ने राजा राममोहन राय की सहायता स तथा सन् १८३० म प्रसन्नजम्बर डफ ने कलकत्ता मे दो अलग स्कूल खोले। सन् १८३४ मे ईस्ट इंडिया कम्पनी की शिक्षा नीति म परिवर्तन हुआ। लार्ड मैकाल तथा राजा राममोहन राय के प्रभाव से शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना दिया गया। लार्ड बेंटिक की शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट (सन् १८३५) मे कहा गया

अपने सीमित साधनों व द्वारा सभी लोगों को शिक्षित करने का प्रयत्न करना हमारे लिए असम्भव होगा। अतः हमे यथाशक्ति एक ऐसे वर्ग का निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिए जो अंग्रेज शासकों व लाखों भारतीय शासितों के बीच दुभाषिय का काम कर सके ऐसे मुनुष्यों का वर्ग जो रम व रक्त की दृष्टि से भारतीय हो किन्तु जिनकी रुचि, धारणाएँ, नतिक मायताएँ व बौद्धिक विकास अंग्रेजा व अनुकूल हो। उस वर्ग के हाथो मे हम भारतीय भाषाओं के विकास का काय सँप सकते हैं जो पाश्चात्य नामावली से वनानिक शब्दावली अयना कर अयनी भाषाओं को समृद्ध बना उनके द्वारा विशाल जनसमुदाय मे ज्ञान का प्रकाश फलायेंगे।*

* Lord Bentick Education Report 1835

It is impossible for us with our limited means to attempt to educate the body of the people We must do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern, a class of persons Indian in blood and colour but English in taste in the opinions in morals and in intellect To that class we may leave it to refine the vernacular dialects of the country to enrich

अस्तु, भारत में एक नये मध्यम वर्ग का उदय हुआ जिसका पशा सरकारी नौकरी और आन्ज पश्चिमी विचार थे। एक समय आया जब अंग्रेजी में ही बोलना, सोचना और स्वप्न देखना (?) आदर की दृष्टि से देखा जान लगा। किन्तु "मैकाले माया भारत में अधिक दिन नहीं चल पायी। सन् १८३५ में भारत सरकार ने घोषित किया कि अंग्रेजी सरकार का महान उद्देश्य भारत के निवासियों में साहित्य और विज्ञान का प्रचार करना होना चाहिये। मैकाले ने सोचा था कि पश्चात्य साहित्य और विज्ञान का अध्ययन भारतीयों को हिन्दू धर्म छोड़ कर ईसाई मत स्वीकार करने के लिए प्रेरित करेगा। ईसाई मिशनरियां ने भी यही सोच कर भारत में अनेक स्कूल कालेज खोले। किन्तु उनका इच्छित परिणाम सिद्ध नहीं हुआ। भारतीयों ने हिन्दू धर्म को व्यापक रूप प्रदान कर नये ज्ञान को भी उसी में आत्मसात् करने का प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय प्रगति नेता वस्तुतः विज्ञान व नवीनता के कारण अंग्रेजी की ओर धाकूट हुए थे कि ईसाई धर्म व अंग्रेजों के मत में अनुप्रेरित होकर। सन् १८३५ में अंग्रेजी सरकार ने शिक्षा के प्रचार काय का अपने हाथ में ले लिया। सन् १८४४ में लॉर्ड हार्डिन्ज ने यह घोषणा प्रकाशित की कि सरकारी नौकरियां केवल अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों का ही दी जायेंगी। इसमें अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार बहुत अधिक बढ़ा। सन् १८५४ में चार्ल्स उड के शिदा पत्र (अनुसार Wood's Education Despatch) योरूपीय ज्ञान के भारतीय जनता में प्रसार के लिए निश्चिन्त योजनाएं बनाई गयीं। प्रत्येक प्रांत में शिक्षा विभाग खोले गये, विभिन्न विद्यालय कालेजों हाई स्कूलों मिडिल व प्राइमरी स्कूलों की स्थापना हुई एवं धर्म निरपेक्ष शिक्षा संस्थाओं को अनुदान देने का निश्चय किया गया।

चार्ल्स उड के शिक्षा पत्र के अनुसार गदर के पश्चात् भारत में लैटिन विश्व विद्यालय के अनुकरण पर विश्व विद्यालय स्थापित किये गये। सन् १८६५ में लंदन विश्व विद्यालय सलगन काय संस्था (Affiliating University) मान न रह कर उसमें अध्यापन काय भी किया जाने लगा। अतः भारत विश्व विद्यालय अधिनियम (सन् १९०४) के अनुसार अध्यापन काय करनेवाले विश्व विद्यालयों की भी स्थापना हुई। कलकत्ता (सन् १८५७) बनारस (सन् १९१५) लखनऊ (सन् १९२०), अलीगढ़ (सन् १९२०), पटना, नागपुर आगरा आदि विश्व विद्यालयों की शिक्षा से भारत का अंग्रेजी साहित्य व अंग्रेजी साहित्य व माध्यम से विश्व साहित्य से परिचय वत् तथा पश्चात्य प्रभाव को ग्रहण करने तथा नवीनता के सूत्रपात की दृष्टि से सम्पूर्ण पृष्ठभूमि तयार हो गयी।

those dialects with terms of science borrowed from the Western Nomenclature and to render them by degrees fit vehicles for conveying knowledge to the great mass of population

भारत में अंग्रेजों के माध्यम से दी जानेवाली उच्च शिक्षा के द्वारा भारतीय नवयुवक ऐसी विशेषी जाति के सम्पर्क में आये जिसका लक्ष्य सामाजिक विकास था। उससे भारत में एक आर्थिक सामाजिक जाति हुई जिस पर सम्पूर्ण आधुनिक भारतीय जीवन आधारित है। अंग्रेजी शासन द्वारा आरम्भ किये गये कानूनों से भारत में आधुनिकता का इतना प्रसार नहीं हुआ जितना कि अंग्रेजी भाषा के अध्ययन से पश्चात्य विचारों के प्रभाव द्वारा। वस्तुतः यह भारत में अंग्रेजी राज्य का अन्तर्विरोध था कि जहाँ एक ओर वह शासन सामाजिक न्याय की अवहेलना करता था और राजनीतिक आन्दोलन का सशय की दृष्टि से देखना था वहाँ स्वयं उस शासन के अन्तर्गत दी जाने वाली शिक्षा सामाजिक न्याय के लिये लड़ने और राजनीतिक उदार विचारों के लिए आन्दोलन करने के लिए प्रेरित करती थी। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि आधुनिक भारत के राजनीतिक नेता अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किए हुए व्यक्ति थे। महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरू ने अंग्रेजों द्वारा आरम्भ किये हुए विश्व विद्यालयों में शिक्षा पाई थी। जहाँ नवयुवक विचारधारा की पुस्तकों में स्वतंत्रता के गौरव गान गाए जाते थे वहाँ सरकार स्वतंत्रता के लिये किये जानेवाले प्रयत्नों को कुचलना अपना कर्तव्य समझती थी। निस्सन्देह दश में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में पश्चात्य शिक्षा का महत्वपूर्ण हाथ था।

प्रभाव

शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से समस्त देश एक भाषा के सूत्र में बंध गया। इससे राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। अंग्रेजी के रूप में राजनीतिक विचारों और उनकी अभिव्यक्ति के लिए एक सामान्य भाषा ही प्राप्त नहीं हुई वरन् सम्पूर्ण देश में एक सामान्य मन स्थिति का आविर्भाव हुआ जिसमें राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन को बड़ा बल मिला। इस सामान्य मन स्थिति के कारण ही १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में होनेवाले भारतीय नवजातान का सभी प्रांतों में प्रायः एक रूप था और उसकी परिणति आगे चल कर राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में हुई। प्रायः इस मन स्थिति के प्रभाव में सभी प्रांतों में धार्मिक आन्दोलनों ने विभिन्न रूप लिये जाते। अंग्रेजी भाषा और साहित्य के अध्ययन से पश्चात्य विचारधारा का भारतीय जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। फ्रांस राज्य जाति के स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व (Freedom, equality, Fraternity) के नाम में उदारवादी सिद्धांत अधिकतम मर्याद के अधिकतम स्तर — 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' (Greatest good of the greatest number) की विरामतः भारत का मिलो। यही कारण है कि जहाँ जाति प्रथा धार्मिक रीति रस्म, पं० और परतंत्रता ही जीवन का रूप था वहाँ पश्चात्य विचारों के प्रभाव से समता, न्याय, न्याय और पुण्य के सामानाधिकार और राजनीतिक स्वतंत्रता के भाषा का विकास हुआ।

जिस समय भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रसार हो रहा था उस समय यो रूप में स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता प्रजातंत्रवादी भावनाओं के आन्दोलन चल रहे थे जिसमें अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवक अत्यधिक प्रभावित हुए। वस्तुतः हमारे अधिकांश राजनीतिक नेता न केवल विश्व विद्यालय में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थे वरन् अपनी भावनाओं और कार्य प्रणाली में भी वे पश्चात्य विचारों से प्रभावित थे। इंग्लैंड में जिन दक्षिण व मिन में प्रेरणा लेकर सन् १८३२ और उसके पश्चात् सुधारवादी आन्दोलन चला उही दक्षिण व मिन के उदारवादी विचारों का प्रायः अठ्ठा शताब्दी पश्चात् भारत पर प्रभाव पड़ा। बेथम, हसा, बक स्विनबन आदि बहुत से पश्चात्य विचारकों की मूर्तियों से अपने भाषणों को अलङ्कृत करना स्वातंत्र्य युद्ध के नेताओं की सामान्य प्रवृत्ति थी। स्वयं महात्मा गांधी अपने विचारों में पश्चात्य मनीषि टालस्टाय व रस्किन से प्रभावित थे।

(६) ईसाई मिशनरियों की देन

आरम्भ में भारत में शिक्षा प्रसार करने में अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था परन्तु राजनीतिक कारणों से आंग्ल-शासन प्रत्यक्ष रूप में इसका सहयोगी नहीं बन सका। अतः ईसाई धर्म के प्रचार का कार्य ईसाई मिशनरियों द्वारा स्वतंत्र रूप में किया गया। पोर्चुगालियों ने भारत आगमन के पश्चात् व्यापार के साथ यहाँ धर्म प्रचार का कार्य भी उत्साह के साथ आरम्भ किया। इसके लिए उन्हें पोर्चुगल क सम्राट से अधिक सहायता भी मिलती थी। यद्यपि ईसाई धर्म प्रचार का बन्द बनाया गया। धर्म प्रचार के लिए प्रायः बल के प्रयोग की नीति अपनाय के कारण पोर्चुगाली मिशनरी अधिक सफल नहीं हो सका। दक्षिण भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों में फ्रांसिस जेवियर (Francis Xavier) और फादर डे नोबिल (Father De Nobile) अधिक लोक प्रिय हुए। पोर्चुगाली ईसाई कथोलिक मत मानने वाले थे। भारत में बाद में आनेवाली योहानीय जातियाँ प्रोटेस्टेंट धर्म को मानती थीं अतः उन्होंने पोर्चुगालियों द्वारा किये जाने वाले धर्म प्रचार की अपेक्षा की। पोर्चुगालियों की राजनीतिक शक्ति के ह्रास के साथ ही उनका धर्म प्रचार का कार्य भी क्षिणित हो गया।

भारत में आनेवाली नवीन योहानीय जातियाँ का उद्देश्य धर्म प्रचार न होकर व्यापारिक लाभ था अतः ईसाई मिशनरियों को अपेक्षित प्रोत्साहन नहीं मिला। जब ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ में राजनीतिक शक्ति आयी तो उसने भी मिशनरियों के कार्य को विशेष महत्त्व नहीं दिया। अतः विविध प्रकार के नवतंत्र में इंग्लैंड के बपटिस्ट मिशन ने श्रीरामपुर में जाकर उनके काम देना के अधिकार में एक छोटी सी बस्ती थी अपना केंद्र खोला तथा हिन्दू धर्म पर आक्रमण करना आरम्भ किया। किन्तु, साठ मिण्टों में कलकत्ता में उनका प्रचार कार्य का बन्द करवा

लिया । * सरकार द्वारा मिशनरियों के कार्य को प्रोत्साहन न मिलने का कारण यह भी था कि सेना में भारतीय सिपाहियों का धार्मिक विचारों का ठस पहुँचाने से उसके दुष्परिणामों से बचाने के राज्य को चक्का लगने की आज्ञा थी । वलौर के विद्रोह और मत्तवन के मदर के अथ कारणों में से एक कारण यह अफवाह भी थी कि सिपाहियों को जिये जाने वाले कारतूसों में गाय की चर्बी लगी हुई थी । अंग्रेजों सरकार ने ईसाई मिशनरियों के प्रचार कार्य में विशेष सहायता नहीं दी क्योंकि ऐसा करने का अर्थ सेना में अमति बढ़ाना होता जो भारत में स्वयं अंग्रेजों राज्य का अस्तित्व के लिए खतरा सिद्ध हो सकता था । तथापि परोक्ष रूप में सरकार ने मिशनरियों की सहायता प्रवश्य की । ईसाई मन स्वीकार करनेवाले हिन्दुओं का उनके सम्मिलित कुटुम्ब से अपने भाग का सम्पत्ति लेने का अधिकार था । उत्तर भारत में ईसाई मिशनरियों के चार मुख्य संस्थान थे—बपटिस्ट मिशनरी इनिश मिशनरी (१७६६) लंदन मिशनरी चर्च मिशनरी (१८२०) । जसा कि पहले कह चुके हैं ईसाई मिशनरियों का प्रति आगत शासन के बड़े हल का कारण बपटिस्ट मिशन का अधिकारियों ने डेन शासन का अगत श्रीरामपुर में डेनिश मिशन (१७६६) स्थापित किया । इन संस्थानों में श्रीरामपुर मिशन ही सबसे महत्वपूर्ण था । श्रीरामपुर मिशन द्वारा आरम्भ किया हुआ कार्य का आगरा इलाहाबाद, बनारस आदि मिशनरियों ने आगे बढ़ाया ।

- * Major B D Basu 'Rise of the Christian Power in India Vol 4 R Chatterjee 91 Upper Circular Road Calcutta 1927

The Scarampur Mission, headed by Dr Carey printed many books in the vernaculars Lady Minto in her work on Lord Minto writes -soon after Lord Minto's arrival some of these publications attracted the attention of Government and it being undesirable that they were calculated to offend the native population containing as they did offensive attacks on the Hindu Mythology and the Mussalman prophet the secretary to Govt received instruction to communicate to the Pevd Dr Carey the Indian members of the mission at Scarampur a resolution arrived at by the Governor General in council to place their presses under regulation and to suspend the practice of public preaching by the natives in native dialects at the

अधिकांश हिंदी ईसाई साहित्य धर्म प्रचार के उद्देश्य से लिखा गया था। फाट विलियम बालेन ने बाइबल के अनुवाद के लिए एक अलग विभाग खोला गया था। श्रीरामपुर मिशन ने विलियम करे ने बाइबल के अनुवाद की एक बृहद् योजना बनाई। विलियम बाउले (William Bowley) ने हेनरी मार्टिन द्वारा उद्भूत मरुपांतरित "यू टेस्टामेंट" का "हिंदुई" भाषा में रूपांतर किया। वेपटिस्ट मिशन द्वारा "धर्म पुस्तक का अंत भाग" (१८४८) प्रकाशित किया गया। नाथ इडिया बाइबल सोसायटी की हिंदी उप-समिति ने "धर्म पुस्तक का पुराना नियम भाग (१)" शीपक स 'ओल्ड टेस्टामेंट' का रूपांतर किया। जे०टी० थॉमसन (J T Thomson) कृत "दाऊ के गीत" (सन् १८३६) का श्रीरामपुर मिशन द्वारा प्रकाशन किया गया। इसी प्रकार कुछ अन्य पुस्तकें - 'गीत हिंदुस्तानी जवान म' (ईसाईयो के लामाय उद्भूत धार्मिक सिद्धांत सवधी), "ईश्वरोक्त शास्त्र शाखा" (हिंदुस्तानी से अनुवाद, इलाहाबाद १८४८), 'दी प्रोपर नेम्स इन द ओल्ड एण्ड यू टेस्टामेंटस रेंड इन द उद्भूत हिंदी' (इलाहाबाद १८५०) "पाल का चरित्र (कलकत्ता १८५२) 'वेदांत का मत-विचार (मिर्जापुर १८५३), 'मुमुक्षु ब्रह्मता या एक हिंदू यात्री का वृत्त' (जे एच बुडेन १८५४) 'येशु ख्रीष्ट चरित्र स्पष्ट' (आगरा १८५६), 'दुःख अनित सुखादय अथात् हैजा रोगादि सम्पादित मय विस्मय निबन्ध बाइबल के कुछ चुने हुए अंश - उनसे हैजा आदि महामारियों का मय कौंसे दूर किया जा सकता है', आगरा (१८५६) के प्रकाशन भी हुए। ब्रिटिश अण्ड फारेन बाइबल सोसायटी (१८०४) ने बाइबल का जनपदीय भाषाओं में अनुवाद आरम्भ किया।

भारतीय भाषाओं में मुद्रण कला के लिए श्रीरामपुर मिशन का महत्वपूर्ण स्थान है। इस मिशन के प्रसिद्ध मिशनरी डा० करे के अध्यक्ष प्रयत्न से तीस-चालीस भारतीय भाषाओं में बाइबल का अनुवाद प्रकाशित किया गया। डा० करे ने सब प्रथम मदनवती (कलकत्ता १५ दिसम्बर १७६८) में प्रेस लगाया जिसका बंधन पत्र चार्ज (सन् १८००) श्रीरामपुर से जाया गया। श्रीरामपुर मिशन में सबसे पहले डा० करे ने ही हिंदी टाइप ढाला। दिल्ली में प्लाथोग्रेफिक प्रेस की स्थापना (सन् १८३७) की गयी जिससे पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य सरल हो गया। इससे हिंदी में पत्रकार कला का प्रोत्साहन मिला। हिंदी प्रदेश में सन् १८४५ में इलाहाबाद में प्रेस की स्थापना हुई तथा टाइप ढाल गये। बाद में मिर्जापुर (सन् १८४५) व सिन्दूर (आगरा सन् १८४७) में भी प्रेस खुले। अनेक ईसाई प्रायणार्थों का हिंदी में अनुवाद कराया गया जिनके छन्द भी प्रायः अश्रेणी छन्द के ही होते थे। ईसाई मिशनरियां न धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त कथा-साहित्य व अन्य उपयोगी ज्ञान की पुस्तकों की भी रचना की। उनके द्वारा खोले गये स्कूलों में यह पुस्तकें पाठ्य-पुस्तकों के रूप में पढ़ाई जाती थीं। उन्हीं भारतीय भाषाओं को लिखने के लिए व्याकरण व शब्द-कोष का भी निर्माण किया। कहा जाता है कि श्रीरामपुर मिशन के हिंदी की जनक

दीय भाषाभाषा में लायो पुस्तकें प्रकाशित हुईं किंतु सन् १८१२ में थोरामपुर मिशन के भवन में भयंकर आग लग जाने से पुस्तकों का सभी स्टाक जल कर राग हो गया तथा ये पुस्तकें अत्र अप्राप्त हैं।

हिन्दी ईसाई साहित्य का भाषा की दृष्टि से भी महत्व है। फोट विलियम कातेज की हिन्दुस्तानी के बचन ईसाई मिशनरियों ने हिन्दी (आधुनिक अर्थ) में पुस्तकें रचीं। ईसाई मिशनरियों द्वारा प्रचार का काम जनता के बीच होता था। जनता फोट विलियम कातेज की कृत्रिम उद्भूत हिन्दुस्तानी के विपरीत हिन्दी की अधिक आसानी से समझती थी। ईसाई मिशनरियों द्वारा प्रयुक्त भाषा का रूप वही था जिसे हम आधुनिक अर्थ में 'हिन्दी' कहते हैं।*

शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में अस्तित्व ईसाई मिशनरियों की देन प्रशंसनीय थी। बीसवीं सदी के आरम्भ में कम्पनी सरकार द्वारा चलनेवाले स्वतन्त्र कालेजों में विद्यार्थियों की जितनी संख्या थी उससे दस गुना अधिक विद्यार्थी ईसाई मिशनरियों द्वारा चलाये गये स्कूलों में पढ़ने लगे।*

(७) योरूपीय विद्वाना, रयाल ऐशियाटिक सोसायटी एव पुरातत्व-विभाग की दन

यहां उन विद्वानों के कार्यों की ओर भी ध्यान देना उचित प्रतीत होता है जिनका पाश्चात्य प्रभाव को व्यापक बनाने के हमारे साहित्य के निर्माण में प्रत्यक्ष या परोक्ष योग रहा। जब योरूपवासी भारत में आये तब उनका विश्वास था कि सभ्यता का आरम्भ यूनान और फिनीशियन में हुआ है। भारत को वे अर्द्ध सभ्य ही मानते थे। तथापि यह स्वाभाविक था कि कतिपय योरूपीय विद्वान भारतीय सभ्यता के अध्ययन की ओर आकर्षित होते। कहा जाता है मद्रास के उत्तर में

● डा० लक्ष्मीसागर वाण्येय आधुनिक हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिपद वि०वि० प्रयाग १९४१ पृ० १७

थोरामपुर के मिशनरियों के चौथे स्मरण-लेख (Memoir) से इतना पता जरूर चलता है कि हिन्दी या हिन्दुई से उनका मतलब 'हिन्दुस्तानी' की उस बोली से था जो मुसलमानों के आने के पहले सारे हिन्दुस्तान में बोली जाती थी जो सभ्यता से निकली और सब साधारण की भाषा थी।

* T N Siqueir Education in India P 44

India owes much more the education given by missionaries at hardly any cost to herself than by her own Govt with money taken from her In 1852-53 there were less than 30 000 in all the Govt educational institutions in India and more than 3 00 000 in Missionary Schools

पॉलिवास्ट्रा के मिशनरी पादरी अब्राहम रागर (Abraham Roger) ने कुछ भारतीय धार्मिक ग्रन्थों को डच भाषा में अनुवादित कर सन् १६३० में 'घावन डोर टू हिडन पेगेनिज्म' (Open Door to Hidden Paganism) शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की। कहा जाता है कि पाडिचेरी के ईसाई मिशनरियां न यजुर्वेद का L. Ezour Vedam नाम से फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया जिसकी प्रति वाल्टर न भी देखी थी। एक अन्य पादरी न सस्कृत का व्याकरण तयार किया (लिखित सन् १७३२ प्रकाशित राम में सन् १७६०) तथा एक दूसरे पादरी ने भारत का विवरण लिखा जिसमें पंड दशन, जन व बौद्धागतो का परिचय था (सन् १७४०)। एबी दुबोप ने अपनी पुस्तक "हिंदू मनस कस्टम्स एण्ड सरीमनीज" (१८१७) में भारतीय जीवन का विशद वर्णन लिखा। किंतु इन पुस्तकों में भारतीय जीवन का बहुत सक्षिप्त परिचय लिखा गया था। सन् १७६० में फ्रांसिसी नवयुवक दुपरान (Anquetil Duperron) भारत आया और भारत से अपने साथ ८० पाठ्य लिपियां ली गयीं जिनमें एक पाठ्यलिपि दाराशिकोह कृत उपनिषदों के फारसी अनुवाद की थी। दुपरान ने उसका लातिनी अनुवाद Oupnekhat "ओपनिषत" नाम में किया जिसे पंड कर जमन नार्शनिक शोपेन्हार विमुक्त होगया था। प्राचीन सस्कृत साहित्य के अनुवादा ने जमन नार्शनिका व साहित्यकारों को विशेष रूप से प्रभावित किया। जान फिश्टे व पाल इसान उपनिषदों से प्रभावित हुए। नीत्स ने मनुस्मृति की भूरि भूरि प्रशंसा की।

प्रायः व जमनी में प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रति जिज्ञासा का यह भाव देख कर भारत के शासक अंग्रेज भी प्राचीन भारतीय साहित्य व सस्कृति के अध्ययन की आरंभ प्रवृत्त हुए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कलकत्ता में "रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल" (१४ जनवरी १७८४) की स्थापना हुई जिसके संस्थापक प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक प्रकृति अध्ययता और "याम विशपन सर विलियम जोस थे। एशियाटिक सोसायटी के प्रमुख सदस्यों में सर विलियम जोस (शकुंतला सन् १७८६ गीत गोविंद, मनु स्मृति का अनुवाद) गिलनाइस्ट (फोट विलियम कालेज से संबन्धित) चार्ल्स विक्स, (मगवद्गीता का अनुवाद) हनरी थॉमस कोलब्रुक (भारतीय दर्शन की सब प्रथम सुव्यवस्थित व्याख्या) ज्योज फासटर (शकुंतला का जमन अनुवाद सन् १७६१) हेस्टिंगज आदि की भारतीय भाषाओं के साहित्य के अध्ययन में रुचि थी।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के सवय में एक मनोरंजक धर्ना का उल्लेख मिलता है। विलियम जोस पंडित रामलोचन कवि भूषण की सहायता से सस्कृत का अध्ययन कर रहे थे और उन्होंने सुना कि सस्कृत में भी नाटक ग्रंथ हैं तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। व कालिदास के "अभिज्ञान शाकुंतलम्" का अध्ययन करने लगे। शकुंतला का उन्होंने अपनी ही अनुवाद किया जिसे पढ़कर योरोपीय विद्वानों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने सब प्रथम शकुंतला के द्वारा यह जाना कि सस्कृत साहित्य कितना उन्नत

घोर व सामाजिक व राजनीतिक उर्ध्व गती का घातापीय । भारत में मध्यम वर्ग प्रभावी नहीं बन पाया । घोर सामाजिक व राजनीतिक उर्ध्व गती का घातापीय । भारत में मध्यम वर्ग प्रभावी नहीं बन पाया । घोर सामाजिक व राजनीतिक उर्ध्व गती का घातापीय । भारत में मध्यम वर्ग प्रभावी नहीं बन पाया ।

ब्रह्म-समाज में क्रांति के सतत प्रयत्न हुए । परन्तु गणतन्त्र परिवर्तन आया । उनका विचार था कि सिया सत्ता धार्मिक व निरक्षर समाज तथा क्रांति उन्नीची रचना उचित नहीं । उनका ब्रह्म विद्यालय की स्थापना की घोर एक पाठ्य पुस्तक 'इण्डियन मिओर (Indian Mirror) का प्रकाशन घोर समाज किया । कथन पर उनकी इंग्लिश यात्रा (१८७०) का गणतन्त्र प्रभाव पड़ा । यन्त्र विचारों घोर सामाजिक मुद्दों व निरक्षर अधिकांश प्रेरणा उत्पन्न करने लगे । स्त्री स्वतन्त्रता, शिक्षा प्रचार, सत्ता प्रकाशन आदि बावों व निरक्षर दान विद्यालय व काम का उन्नीची प्रदान हाथ में लिया । उन्नीची वान विद्या की रोशन का प्रयत्न किया तथा विधवा विवाह व अन्तर्जातीय विवाह का प्रारम्भ किया ।

आर्य समाज

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् १८७५ ई० में अम्बेई में आर्य समाज की स्थापना की । आर्य-समाज का धार्मिक नारा था वेदा की पार लोचनी । स्वामी दयानन्द ने अपनी पुस्तक "सत्याय प्रकाश" में यह सब धर्मों का खण्डन कर वैदिक धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित की । आर्य समाज यद्यपि पुरातनवादी सत्ता है किन्तु सामाजिक बुराईयाँ का उन्नीची सबसे बड़ कर खण्डन किया । आर्य-समाजियों व अनुसार सामाजिक बुराईयाँ विदेशी सत्तियों व कुप्रभाव का परिणाम थीं अतः उन सामाजिक बुराईयो का दूर कर वैदिक सत्तियों का प्रचार उसका लक्ष्य बना ।

यद्यपि आर्य समाज प्रधानतः पुरातनवादी सत्ता थी परन्तु परिस्थितियों की सवलता के कारण इस युग के किसी भी आन्दोलन में आधुनिकता के प्रवेश का रोक पाना असम्भव था । आर्य समाज में भी दो विभेद हुए— कान्हेज सत्ता और गुरुकुल सत्ता । कान्हेज सत्ता शिक्षा की आधुनिक प्रणाली खानपान की स्वतन्त्रता और आर्य धर्म की मानव धर्म समता में विश्वास करती है तथा गुरुकुल सत्ता प्राचीन भारतीय प्रणाली, निरामिष भोजन और मानव धर्म समता के बन्ने कट्टर हिन्दु धर्म का मानने वाली है । सन् १८८६ में कान्हेज सत्ता के प्रवक्ता को ने एम्बेई वैदिक कान्हेज की स्थापना की जिसके प्रतिश्रिया स्वरूप स्वामी श्रद्धानन्द ने सन् १९०२ में घरलू जीवन नागरिक हलचल और पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में दूर गुरुकुल महाविद्यालय की स्थापना की । हिन्दुओं में समाज मुद्दों के कार्य को पार लोचनी रूप देने में आर्य-समाज का महत्व पूर्ण योग रहा है । मूर्ति पूजा खण्डन जाति पाति का भेद दूर करना बाल विवाह खण्डन, विधवा विवाह समर्थन, समुद्रयात्रा का पार लोचनी, शुद्धि आदि आर्य समाज के प्रमुख कार्यक्रम थे ।

ब्रह्म समाज एवं आय समाज आन्दोलन पश्चात्त्य सम्यता के प्रभाव के प्रति दो भिन्न प्रतिश्रियाओं की उपज थी । पश्चिम के नवीन ज्ञान एवं उपनिषदों के प्राचीन दर्शन का ब्रह्म समाज ने सामञ्जस्य किया । राजा राममोहन रॉसाई धर्म सिद्धान्तों से कुछ प्रभावित थे और उन्होंने उनका ब्रह्म-समाज में समावेश भी किया । इसमें विपरीत दयानन्द सरस्वती ने किसी भी प्रकार के विदेशी प्रभाव का प्रतिरोध किया एवं वैदिक सस्कृति का प्रचार किया । इन भिन्न प्रतिश्रियाओं के कारण यह आन्दोलन भिन्न लक्ष्यों की उपलब्धि में सहायक हुए । जहाँ ब्रह्म समाज ने भारतीय समाज की समस्याओं का हल करने के लिए आधुनिक दृष्टि प्रदान की वहाँ आय समाज राष्ट्रीय भावना के उदबोधन के लिए प्राचीन गौरव जगान में सहायक हुआ । सामाजिक कुरीतियों को मिटाने में यह दोनों आन्दोलन समान रूप से कृत सकल्प थे ।

रामकृष्ण मिशन एवं थियोसोफिकल सोसायटी

आय संस्थाओं में जिन्होंने हिन्दू-धर्म के वेदांत का प्रचार किया रामकृष्ण मिशन व थियोसोफी सोसायटी प्रमुख हैं । इन संस्थाओं ने प्राचीन सिद्धान्तों की नवीन व्याख्या की व उन्हें युगानुकूल रूप दिया । रामकृष्ण परमहंस (१८३५-८३) के शिष्य नरेन्द्र दत्त (विवेकानन्द) ने उनकी मृत्यु के पश्चात् रामकृष्ण मिशन की स्थापना (१८९७) की । सितम्बर १८९३ में शिकागो कांफेस में वे वेदांत पर अपने भाषण दे चुके थे जिसका पश्चिम के धार्मिक क्षेत्र में गहरा प्रभाव पड़ा । हिन्दू धर्म का उद्दोषण अत्यन्त उत्साह पूर्ण प्रतिपादन किया तथापि वे कमकाण्ड व रुद्धियों के विरोधी थे । उन्होंने देश में आध्यात्मिक उत्साह की लहर पैदा कर दी । उनका कथन है 'जीव शिव रूप है —सभी प्राणी दश्वर का प्रतिरूप हैं अतः प्राणियों के प्रति दया करने का स्वागत कौन कर सकता है ? दया नहीं, सेवा-मनुष्य की सेवा को ईश्वरीय रूप समझना चाहिए' । विदेश यात्रा ने उनकी देश भक्ति की भावना को और भी अधिक उत्तेजित किया । उनका कथन था 'मैं उस धर्म में विश्वास नहीं करता जो विधवा के आसुओं को न पाये तथा अनाथ बालक की भूख न मिटाये ।' अमेरिका में जब एक सज्जन ने उनमें पूछा 'भारत में आपका आन्दोलन का क्या उद्देश्य है ?' तो उन्होंने उत्तर दिया 'हिन्दू धर्म के मूल आधारों की खोज करना तथा हिन्दुओं में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करना ।'

अमेरिका में सन १८७५ में थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना हुई थी । थियोसोफी समाज के संस्थों का उद्देश्य मानव धर्म की एकता स्थापित करना था । किन्तु उन्होंने आयधर्म की प्रतिष्ठा एवं पूर्वी दर्शा के साहित्य धर्म एवं विज्ञान के अध्ययन को प्रधानता दी । स्वामी दयानन्द सरस्वती के निमंत्रण पर मद्रम

बनावात्मकी (Madame Blavatsky) एवं कर्नल म हाट (Colonel Olcott) का भारत में आगमन हुआ।

भारत में एनी बेसेण्ट व आगमन (१८६३) से थियोसोफिकल सोसायटी के विचारों का प्रचार बढ़ा। सामाजिक सुधार और राजनीतिक कार्य बसेंट के जीवन के दो मूल तत्त्व थे। उन्होंने हिंदू धर्म के उत्थान और होम रूल का दावन (१९१६) के रूप में राजनीतिक जागृति का प्रयास किया। उनके मत में "भारत के लिए अब प्रथम कार्य है प्राचीन धर्मों को जागृत कर उन्हें शक्ति-पूर्ण बनाना। प्राचीन हिंदू धर्म और जोरावर धर्म तथा तथा और धर्मों का बौद्ध जन्म मन्वन्ता उत्थान परम आवश्यक है। इसके फलस्वरूप भारतीयों में नये सम्मान प्राचीनता का गव, भविष्य के प्रति विश्वास और इनके फल-स्वरूप निश्चिन्त मन से देश भक्ति की लहर का उदय होगा जिससे कि राष्ट्र के नव निर्माण का कार्य आरम्भ होना निश्चिन्त है।"

इन विचारों से स्पष्ट है कि इस समय हिंदू धर्म में मौखिक परिवर्तन की प्रक्रिया चल रही थी जिससे परिणाम स्वरूप देश में राजनीतिक जागृति और राष्ट्रीय भावनाओं का विकास हुआ।

(६) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एवं स्वतंत्रता आन्दोलन

सन् १८५७ के विद्रोह के पश्चात् देश में विभिन्न धार्मिक समस्याओं ने धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों द्वारा राजनीतिक चेतना के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। अब राजनीतिक सुधारों की ओर भी लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। ब्रिटिश इण्डिया एसोसियेशन (१८५१), बम्बई एगोसियेशन, ईस्ट इंडिया एसोसियेशन भारतीयों की राजनीतिक सुधारों का आवाजाह के फलस्वरूप ही स्थापित हुए थे। सन् १८५२ ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से अगले दश वर्षों में राजनीतिक आन्दोलन का रंगमंच स्थापित हो गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आरम्भ में उदारवादी नीति अपनायी एवं राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार के सामने प्रस्ताव रखती रही। विदेशी शासन से पूर्ण स्वतंत्रता का नारा अब प्रथम बार गंगाधर तिलक ने लगाया। उन्होंने घोषणा की "स्वतंत्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।" लाड कन्नन के 'बंग भंग' की आवाज (सन् १८०२) पर देश में अब प्रथम ब्रिटिश सरकार के प्रति अविश्वास की भावना जागृत हुई और रूल पर आपात की विजय (सन् १९०५) से प्रेरित होकर देश की जनता ने शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा। यह आन्दोलन भारत का प्रथम राष्ट्रीय जागृति का प्रतीक था। अतः ब्रिटिश सरकार का बंग भंग की आवाज हटानी पड़ी (सन् १९११)। इस आवाज का कारण नये तथा मुक्त समाप्ति के पश्चात् राजनीतिक अधिकारों के प्राप्ति करने के प्रस्तावों से प्रेरित हो प्रथम महापुरुष (१९१४-१९) के अवसर पर

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को महयोग दिया जिसकी स्वयं ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने अत्यधिक प्रशंसा की ।

हमारे देश की राष्ट्रीयता की भावना में प्रथम विश्व युद्ध की परिणति से एक नयी हतनन आरम्भ हुई । ब्रिटिश सरकार के आश्वामनों से यह आशा बघी थी कि अंग्रेजों ने युद्ध में विजयी होने पर भारत राजनीतिक स्वतंत्रता के पथ पर अग्रसर होगा । परंतु, युद्ध समाप्ति के पश्चात् रोनाट विन पास कर के भारतीय स्वतंत्रता का घोर भी कुचला गया । इस स्थिति में महात्मा गांधी ने देश की राजनीति की बागडोर अपने हाथ में ली तथा जिस सत्याग्रह का प्रयोग वे दक्षिण अफ्रिका में कर चुके थे उसी आधार पर भारत में असहयोग आन्दोलन (सन् १९२०) छेड़ा । स्वतंत्रता का नारा लगानेवाले निहत्था का हजारों की सज्ज्या में भून दिया गया । जलियाँवाला बाग का हत्याकांड व पंजाब का मासल ला राज्य इस बात के साक्ष्य हैं कि भारत को अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए कितना बड़ा मूल्य देना पड़ा था । कांग्रेस ने अपना विधान बदल कर अपना लक्ष्य शान्तिपूर्ण तरीका से स्वराज्य प्राप्ति बनाया । महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन मृत्यु और अहिंसा पर आधारित था । आन्दोलन में भाग लेनेवाले सहस्रों लोगों को नताशा के साथ जेल के सीखनों में बंध कर दिया गया । आन्दोलन में देश भक्तों ने अंग्रेजी सरकार द्वारा दी हुई पदवियों का लौटा दिया, मंत्री मण्डल, सरकारी यूनिवर्सिटियाँ व अदालतों का बहिष्कार किया तथा विदग्धों वस्त्रों की होली जलाई । सरकार का उत्तर न देकर असहयोग प्रदर्शित किया । बारडोली में यह आन्दोलन सबसे अधिक सफल रहा । अतः मंचौराचौरी (मध्य प्रदेश) में सत्याग्रहियों के अपने आदेश सज्जुत हो जाने के कारण यह आन्दोलन समाप्त कर दिया गया (१२ फरवरी, १९२२) । कांग्रेस ने पुनः सरकार से महयोग आरम्भ कर दिया तथा चला, प्रकृत्यादार आदि रचनात्मक कार्यों को प्रधानता दी ।

सत्याग्रहियों द्वारा ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा साइमन कमीशन की नियुक्ति की गई जिसका उद्देश्य भारतीय विधान (१९२०) में संशोधन पेश करना था । इस कमीशन की नियुक्ति के समय कांग्रेस की सम्पत्ति नहीं ली गई अतः कांग्रेस ने अपने लाहौर अधिवेशन (सन् १९२६) में 'पूर्ण स्वराज्य' को अपना लक्ष्य घोषित किया तथा १९३० में महात्मा गांधी ने नेतृत्व में पुनः असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ जिसका दमन करने के लिए सरकार द्वारा सभी साम्राज्यवादी तरीका-जेल लाठी चाली आदि का काम में लाया गया । अतः गांधी इरविन समझौता (५ मार्च १९३१) हुआ । इस वर्ष के अंत में महात्मा गांधी का राउड टेबल कांफ्रेंस में भाग लेने के लिए न न आमंत्रित किया गया । गांधीजी वहां से निराशा लौटे तथा लौट कर उन्होंने देश में फिर असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया (जनवरी मई १९३२) जो दो वर्ष तक चलता रहा । अतः मंचौराचौरी ने पुनः मंत्री मण्डल बनाना स्वीकार किया ।

द्वितीय महायुद्ध (सन १९३९-४५) के आरम्भ होने पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को युद्ध में सहयोग देना अस्वीकार कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने 'ट्रिप्स मिशन' आदि के रूप में भारत को बहुत से राजनीतिक अधिकार प्रदान करने की इच्छा प्रकट की तथा केवल देश की रक्षा व सेना के अधिकारों तथा आसराय के रूप में ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि को अपनी ओर से रखना चाहा। परन्तु कांग्रेस ने इस भेंट का भी अस्वीकार कर दिया व महात्मा गांधी के नेतृत्व में अगस्त १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन आरम्भ किया। देश के नेता पुनः कैदों में बन्द किये गये व इस आन्दोलन को भा कुचल लिया गया। पर युद्ध समाप्त होने के पश्चात् १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतंत्र घोषित कर दिया गया व इसी दिन भारत की भूमि पर हिन्दुस्तान व पाकिस्तान दो नये राष्ट्रों का निमाण हुआ।

(१०) पश्चिम की देन-प्रेस पत्रकारिता का विकास

आधुनिक युग में भारत को प्रेस पश्चिम की अत्यन्त महत्वपूर्ण देन है। प्रेस का कारण ही देश में सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक जागृति इनके समय में हो सकी।

भारत में सब प्रथम पोपु गालिया ने गोआ में प्रेस स्थापित किया। उत्तर भारत में सन १७७२ में एक प्रेस सुव्यवस्थित रूप में कार्य करता था। सर चार्ल्स विलकिन्स के निरीक्षण में सन १७७९ में कलकत्ता में एक प्रेस की स्थापना की गई। बंगाल गजट और कलकत्ता जनरल एडवर्टाइजस' नामक भारत में पहला पत्र २९ जनवरी १७८० का प्रकाशित हुआ जो दो वर्ष पश्चात् बन्द हो गया। उस समय अंग्रेजी में अत्र प्रकाशित पत्र "इंडियन गजट" (नवम्बर १७८०) 'कलकत्ता गजट' (फरवरी १७८४) 'मद्रास करियर' (१२ अक्टूबर १७८५) व।

वेनजुली ने फ्रान्सीसी युद्ध के समय सब प्रथम प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाया जिससे कि शत्रुओं को युद्ध सम्बन्धी समाचारों का ज्ञान न हो सके। लाड मिंटो के समय यह प्रतिबन्ध हटा लिया गया परन्तु उसने आपत्तिजनक विषयों की चर्चा करने का सवधा नियंत्रण कर दिया। चार्ल्स मेटकाफ ने सन १८५५ में प्रेस सम्बन्धी प्रतिबन्ध हटा दिया। सन १८३७ ई० में दिल्ली में हिन्दी का पहला प्लोथोग्रफिक प्रेस खुला। सन १८५७ के ग्तर के बाद भारतीयों ने अनुभव किया कि अधिकांश प्रेस और पत्र अंग्रेजों के अधिकार में है अतः वे स्वयं अपने विचारों का देश में प्रचार नहीं कर पाते तथा अधिकांश पत्र जनता में झूठी बातों का प्रचार करते हैं। ग्तर के पश्चात् भारतीय पत्रकारिता ने तीव्र गति से उन्नति की। १८७८ में वर्नरियूलर प्रेस एक्ट द्वारा देशी समाचार पत्रों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गए। लाड रिपन ने पुनः इन प्रतिबन्धों को उठा दिया परन्तु बंग भंग के आन्दोलन (१९०५) के परिणामस्वरूप पुनः उन्हीं प्रतिबन्धों को लगा दिया गया।

भारतीयों में सबसे पहिले गंगाधर मट्टाचार्य ने “बंगाल गजट (१८१६) का अंग्रेजी में प्रकाशन किया। भारतीय भाषाओं में श्रीरामपुर मिशनरियों ने सबसे पहिले बंगाली में “दिग्दर्शन” मासिक और समाचार दपण’ साप्ताहिक प्रकाशित किये, श्रीरामपुर के मिशनरियों ने श्रीरामपुर में कालज (१८१८) खोला जिसके लिए करे माशमन और बाइबल अत्यधिक प्रयत्न किया था। इसी वर्ष उहान दोनों उपरोक्त पत्र निकाले। श्री जुगलकिशोर शुक्ल ने पहला हिन्दी समाचार पत्र उदण्ड मातम्ब (१८१६) प्रकाशित किया। प्रायः आधी शताब्दी तक हिन्दी पत्रकारिका का समुचित आरम्भ नहीं हो सका। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्रिकाओं का प्रकाशन के साथ हिन्दी पत्रों का प्रकाशन समुचित रूप से आरम्भ हुआ। भारतेन्दु की ‘कवि-वचन-सुधा’ (१८६८) ‘हरिश्चन्द्र मेगजिन’ (१८७२) बद्रीनारायण चौधरी की ‘आनन्द काण्डवनी’ (१८८१) प्रतापनारायण मिश्र का ‘ब्रह्मण’ (१५ मार्च १८८२) राधाचरण गान्धारी का ‘भारतेन्दु’ (१८८३) अम्बिकादत्त व्यास का ‘नीरूप प्रवाह’ बालमुकुन्द गुप्त के सम्पादन में ‘भारत मित्र’ ने तत्कालीन साहित्य और समाज का प्रतिनिधित्व किया। आगे के युग में महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में ‘सरस्वती’ (१९००) ने साहित्य के नये मान प्रस्तुत किये। इसी प्रकार “इन्दु” (१९०६) जो जयशंकर प्रसाद की प्रेरणा से निकाला गया (सम्पादक अम्बिका प्रसाद गुप्त) हिन्दी में छायावादी आन्दोलन का अग्रणी बना। प्रेमचन्द ने प्रगतिशील मासिक ‘हंस’ (१९३०) का प्रकाशन आरम्भ किया। इस परम्परा में ‘रूपाम’ (१९३५) ‘नया साहित्य’ आदि पत्र प्रकाशित किये गये। स० ही० वात्स्यायन अणुय द्वारा प्रकाशित व सम्पादित “प्रतीक” हिन्दी में प्रयोगवादी का प्रवक्तृ बना।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में पत्रकारिता के महत्व को एक इसी बात से पहिचाना जा सकता है कि हिन्दी में जितने भी साहित्यिक आन्दोलन व युगान्तर उपस्थित हुए हैं वे सब पत्रों के माध्यम में ही हुए। किसी साहित्यिक प्रवृत्ति को विकासमान करने में हिन्दी में युगान्तरकारी पुस्तकों का अथवा युगान्तरकारी पत्रों का महत्व कहीं बढ़ कर है।

(११) साहित्यिक सस्याएँ — उद्देश्य पाश्चात्य सस्याओं के अनुरूप

बंगाल की रायन एजियाटिक सोसायटी के आदेश पर हिन्दी प्रदेश में भी वैज्ञानिक व सांस्कृतिक सस्याओं का निमाण हुआ जिसमें बनारस की काशी नागरी प्रचारिणी सभा (१८६३) तथा प्रयाग का हिन्दी साहित्य सम्मेलन (१९१०) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा कुछ विद्याधियों के प्रयत्न से स्थापित हुई थी जिनमें बाबू श्यामसुन्दर दास आरम्भ में ही उद्योगशील रहे। साहित्य के प्रतिरिक्त सभा की पत्रिका ‘नागरी प्रचारिणी पत्रिका’ में ‘इतिहास, भूगोल, मनाविज्ञान’ दर्शन आदि विभिन्न विषयों पर विचारपूर्ण निबंध प्रकाशित हुए।

समाने हिन्दी में महत्त्वपूर्ण शोध कार्य प्रकाशित किया। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन ही हिन्दी की कमियाँ को पूरा करने की दृष्टि में हुआ था। कहना न होगा कि यह विषय नये थे तथा पाश्चात्य प्रभाव व परिणाम स्वल्प उत्तम अध्ययन की ओर विद्वानों की रुचि आकर्षित हुई थी।*

इसी प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना भी पश्चिमीय आन्दोलनों के अनुरूप साहित्य संस्था का निर्माण करने का नम्य में हुई थी। इस आन्दोलन को वास् श्यामसुन्दरदास ने सम्मेलन की प्रथम लेखमाला में स्पष्ट कर दिया था। पाश्चात्य आन्दोलनों के अनुरूप अनेक स्वाध्याय मण्डल (Study Circle) स्थापित हुए जहाँ निबंध पढ़ जाते आलोचनाएँ होती तथा साहित्य रचना को प्रोत्साहन मिलता।

* नागरी प्रचारिणी समाज काशी तृतीय वार्षिक रिपोर्ट उद्धृत श्यामसुन्दरदास 'मरी आत्म-कटावनी' में

हिन्दी में भाषा-तत्त्व भू-तत्त्व विज्ञान इतिहास आदि विषयों पर अनेक ग्रंथों का पूरा अभाव देख समाज ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका निकालना आरम्भ किया है।'

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग प्रथम लेखमाला इस सम्मेलन के जन्मदाताओं में अपना आदर्श यूरोप की इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ ओरिएण्टलिस्ट्स (International Congress of Orientalists) पुरातत्वज्ञानों का सावदेशिक परिषद् रखा था और उसी के अनुरूप व इस ही साहित्य सम्मेलन को चलायाना चाहते हैं, परंतु अभी तो इसका पहला ही अधिवेशन हुआ है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उन उद्देश्यों और मनोरथों में कहा तक सफलता प्राप्त होगी। भविष्य में क्या है इसे मानवी शक्ति से कौन जान सकता है परंतु इस स्थान पर इस उद्देश्य का निर्देश कर देना इसलिए आवश्यक है कि जिसमें इस हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने नियता अपनी काय प्रणाली में उसे वही भूल न जाय। यूरोपीय पुरातत्वज्ञानों की सावदेशिक परिषद् में बड़े-बड़े गम्भीर विषयों पर विचार किया जाता है और प्रत्येक विद्वान की यह इच्छा रहती है कि वह अपने आविष्कारों और सिद्धांतों का सब साधारण के सम्मुख प्रकाशित करने के पहिले इस परिषद् के अधिवेशन में उपस्थित करे। इस परिषद् और पुरातत्वज्ञान दोनों का काय का बहुत कुछ गौरव प्राप्त हो जाता है और यही कारण है कि इस परिषद् के निश्चित सिद्धांतों पर बड़े सम्मान की दृष्टि से ध्यान दिया जाता है तथा जहाँ तक सम्भव होता है प्रत्येक देश में उनके अनुसार काय करने का उद्योग किया जाता है। हमारे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का तो अभी धोज बोया गया है। ईश्वर करे आगे चलकर इस वक्ष से वांछित फल उत्पन्न हा।

नवीन पाठ्यक्रम एवं अनुवादों के द्वारा पाश्चात्य प्रभाव

हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव की दृष्टि से नवीन पाठ्यक्रम एवं अनुवादों का विशेष महत्त्व है। पाश्चात्य साहित्य में हमारा सम्पर्क आंग्ल भाषा के माध्यम से स्थापित हुआ। कॉलेज एवं विश्व विद्यालयों की उच्च कक्षाओं में आंग्ल साहित्य के अध्ययन के लिए रचे गये पाठ्यक्रम का उन विद्यार्थियों ने मानसिक गठन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था जो भविष्य में हिन्दी साहित्य के कृत्रिम नाटककार उपन्यासकार आदि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। विश्व विद्यालयों से बाहर भी प्रायः उन पाश्चात्य लेखकों की रचनाएँ पढ़ी जाती थीं जो पाठ्यक्रम में रखी जाती थीं। साथ ही अनेक पाश्चात्य रचनाओं के अनुवाद किये गये। यह अनुवाद पाश्चात्य लेखकों के प्रति अनुवादकों का आकर्षण ही प्रकट नहीं करते प्रत्युत हिन्दी साहित्य में उनके द्वारा कतिपय नवीन प्रवृत्तियों का भी सूत्रपात हुआ।

कविता

पाठ्य क्रमानुसार उच्च कक्षाओं में जान मिटन (John Milton Paradise Lost Lycidas L' Allegro, Il Penseroso) अलेक्जण्डर पोप (Alexander Pope An Essay on Criticism Essay on man) मेम्युल जासन (Samuel Johnson-The Vanity of Human Wishes, London) आलिवर गोल्डस्मिथ (Oliver Goldsmith The Hermit The Deserted Village The Traveller) जेम्स टामसन (James Thomson The Seasons) विलियम कूपर (William Cooper The Task) टामस ग्रे (Thomas Gray Elegy Written in a country Church yard) विलियम वडम्बथ (William Words worth Excursion) सर वाल्टर स्कॉट (Sir Walter Scott Lay of the Last Ministerel) मारमिन (Marmin The Lady of the Lake) जॉर्ज गॉर्डन बायरन (George Gordon Byron Child Harold s Pilgrimage) पर्सी बिशी शेली (Percy Bysshe Shelley Adonis) जॉन कीट्स (John Keats Hyperin Sleep and poetry) आल्फ्रेड टेनीसन (Alfred Tennyson Aylmer s Field The Princess Enoch Arden Mort d Arthur, Dora Ulysses, The Lotus Eaters) मथ्यु आरनोल्ड (Matthew Arnold Sohrab and Rustum) टामस बी० मकाल (Thomas B Macaulay Lays of Ancient Rome) हेनरी डब्लू लॉगफेलो (Henry W Long fellow Evengeline) का अध्ययन कराया जाता था।

इस काल में प्रचलित पाठ्यक्रम में रचे गये कवियों की कविताओं का अनुवाद भी प्रस्तुत किये गये। पाठ्यक्रम में रचे जानवाले कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाओं के भी अनुवाद हुए।

निम्नलिखित अनुवाद उल्लेखनीय हैं —

गोल्डस्मिथ (Goldsmith) — हरमिट Hermit (योगी) लक्ष्मीधर पाठे
 १८७६ हरमिट Hermit (एकांतवासी योगी) श्रीधर पाठक १८८६, ज़रस्टेड
 विलेज Deserted Village (ऊजड़ ग्राम) श्रीधर पाठक १८८६ ट्रेवेलर—Trave-
 ller (घात पथिक) श्रीधर पाठक १९०२
 ग्रे (Gray)—शफ़ड ग्रण्ड फ़िलासफ़र Sophered and Philosopher
 (गडरिया और आलिम) श्रीधर पाठक १८८४ एलिजि Elegy (ग्रामस्य शवागार
 लिखित शाकोवित) कामताप्रसाद गुरु १९०८ एलिजि Elegy (ग्रामीण गीत)
 महेशचन्द्र १९१५

लांगफ़ेलो (Long fellow)—एवेंजलीन Evengelire (ए गलेना) श्रीधर
 पाठक १८८६ साम ग्राफ़ लाइफ़ Psalm of life (जीवन गीत) लक्ष्मीनारायण
 १९०४

पोप (Pope)—एस ग़ान क्रिटिसिज्म Essay on criticism (समालोचना
 दश) जगन्नाथदास रत्नाकर १८९७ हेपिनेस ग्राफ़ रिटायरमेट Happiness of
 Retirement (एकांतवास का सुख)
 टामस पार्नेल (Thomas Parnel)—हरमिट Hermit (योगी) श्रीधर
 पाठक १८९५

बायरन (Byron)—फ़यर द वेल Fare thee well (आशीर्वाद) गौरीशंकर
 बाजपेयी १९०३ ग्रण्ड ग्राट दाऊ डेड सा यंग ग्रण्ड फ़ेयर And art thou dead so
 young and fair, (तहसी तू चल बस अभी) गौरीशंकर बाजपेयी १९०४
 जम्स टेलर (James Tayler)—माई मदर My mother जने द किशोर
 १९०४

सदे (Southey)—स्लीप Sleep (निद्रा) सनातन शर्मा १९०५ स्फ़ालर
 Scholar (पुस्तकालोकन प्रमी विद्वान) १९१०

वडस्वथ (Wordsworth)—अफ़ेक्शन ग्राफ़ मागरेट The affection
 of the Margret (माता का विलाप) १९१० द कुक्कू The Cuckoo
 (कोयल) जीतनसिंह १९०६

कूपर (Cowper)—सोलिट्यूड ग्राफ़ अलेक्जण्डर सकिंक Solitude of
 Alexander Selkirk

स्काट (Scott)—सव ग्राफ़ कट्टी Love of Country (स्वदेश प्रीति)
 गौरीशंकर बाजपेयी १९१०

एर्नेस्ट जोस (Earnest Jones)—द पोयट ग्रण्ड लिबर्टी The Poet and
 Liberty (कवि और स्वतन्त्रता) महावीर प्रसाद द्विवेदी १९०६

मकाल (Maucaly) — हारशियस Horatius छगनतान मिन १६०३
बचन पाडेय १६११ रघुनाथ प्रसाद कपूर १६१२

कम्पबेल (Campbell) लाड अलिंस डाटर Ullwn's daughter (लाड
अलिनकुमारी) सनातन शर्मा १६०४

अय कविताए टामस मूर (Thomos Moor) लास्ट रोज आफ समर
(ग्रीष्म का अन्तिम गुनाव) १६१०, जान टामसन (John Thompson) रून ब्रिटा
निया (इंग्लंड का राष्ट्रीय गीत) १६१६ कालरिज (Coleridge) वड्ड नाविक,
शेक्सपियर (Shakespeare) फाई डणिय (मित्रता) ।

उपरोक्त पाठ्यक्रम एव अनुवाङ्ग भारतेन्दु युग तथा अधिकांश म भारतेन्दु युग
के बाद के हैं अतः इनका प्रभाव भी द्विवेदी युग में प्रतिफलित हुआ । भारत दु युग
म आग्न शासन के प्रति भारतीय प्रतिप्रिया प्रकट हुई थी । द्विवेदी युग म आग्ल
साहित्य के अध्ययन एव अनुवाङ्गों से नवीन विचारा का समावेश हुआ । उपयुक्त
अनुवाङ्गों में अधिकांश का हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियों पर कोई प्रभाव नहीं हुआ ।
लागफेलो के 'साम आफ लाइफ' (Pasm of Life) के अनुरूप भौतिक जीवन क
सौन्दर्य एव समस्याओं की आर आकषण, गाल्डस्थित क 'डिजरटेड विलेज'
(Deserted Village) क अनुरूप उजड़ती हुई ग्रामीण सभ्यता क प्रति क्षोभ, वडस्वथ
गान्डस्मिथ तथा टामस की रचनाओं के अनुरूप प्रकृति प्रेम की भावना तथा गोल्ड
स्मिथ के 'हरमिट' (Hermit) के अनुरूप प्रेम के उदात्तकरण की प्रवृत्तियाँ द्विवेदी
युग की कविता पर पाश्चात्य प्रभाव का फल है । जान टामसन के 'रूल ब्रिटा
निया' (Rule Britania) गीत के सदृश राष्ट्र गीतों की भी रचना का जाने लगी ।
द्विवेदी युग में बग कवि मास्कल मधुसूदन त्त तथा छायावाणी युग क आरम्भ म
रवीन्द्रनाथ टगोर की कविताओं के माध्यम म भी हिन्दी कविता पर पाश्चात्य प्रभाव
प्रतिफलित हुआ ।

द्विवेदी युग क बाद की हिन्दी काव्य धारा म आग्ल साहित्य क पाठ्यक्रम
की पुस्तकों एव अनुवाङ्ग पुस्तकों का अधिकांश महत्व नहीं ठहरता । छायावाणी कवि
आग्ल रोमांटिक कविता से सीधा प्रभाव ग्रहण करन लग ।

छायावाणी कवि आग्ल रोमांटिक काव्य म पूरुत प्रभावित हैं । अय कारण
क अतिरिक्त यह प्रभाव इसलिए भी स्वाभाविक था क्योंकि अधिकांश छायावादी
कवियों ने कालज आर विश्व विद्यालयों म आग्न रोमांटिक काव्य का अध्ययन किया
था । वडस्वथ का प्रकृति चित्रण, कीटस का एड्रिय सोन्दर्य शली की स्वप्नदर्शिता
एक की रहस्यात्मकता क राशि राशि भाव छायावादी कविता म बिल्लरे पडे हैं ।
प्रगतिवाणी एव प्रयागवादी कविता पर भी पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है ।

विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम में अनुसार क्रिस्टोफर मारलाव (Christopher Marlowe) के डॉक्टर फास्ट (Doctor Faustus) विलियम शक्सपीयर (William Shakespeare) के जूलियस सीज़र (Julius Caesar) सेंट कोर्योलन (St Coriolanus) ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम (A Midsummer Night's Dream), मच एंडा अडाउट नथिंग (Much Ado About Nothing) रिचर्ड थर्ड (Richard Third) हमलेट (Hamlet) ओथेला (Othello) मकबेथ (Macbeth) किंग लियर (King Lear) द टेम्पेस्ट (The Tempest) द मर्चेण्ट ऑफ वनिज़ (The Merchant of Venice), ट्वेल्वथ नाइट (Twelfth Night) किंग जान (King John) रिचर्ड सेकंड (Richard Second) हनरी फोर्थ (Henry Fourth) बेंजामिन जॉनसन (Benjamin Johnson) के एवरी मैन इन हिज़ ह्यूमर (Every man in his humour) दी ऐल्केमिस्ट (The Alchemist) जान मिल्टन (John Milton) के कोमस (Comus) समसन एगोनाइस्ट (Samson Agonistes) जोसेफ एडिसन (Joseph Addison) के कटो (Cato) थॉमस गोल्डस्मिथ के शी स्टूप टू क्वोर (She Stoops to Conquer) रिचर्ड बी शरीडन (Richard B. Sheridan) के द राइवल्स (The Rivals) स्कूल फॉर स्कैंडल (The School for Scandal) का अध्ययन कराया जाता था।

शक्सपीयर के द कामडी ऑफ एरर्स (The Comedy of Errors) का मु. शी इमदां अली ने भ्रमजाल (१८७६) द मर्चेण्ट ऑफ वेनिज़ (The Merchant of Venice) का भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दुलम बबु (१८८०) लाना सीताराम ने द कामडी ऑफ एरर्स (The Comedy of Errors) का भूल मुलया मच एंडा अडाउट नथिंग (Much Ado About Nothing) का मनमोहन का जाल द टेम्पेस्ट (The Tempest) का जगल म मंगल रामिया एण्ड जूनिअट (Romeo and Juliet) का प्रेम कसौती मेजर फोर मेजर (Measure for Measure) का बगुला भगत सिम्बलाइन (Cymbeline) का सती परीक्षा एज यू लाइव इट (As you like it) का अपनी अपनी रुचि, वियस टैन (The Winter's Tale) का शरत् ऋतु की कहानी तथा हेनरी फिफथ (Henry V) हेमलेट (Hamlet) किंग लियर (King Lear) ओथेला (Othello) जूलियस सीज़र (Julius Caesar) रिचर्ड सेकंड (Richard II) का अनुवाद किया। गोपीनाथ पुरोहित न रामिया एण्ड जूलियस का प्रेम लीला (१८६६) द मर्चेण्ट ऑफ वनिज़ का गाकुनाथ शर्मा ने वेनिज़ का बाका (१८८८) कायतो का गणपतिद्वारा एज यू लाइव इट का गोपीनाथ पुरोहित न मन भावन (१८८६) जूलियस सीज़र का गणपति कृष्ण गुजर न

जयन्त (१६१२) रोमियो एण्ड जुलियट का चतुर्मुज श्रीदीच्य ने (१६१५) तथा घोषलो का गोविन्द प्रसाद घिलड्याल न (१६१८) अनुवाद किया। शक्सपीयर के नाटको के प्रति हिंदी लेखका का आकर्षण असा भी पाया जाता है। डा० सोमनाथ गुप्त न आथला व हैमलेट का और डा० रामेय राघव न शेक्सपीयर के सभी नाटको का अनुवाद किया। डा० हरिवंशराय बच्चन ने शेक्सपीयर के सभी नाटको को अनुवाद पद्य में अनुदित किया।

शेक्सपीयर के नाटको के कुछ अनुवाद तथा रूपांतर पारसी थियेट्रीकल कम्पनी द्वारा अभिनीत किये गये। ग्रालफ्रेड थियेट्रीकल कम्पनी (१८७७) द्वारा रोमियो और जुलियट तथा हैमलेट खेला गया। यू ग्रालफ्रेड कम्पनी द्वारा मर्चेन्ट आफ वेनिस मेजर फार मेजर, रिचर्ड यड और किंग लियर का अभिनय किया गया। यह नाटक रूपांतरित थे तथा उनकी माया उदू थी।

जी० पी० श्रीवास्तव ने फ्रांसिसी नाटककार मोलियर (Moliere) की रचनाओं को अंग्रेजी से अनुदित किया। उन्होंने मोक डाक्टर (Mock Doctor) का मार मार कर हकीम (१६११) लमोर मेडिसन (L' Amour Medicin) का आखो मे घूल (१६१२) ला मेडिसन वोला (La Medicin Volant) का हवाई डाक्टर (१६१४), ला मैरेज फोर्स (La Marriage Force) का नाक म दम (१६१८) जोज दादि एण्ड ला जलूसी दू बारबोनीय (George Dandni and La Jalousie Du Barbonille) का जवानी बनाम बुढापा (१६१८) शीपक से अनुवाद किया। मालियर के मोक डाक्टर का लल्लीप्रसाद ने ठोक पीट कर बंधराज (१६१२) तथा ताताराम ने एडीसन (Addison) के केटो-ए ट्रेजेडी (Cato A Tragdy) का केटो कतान्न शीपक से अनुवाद किया।

लक्ष्मोनारायण मिश्र ने नावों के नाट्यकार इन्सन (Ibsen) के पिलस आफ सोसायटी (Pillars of Society) का समाज के स्तम्भ और ए डोल्ल हाउस (A Doll's House) का गुडिया का घर शीपक से अनुवाद किया।

प्रेमचन्द ने गाल्सवर्दी (Galsworthy) के सिलवर बाक्स (Silver Box) का चांदी की डिब्बिया, जस्टिस (Justice) का याय तथा स्ट्राइफ (Strife) का हडताल शीपक से अनुवाद किया। ललिताप्रसाद शुक्ल ने गाल्सवर्दी के स्किन गेम (Skin Game) का घोखाघड़ी शीपक से अनुवाद किया। प्रेमचन्द ने जाज वर्नाड शा के बक टु मैथुसेला के प्रथम भाग इन दी बिगिनिंग (In the beginning Back to Methusellah) का सृष्टि का आरम्भ शीपक से अनुवाद किया।

टालस्टाय (Tolstoy) के फ्रस्ट डिस्टिलर (First Distiller) का तलवार की करतूल (केशवानन्द) तथा लाइट शाइन्स इन दू डार्कनेस (Light Shines into Darkness) का अंधेरे में उजाला शीपक से अनुवाद किया गया।

मैटरलिनक (Maeterlink) के सिस्टर बत्रिस (Sister Beatrice) का स्यात्तर लसिंग (Lessing) के मीना ग्राफ बारनलम् (Mina of Barnhelm) (मगनत्र शास्त्री मीना अथवा प्रेम-प्रतिष्ठा) गटे (Goethe) के फाउस्ट (Faust भालानाथ) शिल्लर (Shiller) के देर नेफे आलसो ऑकल (Der Naffe also Onkel हरदत्त शर्मा मतीजा उफ चाचा) मिलटन के कामस (Comus) आस्कर वाइल्ड (Oscar Wilde) क डचज ग्राफ पदुआ (Duchess of Padua) (प्रेम की पराकाष्ठा या पदमा की रानी) गोल्डस्मिथ (Goldsmith) के शी स्टूप्स दू कोन्कर (She stoops the conquer सत्यदेव शुक्ल हा हा हो) के अनुवाद भी हुए ।

हिन्दी में शेक्सपीयर के नाटकों के सर्वाधिक अनुवाद किये गये । सातवां मीता राम द्वारा शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवादों से शेक्सपीयर के नाटकों की शिल्प विधि का हिन्दी लेखकों का परिचय हुआ । बंगला नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय जा स्वयं शेक्सपीयर के नाट्य शिल्प से प्रभावित थे हिन्दी पाठकों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय हुए । नाथूराम प्रेमी ने बंगला से उनके दुर्गादास (१९१६) मवाह पतन (१९१७) शाजहाँ (१९१७) नूरजहाँ (१९१८), उस पार (१९१७), ताराबाइ (१९१८), भीष्म (१९१८) चन्द्रगुप्त (१९१८), सीता (१९१८), मूख मडली (१९१८) भारत रमणी (१९१९) पापाणी (१९२०) सिंहन विजय (१९२०) नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किये । बंगला नाटकों के अनुवादों के माध्यम से हिन्दी में शेक्सपीयर के नाट्य विधान एवं उसकी रामाचरिता का समावेश हुआ । गाल्सवर्थी (Galsworthy) इंसन (Ibsen) एवं जॉर्ज बर्नड शा (George Bernard Shaw) के नाटकों के अनुवादों से सामाजिक वायु युद्धवादिता एवं शिल्पविधि में स्वामा विक्रता का समावेश हुआ । एंग्री तथा रैडियोस्विक के विभिन्न भेदों पर पश्चात्य प्रभाव निर्विकार रूप में स्वीकार किया जाता है ।

उपन्यास

विश्व विद्यालयों में आरम्भिक काल के पाठ्यक्रम में रोबिंसन क्रसो (Robinson Crusoe Daniel Defoe), प्राइड एण्ड प्रेज्युडिस (Pride and Prejudice Jane Austen) इवानोव व केनिल वय (Ivanhoe, Kenilworth Sir Walter Scott) ए टेल ऑफ टू सीटीज (A Tale of two cities Dickens) वैनटी फेयर (Vanity Fair Henry Esmond) द न्यू कमर्स (The New comers W M Thackeray) आदम बीड, सिलास मेरनर, मिडल मार्च (Adam Bede, Silas Marner, Middle March George Eliot) द क्लोस्टर एण्ड द हार्थ (The Cloister and the Hearth-Chambler Reade) टॉम ब्राउन स्कूल डेज (Tom Brown's School Days-Thomas Hugh) उपन्यास निर्धारित थे ।

अंग्रेजों से हिंदी में रूपांतरित उपन्यासों की आरम्भ में सख्या अधिक नहीं रही इसका कारण यह था कि लेखकों की रुचि बंगला उपन्यासों को हिंदी में रूपांतरित करने की ओर अधिक थी। प० बद्रीलाल ने रोबिंसन क्रूओ का इतिहास बंगाली से अनुवाद किया (१८६० बनियन के पिलग्रिम्स प्रोग्रेस (Pilgrims Progress Bunyan) का गोपीनाथ पुरोहित ने दोरेड (१-१७) शीपक से अंग्रेजों से अनुवाद किया। पुरुषोत्तमदास टडन ने शेक्सपीयर के पेरिक्लिस (Pericles) के आधार पर भाग्य का फेर (१९००) उपन्यास लिखा जा हिंदी प्रदीप में प्रकाशित हुआ। रेनाल्ड (Reynold) के फाउस्ट (Faust) का नर-पिशाच र हाउस प्लाट (Rye House Plot) का सत्यवीर अनु कर्हैयालाल (१९०२) जोसेफ विलमत (Joseph Wiltmat) यशोदानन्द श्रीदीक्ष्य (१९०५) मिस्ट्रीज आफ द का- आफ लन्दन (Mysteries of the Court of London) का लन्दन रहस्य (सदानन्द शुक्ल १९१३ ठाकुरप्रसाद खत्री १९१५) ब्राज स्टेच्यू (Bronze Statue) का पीतल की मूर्ति (१९१७) के रूप में अनुवाद किया गया। किले की रानी, दुजन अन्नग तरंग रहस्य भेद आदि रेनाल्ड के उपन्यासों के अर्थ अनुवाद किये गये। राइडर हेगाड के (Rider Haggard) शी (She) का श्री या अथर्व माननीया और स्टोव (Stove) के अंकिल टाम्स केबिन (Uncle Tom's Cabin) का राम काका की कुटिया (अनु महाश्वीर प्रसाद पोद्दार १९१६) जॉर्ज इलियट (George Eliot) के सिलाम मेरनर (Silas Marner) का सुव्यंतास (अनु प्रेमचन्द १९१८) के रूप में अनुवाद किया गया।

बंगाल में बकिम चंद्र के उपन्यास 'दुर्गेशनदिनी' (अनु गदाधरसिंह १८८२) राधारानी-(हरिश्चंद्र १८८३), युगलागुलीय-(प्रतापनारायण मिश्र, १८९४), राजसिंह (प्रतापनारायण मिश्र १८९४) कपाल कुण्डला-(प्रताप नारायण मिश्र १९०१) कृष्णकातेर बिल (अयोध्यासिंह कृष्णकात का दानपत्र १८९८, गुलजारीलाल, कृष्णकात का बिल १९१६) देवी चौधरानी-(बालेश्वर प्रसाद मिश्र, देवी १८९०), चंद्रशेखर-(ब्रजनन्द सहाय १९०७) इन्दिरा-(किशोरीनाथ गोस्वामी १९०८, रामेश्वर पाठेय १९१६, गिरिजा कुमार घोष १९१९) विपक्व-(गुलजारीलाल चतुर्वेदी १९१५) मुणालिनी-(जयराम-दास गुप्त १९१८) के अनुवाद प्रकाशित हुए।

रमेशचन्द्र दत्त की रचनाओं में अन्न विजय (गदाधरसिंह १८८६), माधवी कवन (गोपालराम गहमरी १९०८, जनादन भा १९१२) सत्तार (बेनीप्रसाद १९१०) समाज (जनादन भा १९१३) राजपूत जीवन सध्या (जनादन भा १९१३) महाराष्ट्र जीवन प्रमात (रुद्रनारायण १९१३) के अनुवाद किये गये।

पचकोटी डे के उपन्यास के गाणाराम गहमरी ने अनुवाद किये-जीवनमृत रहस्य (१९०८) काला साप (माली देवी घटना-१९१०) गाविंदराम (१९०५)

जामूसी इकर (१९१२) मनोरमा (१९१३) नील वसना गुजरी (१९१३) । रामलाल वर्मा ने पचक्वीनी डे व भीषण भूल (१९१७) व घटना चक्र (१९१८) का अनुवाद किया ।

रवीन्द्रनाथ टगोर के मुकुट (१९१०), नीका द्वीप आश्चर्य घटना (१९१३) चौखर वाली (ग्रामो की किरकिरी १९१३) के अनुवाद हिन्दी में हुए ।

अंग्रेजी में रेनाल्ड तथा पचक्वीनी डे जो स्वयं रेनाल्ड से प्रभावित थे, वे अनुवादों का तिलस्मी व जामूसी उपन्यासों की धारा पर प्रभाव प्रतिफलित हुआ । सन् १९२० ई० के पश्चात् हिन्दी में सामाजिक उपन्यासों की रचना प्रधान रूप से होन लगी । थकरे (Thackeray) डिकेन्स (Dickens) जार्ज इलियट (George Eliot) आदि ने हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों को प्रभावित किया । उस समय इन लेखकों की रचनाओं को पाठ्य क्रम में प्रधान रूप से स्थान दिया जाता था । रूसी उपन्यासकार टालस्टाय (Tolstoy) गोर्की (Gorky) तथा चेखव (Tchekov) की रचनाओं में भी हिन्दी उपन्यासकार प्रभावित हुए । फ्रांसीसी प्रकृतवादी लसक बालजाक (Balzac) तथा एमिल जोला (Emile Zola) का भी हिन्दी के नग्न यथाथवादी उपन्यासों में प्रभाव मिलता है । मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक यथाथवादी (माक्सवादी) उपन्यासों पर भी पश्चात्य प्रभाव दृष्ट्य है ।

कहानी

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का आरम्भ भारतेन्दु युग (१८७०-१९००) से होता है किन्तु हिन्दी कहानी का आरम्भ द्विवेदी-युग (१९००-१९२०) से हुआ । 'सरस्वती' के प्रकाशन (१९००) से कहानी कला के आधुनिक रूप का विभिन्न उद्गमों से सगठन होने लगा किन्तु उनमें पश्चात्य प्रभाव ही सबसे महत्वपूर्ण था । उच्च-वैज्ञानिकों के पाठ्य क्रम में इस समय चार्ल्स एण्ड मेरी लम्ब (Charles and Mary Lamb) की टेल्ल फ्रॉम शेक्सपीयर (Tales from Shakespeare) वाशिंगटन इरविंग (Washington Irving) की द स्केच बुक (The Sketch Book) मथनियल ह्याथ (Methaniel Hawthorne) की द टंगल वुड टेल्ल (The Tangle Wood Tales) चार्लेट मेरी वोग (Charleth Mery Vouge) की ए बुक ऑफ गोल्डन डीड्स (A book of Golden Deeds) निर्धारित थी । हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि के आविर्भाव के उद्गम सूत्रों की विवेचना करते हुए डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने चार सूत्रों का उल्लेख किया है— (अ) संस्कृत नाटकों की कथावस्तु (आ) शेक्सपीयर के नाटकों की कथावस्तु (इ) उर्दू किम्सा और अफसाने (ई) प्रारम्भिक बंगला कहानियाँ । संस्कृत नाटकों की कथावस्तु लेकर आरम्भ में सरस्वती में आख्यायिकाएँ प्रकाशित की गयी थीं । किन्तु संस्कृत नाटकों की कथावस्तुओं की अपेक्षा शेक्सपीयर के नाटकों की कथावस्तुओं ने कथा-तत्व के निमाण की अधिक प्रेरणा दी । किशोरीलाल गास्वामी लिखित हिन्दी की पहली

कहानी 'इन्दुमती' पर शेक्सपीयर के 'टम्पेस्ट' की छाप है। शेक्सपीयर के नाटकों की कथावस्तु लेकर 'सरस्वती' के प्रारम्भिक वर्षों में हिन्दी में 'सिम्बेलिन' एग्नेस वामी टाइमन 'पेरिक्लिस' आदि आख्यायिकाएँ लिखी गईं। गंगाप्रसाद ने हिन्दी शेक्सपीयर' (१९१४) पुस्तक में शेक्सपीयर के प्रायः सभी नाटकों को आख्यायिकाओं के रूप में प्रस्तुत किया। हिन्दी 'शेक्सपीयर' की अपेक्षा 'सरस्वती' में शेक्सपीयर के नाटकों की कथावस्तु के आधार पर लिखी गयी कहानियों ने हिन्दी कहानी को अधिक प्रभावित किया। 'सरस्वती' में प्रकाशित शेक्सपीयर के नाटकों की आख्यायिकाओं का महत्व बहुत है। वस्तुतः हिन्दी कहानी के कथा विकास के निर्माण का एक मात्र उद्गम सूत्र यही है। * हिन्दी कहानी के आदि युग में लोक कहानियों में प्रेरणा लेकर जो कहानियाँ लिखी गईं उनमें परोक्ष रूप से पार्श्वतः प्रभाव किया मील था। उनीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में डा० प्रियसन ने सवप्रथम लोक कथाओं की ओर हिन्दी साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित किया। लोक कथाओं के सम्बन्ध में पश्चिमी दृष्टिकोण अधिक सहानुभूति संपन्न था। हिन्दी के कहानी लेखक भी लोक-कथाओं की ओर आकर्षित हुए। हिन्दी कहानियों के आदि काल में रवीन्द्रनाथ टैगोर चारुचंद्र बघोपाध्याय पाचकोटी अनादिबन बघोपाध्याय आदि की बगला कहानियों के अनुवाद भी हुए। यह बगला कहानी लेखक स्वयं पश्चिमी कहानी में प्रेरणा ले रहे थे अथवा बगला के माध्यम से हिन्दी कहानी पर पार्श्वतः प्रभाव प्रतिफलित हुआ। शिक्षा केन्द्रों में पढाई जाने वाली अंग्रेजी कहानियों का हिन्दी कहानी पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। इसका कारण यह था कि अंग्रेजी कहानी कला का अभी अधिक विकास नहीं हुआ था। अंग्रेजी कहानी स्वयं रूसी, अमेरिकी व फ्रांसीसी कहानियों से प्रभाव ग्रहण कर रही थी। इस समय रूसी व फ्रांसीसी कहानियाँ के अंग्रेजी से अनुवाद भी हुए। प्रेमचंद द्वारा अनुवादित 'टालस्टाय की कहानियाँ' गोपाल नेवटिया द्वारा अनुवादित 'यूरोप की कहानियाँ' चंद्रगुप्त विद्यालंकार द्वारा अनुवादित तुगनेव की कहानियाँ और इलाचंद जोशी द्वारा अनुवादित मोर्गसा की कहानियाँ इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। सामाजिक बुराईयों के प्रति विद्रोह, मानवीय सहानुभूति, यथायथा आदि एव मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हिन्दी कहानी पर पार्श्वतः प्रभाव दर्शाते हैं।

निबन्ध

हिन्दी गद्य रचना का शृंगारबद्ध स्वरूप भारत में प्राचीन शासन की स्थापना के बाद ही मिलता है। गद्य के विकास के प्रभाव में निबन्ध का प्रादुर्भाव पञ्चरत्नीय ठहरता है। हिन्दी में आधुनिक युग में ही निबन्ध नियंत्रित रूप से उत्पन्न हुआ।

* डा० लक्ष्मीनारायण लाल 'हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास' साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग १९५३ पृष्ठ २९६।

पाश्चात्य प्रभाव पूर्ण रूप से दिखाई देता है। स्वाधीन चिन्तन और निरग्र अनुभूति की गद्य में सहज अभिव्यक्ति जिसमें पाठक सोचे और सही रूप में लेखन के भावों एवं विचारों का परिचय पाता है—निबन्ध का यह रूप पाश्चात्य प्रभाव से ही ही म विकसित हुआ है—तथा हमारे देश में ऐसी रचना प्राचीन युग में नहीं मिलती। *

हिन्दी में आधुनिक युग के आरम्भ एवं विकास काल में फ्रांसिस बेकन (Francis Bacon) के एसेज (Essays) तथा 'द एडवांसमेंट ऑफ लर्निंग (The advancement of Learning) जोसेफ एडीसन (Joseph Addison) के एसेज (Essays) जोसेफ एडीसन व रिचार्ड स्टील (Joseph Addison and Richard Steele) के सर रोगर द कोवरले (Sir Roger de Coverlay) ओलिवर गोल्डस्मिथ (Oliver Goldsmith) के सिलेक्शन फ्रॉम द बी (Selection from the Bee) चार्ल्स लम्ब (Charles Lamb) के एसेज (Essays) राबर्ट लुई स्टीवेंसन (Robert Louis Stevenson) की वरजिनिवस प्यारस्क् (Verginibus Puresque) का उच्च कक्षाओं में पढ़ाया जाता था। आंग्ल साहित्य के यही प्रमुख निबन्ध-लेखक थे।

इस काल में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लॉर्ड फ्रांसिस बेकन (Lord Francis Bacon) के निबन्धों का 'बकन विचार रत्नावली (१९०१) शीर्षक से अनुवाद किया। बेकन विचार रत्नावली में बकन के ५८ निबन्धों में से ३६ का अनुवाद किया गया है।

जयप्रायदास रत्नाकर ने अलकजण्डर पोप (Alexander Pope), के एन ऐस एन क्विटिज्म ' (An Essay on Criticism) का 'मालोचनादर्श (पद्य रूप में), नाथूराम प्रेमी ने सेमुएल स्माइल (Samuel Smiles) के सल्फ हेल्प (Self Help) का 'स्वावलम्ब तथा थ्रिफ्ट (Thrift) का मितव्ययता ऋषि श्वरनाथ भट्ट ने लॉर्ड चैस्टरफील्डस एडवाइस टू हिज सन (Lord Chesterfield's advice to His Son) का 'वक्तव्य शिक्षा' शीर्षक से अनुवाद किया। डॉ. प्रोजे में लिखे गये निबन्धों के अनुरूप हिन्दी में निबन्ध रचना की जान

सगी।

* गंगावर्धनसिंह द्विवेदी युगीन निबन्ध प्र० हिन्दी विभाग लखनऊ वि वि यू १९ 'निबन्ध' के क्षेत्र में भारतीय विद्वान पश्चिमी साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित हुए। इसका मुख्य कारण यह था कि उनके साहित्य में इस प्रकार का रचनाशैली का चिन्तन प्रभाव था। काय नाटक तथा कथाना आदि तो हिन्दी का मूलतः ही पद्य मन्त्रसिंह के रूप में निबन्ध परम्परा निबन्ध नाम के प्रतिरिक्त है—रूप में निबन्ध।

कृष्ण बिहारी मिश्र ने विलियम हैज़लिट (William Hazlitt) के 'क्रिटि-सिज़्म' (Criticism) निबंध के आधार पर "अमालोचना (मर्यादा जून १९१२) सोमेश्वर दत्त शुक्ल ने जान रस्किन (John Ruskin) के "द रूट्स ऑफ़ ऑनर" (The Roots of Honour) निबंध के आधार पर "गौरव के मूल कारण" (मर्यादा अक्टूबर १९१३), प्रसाद वर्मा ने टॉलस्टॉय (Tolstoy) के 'वाई डू मैन स्टुपीफाई दमसेल्वज' (Why Do Men Stupify Themselves) के आधार पर 'मनुष्य उन्मात्क वस्तुओं का प्रयोग क्यों करते हैं,' शारदाप्रसाद दुवे ने शोपेनहार् (Sopenhaur) के "सेल्फ़ थिंकिंग," के आधार पर 'स्वतंत्र विचार" (मर्यादा जून १९१६), वनमालीप्रसाद शुक्ल ने मेटर्लिक (Meterlink) के 'परफ्यूम्स' (Perfumes) के आधार पर 'पुष्पात्मा" (सरस्वती जनवरी १९२३) निबंध लिखे ।

स्वाधीन चिंतन एवं निश्चल अनुभूति की पाश्चात्य निबंधकारों के समान हिन्दी लेखक अपने निबंधों से अभिव्यक्ति करने लगे, यह पाश्चात्य प्रभाव का ही फल है ।

अस्तु, पाठ्यक्रम में निर्धारित पाश्चात्य लेखकों की रचनाओं एवं अनुवादों से हिन्दी लेखकों का पाश्चात्य साहित्य से परिचय बढ़ा । पश्चिम में साहित्यिक रूपों के अनुरूप हिन्दी के काव्य व गद्य रूपों में परिवर्तन आने लगा तथा विचार-धारा की दृष्टि से भी पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित होकर हिन्दी में नवीन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ जिनका विवेचन आगे के अध्यायों में किया जायेगा ।

धार्मिक विचारधारा स्वरक्षामत्क प्रवृत्ति

१९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब व्यापार और धर्म प्रचार के लिए आने वाले यूरोपीय जातियों में से आंग्ल जाति का शासन हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश में मुदृढ़ स्थापित हो गया एवं भारतीय जीवन और साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव अनुभव किया जाने लगा तब प्राचीन व नवीन का संघर्ष सब प्रथम धार्मिक क्षेत्र में प्रकट हुआ। यह स्वामाधिक भी था क्योंकि धर्म संस्कृति का अनिर्वाय और प्रमुख अंग है। विदेशी संस्कृति के समागम के अवसर पर विजित जाति की 'धार्मिक क्षेत्र में स्वरक्षात्मक प्रवृत्ति सबसे अधिक सचेष्ट हो जाता है।

भारत-दु युग की धार्मिक विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव (१) पश्चिमी सम्यता के भौतिकवादी दृष्टिकोण (२) ईसाई धर्म प्रचार के विरुद्ध भारतीय प्रति प्रिया तथा (३) पश्चिम की बुद्धि सगत विचार पद्धति के माध्यम के प्रतिफलित हुआ।

पाश्चात्य सम्यता का भौतिकवादी रूप

पाश्चात्य सम्यता भारतीय सम्यता का तरह धर्म प्राण नहीं है। वह एहिकता परक अथवा भौतिकवादी है। समास नहीं सांसारिक जीवन का सर्वांगीण विकास पाश्चात्य सम्यता का मूल मात्र है। पाश्चात्य सम्यता मूल रूप में व्यावहारिक था। उसके बाजा व राजसिंहासन के समक्ष व पाछे इंग्लैंड के पुतलीघरो की घुए में युक्त चिमनिया थी। व्यापारिक लाभ के लिए जो सो अगर बन कर प्रायः व शामक बन बटे। व्यापार व राज्य के प्रसार के साथ उतान अपने धर्म का भी प्रचार किया। भारतवासी अपने का धर्म परायण समझे बट थे। पाश्चात्य सम्यता के प्रागमन के साथ उन्होंने देखा कि विदेशी लोग अपने धर्म का प्रचार करते हैं व बिदा है। पर उनका धर्म किसी प्रकार उनकी नौकिक उन्नति में बाधक नहीं जाना वग्न व लौकिक समृद्धि के प्रति अत्यन्त सजग रहने ^६। धर्म पाश्चात्य सम्यत के प्रभाव स्वरूप भारतीय जीवन में लौकिक समृद्धि की भावना का उत्पन्न हुआ। आंग्ल शासन के परिणाम-स्वरूप देश में जो परिवर्तन प्रायः उन्होंने इस दशक के निवासियों को एक नया अनुभव किया—धर्म ही सब कुछ नहीं है। जो शक्यता धर्म धार्य से पूरा था, अहा उद्योग धर्म समृद्ध था जहा की धूमि रत्नगर्भा था वहाँ धर्म बकारी गरीबा, अज्ञान और अज्ञान 'मुरमा की तरह बढत जा रह था। दूसरी प्राध्यात्मिकता लौकिक समृद्धि के माग में बाधक निदृष्ट हान नगी था।

प्राध्यात्मिकता के स्थान पर लौकिक समस्याओं की प्रमुखता

भारतेन्दु युग के साहित्यकारों में प्राध्यात्मिकता का स्वर मन्द पड़ने लगा एवं परिवर्तन भी आ गया। इस युग के लेखकों ने शृंगार व भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ भी पर्याप्त मात्रा में लिखी हैं परन्तु वे रीतिकालीन कविता से भिन्न हैं। उनमें आत्मीयता और स्वाभाविकता पायी जाती है तथापि विषय की नवीनता की दृष्टि में वे मूल्यवान नहीं हैं। भारतेन्दु युग के साहित्य में समाज सुधार व देश भक्ति का स्वर ही सबसे अधिक मुखर है तथा अन्य स्वर गौण हैं।

भारतेन्दु अपने निबन्ध 'वैष्णवता और भारतवर्ष' में समाज की तत्कालीन स्थिति में जबकि पेट भर खाने की भी नहीं मित्रता 'सहज घम उदरपूरण' पर ध्यान देना आवश्यक बतलाते हैं। * प्रताप नारायण मिश्र की दृष्टि में जब देशवासी भूखी मरते हो तो स्यासी होना निदयता और स्वायत्तरता है। †

भारतेन्दु युग के लेखक धर्म को व्यक्तिगत प्रश्न ही रखना चाहते हैं। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि उस युग में ब्रह्म समाज, धाय समाज, सनातन धर्म आदि मत-भेदों का उदय हुआ था जिनमें यदि कुछ अच्छी बातें थीं तो भी वे आपस में अपने मन प्रसार के लिए वाद-विवाद में समय नष्ट करते और सच्ची देश सेवा को भुला देते थे। भारतेन्दु धर्म को केवल विश्वास की वस्तु मानते हैं तथा व्यवहार में धार्मिक विभिन्नताओं को दूर रख सगठित होना का सदेश देते हैं। X

* भारतेन्दु के निबन्ध 'से डा केसरी नारायण शुक्ल, सरस्वती मन्दिर, जतनवर, बनारस स २००८ पृष्ठ ४०

जब पेट भर खाने की भी न मिलेगी तो घम कहा बाकी रहेगा इससे जीव मान के सहज घम उदरपूरण पर अब ध्यान दीजिए।

† प्रताप नारायण श्यामवती से विजयशंकर मल्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी स २०१४ पृष्ठ ३७१

यदि हम विरक्त हों तो हमें आज अपनी आत्मा के कल्याणार्थ बन में जा बठना श्रेयस्कर न होगा, क्योंकि हमारे चतुर्थांश भाई भूखी मर रहे हैं और तीन चौथाई ऐसे हैं कि तीन खाते हैं तेरह की भूख बनी रहती है। ऐसी दशा में केवल अपने परलाक की चिन्ता करना निदयता और स्वयंपरता है (हमारी आवश्यकता)

X भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पब्लिक श्रौपीनियन (हरिश्चन्द्र मैगजीन भाग १ अंक ७) पृष्ठ १६६

मत और सांसारिक कामों से क्या सम्बन्ध? मत या धर्म विश्वास का नाम है और वह दिल में रखने और विश्वास रखने की चीज है इससे व्यवहार से क्या सम्बन्ध? पर सोचें कि हमारे धर्म शास्त्र वाले वक्ता को भी धर्म बता गये तो अब हम लोगों को उचित है कि धर्म और व्यवहार दोनों को एक में न सानें। तृतीय करोड़ देवताओं को अलग अलग मानों पर जहाँ व्यवहार का काम पड़े एक ही आधे और जब अपने हित की बातें आँव तब एक ही आवाज दो।

व्यक्तिक दृष्टि से विरोध न होते हुए भी भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने भक्ति व भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धांत 'व्यास' के सामाजिक प्रभाव को तत्कालीन युग के लिए बुरा बताया है। किसी समय की 'अमृत-तुल्य' भक्ति को भारतेन्दु युग के साहित्यकार विष तुल्य मानते हैं क्योंकि हमारी आध्यात्मिक प्रवृत्ति ने हम 'वैदिक' समस्याओं के प्रति विमुख बना दिया है। घम के नाम पर व्यक्ति से कुछ भी बराधा जा सकता है कि तु देश की उन्नति के लिए कोई कुछ भी करने के लिए तैयार नहीं होता। 'देशोन्नति' के प्रति यह उत्साहीता को भावना इस युग के साहित्यकारों के लिए दुःख का विषय है। भक्ति को इस युग का लेखक दास भावना के प्रसार का साधन मानता है। बालकृष्ण भट्ट नवीन शिक्षा व विज्ञान के प्रति उत्साही भक्ति के विरुद्ध खीझ प्रकट करते हैं।*

पर भक्ति—भावना से भी बढ़कर अकर्मण्यता को फलान वाला वदात दर्शन सिद्ध हुआ। जहां तक भक्ति के कारण दास्य भावना के फलने का प्रश्न है बालकृष्ण भट्ट भक्ति भावना के विरोधी हैं। इस दृष्टि से वे उसे ग्रह ब्रह्मास्मी के सिद्धांत से निम्नतर भी मानते हैं क्योंकि 'ग्रह ब्रह्मास्मी' कहनेवाला 'यक्ति अपने को ब्रह्म का स्वरूप ही समझता है अतः वह दोन भावना का शिकार नहीं होता। किंतु ग्रह ब्रह्मास्मी बतल हुआ जा लोग जगत् को मिथ्या स्वरूप मानते हैं उनकी विचारधारा को बालकृष्ण भट्ट समाज के लिये घातक समझते हैं। + उनके मत में वेदांतवादियों ने व्यास के प्राचीन व्यास को न अपना कर मिथ्या का ही पोषण किया है एवं उनके प्रभाव से फैलनेवाली सवनाशकारी अकर्मण्यता के बदले वे फिर भी सच्चे

* बालकृष्ण भट्ट 'भक्ति' भट्ट निबंधावली' भाग २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग स २००७ पृष्ठ ४८

सच्ची भक्ति बनी है जो निस्वार्थ हो पर अक्षुण्ण चित्त हमारे भक्त जन उत्तरी (नव शिक्षाओं का) ठठीली का कुछ भी ध्यान न कर प्रेम और अनुराग में हूय हुए सत्कार के पावन वास्तु प्रपंच को लात मारते हैं। मूरदास की काली कमली का न दूजो रंग—रंग या जानि का नवाभ्युत्थान या अंध पतन सायस की नई नई 'जाति' में अंधक तरविनया जाती रहें उनका इसमें कुछ सरानार नहीं।

+ बालकृष्ण भट्ट युग क्या है वही पृष्ठ ५१

युग के सम्बन्ध में आधुनिक वदंतियों का तो सिद्धांत ही निराकार है जिनमें व्यास-नृत प्राचीन व्यास-नृत का जो कुछ उत्तम सिद्धांत है कि युग दुःख में एक सा रहना युग में पून न उठना युग में अन्ध नहीं जान कर दिया नास्तिक्य व वदन्ती घब मानते हैं कि युग युग, पाप-पुण्य बुरा मला जना एक हैं और बड़े बचन है। पाप पुण्य दोनों शरीर करता है और आत्मा निर्निष्ठ है।

मत्ता की प्रेम भावना को प्रशसनीय ठहराते हैं ।* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी वदात वादियों की प्रेमशून्यता व भ्रममण्यता का भारत दुदशा' (१८८०) नाटक में प्रतिकार करते हैं । + प्रताप नारायण मिश्र द्वारा बराग्य भावना के विरोध का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं । मिश्रजी केवल बराग्य-भावना का विरोध ही नहीं करते बरन् आध्यात्म चिंतन के लिए त्याज्य पद वग काम, श्रोध, लोभ मोह मद व मत्सर का सामाजिक हित के लिए सग्रह आवश्यक मानते हैं । वे देशहित की दृष्टि से काम नोषादि व सग्रह की आवश्यकता नये प्रसंग में प्रस्तुत करते हैं । X

● बालवृष्ण भट्ट मनुष्य जीवन की सायकता' वही पृष्ठ ३६

इस उत्तम कोटि के महात्मा (सच्चे भक्त) भव इस समय बहुत कम जानते हैं कि यह ब्रह्मास्मी कहने वाले घूत-बचको से तो यही भलें । यद्यपि जिस बात की पुकार हम है सो तो इन दासोस्मी में भी नहीं पायी जाती फिर भी प्रेम और दृश्य जगत् सवधा निस्सार नहीं है न सवनाशकारी भ्रममण्यता ही का दखल इनमें है इससे य बहुत अशो में सराहनीय हैं ।

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'भारत दुदशा' भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ६०५

इस नाटक में 'सत्यानाश' फौजदार कहता है

रचि के मत वेदात को सबकी ब्रह्म बनाय

द्विदुन पुरपोत्तम कियो तोरि हाय अरू पाय ।

महाराज वेदात न बड़ा ही उपकार किया । सब हिन्दू ब्रह्म हो गये । किसी का इतिवृत्तव्यता बाकी ही न रही । पानी बन कर ईश्वर से विमुक्त हुए, रुस हुए, भ्रमिमानी हुए और इसीसे स्नेह शून्य हो गये । जब स्नेह ही नहीं तब दशादार का प्रयत्न कहा ?

X प्रतापनारायण अदावली स० विजयशरर मल्ल नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी पृष्ठ १५२

कामना अर्थात् प्रगाढ इच्छा प्रेममय परमात्मा के भजन और देशहित की रखें । श्रोध का पूरा प्रावत्य अपने अथवा देश भाइयों के दुख अथवा दुगुण पर लगा दें (अर्थात् उन्हें कच्चा खा जाने की नियत रखें) लोभ सद्विद्या औरसद्गुण का रखें । मोह अपने देश अपनी माया और अपनेपन का करें । जान जाय पर इन्हें न जाने दें । अपन आयत्व अपने पूवजों के यश का पूरा मद (भहकार) रखें । इसके प्राण सत्सार को तुच्छ समझें दूसरे देशवालों में चाहे जैसे उत्कृष्ट गुण हा उनको कुछ न गिन के अपने में ऐसे गुण सचय करने का प्रयत्न करें कि दूसरो के गुण मद पद आय । मात्सय का ठीक ठीक बर्ताव यह है ।

(मुवावस्था)

एहिकतापरक पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क से भारत-दु युग के साहित्यकारों की दृष्टि साध्यात्मिकता के स्थान पर लौकिक समस्याओं की धार प्रमुख रूप से केंद्रित है। पूर्व भारत-दु साहित्य में हम किसी न किसी रूप में भक्ति भावना की अभिव्यक्ति पाते हैं। लेकिन भक्ति का विरोध किसी रूप में नहीं मिलता।

भारत-दु युग के साहित्य में इस स्वर-परिवर्तन का कारण पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव एवं परिवर्तित परिस्थितियों में युग की आवश्यकता है। भारत-दु युग के साहित्यकार यद्यपि व्यक्तिगत रूप से धार्मिक प्रवृत्ति के लोग हैं तथापि सामूहिक विचारधारा की दृष्टि से वे उस फलाने के पक्षपाती नहीं। व्यक्तिगत रूप से स्वधर्म की भावनाएँ हुए लौकिक समृद्धि की कामना ने भारत-दु युग के साहित्यकारों को प्रेरित किया। इसी भावना ने उन्हें विरोधी धर्मों के प्रति भी सहिष्णु बनाया तथा हिंदू धर्म में घुसी हुई बुराईयों का दूर करने की प्रेरणा दी। हिंदू धर्म की उन्नीस पुरानी रूढ़ियों और कुप्रथाओं से मुक्त कर व्यापक मानव धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया। इसमें वे पाश्चात्य सभ्यता के एहिकतापरक दृष्टिकोण से प्रभावित हुए हैं।

ईसाई धर्म प्रचार के विरुद्ध भारतीय प्रतिश्रिया

जब एक और विजयी शक्ति हमारे देश का अधिक शोषण करने में लीन थी उस समय ईसाई मिशनरी शक्तिपूर्ण उपायों से जनता में अपना धर्म फलाने का प्रयत्न कर रहे थे। यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत में कथोलिक चर्च के ईसाई मिशनरी केवल पोर्तुगाली शासन-काल में दक्षिण में आये थे। पुर्तगाली शासन काल में दक्षिण में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए उन्नीस शताब्दी में प्रयोग भी किया था। किन्तु उत्तर भारत में जो ईसाई मिशनरी आये वे प्रोटेस्टेंट चर्च के अनुयायी थे। योरोप में १६वीं शताब्दी के उत्तरकाल में रोमन साम्राज्यवाद का अंत व कथोलिक चर्च की स्थापना हुई थी। १६वीं शताब्दी तक योरोप में सामंतवाद सभ्यता का प्रमुख रहा। यही समय पोप के धार्मिक एकाधिकार का था। इस समय चर्चों में विलासिता घ्याप्त हो गयी। यही नहीं, चर्चों के लिए धन संग्रह करने की मुक्ति पत्र बंधे जाने लगे। तब सन् १५२० में मार्टिन लूथर ने पोप की सत्ता के विरुद्ध धान्नेलन सडा किया। मार्टिन लूथर ने धार्मिक अंध विश्वासों के खण्डन व धार्मिक मामलों में बुद्धि तर्क के प्रयोग का सब प्रथम प्रयास किया था। लूथर ईसाई धर्म का विरोधी नहीं था। वह चर्चों की कवल बुद्धिमत्त बुद्धि का पक्षपाती था। कहना न होगा कि भारत में ईसाई धर्म प्रचार के युग में हिंदुओं के मन्दिरों में पाप के ही बुराईयों फली हुई थी जिनकी रोमन चर्च में प्रवृत्तता देख कर लूथर व उसके अनुयायियों ने उनका विरोध किया था। धार्मिक पुरोहित व पडे विलासिता में लीन थे। जनता धार्मिक अंध विश्वासों में डूबी हुई थी। सच्ची साध्यात्मिक भावना का शोष हो गया था। भारतीय नवोत्थान के पथ प्रशका ने बुद्धि व तर्क के आधार

एक धार्मिक मुद्दा की अवश्यकता पर बल दिया। प्रायः समाज के प्रबलक स्वामी न्याय के सरस्वती को भारतीय नगर कहा जा सकता है। उन्होंने मध्य युग के आधुनिक-युग में आई हुई धार्मिक बुराईयों को दूर कर प्राचीन धार्मिक धर्म की पुनर्स्थापना का प्रयत्न किया। तूथर ने भी इसी दृष्टि में कथोलिक धर्म में सुधार के लिए आंदोलन किया था।

ईसाई मिशनरियों के धर्म प्रचार, के साथ विद्यालयों में धर्म-प्रचार शिक्षा के अन्त, चिकित्सालय अनाथालय आदि सेवा कार्यों द्वारा ईसाई धर्म के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने के स्थानों पर धार्मिक व्याख्यान देने आदि के रूप में फला हुआ था। मिशनरी प्रायः हिन्दुओं के पवित्र-प्रेतार्यों के सामाजिक कुरीतियों की निंदा किया करते थे। हिन्दुओं की मूर्ति पूजा बहु देवता, अवतारवाद बली प्रथा आदि उनका आलोचना के विषय थे। इन आलोचनाओं से प्रभावित तथा हिन्दू धर्म की रमण-आत्मिक प्रवृत्ति में प्रेरित होकर ईसाई सन्तों में ब्रह्म समाज प्रायः समाज आदि धार्मिक आंदोलन उठे। इन आन्दोलनों में मतवादिता आ गयी थी। तत्कालीन साहित्य पर इन आन्दोलनों का केवल ऊपरी प्रभाव पड़ा। जो नये विचार ईसाई धर्म प्रचार भारतीय नवोद्योग (ईसाई सन्तों के धार्मिक आंदोलन) के पश्चिमी ज्ञान के कारण फले बुद्धि के प्रयास से समाज में प्रथम पार रहे थे उनका तत्कालीन साहित्य पर सम्मिलित रूप में प्रभाव प्रतिफलित हुआ। 'दोई हुई आग' * निबंध में प्रताप-नारायण मिश्र ने ईसाई मिशनरियों द्वारा चनाये गये विद्यालयों में हिन्दू धर्म को इस रूप में बालकों के सामने रखने पर जिससे कि उन्हें अपने धर्म के प्रति अश्रद्धा हो क्षोभ प्रकट किया। 'एक विचार' * लेख में उन्होंने कानपुर के हिन्दुओं को अनाथालय खोलने की अपील की निमित्त कि हिन्दू बालक ईसाई अनाथालय में रह कर विधर्मी बनने का बाध्य न हो। ईसाई धर्म प्रचार के साथ ने वस्तुतः भारतीय युग के लेखकों को मचेत कर दिया था और वे हिन्दुओं में धर्म-सुधार के लिए कटिबद्ध हो गये।

ब्राह्मण वर्ग सामाजिक प्रगति में बाधक

इस युग के लेखकों के अनुसार हिन्दू धर्म के पतन के कारणों में धर्म का नेतृत्व करनेवाले ब्राह्मण-वर्ग का हाथ था जो विलासी और स्वार्थी हो गये थे तथा उनमें सच्ची आध्यात्मिक भावना के धार्मिक ज्ञान का अभाव था।

भारतीय युग के लेखकों में अधिकांश ब्राह्मण वर्ग के हाते हुए भी इस तथ्य के प्रति पूर्णतया सजग हैं कि तत्कालीन युग में ब्राह्मण लोग धर्म के समाज के पतन के प्रमुख कारण हैं। अतः राधाचरण गोस्वामी 'रोम के पोप' लोगों से

* प्रतापनारायण मिश्र द्वारा संकलित

इनकी समानता बतलाने हैं तथा बालवृष्ण भट्ट दुनिया भर का गागी सुराइया को सनातन धर्म में देखते हैं। पर तु ब्राह्मण वर्ग के प्रति इन लयका का विरोध वास्तविक नहीं केवल मौखिक ही था। वे स्वयं भी इस वर्ग के थे। तथापि उन्होंने बताया कि ब्राह्मण वर्ग नवीन परिस्थितिया में सामाजिक प्रगति का बाधक बन गया है और समय की गति को पहिचान कर उन्हें घट विश्वासों को छोड़ कर नये विचारों का स्वागत करना चाहिए।

मन्दिरों में दुराचार का विरोध

भारते दु युग के माहिस्य के अनुशीलन से पता चलता है कि तत्कालीन समय में धर्म की प्रमुख समस्या मन्दिर व्यभिचार के अड्डे बने हुए थे मन्दिरों के महान्त पराई स्त्रियों के साथ होली खेल कर उन्हें गुलाल से लाल बनाने में आनन्द का अनुभव करते थे।* मन्दिरों के पुजारी मक्ति के बदल दशनाथ घायी हुई रमणियों पर कुदृष्टि रखते थे। X भारते दु व प्रतापनारायण मिश्र ने

* प्रताप नारायण मिश्र (ब्राह्मण वर्ग १ अक्ष २ पृष्ठ १०)

गुजराती पत्र लिखता है दादुर से महाराज विठ्ठलजी के मन्त्रान में होली की लीला हुई थी। आप पहिन पुरुषों के साथ नाच फिर पराई स्त्रियों के साथ नाच कर जब उनका गुलाल से लाल बनाया।

उन सूचना के माप सम्प्रदाय टिप्पणी दृष्टय है

हाथ इही गुरुओं ने देण को चीप कर दिया पर इनके घरे चना का प्रब तक नहीं सूझता।

X भारते दु हरिश्चन्द्र गुरु और महत" (कविवचन मुषा भाग २ सख्या ३६) पृष्ठ २०६

प्रब महतो में सनोगुण के बदले रजोगुण और तमोगुण पूण रहता है। और मन्दिर व मठवाल धरने को ह किम भी समझते हैं और प्राय दशन करने

वालों को बोझ मानना व धरना देना व कुछ प्रड-बड कह देना तो उनका साधारण धर्म है और स्त्री विषय का तो पूछना ही नहीं है मन्दिर बना हाते है मानो स्त्रिया की पान होते हैं। वहा के सबको की यह दशा होती है कि उमर होकर निभय स्त्रियों के पूय में प्रवेश करत हैं मानो वह गऊ का धोक विधाता न उही साडो के हुनु बनाया है और गुरुओं की यह दशा है कि जिस दिन कोई उत्सवादिक् हागा उस दिन सज-मजा कर पुतने से बन सडे हुए पर नयन भृगो के विश्राम स्त्रियों के मुस कमल हो रह है सेवकों के अनक दूत पास लडे रहत हैं जो नेत्र में जमी उत्स भुगतान होने लगा दूतो ने उपदेश किया कि श्री महाराज से मिल कर जम कयो नहीं वृत्ताय करती सबकों का तन मन धन सब गुरु का है इस भुलावे में जो सीधी थी वह ठा प्रा गई वा उहनि दशन छोड दिया और जो कोई उपाय नहीं हाता है तो गुरु साथ किसी बहाने उनसे धन का स्पस भीड में करके वृत्ताय हो जाते हैं और धनभ्य वस्तु का उतनी ही लयि बहुत समझते हैं।

मन्त्रिण मे इस दुराचार की अत्येष्टि के लिये विह्वल शब्दों में अपील की । बाह्याचार मे विश्वास न रख उन्होंने निश्चित भक्ति भावना का प्रतिपादन किया । *

मन्दिर मे मदिरापान व मास भक्षण का विरोध

मन्दिरों मे दुराचार के साथ ही तत्कालीन युग मे मदिरापान व मास भक्षण भी अत्यधिक प्रचलित हो गया था । ऊपर से तिलकधारी व भगवद्-भक्त प्रतीत होनेवाले लोग छिपे रूप मे मास भक्षण, मदिरापान व स्त्री-सेवन से भी परहेज नहीं रखत थे । अतः भारते-दु मडल के लेखकान धार्मिक सुधार से प्रेरित होकर इन प्रवृत्तियों का विरोध किया । भारते-दु न 'पाखण्ड विडम्बन' (१८७३) शीपक संकल्प मिश्र के सम्कृत नाटक 'प्रबोध-चन्द्रोदय' के तीसर अंक का अनुवाद किया । इसमे यही बताया गया है कि किस प्रकार इन्द्रिय भोग के सुख से प्रेरित होकर लोग सात्विक श्रद्धा से मुक्त मोड़ लेते हैं । "शान्ति" अपनी सखी करुणा के साथ माता श्रद्धा की सोज मे जाती है । वह श्रद्धा को एक कापालिक के साथ दखकर मूर्छित हो जाती है किन्तु करुणा उसे बतलाती है कि वह तो तमोगुणी श्रद्धा है । इसी बीच दिगम्बर जन, बौद्ध तथा सोम सिद्धान्त मानने वाले पात्रों का उमशरगमच पर आगमन होता है । वे कापालिक के सम्मुख अपने अपन मता का प्रतिपादन करते हैं किन्तु अतः म कापालिक के शिष्य बन कर मदिरा सेवन मे प्रवृत्त हो जाते हैं । इन सभी की कामना है कि घम की डेटी श्रद्धा का पकड कर महाराजक पास ले चलें । दिगम्बर गणित करके श्रद्धा और घम का पता लगाता है । पता चलता है कि ये दोनों कृष्णभक्ति के पास मे हैं । इससे इन पाखण्डियों की निराशा होती है एव धार्मिक व करुणा उनके मतव्य जान कर विष्णु भक्ति को सूचित करन के लिये जाती हैं । अस्तु 'प्रबोध-चन्द्रोदय' का अनुवाद तत्कालीन परिस्थितियों से प्रेरित होकर किया गया । लागों की घम मे श्रद्धा नहीं रही तथा मास मदिरा का सेवन अति तक पहुँच गया । ब्रह्मवर्माबलम्बी भारतेन्दु व लिए यह अनुवाद करना स्वाभाविक ही था । अपनी मौलिक रचनाओं मे भी भारते-दु न मास मदिरा के सेवन की प्रवृत्ति का विरोध किया । 'पाखण्ड विडम्बन' मे एक बंगाली पात्र के विषवा दिवाह का समथन करन पर पुरोहित इस प्रथा को श्रेयकर नहीं मानता किन्तु इससे योग की स्वच्छदता मिलने की दृष्टि से इसका अनुमोदन करता है ।

* वही पृष्ठ २०६

धौ मेरे प्यारे हिन्दुओं ! तुम इनके जाल मे कब तक फस रहोगे । अरे क्या इही क भरोसे तुमको भगवान मिलेगा । निश्चय जानो कि य लोग परलोक मे कुछ काम न आवेंगे य तो कवल पत्थर की नाव है परलाक मे व ही काम आवेंगे जो सब विद्या से भूषित निक्कलक चरित्र और ईश्वर मे निश्चल भक्ति रखत है ।

इस प्रहसन के पात्रा गिद्धराज उनके मंत्री पुरोहित चौबन्धर वैष्णव व शव भक्त आदि का यमराज के यहाँ याय होता है तथा अहिंसा प्रिय शव व वैष्णव मत्ता के अतिरिक्त सभी का दण्ड दिया जाता है ।

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (१८७३) में भारत-दु ने धर्म की आड में हिंसा व दुराचार करनेवाले वैदिक धर्मानुयायियों की खिल्ली उड़ाई है । 'पाषाण्ड विडम्बन' में उन्होंने अबैदिकों के मास मक्षण व मद्यपान चित्र प्रस्तुत किया था परन्तु उस अनुवाद से कदाचित् उनका मन सतुष्ट नहीं हुआ और उन्होंने इस मौलिक प्रहसन की अवतारणा की । इस प्रहसन में हिंसामय धर्म करनेवाले राजा के पूछने पर पुरोहित मछली के स्वाद की प्रशंसा करता है । पुरोहित व मंत्री मास मक्षण व मद्यपान का धर्मानुमोदित सिद्ध करने के लिए भागवत व मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में विकृत रूप में उद्धरण प्रस्तुत करते हैं । बंगाली वैष्णव भी इन कथनों का अनुमादन करता है । मास न खानेवाले शव व वैष्णव मत्ता को भट्टाचार्य बंद से परे बनाते हैं । गडकीदास के रूप में वैष्णव डोगी का चित्र भी प्रस्तुत किया गया है । शव वैष्णव व वैशन्ती मास खान के विरोधी हैं । वे अपने को समा के उपयुक्त न समझ कर चले जाते हैं । अतिम अर्थ में यमराज के दूत राजा पुरोहित, मंत्री, गण्डकीदास, शव और वैष्णव को यमराज के पास पकड़ कर लाते हैं । चित्रगुप्त यमराज के सामने लेखा उपस्थित करता है । यमराज हिंसा करनेवालों को नरक की यातना का दण्ड देते हैं तथा शव व वैष्णव का उनकी अकृत्रिम भक्ति के कारण क्लेश और वैकुण्ठवास देकर भ्रान्त करते हैं । भारत-दु ने 'प्रेम योगिनी' नाटिका में मंदिरों के महर्षियों व तीर्थवासी पण्डितों के दुराचार का पूर्णतया रहस्योद्घाटन किया है । प्रेमयोगिनी अपूर्ण रचना है । इसमें चार गर्भाक हैं । पहले गर्भाक मन्त्रिदास में गुमाश्चो व बन्धु समझे जानेवाले लोगों में व्याप्त दुराचार का घृत्पथिक प्रभावोत्पादक वर्णन किया गया है । 'पुजारीजी मिसरजी' पूजा करने में लिये नियत समय से देरा से आते हैं । जलधरिया अभियेक के लिये पानी भरने में दरी करता है । मंदिर में जानेवाले बाबुधों के लिये नहाना आवश्यक नहीं है किन्तु वे भी कार्तिक के नहाने का पुण्य लाभ उठा लेना चाहते हैं । मंदिर में गुमान्या के विलासितामय जीवन को दर्शाते हुए लखन उनके सम्बन्ध में कहता है

माली नूट महररुवो लूट मन्दिर में रहे म स्वर्ग म रहे । खाए व भ्रच्छा पहिर व परमारी स महाराज कव्वो गाढा ता पहिर व न करिय मलमल नागपुर डाक पहिरिय धनर फुल्ल कसर परसाया दाटा चामी सबम सबकी ल्यो, ऊपर स ऊ बान का मुग अनग है ।' *

दूसरे गर्भांक 'गैबी गबी' में काशी के विशिष्ट जनभावना दलाला, गंगा-पुत्र, दुकानदार मडरिया गुण्डा, यात्री मुसाहिब आदि के चरित्र का यथायथ अंकन किया गया है। एक परदेशी काशी निवासियों की बुराई करता है परंतु वह जिज्ञामान और घाटक है अतः कोई उमक विरुद्ध अपना मुह नहीं खोलता। नाटककार ने यह तीथवासी पण्डितों की लोभपूर्ण प्रवृत्ति का दर्शाया है। एक काशी निवासी पात्र भूरीसिंह जब बोलता है अथवा ही उच्चरित करता है। वह उम परदेशी से पूछता है तो हूँ लीना करवा लीना' शब्द का श्लेष तीथस्थानों की तत्कालीन पतिता-वस्था का जघन्य चित्र प्रस्तुत कर देता है। तीमरे गर्भांक 'प्रतिच्छवि वाराणसी' में मुगलसराय स्टेशन का दृश्य है। इसमें दर्शाया गया है कि काशी में तीथ यात्रा के लिए आनेवाले यात्रियों का घन गाठन के लिए पड़े लोग कितने व्यग्र होते हैं। ग्यारह पृष्ठ के इस गर्भांक में पूरे आठ पृष्ठ में एक मास में और थोड़ा सा खबर फिर एक पूरे पृष्ठ में पड़े द्वारा किया गया काशी वरुण यद्यपि नाटक कला की दृष्टि से दोष पूर्ण समझा जायगा किंतु पड़ो द्वारा बात को बढ़ा चला कर कहने की प्रवृत्ति उनकी सांकेतिक भाषा और परदर्शियों के सामने काशी का सजीव चित्र प्रस्तुत करना सजीव हो उठा है। 'माहनी बाड़े का तार' ही उन पडा के लिए परदर्शियों में दिलचस्पी का कारण है। चाहे गर्भांक में 'विस्तारविमर्दिज वृत्त्य निवृत्तक दृश्य में काशी में रहने वाले दक्षिण भारत के पंडिता की हीन मनोवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। आर्थिक लाभ में प्रेरित होकर वे इच्छानुसार धार्मिक नियमों की उल्लंघना कर लेते हैं तथा भाग नाच, भोजन की चिन्ता में लीन रहते हैं। वस्तुतः 'प्रेमयोगिनी' नाटिका से ही में यथायथादी नाटकों का सूत्रपात हुआ है। यद्यपि इस नाटिका में यथावस्तु की एकसूत्रता नहीं है और यह अपूर्ण रचना है तथापि इन बिखरे हुए चार दृश्यों के चार चित्रों में तत्कालीन धार्मिक पतितावस्था का यथातथ्य चित्रण हुआ है।

प्रताप नारायण मिश्र ने कनि कौतुक रूपक (१८८६) में कपटी साधुओं का दुराचार व मास भक्षियों तथा भदिरा सेवियों का अनाचार का प्रदर्शन किया। राधा चरण गोस्वामी ने अपने प्रहसन 'तन मन धन गौमाई जी के अर्पण (१-६२) में पुजारियों की दूषित मनोवृत्ति तथा उनके अनुयायियों की मूलना का सजीव वर्णन किया। इस प्रहसन में बताया गया है कि किस प्रकार गुरुओं की श्रद्धा-भक्ति के कारण सरल चित्त भक्तगण मूलना से अपनी बहन बेटियों की प्रतिष्ठा सक्क म डाल देते हैं। बालकृष्ण भट्ट के मौ अज्ञान और एक मुजान (१८६१) उपन्यास में मदिरो में व्याप्त दुराचार की भत्सना की गई है। इस उपन्यास में सठ हीराचंद की मृदु व वाद उनके लड़के कुसगत में पड़ जाते हैं जिन्हें चंद (चन्द्रसेखर) ठीक राह पर लाता है। मठ का परिचय उपन्यासकार इन शब्दों में देता है इस मठ के पण्डे या पुजारी थोड़े से जटाधारी काले काले योगी या गुसाई लोग थे। वे ही यहाँ प्रचलन या मुखिया थे। जो कुछ इस मठ में चढ़ता था, वह सब इन्हीं लोगों में जाता

या । आचारणी उजड़डपन और असन् व्यवहार म यह गुसाई भी और पडे तथा तीयनियो से किसी बात म कम न थ । इस स्थान क पुरातन व पवित्र होने म कोई सन्देह नो किन्तु इन अपट योगियो का आचार देख गिन हाती थी ।" • विशोरी लाल गोस्वामी ने 'स्वर्गीय कुसुम' उपयास म देवगली प्रया का विराध किया किन्तु यह विरोध तब नही है । भारते-दु ने 'वष्णवता और भारतवय निवध म मंदिरों म स्थिया के सहवास की भत्सना की । गोपी और श्रीकृष्ण के प्रेम व रास को तत्कालीन युग म साधारण नायक नायिका की प्रेम त्रीडाओं का रूप द दिया गया था । भारते-दु ने उनके श्रुति सम्मत ज्ञान वराय्य भक्ति बोधक ग्रथ" का प्रचार करने की आवश्यकता बताया । प्रतापनारायण मिश्र ने श्रीकृष्ण के चरित्र पर चोरी व व्यभिचार व लाधन का अनुचित सिद्ध करते हुए उनके चरित्र से लौकिक प्रेम-श्रीहा की प्रेरणा न लेकर धर्म निष्ठा, गम्भीरता आदि गुणों को अजित करने की प्रेरणा दी । इस नतिकतापूर्ण स्वर म नेलको के धार्मिक सुधार की प्रवृत्ति हो काय कर रही थी ।

भारत-दु-युग के साहित्य मे मंदिरों म होनेवाली पशुबलि का भी विरोध पाया जाता है । ईसाई धर्म प्रचारक मिरा मे होनेवाली पशु बलि को भी हिंदू धर्म की बुराई के रूप म बताते थे । फिर इस युग के नेसक प्राय वैष्णव धर्मावलम्बी थ जो अहिंसा प्रेमी थे । भारते दु ने अपनी बंगाल यात्रा के अवसर पर भरव भूति व भामने बलि का स्वरूप देख कर उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप 'अज्ञा शिलाप' कविता लिखी । उन्होंने तृतीय ममाज की ओर स दिल्ली दरबार के समय गो-वध व कगाने के लिए हजारों हत्ता तर करवा कर भेजे । प्रतापनारायण मिश्र न नवरात्र के समय होनेवाले अज्ञा वध के विरुद्ध लिखा । उन्होंने 'गोवध' के विरुद्ध गो गुहार ममस्पर्शों कविता लिखी । गोत्रय का विरोध हिंदू धर्म की रक्षा की भावना म प्रेरित होकर किया गया था । राधाकृष्ण दास क नि सहाय हिंदू उपयास म 'गोवध' का विरोध किया गया है । इसम एक हिंदू पात्र गाय की रक्षा करने का प्रयत्न करता है जिस उमका एव मुसलमान मित्र सहायता करता है । किन्तु धर्मांध मुसलमान इन दोन का वध करने के लिए पडपत्र करते हैं । उपयास में न कालीन सामयिक समस्या शहर का गदगी की ओर भी ध्यान आकषित किया गया है ।

पढितों व पुजारियों की स्वायंपरता का विरोध

भारते-दु युग के लेखकों ने पढितों व पुजारियों की स्वायंपरता का भी विरोध किया । भारते-दु ने जाति विवेकिनी समा' व 'समागति गोपाल की'

निबन्धों में लोम वश जाति व्यवस्था देनेवाले काशी के पण्डितों पर व्यंग किया गया है। 'जाति विवेकिनी सभा' निबन्ध में गडरिया जाति को क्षत्रिय जाति में मिलाने का परिहासपूर्ण बर्णन किया गया है। पण्डित और क्षत्रिय के वार्तालाप में पण्डित कहता है कि वह चमार, डोम मुसलमान कृतान वेश्या, कोल सभी को ब्राह्मण जाति का सिद्ध कर सकता है। इसी तरह वह उत्तम जाति के लोगों को नीच बताने को तत्पर है। केवल दक्षिणा पाकर वह कसी भी व्यवस्था देने को तैयार है।* राधाचरण गोस्वामी ने 'यमलोक की यात्रा' में कायस्था के स्वयं को क्षत्रिय बताने व 'नापित स्तोत्र' में नाइया के अपने को ब्राह्मण सिद्ध करने के प्रयत्न पर व्यंग किया है। राधाचरण गोस्वामी की दृष्टि में केवल उच्च जाति में उत्पन्न होने से ही कोई स्वयं का अधिकारी नहीं होता अतः जाति व्यवस्था के इस रूप पर उन्होंने अपनी रचनाओं में व्यंग किया है।

धर्म-तत्त्वों की बुद्धिवादी व्याख्या

सुमार के सभी धर्मों में कतिपय भौतिक तत्त्वा का समावेश मिलता है। ईसाई धर्म भी इसका अपवाद नहीं था। तथापि जसा कि पहले लिख चुके हैं कि ईसाई धर्म के साथ भारत में आधुनिक युग में विज्ञान व तक बुद्धि का भी प्रवेश हुआ। तत्कालीन युग में हिन्दुओं का केवल मूर्तिपूजा में ही विश्वास नहीं था वरन् वे सतीस करोड़ देवी देवताओं की पूजा करते थे। उनका मंत्र टोना में भी विश्वास था। राम कृष्ण आदि ईश्वरावतार उनकी धार्मिक भावना का आधार थे। ईसाई मत ऐश्वर्यवादी है तथा वे मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं करते। अतः वे लोग हिन्दुओं के बहुदेववाद व मूर्तिपूजा का अपने व्याख्यानो में खण्डन करते थे। तक बुद्धि को प्रधानता देनेवाले इस युग में यह सहज ही प्रश्न किया जाने लगा कि ईश्वर यदि सब नियन्ता है तो उसके यह सतीस करोड़ अलग शरीर कैसे हैं, क्या वह एक नहीं है? यदि अलग अलग देवताओं की अलग शक्तियाँ हैं तो ईश्वर सबशक्तिमान किस प्रकार कहा जा सकता है? यही नहीं पापी व अत्याचारियों को दण्ड देने के लिए उस अवतार लेने की क्या आवश्यकता हुई? यह दण्ड तो ईश्वर अपनी इच्छा से क्षण भर में प्राकृतिक काय के द्वारा दे सकता है। यह और ऐसे ही प्रश्न बुद्धि को सचेतन करने में समर्थ थे। अस्तु यद्यपि इस धार्मिक आलोचना प्रत्यालोचना के कारण भारतेन्दु युग के लेखकों ने धार्मिक विश्वास में उल्लेखनीय अन्तर नहीं आया तथापि उन्होंने अपने विश्वास के लिए बुद्धिवादी आधार की

* भागेंदु क निबन्ध (स०) डा० केमरी नारायण शुक्ल पृ० १२०

हिन्दुओं का शास्त्र पतारी की दुकान है और अन्तर कल्पवृक्ष हैं इसमें तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है पर दक्षिणा आपकी बाय दाय में रख देनी पड़ेगी।

मवश्य सोज की । बहुदववाद क स्थान पर अतवाद (Monism) की ओर उनका प्रवृत्ति दिखाई देता है । यद्यपि शंकर के अद्वैत वृत्त की तरह सत्कार को माया समझ कर अवमण्य बन जाने का इस युग के लोगों ने विरोध किया तथापि प्राध्यात्मिक तत्व चिन्तन की दृष्टि से भारते दु ने वल्लवता और भारतवष निबध ईश्वर क अद्वैत व निराकार होने की ओर सन्त किया है । योही वृद्धि वढने से यह विचार चित्त म उत्पन्न जाता है कि इनने देवी देव इस अनन्त सृष्टि क यामक नही हो सकते । इसका कर्त्ता स्वतन्त्र कोई विशय शक्ति सम्पन्न ईश्वर है । न वृद्धि के कारण प्रथम मनुष्य साकार उपासना छोडकर निराकार की ओर करता है । * भारत दु स्वय वल्लव य । इस निबध मे उहोंने वल्लव घम की भारत का मूल घम व वेदो म विष्णु का सर्वेश्वर रूप दर्शाया है । इस प्रकार वे अनेक देवी-देवताओ के बदले ईश्वर क अद्वैत रूप की स्थापना करते हैं । यह अद्वैत भाव का प्रचार केवल ईसाई घम का प्रभाव नही कहा जा सकता । तत्कालीन युग के धार्मिक आदोलनो—ब्रह्म समाज प्राय समाज तथा विवकान ए द्वारा अद्वैत वृत्त की पुन-र्यास्था प्रस्तुत की गयी थी । ईसाई मत व इस्लाम म भी एवेश्वरवात् की भावना काय कर रही थी । प्राचीन भारतीय दशन म योग सिद्धात म ईश्वर के अत स्वरूप का विवचन मिलता है । अस्तु इस प्रसंग म ईसाई मत क प्रचार क सम्बध मे हम यही कह सकते हैं कि उनकी आलाचनाओ से प्ररित होकर बहुओपासना के बदल ईश्वर के सर्वेश्वर व अद्वैत रूप की कल्पना अधिक वृद्धि संगत मानी जाने लगी यद्यपि व्यवहार रूप मे इस युग के लेखको व धार्मिक विश्वास वही बने रहे । इस निबध के उपयुक्त उद्धरण म यद्यपि भारत दु ने ईश्वर क निराकार रूप को वृद्धि संगत बताया है तथापि उहोंने सगुणोपासना के पक्ष म तक प्रस्तुत किया है कि निगुण भक्त भी भक्ति के मावावश मे सगुणोपासक की माति ही ईश्वर को सम्बाधिन करते हैं । भारते दु न इस निबध म घम का ऐतिहासिक विवचन किया है । यह पाश्चात्य प्रभाव का ही परिणाम है । इस पहले तत्कालीन युग म घम केवल विश्वास व कम-काण्ड का विषय था ऐतिहासिक विवचन का नही ।

प्रतापनारायण मिश्र न शक सवस्व (१८६०) म मूर्तिपूजा के पक्ष म तक प्रस्तुत करत हुए लिखता है कि भारत म गिल्प विद्या की उत्पत्ति क कारण यहां मूर्ति पूजा हाना स्वामाविक है । अरब क अगिदितो क यहां से जब इस्लाम फारस के रसिका म पहुँचा तो वहाँ 'शोया सम्प्रदाय' की तथा ईसाई मत जब रोम पहुँचा तो रोमन कथालिक मत की स्थापना हो गयी जिनम मूर्तिपूजा का किसी रूप म समावेश हो गया । अत हिन्दुओ म मूर्तिपूजा हाना धात्वेय वाग्य नही है । मिश्रजी

मत म मूर्ति स्वयं ब्रह्म नहीं है वरन् ब्रह्म के लिये सक्त अथवा चिह्न है। मूर्ति का क पक्ष म दिय गये यह तक ईसाईयो द्वारा किय गय मूर्तिपूजा विरोध के प्रति रनीय प्रतिक्रिया ंशाते हैं। *

पश्चिम की नक बुद्धि के अनुसरण क कारण तत्कालीन युग म पौराणिक मानकों की बुद्धि मगत 'यान्या तथा अघ विश्वासों के निराकरण की प्रवृत्ति भी यी जाती है। प्रतापनारायण मिश्र ने 'पौराणिक गूढार्थ' निबध मे निराकार वर के साकार कल्पनामयस्वरूप के चार या आठ भुजाए प्र कित करने का कारण नके महा सामध्य का द्योतन करना बताया है। इन्द्र के सहस्र नेत्र होने का त्वय यह बताना है कि राजा एसा होना चाहिए जो सभी प्रकार के लोगो के सभी ावों पर दृष्टि रख सके।

हि दू धम की पतितावस्था म तत्कालीन युग मे अनक अघ विश्वासों का वेश हो गया था जा भवज्ञानिक व समाज के लिए विघातक थ। भारतेन्दु ने वण्यवो के बीच खानपान मे छुआछूत की प्रवृत्ति का परित्याग करके एकता की भावना लान की आवश्यकता बताया तथा विलायत यात्रा को समयापयोगी बताया। † श्री राधाचरण गोस्वामी व वालकृष्ण भट्ट की रचनाओं मे सामाजिक उन्नति की दृष्टि से धार्मिक प्रधविश्वासा का विरोध पाया जाता है। हि दू धर्मानुसार मृत्यु के समय गोदान किया जाना आवश्यक समझा जाता रहा है। बिना गोदान के बतरणी के पार नहीं लगा जा सकता, गोस्वामीजी इस पर अपन कथात्मक निबध यमलोक की यात्रा' म व्यग करते हैं कि यदि गाय की पूछ पकड कर बतरणी पार हो सकती है तो कुत्ते की पूछ पकड कर क्यों नहीं ? × राधाचरण गोस्वामी राष्ट्रीय काँग्रेस के कलकत्ता के द्वितीय अधिवेशन म इलाहाबाद के मध्यम वर्ग के प्रतिनिधि बन कर गये थ। उस अधिवेशन म एक प्रस्ताव भारतीयों क लिए इंग्लड जाकर शिक्षा प्राप्त कर सिविल सर्विस में भर्ती हाने के पक्ष म स्वीकार किया गया। किंतु, हिदू समाज उस समय अघविश्वासा का बीजदास बन रहा था। समुद्र यात्रा के परिणामस्वरूप धम के नष्ट हो जाने क भय से हिन्दू पण्डित विशेष-यात्रा की स्वीकृति नहीं देते थ। राधाचरण गोस्वामी ने इस प्रकार क पण्डितों का विरोध करते हुए

* प्रतापनारायण मिश्र 'शैव-सदस्य' 'प्रतापनारायण प्रधावली' पृ० ६२५

† भारतेन्दु के निबध पृ० ३५१

× राधाचरण गोस्वामी यमलोक की यात्रा पृ० ५

यदि गो की पूछ पकड कर पार उतर जात हैं तो क्या बल से नहीं उतर सकते ? जब बल से उतर सकते हैं तो कुत्ते न क्या चारों की ? मुझे याद आया कि साह्य मजिस्ट्रेट की मेम को एक कुत्ता मीने दान किया था अत 'रत्न' कुत्ते की पूछ पकड कर बतरणी पार की।

‘विदेश यात्रा विचार’ पुस्तिका में विदेश यात्रा की आवश्यकता को प्रतिपादित किया। उनके मत में मजदूर लोगों के लिए जीविकोपार्जनार्थ, धनवानों के लिए व्यापारार्थ, भ्रम्य लोगों के लिए सांघिक विद्या सीखने मुकदमे की पैरवी कराने सिविल सर्विस के लिये पढ़ने जाने, प्रजापालक महारानी विकटोरिया के दशन करने तथा देशाटन के लिए विदेश यात्रा करना आवश्यक है। अतः घम के नाम पर विदेश यात्रा का निषेध नहीं किया जाना चाहिए। लेखक यह नहीं मानता कि विदेश जाने से कोई ‘साह्व मात्र बन जाता है तथा उसके मत में विदेशी सम्मता व सम्पर्क में जाने से हममें देश भक्ति आदि के उच्च भाव उत्पन्न होते हैं। विदेश यात्रा का निषेध करने से ग्राह्या के आदेशों की इस सम्बन्ध की स्पष्ट भवना करने का लेखक प्रतिपादन करता है। *

आलोच्य काल के लेखका की एक भ्रम्य विशेषता जो अत्यधिक महत्वपूर्ण है प्रेम को घम का मूल मानना है। इस युग के लेखकों ने मत प्रतापियों से प्रेम के आधार पर उदात्त धार्मिक भावना को प्रश्रय दिया। भारते दु की वण्णव भावना (भक्तिरस) की कविताओं में प्रेम को अत्यधिक महत्व दिया गया है। भारते दु वदिक घम का सार भी शुद्ध प्रेम ही मानते हैं।† वण्णव भावना के प्रतिरिक्त प्रेम में घम का मूल तत्व मानने की प्रेरणा देश भक्ति की भावना से भी प्रेरित हुई है। भारते दु ने ‘तदीय सबस्व’ व वण्णवता और ‘भारतवर्ष’ निबंधों में सभी

* राधाचरण गोस्वामी ‘विदेश यात्रा विचार’ पृ० ३०

हे हमारे प्यारे हि दुषा इन मूठे भ्रमा को छोड़ो शास्त्र में तिलायत जाना या समुद्र यात्रा करना कोई पाप नहीं, पातक नहीं, महापातक नहीं, अनुपातक नहीं इसका निषेध अथ-परम्परा मात्र स है या बिरादरी व भगडो का एक भगडा है। हर एक बिरादरी में दो चार चौधरी, पंच मुखिया होते हैं, वह सर्व ऐसे मूठे जान बना कर राटी चलाया करते हैं वही लोग इसका निषेध करके कुछ मूठ मत हैं। या दो चार धुन पण्डित हैं वा घम के नाम से कुछ पटा कर लेते हैं वह जानाहूत करन हैं और किसी को कोई आपत्ति नहीं। यदि कहो कागी के पण्डित व्यवस्था नहीं देते, तो घोड़े से रण्य सब कीजिय जो चाहे सो व्यवस्था ले लीजिये। बिराम न हा। मातामृत व्यवस्था’ शालिग्राम व अणालत में ले जाने की व्यवस्था’ देस लीजिए।

† शुद्ध प्रेम तुव कहै नहि गायो जा श्रुति सार सही (भारत-)

धर्मन्यायियों को प्रेम भावना से एक होकर देशोन्नति के लिए प्रयत्नवान होने को प्रामाणिक किया । • प्रतापनारायण मिश्र ने 'देशोन्नति' निबंध में लिखा 'प्रत्येक-देशोन्नतिकारक' को मान ही लेना पड़ेगा कि प्रेम एव परोधम × मिश्रजी की रचनाओं में प्रेम जीवन के तत्व रूप में स्वीकार किया गया है । इस दृष्टिकोण को धरने में वे भारतेन्दु से प्रभावित हुए । + उन्होंने गहरिया और मूसा निबंध में ईसाई धर्म की सच्ची प्रेम भावना की भी प्रशंसा की है ।

यहां पर तत्कालीन युग के धार्मिक आन्दोलनों के सम्बन्ध में भी भारतेन्दु व उनके सहयोगियों के विचारों का उल्लेख करना उचित है । १९वीं सदी के धार्मिक आन्दोलनों में हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र को प्रभावित करनेवाला प्राथममाज आन्दोलन था । ब्रह्म-समाज ने भी कुछ अग्रजी शिक्षितों को प्रभावित किया किन्तु यह प्रभाव पाश्चात्य सभ्यता के आधुनिकरण मात्र मद्य सेवन आदि तक सीमित था । यद्यपि भारतेन्दु युग के साहित्यकारों का लक्ष्य भी इन आन्दोलनों के समान ही समाज सुधार करना था परन्तु ब्राह्म-समाज की उग्रवादी प्रवृत्ति उन्हें रुचिकर नहीं थी तथा ब्रह्म समाजियों के पश्चिमी सभ्यता के आधुनिकरण के वे विरोधी थे । धार्मिक क्षेत्र में प्राचीन सनातन धर्म की मान्यताओं का पालन करते हुए युगानुकूल आवश्यक सुधारा

• भारतेन्दु के निबंध स० डा० केसरी नारायण शुक्ल, सरस्वती मंदिर जलनवर बनारस स० २००८ पृष्ठ २६ २७

इसमें (तदीय सबस्व) मुक्त कण्ठ से कहा गया है कि केवल प्रेम परमेश्वर का दिव्य भाग है । यद्यपि यह श्रवण वक्ष्यो की शरीर पर लिखा गया है, किन्तु परमेश्वर के मन्त मात्र के हेतु उद्योग है । किम्बत आदि विदेश धर्म प्रेमी समझें कि कृष्ण उनके त्रिगुण परमेश्वर का नाम है, वैष्णवों की तो कुछ बात ही नहीं, शंभु कहें कि विष्णु शिव ही का नामांतर हैं ब्राह्मण समझें कि हरि ब्रह्म ही को कहते हैं उपासना और ब्राह्मसमाज इसे अपना ही तत्व मानें । सिवल इसमें गुरु का पय देखें और ऐसे ही भक्ति मागवाले पात्र सब लोग इसको अपनी निजी सम्पत्ति समझें बिना शुद्ध प्रेम न लोक है न परलोक । जिस ससार में परमेश्वर ने उत्पन्न किया है जिस जाति व कुटुम्ब से तुम्हारा सम्बन्ध है और जिस देश में तुम हो उससे सहज प्रेम करो और अपने परम पिता परम गुरु परम पूज्य परमात्मा को केवल प्रेम में डू डो ।

(तदीय सबस्व भारतेन्दु)

× 'प्रताप नारायण श्यावली' पृष्ठ १८

+ प्रताप नारायण मिश्र 'प्रताप सहरी' पृष्ठ ७२

श्री भारतेन्दु शशि सरिस श्रुति नपदेशा सब धर्म
प्रेमहि गने प्रताप किनु सब धर्मन को धर्म

के वे पनपानी थे। भारत दु के स्वर्ग में विचारसमा का अधिवेशन म दयानन्द सरस्वती व केशवचन्द्र मेन के स्वर्ग म पहुँचने पर वहा उनक पन्थ व विरोध मे दो त्त बन जाने हैं। उ ह स्वर्ग का अधिकारी माना जाय अथवा नहीं यह नियम करने क लिए ईश्वर द्वारा एक कमेटी बठाई जाती है। कमेटी की रिपोर्ट म आय समाज व ब्रह्म समाज के कार्यो पर टिप्पणी की गयी है जिसम स्वयं लेखक की विचारधारा प्रकट हाती है। भारतदु ने आय समाज द्वारा प्रवर्तित विधवा विवाह व पुष्टि व्यवस्था की प्रशंसा की है। उन्होंने ब्रह्म समाज की भक्ति भावना को भी ध्येष्ठ बताया है। पर तु 'दयानन्द' सरस्वती क कई रूप बदलने, बन्धि प्रयोग मे काम के प्रकरणो की मानने व अर्थ लेकर बताने तथा वे। के जबरदस्ती अर्थ करने को अनुचित ठहराया है। उन्होंने ब्राह्मण लोगो म मुरा मासादि क प्रचार को बुरा बताया है यद्यपि इसक लिए व केशव का उत्तरदायी नहीं ठहराते। अन् भारत दु ने सनातन धर्म क प्रति आय समाज की भावना का खण्डन किया तथा ब्रह्म समाजियो की प्रभारती यना की निन्दा की। 'वर्षा विमो' (१८८०) म उन्होंने इन मत मतान्तरों क कारण भारत की विश्रुत्यन दशा का चित्रण किया * भारतदु के दयानन्द सरस्वती मे भी आय समाज या गौतम की उपादाता व अगाध्रीयता की अनुचित ठहराया गया है। X

पापवड विडम्बन म भारत दु की ब्रह्म समाज के प्रति भी प्रतिश्रिया प्रकट हुई है। ब्रह्म समाजियो पर ईसाई धर्म के प्रभाव एव उनम मन्त्रिपान व भास भक्षण की यापयता का भारत दु ने बुरा बतलाया है। एक स्थल पर राजा कहता है

मन्त्रि की समता गौतम करेगा जिमक हेतु लोग अपना धर्म छोड देते हैं।

श्लो—

मन्त्रि ही के पानहित हिंदू धर्माहि छोडि
 बहुत नाग ब्रह्मा बनत निज कुन सों मुख मोडि
 आडि अन् ब्राह्म का पहिली अक्षर एक
 तामा ब्राह्म धर्म म यामें दोस न नेक X

- * भारत म यहि समय भई है मत्र कुत्र विनहि प्रमान हो दुइरगी
 आय पुरान पुरानहि मानें आये मए किरिस्तान हो दुइरगी
 क्या ता गन्हा को चना चड़ावें कि हाई दयानन्द जाय हा दुइरगी
 एहो म भारत नास मया मत्र ब्रह्मन्हा मगी लक हो दुइरगी (भारतदु)
- १ 'दयानन्द' सरस्वती (निबन्ध) भारतदु इतिवत्त चरित्रो लम् ६ मस्या १२
 १३ त्त जुनाई १८७६
- + भारतदु इतिवत्त श्रिणी निमा हिगा न भवति भारतदु माटकायनो
 पृष्ठ ८०

यमराज के सामने मांस भक्षण के लिए अपनी सफाई देते हुए पुरोहित भी 'जनल आफ एजियाटिक सोसाइटी' में प्रकाशित ब्रह्म समाज के नेता बाबू राजेद्रलाल के लेख का प्रमाण देता है।* ब्रह्म समाजियों में मन्दिरा पान के प्रचार व बाबू राजेद्रलाल पर 'अथ मन्दिरा स्तवराज' व्यंग लेख में भी मारते-टुने व्यंग किया है।*

भारतेन्दु युग के साहित्यकारों की तरह द्विवेदी युगीन के लेखका ने भी पाखण्डी पुजारी-यथा साधुओं आदि के दुराचारों पर व्यंग्य प्रहार किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ब्रह्मा की चतुराई को विनकारते हुए उस पर आक्षेप करते हैं—'दुराचारियों को तू प्रायः घर्माघाय बनाता है।' नाथूराम शर्मा 'शंकर' तथाकथित ब्रह्मचारियों व सत्यामियों के पाखण्ड का अनावरण करते हुए कहते हैं कि आजकल व्यभिचार व स्वादिष्ट भोजन में लीन रहना ही बाल-ब्रह्मचारियों का काम है तथा सत्यासी लोग अपने को ब्रह्म कहते हुए मिथ्या 'सोहृस्मि' का उच्चारण करते फिरते हैं। मथिली-शरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में मन्दिर के पुजारियों के दुराचार व नतिकहीनता का ज्वलत चित्र खींचा है। र्मांदरों में वध्याओं के नृत्य, अश्लील गीतों व व्यभिचार का उहाने उल्लेख किया है। प्रेमचंद के 'सेवा सन' की मुमन समाज की हृदय हीनता के कारण वध्या बनने की बाध्य होती है। विठ्ठलदास मान्शवादी भावना से प्रेरित होकर मुमन को पाप के भाग से बचाने के उद्देश्य से उस उपदेश देना जाता है। मुमन के मुख से निम्न कटु सत्य तत्कालीन धर्म के ठेकेदारों की कृत्स्न मनोवृत्ति का परिचायक है

'मुमन ने बात काट कर कहा, महाशय यह आप क्या कहते हैं? मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा हो रहा है उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मतलाल के ठाकुर द्वारे में भूला देखने गई थी, सारी रात बाहर खड़ी भीगती रही, किसी ने भीतर न जाने दिया लेकिन कल उसी ठाकुर द्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ता था मानो मेरे चरणों से वह मन्दिर पवित्र हो गया।'

रामावतार पाठेय के मुग्दरानन्द चरितावली में ब्राह्मण व साधुओं की दुराचारिता पर व्यंग्य किया गया है। मुग्दरानन्द एक काल्पनिक चरित्र है जो वध्या

- * वही, पृष्ठ ३६० दुहाई ब्राह्मण व्यंग्य पीसा जाता है और महाराज में अपनी गवाही के हेतु बाबू राजेद्रलाल के दोगे लेख देता है। उहोंने वाक्य और दलीलों से सिद्ध किया है कि मांस की कौन कहे गोमांस खाना और मद्य पीना कोई दोष नहीं प्राणों के हिन्दू सब खाते-पीते थे। आप चाहिए एशिया टिक सोसायटी का जर्नेल मंगा कर देख लीजिए।

लोक की राजधानी निर्वाणपुर स पृथ्वीलाक मे भाना ह । वह भारत, यूनान व राम व प्राचीन इतिहास का स्मरण करते हुए वतमान भारत की पतितावस्था की प्रारंभ गित करता है व उसकी सामाजिक बुराईयो की निंदा करता है । मूल पुरोहितो द्वारा थान्त तपण कराना मास स्पण न करने की प्रतिज्ञा के कारण चिकित्सा व भ्रम्यास से भी दूर रहना चाहे काशी करवट प्रयाग करवट क रूप म मनुष्य वलि भी ली जाय छिपे रूप म ब्राह्मणो द्वारा मास भक्षण व मन्त्रि पान करना लापो रूपया के यय स बने स्तूता म पढकर बालको का चुरट पीना प्रादि सीखना व पुजारियो व साधुभा का यमिचारी होना प्रादि मुग्दरानन्द चरितावली मे गहरे ध्यम्य है ।

बुद्धिवाद

धार्मिक बाह्याचारो की प्राबद्धता ने योरूप म बुद्धिवाद को जन्म दिया तथा बुद्धि के सहारे मनुष्य ने धार्मिक प्रघ विश्वासो व आडम्बर का अन्त कर प्रगति का माग घाला । बुद्धिवात् प्रतिगय धार्मिकता के भावत का भजन कर धर्म निर्पेक्षता को प्रभय देता है । धम के क्षेत्र मे बुद्धिवाद पौराणिक व धार्मिक आस्थानो की बुद्धिसगत वास्था करने की प्रेरणा देता है जिससे गुरुडम का अन्त कर धम की सच्ची चेतना जाग्रत हो सके । बुद्धिवाद की दूसरी देन विज्ञान है जिसकी उन्नति लौकिक समृद्धि की मावना की पीपक है । पाश्चात्य सभ्यता के सम्पक स इन विचार धाराभा का भारतीय जीवन म भी प्रवेश हुआ । बुद्धिवाद की प्रगति ने परलोक के बन्ते इहलोक की न्यता को महत्व दिया । धार्मिक बाह्याचारा व मत मतांतरो क बन्ते आध्यात्मिक चेतना के विकास को प्रधान समझा । प्रवतारवात् व प्राप्त वाक्या म विश्वास करने के बदले ईश्वरावचारा का मानव रूप म चरित गान किया जाने लगा व भ्रमानुपिन्न कार्यों का स्वामाविक व मानुषिक रूप म चित्रण किया गया । मानव की भ्रपूणता के नाते उनकी मानवीय कमजोरिया का चित्रण किया गया । धम निर्पेक्षता की प्रवृत्ति न ईश्वर के बन्त मनुष्य को ही नवीन साहित्य का बन्त बना दिया ।

बुद्धिवात् की सबसे तीव्र प्रतिप्रिया धार्मिक क्षेत्र म हुई । बुद्धिवाद ने जीवन और जगत् के प्रति लोगों क दृष्टिकोण को परिवर्तित कर दिया । परलोक क बन्ते इहलोक की सत्यता को समने अधिक महत्व दिया । रविभ्रन्ताथ ठाकुर ने मानव जगत् को 'मानन्द-यज्ञ' घोषित किया । मुक्ति की मावना का प्रतिवार करते हुए उन्होंने जगत् के 'मानन्द-यज्ञ' को ही यथाय बताया तथा स्वय ईश्वर को भी सृष्टि के बन्धनो से प्राबद्ध कहा । जीवन म निराशावाचियो की भत्सना करते हुए उन्होंने तिला 'निराशा वाणी धमने चारों ओर निराशा का एक कृनिम वातावरण बना लेता है और भवसात्पूण विचारा रूपी मर् रा को पुट दिया करता है । ससार यन्दि नु तपूण होता तो उसकी सता

मम्भव नहीं थी और फिर उसको दुःखपूर्ण मिद्ध करने के लिए किसी दार्शनिक की भी आवश्यकता नहीं थी।* बगना भाषा में लौकिक जीवन के प्रति अभिव्यक्त प्रेम की प्रतिध्वनि आलोच्यकाल के हिन्दी साहित्य में भी सुनाई पड़ती है। कहना न होगा लौकिकतापरक पार्श्वाल्य सभ्यता के सम्पर्क से इस लोक से परे (Transcendental) व सत्तार की माया समझ अकमप्य बने रहने की प्रवृत्ति का अतः हुआ। हिंदी साहित्य में इस भावना के प्रसार में रविन्द्रनाथ के काव्य का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है।

इहलोक की महत्ता का प्रतिपादन

आलोच्यकाल में सबसे पहले बुद्धिवाद का आश्रय लेकर श्रीधर पाठक का हम जगत् की सत्यता प्रतिपादित करते हुए पाते हैं। रविन्द्रनाथ की तरह पाठकजी भी जगत् को सत्य एवं मान-दमय मानते हैं। उन्होंने लिखा है

जिसका यह सब रचा हुआ है वह परमेश्वर सच्चा है
जगत के सच्चे होने का मत क्या कर तब कच्चा है
जो सच्चा है वह प्यारा है वही सकल सुख का भाग्य
वही मनुष्यों के जीवन को देता है आनन्द और
जगत को झूठा झूठा बरके करो नहीं उसका अपमान
बुद्धि को अपने काम में लाओ, हे मनुष्य हे बुद्धि निधान +

जगत् को सच्चा मानने की विचारधारा का घम प्राप्त भारतीय जनता द्वारा प्रतिकार किया जाना भी स्वाभाविक था। श्रीधर पाठक द्वारा लिए गए कष्टमिता के संशय का स्वागत करने पर भी उससे भोगवाद के प्रथम की आकांक्षा/दृष्टि की

* रविन्द्रनाथ टगोर 'साधना' मकमिलन एण्ड का० लन्दन (१९००) ११८३ पृ०
पृष्ठ ५३

+ श्रीधर पाठक 'जगत सचार्ई' पृष्ठ १

गयी। विन्तु श्रीधर पाठक पाश्चात्य सभ्यता की प्रगतिशीलता क प्रति पूजन प्राप्त वे। भारत क इ गलब के सम्पक को उन्होंने शुभ प्रपसर माना।*

अंग्रेजी के कवि लागफेलो (Longfellow) क स्वर मे स्वर मनाता हूँ
उन्होंने ससार के मिथ्यापन की विचारधारा का गण्डन किया

कहो न प्यारे मुझ से ऐसा झूठा है यह सब ससार
घोषा भगडा जो का रगडा केवल दुख का हेतु अपार
माना हमने वस्तु जगत की नाशवान है निस्सदह
किर मी तो छोडा नही जाता पल भर को भी उनस नेह

+ +
जगत है सच्चा तनक न कच्चा समझो कच्चा इसका भेद

पीरो खापी सब सुख पापी कभी न लामो मन म सेद
+

समझ के सारे जग को मिट्टी मिट्टी जो कि रमाता है
मिट्टी करके सरबस अपना मिट्टी मे मिल जाता है X

* श्रीधर पाठक जगत-सच्चाई सार (सूधना)

जगत को मिथ्या मानकर अकर्मण्यता की गहरी नीद मे निमग्न कदाचित्त
एक ही देश इस भूतल पर है और वह भारतवर्ष है। उसके सुतों को मिथ्यात्व का
पूट अपनी माँ के दूध के साथ ही मिलता है। राजा से रक तक प्रायः प्रत्येक व्यक्ति
इस माया मानवी के स्व विस्मारक त्रोट मे दोलायमान है। यन् सुकर्मण्य शिरोमणी
मास्टर इ गलैड से इस देश का सम्बन्ध न हो गया होता तो कौन वह सनता है
क्या होता ?

X लोणफेलो के साम प्राफ लाइफ" (Psalm of Life) के प्रथम दो पन्ने

का भाव-साध्य दृष्टय्य है

Tell me not in mournful number

life is but an empty dream

for the soul is dead that slumbers

And the things are not what they seem

Life is real life is earnest

And the grave is not its goal

Dust thou art to dust returnest

was not spoken of the soul

'Psalm of Life' का श्री लक्ष्मीनारायण न "जीवन गीत" अधीक से अनुवाद
किया। प्रकाशित— सरस्वती भगस्त १९०४।

इसी प्रकार, इहलोक की सत्यता का रायकृष्णदास न भ्रमन गद्य-गीतो म प्रतिपादन किया । रायकृष्णदास की 'साधना' के गद्य-गीतों पर रवीन्द्रनाथ की 'गीताञ्जली' के गीतो का गहरा प्रभाव प्रतिफलित हुआ है । रवीन्द्रनाथ की तरह रायकृष्णदास फूलो के सौंदर्य मे ईश्वर के प्रेम का दर्शन करते हैं । ससार को माया कहने वाली को ही व भ्रमित मानते हैं क्योंकि विश्व ईश्वरमय है तथा ससार को छोड़ कर बाहर न कोई जगह है और ससार स हट कर ईश्वर से दूर होन की बात सोचना भी पाप व नीचता है ।

भक्ति का स्वरूप स्वर्ग के बदले भू-केन्द्रित

बुद्धिवाद के प्रभाव से इहलोक की सत्यता मे विश्वास के साथ उम सुन्दरतर व ग्रहणीय बनाने की प्रेरणा मिली । "साकेत" के राम स्वर्ग का सदेश लेकर पृथ्वी पर भ्रवतरित नहीं होते वरन् वे पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने की भावना से भ्रवतार लेते हैं ।* धार्मिक क्षेत्र मे मत मतान्तरों का जगदवाल वितण्डा-वाद का पोषक था । बुद्धिवाद के प्रभाव से झालोच्य काल में धार्मिक विभेदों व मत मतान्तरों से परे भक्ति सामान्य आध्यात्मिक प्रवृत्ति के रूप मे प्रतिष्ठित हुई । ईश्वर को सबन और सबव्यापी मानने पर मूर्ति-पूजा व भ्रवतारवाद में विश्वास कम होने लगा । महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कथमह नास्तिक' गद्य-गीत में केवल मूर्तियो मे ईश्वर की सत्ता मे सदेह प्रकट किया । † जयशंकर प्रसाद द्वारा मूर्तिपूजा का लिया गया पक्ष मूर्तिपूजकों की ओर से रक्षणारमक प्रवृत्ति (defense mechanism) का सूचक है । चित्राधार' मे प्रसाद ईश्वर को सबव्यापी बता कर मन्दिर म भी उसका अस्तित्व अवश्यमेव मान लेते हैं ।—साथ ही सगुण भक्ति में विश्वास करते हुए भी

* सदेश यहा में नहीं स्वर्ग का लाया

इम भूतल को ही स्वर्ग बनान आया

(श्रीविलीक्षण गुप्त माकत¹)

† भावकी सत्ता को इम मारे जगन् म देख बवल प्रतिमाओं म ही हमारी प्रतिशय प्रेम नहीं है । (महावीर प्रसाद द्विवेदी कथमह नास्तिकः)

— जब मानते हैं व्यापी जल भूमि मे अनिल म तारा शशांक म भी आकाश में अनिल म फिर क्यों य हूठ है प्यारे मन्दिर मे रह नहीं है वह शब्द जो नहीं है उसके लिए नहीं है ।

(जयशंकर प्रसाद चित्राधार)

प्रसाद सम्पूर्ण प्रवृत्ति में ईश्वर का विराट रूप देखने हैं। + गिरधर शर्मा सगुण व निगुण के भेद को अस्वीकार करते हुए ईश्वर की भावना में उमके इन ाना रूपों का समन्वय करते हैं।* किंतु आय ममाजी कवि नाथूराम शर्मा शर्कर' मूर्तिपूजा व धार्मिक वितण्डावात् के कट्टर विरोधी हैं। शर्कर की मूर्ति को वे प्राण हीन' व जडदेव' सम्बोधित कर व्यंग करते हैं X तथा 'गोदान' के बदले 'वाटर साइकिल से बतरणी पार कराने का ब्राह्मण समाज की आर व्यंग्य करते हैं।* अस्तु ईसाई धर्म के प्रतिक्रिया स्वरूप प्रवृत्त ब्रह्म समाज, आय ममाज आदि की उपासना पद्धति में मूर्तिपूजा व लिए स्थान नहीं था। युग की बुद्धिवाणी आवश्यकताओं में मूर्तिपूजा में विश्वास को हिला दिया एवं भक्ति को सामान्य आध्यात्मिक मानसिक प्रवृत्ति के रूप में अपनाया गया। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिभ्रौष तथा जयशंकर प्रसाद ने विभिन्न धर्मों की एकता प्रतिपादित की तथा उन्हें एक ही स्थान पर पहुँचाने वाले भिन्न रास्तों के रूप में देखा।**

+ जिसका है आराम प्रकृति कानन ही सारा
जिस मंदिर के दीप इडु दिनकर और तारा

(जयशंकर प्रसाद)

* निगुण सबगुणकर है तू
'यायी बहणी सागर है तू (गिरधर शर्मा)

X शल विशाल महीतल फाड़े व' तिनको तुम तोड़ बड़े हा
ले जुड़की जनघार घडाघड बघर गोलमोल गले हो
प्राण विहीन कलुवर धार विरज रहे न लिखे न पड़े हो
हे जडदेव शिनासत शंकर मारत भे करि कोप चले हो

(नाथूराम शर्कर)

* ठेक पर लेकर बंतरणी देकर दाढी में छ
वाटर साइकिल के द्वारा बिना गाय की पूछ
मरा को पार उतारूंगा

(नाथूराम शर्कर)

** बौद्धमत हिंदू धर्म इस्लाम या ब्रमाइयत
हैं जगत् के बीच जितने जैन आदिक और मत
बहु बताता है सभी की एक ही है असलियत
है स्वमत में निज विचारों के सबब हर एक रत
ठीर है वह एक ही यह राह कितनी है गई
दूध इनका एक है केवल पिपाल हैं कई

(हरिभ्रौष 'धर्मवीर')

मस्जिद पगोडा जिसको बनाया तू ने
सब भक्ति भावना के छोटे बड़े नमने

(जयशंकर प्रसाद 'चित्राधार')

बुद्धिवाद क वदते हुए प्रभाव म अलौच्य काल के साहित्यकारो का अवतार बाद ष प्राप्त ग्रंथो स विश्वास हटन लगा । महावीरप्रसाद द्विवेदी न मयिलीशरण गुप्त का एक पत्र लिखा जिसम गुप्तजी द्वारा बुद्ध को अवतार तथा वदो को ईश्वर कृत मानने पर उन्हान बुद्धि वी दृष्टिकोण म आपत्ति की । † मूर्तिपूजा व अवतारवाद के गण्डन की दृष्टि से आर समाज आंदोलन म बुद्धिवाद् का समावेश या किंतु आय-समाज की कट्टरता न उसकी तक सम्मतता की सीमाए निर्धारित करदी थी । वदो का ईश्वरीय वाणी मान तथा आधुनिक विज्ञान आदि की भी सभी बातें वेदा म निहित बतला आय-समाज ने माना तब और बुद्धि क द्वार खाल कर तत्काल ही पुन बंद कर दिए । श्री सत्याय प्रकाश' की सरस्वती म आलोचना करते हुए द्विवेदी जी न वदो के अविनाश व उनकी अपौरुष्यता के सम्बन्ध मे दिय हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती के तर्कों का निबल बहा तथा उनम गोखले की तरह न काटी जानवाली योग्य युक्तियों और प्रमाण का अभाव बनलाया । × गोखल की प्रशंसा करनेवाले द्विवेदी जो पर बुद्धिवाद का प्रभाव स्पष्ट लक्षित हाता है ।

अवतारवाद ईश्वरावतारो का मानव रूप मे चित्रण

अलौच्य काल की कविता म बुद्धिवाद का सबसे अधिक प्रभाव अवतारवाद की धारणा पर पडा । वाल्मीकि न रामायण मे राम का तथा वेद व्यास ने मद्ग-भारत मे कृष्ण को मानव रूप म ही चित्रित किया या किंतु पौराणिक काल मे राम और कृष्ण के चरित्रो मे ईश्वरत्व का आराप किया गया तथा मध्य युग (भक्ति काल) म उह ईश्वर ही मान लिया गया । गीता म कृष्ण ने धम की ग्लानि होने तथा दुष्टो द्वारा साधुओं को कष्ट पहुँचाये जाने पर धम सस्थापित करने युग-युग अवतार लेने की घोषणा की थी किंतु आधुनिक युग म तक ने अवतार की आव-श्यकता के सामने ही प्रश्न चिह्न लगा दिया । आधुनिक युग मे मनुष्य तक करने लगा कि राबण या कस जैसे दुष्टो का नाश करने के लिए सब शक्तिमान ईश्वर को अवतार लेन की क्या आवश्यकता हो सकती है । किसी साधारण-सी घटना से भी इम प्रकार के अनेक दुष्टो को क्षण भर मे नष्ट किया जा सकता है । लीला के लिए ही यदि ईश्वर अवतार ले ता बीसवीं शताब्दी के मनुष्य की उन अलौकिक लीलाओं म अद्वा भी शेष नहीं रही जिसकी सम्भावना ही मनुष्य की बुद्धि से पर थी ।

† महावीर प्रसाद द्विवेदी 'द्विवेदी पत्रावली' (स० बीजनाथसिंह विनोद) भारत ज्ञान पीठ, काशी प्रथम संस्करण १९५४, पृष्ठ ११६

× महावीर प्रसाद द्विवेदी 'विचार विमर्श' भारती मण्डार काशी, सवत १९८८ पृष्ठ २२४

मणिलीशरण गुप्त परम वष्णव कवि हैं। निम्नलिखित पक्तियाँ म अवतार-वाद में गुप्त जी के हिलते विश्वास की अभिव्यक्ति हुई है

राम तुम मानव हो ईश्वर नहीं हो क्या
जग में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या
तो मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर समा करें
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे

हमारा बुद्धिवादी युग दशरथ-पुत्र राम को कग-वण म ध्याप्त होनवाले ईश्वर के रूप में स्वीकार नहीं कर पाता परन्तु उस ज्ञान में गुप्तजी का आस्तिक मन सब-यापी ईश्वर की चिन्ता न कर राम में ही रमा रहना चाहता है। कहता न होगा गुप्तजी का आस्तिक मन राम को यदि वे ईश्वर रूप में स्वीकार नहीं किए जाने तो ईश्वर से भी बढकर मानना चाहता है। तुलसी की तरह वे वृष्ण को भी राममय देखते हैं

धनुर्बाण या वेणु लो श्याम रूप के सग,
मुझ पर चढने से रहा राम दूसरा रग

अनघ' में बुद्ध का अवतार मानकर भी यशोधरा में गुप्तजी गोपा का मान रखने तथागत को उसके द्वार पर पहुँचाते हैं यह मानो बौद्ध धर्म पर गुप्तजी की वष्णवता की विजय है। साकेतकार के राम कवि की दृष्टि में उसके विश्वास को बचाने के लिए अवतार लेते हैं

मैं धार्यों का आदेश बताने आया
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया
सुख शांति हेतु म प्राप्ति मचाने आया
विश्वासी का विश्वास बचाने आया

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने अवतारवाद में अपनी आस्था की भिन्न प्रकार से रक्षा की है। गीता का प्रमाण देकर वे महापुरुष का अवतार होना निश्चित बनाते हैं और इसी दृष्टि से कृष्ण को अवतार मानते हैं। 'प्रिय प्रवास' की भूमिका में उन्होंने लिखा है

हम लोगों का एक सस्कार है वह यह कि जिनको हम अवतार मानते हैं उनका चरित्र जब कहीं दृष्टिगोचर होता है तो हम उसकी प्रति पक्ति में या यून से यून उसके प्रति पृष्ठ में ऐसे शब्द या वाक्य अवलोकन करना चाहते हैं जिसमें उसके ब्रह्मत्व का निरूपण हो। जो सज्जन इस विचार के हो, वो मेरे प्रेमाम्बुप्रश्रवण, प्रेमाम्बुप्रवाह प्रेमाम्बुवारिधि नामक ग्रन्थों को देखें उनके लिए यह ग्रन्थ नहा रचा गया है। मैंने श्रीकृष्णचंद्र का इस ग्रन्थ में एक महापुरुष की भाँति अंकित किया है ब्रह्म करके नहीं। अवतारवाद की जड़ में श्री भद्रमगवद्गीता का यह श्लोक मानना है

यद्-यद् विभूतिप्रत्नत्व श्री मद्जितमववा
तत्तदवावगच्छत्व ममतेजाशसभवम्

अतएव जो महापुराण है उसका अवतार होना निश्चित है ।" अस्तु, आलोच्य काल में अपने धाराध्य को अवतार कहने के लिए इस युग के साहित्यकारों को नवीन बुद्धिसंगत आधार ढूँढना पड़ा । बुद्धि एक ऐसा साधन है जिसका प्रयोग अपने विश्वास की रक्षा करने के लिए भी किया जा सकता है । इस दृष्टि में आलोच्य काल में हम धर्म के द्वािकरण (rationalisation) की प्रवृत्ति पाते हैं । जहाँ तक विश्वास का प्रश्न है द्वितीय युग की कविता में कवियों ने अवतारवाद में अपनी आस्था प्रकट की है किन्तु कविता में उन्होंने राम और कृष्ण के जीवन चरित्र को जिस रूप में प्रस्तुत किया है वह एक आदर्श मनुष्य का रूप है । द्वितीय युग के राम और कृष्ण पौराणिक काल के राम और कृष्ण के समान आलौकिक शक्तियों से सम्पन्न नहीं हैं । वे मानवीय शक्तियों के महार ही महान् दियाइ देते हैं । यह आधुनिक युग के बुद्धिवाद का ही प्रभाव है ।

अतिप्राकृत-तत्त्व के बदले स्वाभाविकता का समावेश

राम और कृष्ण का अवतार माना हुए भी विद्वान् व बुद्धिवाद् के आधुनिक युग में उनका मानव रूप में चरित्रगान करना स्वाभाविक व वाछनीय था । अवतारवाद में विश्वास न करत हुए भी मानवता की सामान्य भूमि पर उनका चरित्र पढ़ आधुनिक बुद्धिवादी भी उसमें प्रभावित हो सकता है । वगना के उपासकार बकि चन्द्र चटर्जी अपनी कृष्ण चरित्र पुस्तक में यह मिद्ध कर चुके थे कि किस प्रकार कृष्ण के स्वाभाविक और मानुषिक काय अतिमानुषिक रूप में परिवर्तित कर लिया गया था । फलत आलोच्य काल में राम और कृष्ण के अधि मानुषिक कार्यों को स्वाभाविक व मानुषिक रूप में चित्रित किया गया । रीतिकाल के कवियों की दृष्टि में प्रमत्तशा के पन्थात में अशाक के पुष्पा का विकसित होना, चकोर का चान की आर देख कर अगाड़े चुगना हम का दूध और पानी को अलग कर देना मान हुए सत्य थे । वनी प्रकार मक्ति-दान में सूर्यास की दृष्टि में कृष्ण जैसे छाटे से बालक का बड़े बड़े रथों का मारना आग भी जाना, पर्वत को अगुली पर उठा लेना, यमुना में कूद कर तालिप नाग का दहन करना अथवा तुलसी के लिए पत्थरों का पानी पर तैराना, अनुमान का आकाश के भाग से जाकर सजीवन पति ले आना महज विश्वास के विषय थे किन्तु आधुनिक युग का विद्वान् को जाननेवाला मनुष्य किसी प्रकार इन चमत्कारों में विश्वास नहीं कर सकता था । फलत काय में केवल स्वाभाविक चित्रण किया जात लगा ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिआध न कृष्ण के अति मानुषिक कार्यों को प्रियप्रदास में स्वाभाविक व मानसिक रूप में चित्रित किया । कृष्ण चरित्र में मन्त्रियन उनके शशवकालीन अद्भुत कार्यों को प्राकृतिक धन्यों के रूप में चित्रित

किया गया। यथावति नद के पुष्प प्रवाप ससयोगवश कृष्ण की रक्षा ही जाती है। वक्ष्य द्वारा 'नृहरण' की कथा का कथित नद के स्वामिनि 'नृहरण' म 'नृहरण' के रूप में उल्लेख किया है। कृष्ण साहस पूर्वक उन्हें बचा कर अपनी वन्य पाना करते हैं। कालिय मर्त्य की कथा को 'प्रिय प्रवास' में निम्न रूप दिया गया है। यमुना में रहने वाले सप के सहस्र कणा का उल्लेख नहीं मिलता। महाभुजग सहस्रस्रग भुजगिनिया के साथ यमुना में रक्षा करता था। उनका कारण यमुना में उनका निवास स्थल का जन विषमय हुआ गया था जिस पीछर पशु-पक्षी मनुष्य प्राणि प्रिय व प्रवास में मर जाते थे। कृष्ण ने एक अवसर पर गोप और गायों का यमुना की पीछर प्रिय स प्रभावित होते देखा। कृष्ण ने यमुना से उनका उपचार किया तथा लोचनवा की भावना से उस सप का वध करना निश्चय किया। एक दिन कृष्ण अपनी वधु लेकर यमुना में उस स्थल पर कूट गया जहाँ सप अपनी भुजगिनिया के साथ रहता था। अपने अद्भुत वधुवादन से कृष्ण ने सभी सपों को मंत्र मुग्ध सा कर दिया और कानन में ल जाकर छोड़ दिया प्रयत्न उनका वध कर दिया। कृष्ण द्वारा 'नृहरण' पीने की कथा को भी प्रिय प्रवास में बुद्धिमगल रूप प्रस्तुत किया गया है। एक अवसर पर वन में किसी स्थल पर भयकर आग लग जाती है जिसमें कुत्र गाय और गायें घिर जाते हैं। कृष्ण अपने साहस व धय से उन सपका वधा लत है व ल भात है। कृष्ण द्वारा उगली पर गोवदन पवत धारण करने की कथा का प्रिय प्रवास में बुद्धि सगत रूप यमुना है कि अश्व म भयकर वर्षा होने पर कृष्ण ने अजवातिया को गिरि चन्द्राग्रो में सुरमित स्थान पर पहुँचाया इसी से सभी लोग कहने लग कि श्याम ने गिरी चन्द्र को उगली पर रख लिया। इस प्रसंग में इन्द्र के काप की पौराणिक कथा की चर्चा नहीं की गई है। बौद्धिकरण की यह प्रवृत्ति हरिप्रोधना की प्रय रचनाओं में भी मिलती है। 'अपेही वनवास' में उन्होंने रावण को दस सिरवाला और बीस भुजाओं वाला बहन का कारण यह बतलाया है कि वास्तव में उसके दस सिर व बीस भुजाएँ नहीं थी वरन् वह इतना बुद्धिमान व घनशायी था कि उसे दस मुख व बीस भुजाओं वाला कहा जाने लगा।

मयिलीशरण गुप्त की रचनाओं में भी अन्वीकृत चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख नहीं मिलता। 'जयद्रथ वध' में सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ को वध करने का अजुन का प्रण पूरा नहीं हो पाता। प्रायश्चित्त स्वरूप जब अजुन चिता में जलने की तयारी करता है एवं जयद्रथ व कीरवगण इस दृश्य को देखने के लिए समुप स्थित होते हैं उस समय कृष्ण पश्चिम दिशा की ओर इ गित कर 'अभी दिन शप होने की सूचना देने है। सभी आश्चर्यपूर्वक पश्चिम दिशा में बादलों के बीच सूर्य को निकलते हुए देखते हैं। कवि ने इस घटना का प्रकृत रूप में ही उल्लेख किया है। कृष्ण के आदेशानुसार माया द्वारा सूर्यास्त से पूर्व ही सूर्य का बादल में छुपाने के प्रसंग की चर्चा नहीं की गई है। पाठक यह सोच सकता है कि सयोगवश बादल

फिर घाए हागे और यह भ्रम हा गया होगा कि सूर्यास्त हा गया । 'साकेत' व राम विश्वास की दृष्टि स ईश्वरावतार है किंतु साकेतकार ने राम का चरित-गान सामान्य मनुष्य रूप ही किया है । 'साकेत' का गृह चित्र सामान्य जीवन के चित्रा स भिन्न नहीं है । + तुलसी के मानस' की मयरा की वाणी पर सरस्वती आकर बठती है और वह कवयो से राम बनवास की कुमत्रणा करती है । किंतु साकेतकार का कवयो के उज्ज्वल चरित्र की रक्षा के लिए स्वग स सरस्वती को नहीं बुलाना पडता अपितु कवि मनोवैज्ञानिक आधार पर कवयो के चरित्र का अवन करता है । भरत के ननिहाल रहने और राम राज्याभिषेक की परिस्थिति म म यरा का कवन भरत से मुत पर भी सदेह, बुलाया तक न उस जा गह' कवयो के वात्सल्य भाव को आशृत करता है तथा वह प्रतिहिंसा की भावना मे प्रेरित होनी है । द्विवेदी युग म पौराणिक कथाओ का प्रतीकात्मक रूप म प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है । पुराणो की कल्पित कथाओ की प्रतीकात्मक रूप म प्रस्तुत किया गया जिनमे देवता न्दिय गुणा व प्रतीक तब अमुर अवगुणो के प्रतीक दशाय गए । मैथिलीशरण गुप्त व शक्ति' खण्ड नाट्य म शक्ति का ज म देवताओ क शरीर स निकले हुए ज्याति पिण्डा के पूजीमून मित्रा मे दृषा तथा शक्ति णव के प्रतीक 'महिपासुर' पर विजयिनी हाणी है ।

स्वाभाविक चित्रण पौराणिक चरित्रो मे मानव सुलभ कमजोरियों के प्रति सहानुभूतिशीलता

द्विवेदी युग म राम और कृष्ण के अवतार रूप म आत्मा रखत हुए भी जब कविता म उनका मानव रूप म चित्रण किया गया तब यह स्वाभाविक था कि उनक चरित्र म मानव स्वभाव की कमजोरिया का भी आकलन किया जाता । मनुष्य सबथा बुरा या भया नहीं हाता । वह बुराई और भलाइ का मम्मिलित पुञ्ज है । अत एक और जिन चरित्रा का पूव युग म बुरा र्शाया गया था उनक चरित्र का उज्ज्वल पक्ष भी म कित किया गया तथा दूमरी और बुद्धिवा के आग्रह से राम और कृष्ण व चरित्र ईश्वरत्व की ऊ चाई के उतर कर मानवता की सामान्य भूमि पर आ गय । हिंी कविता म यह प्रभाव बगला कवि माइकल मधुसूदन दत्त की रचनाओ के माध्यम से प्रतिफलित हुआ । माइकल मधुसूदन न होमर, तामा, बजिल मिस्टन आदि पारचास्य कवियो की काव्य धारा मे अवगाहन किया था फिर भी व अनुकर्ता मात्र न होकर एक जाशन प्रनिमाशानी कवि थे । उहान पौराणिक कथाना का

+ राम राजा ही नहीं पूणावतार पवित्र पर न हमसे भिन्न है सावत का गृहचित्र

(मैथिलीशरण गुप्त साकेत)

लेखर प्राचीन चरित्रों का तृतीय दृष्टिकोण में पुनर्निर्माण किया। इस दृष्टि से 'मघनाद वध' उनका महत्वपूर्ण काव्य है। मघनाद वध में राम और रावण का युद्ध अनिर्वाह रूप से घुरे घोर भले का युद्ध नहीं है वह एक उच्चार्थों की राजाघात दो भिन्न सभ्यताओं का संघर्ष है कवि ने एक घोर राम के चरित्र में मानवीय दुर्बलताओं का समावेश किया है व दूसरी ओर रावण के चरित्र का उद्घाटन भी किया है। मघनाद वध का रावण मगध राजा यादवा घोर पिता है एक मानवीय भावना समाप्त प्रोत है। चिन्ती में मघनीशरण गुप्त ने मगध के मधुसूदन के मघनाद-वध का अनुवाद किया। अनुवाद होने पर मा मघनीशरण गुप्त ने राम के चरित्र में अविश्राम व राक्षसों के प्रति महानुभूति व्यक्त करने में अपनी दुर्बिधा व्यक्त की है एक भूमिका में वह यह लिख बिना नहीं रह सका कि मधुसूदन ने राक्षसों के प्रति पशुपत प्रार्थना है। * मूल-ग्रन्थ के तृतीय सर्ग में नृमुण्डमालिनी का दण्ड राम मन में भयभीत हो जाते हैं पर अनुवादकर्ता राम के वीर चरित्र की रक्षा के लिए उन्हें नृमुण्डमालिनी दूती के साहम पर प्रमत्त बताना चाँहा है। + दण्ड प्रसारण का राम नारिषा की वीरता से मूल ग्रन्थ के राम विस्मिन्न हो उठते हैं पर अनुवादकर्ता इससे राम के वीर जीवन का बिनोद बनाना अभीष्ट है। ** स्पष्टतः मघनीशरण गुप्त राम

* मघनीशरण गुप्त 'मघनाद वध (निबन्ध) पृष्ठ २६।

यापी राक्षसों के प्रति कवि का कतना पशुपत प्रार्थना कर जान पड़ता है लक्ष्मी का राजकवि भी मघनाद वध में वर्णित घटनाओं का ऐसा ही वर्णन करता।

+ वही, नृमुण्डमालिनी के चने जाने पर राम विस्मिन्न में क्यों ?

मित्र देव इस दूती की

आकृति में भीत हुआ मन में विचार के

तत्क्षण ही युद्ध साज। मूल वह मन है

छेदने चने जाने मित्रिया की मना का

देवू चलो मैं तुम्हारी आनृ-पुत्र पत्नी को

गुप्तजी का मानस राम को भीत नहीं अनुमान कर करता अतः उमरा

परिवर्तित रूप प्रस्तुत करत हैं

मित्र देव इस दूती का

साहस प्रमत्तता हुआ है मुझ मन में

निश्चय ही सिद्धी सी वीर नारिषा हैं य

देवू चलो मैं तुम्हारी आनृ-पुत्र पत्नी का

** राक्षस नारिषा को देख कर वही राम खचल हो उठते हैं

क्या ही विस्मय है कभी ऐसा तीन लोक में

देखा मुना मैंने नहा। जागत हो रात का

क्या मैं स्वप्न देखता हूँ ? सत्य कहे मुझ से

के चरित्र में किसी प्रकार की हीनता की कल्पना भी करने को तत्पर नहीं हैं। पर अनुवादक की बुद्धि ने उनके अपने विश्वासों को मूल-ग्रन्थ के अनुवाद में समाविष्ट करने से रोक लिया है।

बुद्धिवाद का यह प्रभाव स्वयं गुप्तजी की मौलिक रचनाओं में स्पष्ट है। 'साकेत' में उन्होंने राम की मानवीय कमजोरियों को भी दर्शाया है तथा 'रावण' के चरित्र को अधिक सहानुभूति-भूषक देखा है। लक्ष्मण के शक्ति बाण लगने पर राम कुपित हो 'भाई का बदला भाई ही' वह कुम्भकण पर प्रहार करते हैं। कुम्भकण की मृत्यु पर रावण को मूर्छित-सा देख राम उसकी सहृदयता से अभिभूत हो जाते हैं तथा रावण को अपने से अधिक सहृदय पाते हैं। विभीषण के चरित्र की उज्ज्वलता को गुप्तजी ने मित्र रूप में स्थापित किया है। माइकल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद' घट का विभीषण राम की मेना में मिल जाता है तब मेघनाद अपने चाचा विभीषण का दशद्रोही कह कर उसकी भत्सना करता है पर गुप्तजी के 'साकेत' का विभीषण राष्ट्रीयता की क्षुद्र सीमाधा को तोड़ कर मानव आस्था की दुहाई देता प्रतीत होता है। वह कहता है, 'है वह मेरा देश नहीं जो बरे दूसरो पर अयाय'। इस प्रकार विभीषण के चरित्र की जिम कमजोर रंग को माइकल मधुसूदन दत्त ने 'मेघनाद' घट में पकड़ा था गुप्तजी 'साकेत' में उस रोग का निराकरण कर उसके चरित्र को घोर भी उज्ज्वलता प्रदान कर देते हैं। 'साकेत' में कवयी का चरित्र भी पश्चाताप की ज्वाला में तप कर निकर उठता है। अपने पुत्र भरत के चरित्र पर अ प जना द्वारा सन्नेह की मनावधानिक मतपतता में व्यथित हो वह राम के लिए वनवास माग बठी और इसमें दुःखी हो दशरथ ने अपने प्राण त्याग दिए। इस क्लक का निराकरण करने उसे पश्चाताप की किन्ती धार ज्वाला में जलना पडा है राम को लौटाने के लिए जुटी हुई चित्रकूट की समा माना इसी की ज्वलत प्रतीक है। भरत की निष्पत्ता प्रमाणित करने के लिए पति की तरह अपने पुत्र का भी खाने की सौगध लेना, दुःखिनी उर्मिला को देख उसके दुःख का स्वयं कारण होने की सना होना राम को लौटाने के लिए सभी तर्कों को छोड़ केवल अपने अधीर हृदय की दुहाई देना एव

मित्र रत्न, जाता नहीं मैं भेद बुद्ध भी

चंचल हृमा हूँ मैं प्रपच यह देख के ।

किन्तु, यह चंचलता गुप्तजी को अभीप्सित नहीं है अत वे इसका परिवर्तित रूप प्रस्तुत करते हैं

सचमुच हृदय यह अप्रपूव है

मित्र प्रबलाए प्रबलाए दीवती हूँ ये

माना शत मूर्तियों से शूरता है प्रकटी

मरे धीर जीवन का बढना विनाद है ।

जन्म जन्म के लिए स्वयं को नासना पाठक के हृदय पर बरणा की प्रसिद्ध रेखा छाड़ जात है ।

नतिक भावताओं की बुद्धिवादी परिणति

भालोच्य-काल में राम और कृष्ण के पौराणिक चरित्रों का भाग्य रूप में अंकित किया गया । राजनीति में महात्मा गांधी ने चारित्रिक अनिष्टता पर बल दिया था अतः इस पृष्ठभूमि में हमारे आदर्श महापुरुषों में सामान्य बुद्धि द्वारा समझी जानवाली चारित्रिक बुराईया खटकने वाली थी । सौभाग्यवश राम के चरित्र पर किसी प्रकार का लाक्षणिक नहीं था किन्तु कृष्ण के चरित्र को समाज के नतिक पतन के साथ लाक्षणिक होना पड़ा । मूर के पदा से निगृत राम और कृष्ण की पावन प्रेम धारा रीतिकाल में आकर घोर प्रबलील शृंगारिकता में परिणत हो गयी । वैसे भी कृष्ण की गोपिया के साथ प्रेमश्रीडाए सामान्य मानवीय व्यवहार की दृष्टि से नतिक नहीं कही जा सकती । आधुनिक काल में लौकिक शृंगारिकता से पूरे इन कथाओं को आत्मा परमात्मा के मिलन की प्रतीक मानना बुद्धि सगन प्रतीत नहीं हुआ । अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिश्चोष ने लिखा

आधुनिक युग के विचारों के लोगो को यह प्रिय नहीं है कि आप पति-पति मम तो भगवान् श्रीकृष्ण को ब्रह्म लिखते चलें और चरित्र लिखने के समय कतु मकतु न्यथा कतु ममथ प्रभु' के रग में रग कर ऐसे कार्यों का कर्ता उन्हें बनायें जिनके करने में एक साधारण विचार के मनुष्य को भी घुणा होवे । *

अस्तु प्रिय प्रवास' में कृष्ण और गोपियों का प्रेम स्वच्छन्द प्रेम नहीं है । एक चाद को चाहनेवाली जैसे अनक तारिकाएँ होती हैं उसी प्रकार अनक गोपिया कृष्ण को पति के रूप में बरण करने की कामना रखती हैं । कवि ने वहीं पर भी गोपिया अथवा कृष्ण का अमर्यादित व्यवहार नहीं लिखा है । कवि ने रास लीला का मित्र पृष्ठभूमि में चित्र अंकित किया है । शरद ऋतु में श्रीकृष्ण वेणु-वादन करते हैं तब उसकी मधुर ध्वनि सुन गृहों में गोप गोपिकाएँ निकल पडते हैं तथा उस स्थल पर पहुँचते हैं जहाँ कृष्ण वेणु बजाते दिखाई दत हैं । वेणु की तान के साथ गोप गोपिकाओं के मूर नृत्य करन लगत हैं । यह स्मरणीय है कि विवाहित गोप गोपिकाओं का मूर एक और नृत्य में लीन हो जाना है अविवाहित गोपिया दूसरी ओर परस्पर साथ-साथ नृत्य करती हैं अविवाहित गोप भी अत्य स्थल पर अलग नृत्य करते हैं । कवि कृष्ण के चारित्रिक लाक्षणिक को दूर करने के लिए अत्यधिक सचेष्ट प्रतीत होता है । रासलीला के अन्त में कृष्ण सभी सम्मिलित जनो का प्रकृति के सौंदर्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं । इस अवसर पर कृष्ण पतिव्रत धर्म के पालन की महत्ता भी दर्शाते हैं । कृष्ण के चरित्र में नतिकता का यह अतिरिक्त समावेश युग की बुद्धिवादी प्रवृत्ति की मांग स्वरूप हुआ ।

* प्रिय प्रवास अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिश्चोष, भूमिका

मानववाद

साहित्य में मानववाद की भावना फ्रांसीसी दार्शनिक कान्ते के विचार दर्शन के प्रभावस्वरूप विकसित हुई जिसका प्रभाव हिन्दी में बंगला साहित्य के माध्यम से प्रतिफलित हुआ। लोकसेवा को ही ईश्वर सेवा का रूप समझा गया।

लौकिक जीवन की इयता स्वभावतः हमारा ध्यान पारलौकिकता से हटाकर मानव जीवन के सत्या पर केंद्रित करती है। आलोच्य काल के साहित्य का केंद्र बिन्दु ईश्वर न होकर मनुष्य ही है। यदि एक ओर ईश्वर स्वर्ग से उतर कर मनुष्यता के घरातल पर आ जाता है तो दूसरी ओर ईश्वर-मेवा के रूप में मानव-सेवा को प्रतिष्ठित किया जाता है। मानव सेवा की भावना रवीन्द्रनाथ की बंगाली कविताओं के प्रभावस्वरूप रही गई। रवीन्द्रनाथ जब अपनी कविताओं में मानव भावनाओं की अभिव्यक्ति कर रहे थे उस समय बंगाल में भूदेव, विवेकानंद आदि भी मानव सेवा के आदेश की प्रतिष्ठा कर रहे थे। मानववाद की इस विचार धारा पर फ्रांसीसी दार्शनिक कान्ते (१९वीं सदी का आरम्भ काल) के विचारों का यथेष्ट प्रभाव था।

पोजिटिविस्ट दर्शन का मानववादी आधार
रवीन्द्र काव्य के माध्यम से

कान्ते का 'पोजिटिविस्ट' (Positivist) दर्शन इंग्लैंड के जनीमवी मनी के उपयोगितावादी (Utilitarian) दार्शनिकों बचम (Bentham) जेम्स मिल (James Mill) जान स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) आदि के विचारों पर आधारित था। इन उपयोगितावादी दार्शनिकों ने जनीमवी मनी के मध्यकाल में इंग्लैंड की राजनीति को अत्यधिक प्रभावित किया एवं सामाजिक कानून व नियमों में परिवर्तन लाने की प्रेरणा दी। बचम 'बहुतेरा हितार्थ' सिद्धांत (Greatest Good of the Greatest number) का प्रतिपादक था। उपयोगितावादीयों के सम्बन्ध में बर्टेण्ड रसल (Russel) का कथन है कि दार्शनिकों के रूप में उनका इतना महत्त्व नहीं है जितना आर्थिक परिवर्तनवादी नेताओं व ऐम व्यक्तियों के रूप में जा सकते हैं जो समाजवादी सिद्धांतों के निर्माण के पथ प्रदर्शक बने। कान्ते ने उपयोगितावादी दर्शन के आधार पर मानव सेवा में की विचारधारा का प्रसार किया।

कान्ते के अनुसार धर्म का लक्ष्य जीवन में सामाजिकस्य लाना है एवं शून्य व मरिचक दाना को समानतया आलिंगन में आबद्ध करने से यह सामाजिकस्य स्थिति हो सकता है। धर्म व्यक्ति के जीवन को नियमित बनाता है एवं मानव शून्य के व्यक्तियों के जीवन को परस्पर संबन्धित करता है। मानव विश्व में आर्थिक प्रवृत्तियों में अंध विश्वास व उसके उपरान्त अचेतन मन द्वारा प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर यह सामाजिकस्य प्राप्त कर लिया जाता था। किन्तु, कान्ते की -

अनुकूल नमानुसार दबी इच्छाओं का स्थान प्राकृतिक नियम ग्रहण कर लेते हैं तथा केवल दबताओं का प्रसन्न करने की भावना नतिस काय करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा नहीं रहती। शुभ-कार्यों की प्रेरणा सहयोगियों के प्रति प्रेम की भावना जागृत होने में सम्भव हो सकती है। अतः मानवता की भावना सामाजिक संगठन का नया केन्द्र बिन्दु बन गई है, मानवता का धर्म ऐसा धर्म है जो सभी मनुष्यों को संगठित कर सकता है तथा 'आत्मोत्सर्ग' उत्तरा पथ प्रशस्त लक्ष्य बन जाता है। काम्ते राजनीति की नतिकता पर आधारित करने नतिकता की ध्यापक उदात्त रूप में प्रतिष्ठा करन तथा पूजा के योग्य वितरण का पापाती था। लोकसेवा के उद्देश्य से लिय गए मयाम के प्रतिरक्त अथ किसी दृष्टि से समाज का उत्तम अभाव ठहराया।

सत्कालीन युग में भारत में काम्ते का पाजिटिविस्ट दर्शन पर्याप्त लोक प्रिय हुआ। हमारे देश के स्वातंत्र्य आन्दोलन के आरम्भिक दिना में समारी राष्ट्रीय जागृति के लिए उसमें उपयुक्त विचारधारा थी। उनोसवी सदी के आरम्भिक वर्षों में यह दर्शन बंगाल में अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। निरोधरवादी होने के कारण भूदेव के बिक्रम इस दर्शन को अपनाते के लिए विशेष उन्मुख नहीं हुए किन्तु, स्वामी विवेकानन्द द्वारा 'दरिद्रनारायण' एवं अरविन्द द्वारा वासुदेव के रूप में सामाजिक एवं धार्मिक की ईश्वर रूप में सेवा की प्रेरणा इस दर्शन द्वारा मिली। स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस से मानव-मेवा की सीखा ली थी किन्तु नर की नारायण रूप में प्रतिष्ठित करनेवाली भावना में काम्ते के दर्शन का अवश्य प्रभाव था। गीता से धार्मिक प्रेरणा लेनेवाले बिक्रम के विचारों में भी पाजिटिविस्ट दर्शन का समावेश हुआ। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी मानवता में ईश्वर के दर्शन लिए। बंगाल में प्रवाहित ज्ञान वाली मानववाद का विचारधारा रवीन्द्रनाथ के माध्यम से हिन्दी में भी आई।

रवीन्द्रनाथ अपने एक गीत में पुजारी को संबोधित कर कहते हैं "मज्जत पूजन साधन आराधन छोड़ दे। पुजारी मन्दिर के कपाट बन्द किये, उनके बोने में अपने मन के एतान में घकार में तू चुपचाप बिसकी पूजा कर रहा। घास खोल कर देख तेरा आराध्य इश्वर यहाँ नहीं है। वह कहाँ है जहाँ किसान घरती पर हल चला कर मिट्टी तोड़ रहा है और अमिठ हथौड़े से अन्ननिश पत्थर तोड़ रहा है। मुक्ति ? कहाँ है मुक्ति ? मुक्ति तुझ कहाँ मिलेगी जब वह स्वयं ही सृष्टि के बधन को स्वोत्कार कर मरके माय बना है। अपने पवित्र बन्धु को छोड़ कर अपने प्रभु की तरह कम-गम पर आ और उसके साथ कम में तीन होकर स्वयं बन बड़ा।" इन गीत में रवीन्द्रनाथ देगोर ने रुढ़ि, पूजा आदि धर्म के आत्माडम्बरो को निलाडम्बरी देकर समाज के पीछे शोषित मनुष्यों में ईश्वर के दर्शन किये हैं। मानव मेवा का

ईश्वर सेवा के रूप में प्रतिष्ठित करने की भावना हिंदी में रामनरेश त्रिपाठी, मयिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, जयशंकर प्रसाद, हरिप्रौढ प्रभृति कविता की कविता में व्यक्त हुई है।

मानव-सेवा ही ईश्वर सेवा

रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी कविता पर पाश्चात्य प्रभाव को अस्वीकार किया है। 'विदेशी काव्य का प्रचार तब कम था और उन दिना विदेशिया से घृणा भी थी। इसलिए उनका प्रभाव मेरे ऊपर नहीं पड़ा।' किन्तु बंगला का प्रभाव का उन्होंने स्वीकार किया है। 'सबसे पहला प्रभाव मेरे ऊपर बंगला का पड़ा। तब रवीन्द्र का भी उल्लेख हुआ था। उनका प्रभाव भी मेरे ऊपर है।' कहना न होगा बंगला के माध्यम से त्रिपाठी जी की कविता पर पाश्चात्य प्रभाव प्रतिफलित हुआ है। उनके काव्य में मानववर्गीय स्वर परोक्ष रूप से पाश्चात्य प्रभाव नापित करता है। अस्तु रामनरेश त्रिपाठी ईश्वर को मन्दिर, मस्जिद अथवा गिरजाघर में नहीं देखते। उनका दृष्टि में ईश्वर का स्थान 'दीनानों की भूल प्याम' में है। अल्पकाल कविता में कवि तथाकथित ईश्वर भक्ति व वास्तविक सेवा व वपश्य की विडम्बना बिखित करता है। ईश्वर भक्त बन कुना सगात और उपवन में ईश्वर का ढूँढता है किन्तु ईश्वर गरीबों व धर व दुखिया की आह में समाया है। त्रिपाठी जी के मिलन का नायक आनन्द अपनी परना विजया का साथ बन में रहा करता था। किन्तु विदेशी शासक द्वारा देश का परतंत्र हान तथा इस कारण देश की जनता के कष्टों का वलन से वह स्वदेश का शत्रुभा से मुक्त कराने का लिए प्रयत्न शील होता है। विजया भी अपने प्रियतम का साथ देती है एवं पुष्ट्य वष धारण कर युद्ध का लिए उसके साथ प्रस्थान करती है। दुभाग्य से माग में दुष्घटनावश आनन्द नी में डूब जाता है। तब विजया अवीर नहीं जाती बरन् पति की अभिलाषा पूर्ण करना अपना वन में निश्चित करता है तथा स्वदेश सेवा में अपना तन मन प्राण समर्पित कर देती है। नी में डूब कर भी आनन्द का प्राणात नहीं जाता। एक स्थान पर मुनि उसे नी से बाहर निकाल कर उमका उपचार करते हैं एवं स्वस्थ होकर आनन्द व मुनि दोनों स्वदेश सेवा में लीन हो जाते हैं। अतः में समा लोभा की सेवा से देश की जनता स्वतंत्रता प्राप्त करती है तथा आनन्द व विजया का पुनर्मिलन होता है। स्पष्ट ही 'मित्रन एक प्रेम कथा सामान्य प्रेम कथा मात्र नहीं है। स्त्री व पुष्ट्य व प्रेम का बल इसमें मानव सेवा धर्म की प्रतिष्ठा की गई है। पाण्डित्यविस्त-दशन

के विचारानुरूप इस वाक्य में त्रिपाठीजी ने लाकसेवा को ही ईश्वर भक्ति का रूप प्रदान किया है तथा बराग्य भावना का विरोध किया है

ईश्वर भक्ति लोकसेवा है
एक अथ दा नाम
वन में बस कैसे हो सकता
है मनुजाचित काम
पृथ्वी पर सुख शांति बटाना
दकर निज अम शक्ति
मनुष्यता का अथ यही है
घोर यही हरि भक्ति

विजया अपने प्रेम का उत्थन (Sublimation) कर लाकसेवा में शांति पाती है !

जन जन में प्रेमी को दिव्यती
है प्रियतम की वांछि
इससे उसे लाकसेवा में
मिलती है अति शांति

‘मिलन खण्ड वाक्य में अश्रु प्रेम की भावना का प्रधान रूप से है ही कि तु मानव सेवा की ईश्वर सेवा के रूप में प्रतिष्ठा पाजिटिविस्ट दशन के पराक्ष प्रभाव को शांति करती है। यहां पर यह उल्लेख कर अनामी आवश्यक है कि हिंदी साहित्य पर पाजिटिविस्ट दशन का सीधा प्रभाव नहीं पड़ा। लोकसेवा को जीवन आदर्श के रूप में अपनाने में गान्धी विचार अशन का गहरा प्रभाव रहा है जो स्वयं विभिन्न पारचात्य प्रभावों से अनुप्रेरित था।

मधिलीनारण गुप्त नयम के बाह्याङ्ग्यरों की यथना घोषित कर पीडित व दुखी लोगों में ईश्वर का स्थान बताया। स्वयंमागत कविता में गुप्तजी ईश्वर को दीन दुःखी के रूप में आया हुआ बताना है कि ‘तु ईश्वर भक्त अपने धाराध्य को इस रूप में नहीं पहिचान पाता तथा उससे दूर हो जाता है। कवि प्रश्न करता है यह दुखी जन ही तो ईश्वर हैं, उसे हटा देने पर ईश्वर कहा मिलगा ? मुकुटधर पाठिय ‘दीन हीन के अश्रुनार’ तथा पतिनी के परिताप पीर’ में ईश्वर के दशन करत हैं। जयगकर प्रगा ‘मा’श कविता में पहरों प्राथना करने के बदले क्षण भर दुखियों पर करगा करन की प्ररगा दत है। उनर मन में अपने पापा को प्राधता से नहीं पोया जा सकता वरन् प्रायश्चित्त स्वरूप दुःखिया पर करगा करने में भगवान् प्रसन्न होते हैं।

लोकसेवा के आश की भावना प्रयोध्यासिद् उपाध्याय हरिप्रोध के प्रिय

प्रवास' महाकाव्य में अत्यधिक पुष्ट रूप में व्यक्त हुई है। हरिभोषजी ने राधा और कृष्ण के चरित्र निर्माण में लोकसेवा की भावना को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। हरिभोषजी ने 'रस कनक' में नायिका के नवीन भेदों का विधान किया जिससे नारी कवल घर की बहिनी व विलास की मामूली ही नहीं रही बल्कि जीवन का विहास क्षेत्र उमका काय क्षेत्र बना। उहाँ ने दश प्रेमिका, जाति प्रेमिका, ज ममूमी प्रेमिका, धर्म प्रेमिका, नाक मविका आदि नायिका के नवीन रूप प्रस्तुत किए। शृंगार ही नहीं भक्ति के क्षेत्र में भी हरिभोषजी ने नातिकारी विचार प्रकट किए। प्रियप्रवास के पाठन में म राधा कृष्ण के प्रति अपने प्रेम का विश्व प्रेम में लीन कर भक्ति की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करती है। उनके अनुसार किमी की कल्पित मूर्ति बना कर उसी के ध्यान में लीन रहने का यदि भक्ति कहा जाय वह बुद्धिसंगत नहीं है। ससार के सभी प्राणी गिरि लता वक्ष विश्वात्मा के ही रूप हैं। इनकी रक्षा करना ही मन्वी भक्ति है। उत्पीड़ित रोगी व व्यथित जना की पुकार एवं लोक उन्नायक का उपदेश सुनना श्रवण भक्ति के अन्तर्गत अनादी व मने मटका को राह निखाना वातन के अन्तर्गत देव प्रेमियों व आत्म-त्यागियों के प्रति श्रद्धा रखना व दाना के अन्तर्गत मवभूतोपकारी एवं पन् दित जानियों को उठाने की चष्टाओं का दास्य भक्ति के अन्तर्गत विवश विद्यवाद्या, अनाथों आश्रिता का स्मरण कर उन्हें प्राण दाना स्मरण भक्ति के अन्तर्गत, विपदा में पड़े हुए मनुष्य के दुःखों का निवारण करने के लिए अपना तन प्राण समर्पित कर दाना आत्म निवदन भक्ति के अन्तर्गत, तृपित को जल और भूखे को अन्न दाना अथवा भक्ति के अन्तर्गत प्रकृति के उपादानों और जीवा से सद्भावना द्वारा काय लना सद्य भक्ति के अन्तर्गत तथा समाज की पद-दलित जातियों को आन्तरपूर्वक सम्मान दाना पद सेवन भक्ति के अन्तर्गत रख कर राधा ने भक्ति की भावना का नया रूप दिया है तथा तबधा भक्ति की नवीन रूप में व्याख्या का है। अलौकिक दृष्टर के वन्ने लोकमव, ही उसकी भक्ति का के त्र बिन्दु है।

प्रिय प्रवास के कृष्ण न तो सूर के जीतामय कृष्ण हैं एवं न रीतिकाल के शृंगारी नायक। व आधुनिक युग की भावना के अनुकूल कमयागी राष्ट्र जाति के मानवता, सबभूत के हित में लीन लोक नायक हैं। स्वजाति उदार उनका महान् धर्म है। स्वजाति की दुदशा व मनुष्य माय की विगहणा त्छ कर के उत्तेजित हो जाते हैं। उनका सम्पूर्ण चरित्र लोकसेवा के लिए समर्पित एक जीवन है। स्वजाति के जन्म भूमि के हित विरुद्ध ब्याल से भी भीत न हो उसका वध करने व यमुना में डूबने हैं वन में आग लगने पर गोपों और गायों को बचाने के लिए अपने मायियों की प्राणा की ममता छोड़ कर पालन की प्रेरणा देते हैं तथा स्वयं रस काय में हाथ बटाते हैं। अपने अप्रुव साहस व कतव्य परायणता द्वारा उन्होंने गाने व बलराम की सहायता से अजय वर्पा से अज्ञ निवासियों की रक्षा की, राजकुमार होकर भी वे हीन जनों के यहाँ जाकर उनके दुःखों को पूछने व उनका निवारण करने हैं।

कृष्ण सबभूतहित में लीन रहते हैं व सामान्यतया पिपीतिका का भी प्रबन्ध मानते हैं किन्तु समाज की अहितकारी सुप्रवृत्तियाँ का नष्ट करने के लिए हिंसा उनका प्रापद्वय बन जाता है। अस्तु, मथुरा जाकर कृष्ण वही का राजनीति के प्रपञ्चों में शुद्ध हो उठते हैं। भातनाथी दम का बंध करके व पदवात् समाज कल्याण के उद्देश्य व शत्रुघ्न का दमन करने के लिए कृष्ण मुष का तन मथुरा में ही रह जाते हैं। हरिभीषण जा ने इस स्थल पर कृष्ण एवं ब्रजवासियों के चरित्र पर नवीन प्रकाश डाला है। मथुरा में कृष्ण राजनीतिक प्रपञ्च में व्यस्त रहते थे भी यशोदा, राधा व ब्रज के साथियों की याद उन्हें परित्यक्त करती रही। ब्रज निवासी रोम रोम से कृष्ण के प्रति लीन भाव की कामना करते हैं तथापि कृष्ण के लोक सेवक रूप को जानने के कारण वे यह भी साक्ष्य हैं कि यदि कोई कुप्रपञ्च हो तो श्याम का ब्रज में आना उचित नहीं होगा क्योंकि लावहित हो श्याम का श्रेय है। ब्रजवासियों को यह भी विश्वास है कि यदि मथुरा में प्रपञ्च जाये तब ही फलता ता श्याम द्विष्ट भी मथुरा में नहीं ठहरते व ब्रज लौट आते। कृष्ण का उद्भव के साथ ही श भोजन हुए भी उ होन सावसवा के आदेश को ही स्पृहणीय बनाया। व्यक्तिगत सुखमय जीवन स्पृहणीय है परन्तु विश्वहित में लागू रहना उच्चतर है मुक्ति आत्मा का सुख है परन्तु आत्मोत्सव उत्तम भी महात्मा का श है। मुक्ति की चाह करनेवाले का त्यागी नहीं वह सक्त। वह अपना ही स्वार्थ सिद्ध करता है। सच्चा त्यागी तो वह है जो लोकसंग में निरत रह। लोकसंग के आदेश का हरिभीषणजी ने कृष्ण के चरित्र द्वारा अत्यधिक दृढ़ता में पालन किया है। और राधा ? उसने कृष्ण को पति रूप में करने की सख्य कामना की थी परन्तु कृष्ण मथुरा से लौट कर ही न प्राय और उपदेश भेजा लोकसंग में महात्मा धर्म है। राधा ने सुपुत्र उद्भव के सदृश की सुन सुन कर उसे स्वीकार किया मही न-एक दृढ़ संकल्प भी कर लिया

घाणा भूत् न प्रियतम की विश्व के काम घाऊ

मरा कोमार ब्रज भव में पुराता प्राप्त भाव

कृष्ण प्रेम में घनय राधा को अपने हृदय में यह भाव जगान के लिए कितना आत्मीयता न करना पडा। प्यारे जीव जग हित करें गह चाहे न भावें। हरिभीषणजी का राधा के इस हृत् स्वरूप को मूर की राधा की निरीन्दावस्था में मुग्धता करने पर पाठक कल्पना कर सकता है कितने आमुषों का अथवा व्यथा का समुद्र आर्थों की पुत्रियों में घान में पहन ही न मूल गया है। और यमात्मा के प्रश्न का उत्तर देन हुए कि क्या कृष्ण ब्रज न आगे जा यूँ उमके कपोतो पर बरबन टपक पट उर वह घान नीर' हो वह कर लोकसंग में रत रही है। मूर के उद्भव कृष्ण के सामने राधा की दगा का बलन करते हुए उसकी निरीन्दावस्था का चित्रण करते हैं। यहाँ 'प्रिय प्रवास' के उद्भव की कृष्ण के सम्मुख राधा के चरित्र

के सबध म कुछ कहने का अवसर मिलता तो क्या आश्चर्य है अपन ही जीवनात्म्य की प्रतिध्वनि की अनुगूँज राधा के शब्दा म पाकर कृष्ण कृतकृत्य न हा जात । राधा अपना शेष जीवन वहा देती है जहाँ युग की सबसे पीढित रस उम्हें पुकारती है

वे आया थीं मुजन सिर की शामिका थी खला की
 बगाला थी परम निधि थी श्रौपथी पीढिता की
 दीना की थी भगिनी जननि थी आश्रिता की
 आराध्य थी ब्रज भवनि की विश्व की प्रेमिका थी

रूप का आकषण उपलब्धि स वञ्चित रह कर प्रकृति की प्रत्येक वस्तु म प्रियतम का विश्वात्मा के रूप म नशन करता है तथा उसकी परिणति विश्व प्रेम व मानव सेवा के रूप मे दिखलाई देती है ।

ऊपर जिन रचनाओं की विवेचना की गयी है उनमें कुछ द्वितीय युग व बाद उस काल की हैं जज छायावादी काव्य-रचनाओं का प्रकाशन प्रचुर मात्रा म हा रहा था । वस्तुतः आयावादी युग की रचनाओं म व्यक्त धार्मिक भावना जीवन स इतनी सबधित नहीं थी जितनी आध्यात्मिक चिन्तन मे । यह आध्यात्मिक चिन्तन भी साधना मय न होकर पुस्तकों के अध्ययन का परिणाम था । छायावादी काव्य म व्यक्त आध्यात्मिक विचारवारा पर पाश्चात्य प्रभाव गहरा है । छायावादी कविना व अन्त गत रहस्यवादी काव्य धारा पर जमन आध्यात्मवाद का प्रभाव विशेष रूप से पामा जाना है । प्राचीन रहस्यवाद व आधुनिक रहस्यवाद का भेद जीवन व प्रति दृष्टिकोण का है । प्राचीन रहस्यवादी सासारिकता को ईश्वर प्राप्ति के माग मे बाधक मानता था । जमन दार्शनिक हीगल के आध्यात्मवाद के प्रभावस्वरूप परिवर्तनशील जगन् मे परम सत्ता व व्यक्त सौन्दर्य का दर्शन करना आधुनिक रहस्यवाद की प्रमुख विशेषता है । जमन दार्शनिक शोपेन्हायर के दुःखवादी दशन से छायावादी कविता म वदना प्रम की समानता पायी जाती है । ईसाई सतों के आत्मा व परमात्मा सबधी प्रतीका का छायावादी कविता म बहुलता से प्रयोग हुआ है तथा फ्रायमिनी प्रतीकवाद के प्रभाव से इसम मागीनिकता व विद्यात्मकता का शलीगत समावेश हुआ । छायावादी कविता म पयन इन आध्यात्मिक विचारों की बिस्तारपूर्वक विवेचना हम आग 'छायावादी रहस्यवाद' शीपक अध्याय के अन्त म करेंगे ।

ईश्वर व धम सबधी मान्यताएं धम निषेध नैतिकत

प्रगतिवाद का प्रेरक दशन मानसवाद भौतिकवादी होन व कारण श्वर व धम की सत्ता में विश्वास नहीं करता । रूसी श्रांति व विधायक नेनिम ने धम को अफीम की सजा प्रदान की (Religion is an opium) । रूस की तत्कालीन परिस्थिति मे श्रांति स पूव किसान आन्दोलन (मार्च १९०६) की पादरिमा

न म मना को तथा जारजाही का साथ लिया । जन्ति की सकनता के पश्चात् प्रवेन हमी सनिको (जार की शेष सता) व साथ मिल कर उहोने सोवियत गणतन्त्र को अग्रस्थ करने का प्रयत्न किया तथा विन्गी जानूसा का नाम दिया । रूस में अकाल (सन् १९२१) के समय गिजाधरा की सम्पत्ति को सोवियत सरकार ने राष्ट्रीय हित में उपयोग करने की घोषणा की तब भी उहोने उसका विरोध किया । अतः प्रत्येक महान् धर्म के साथ जो रूढ़िवादिता व प्रतिश्रियाशीलता का रूप लगा रहता है उसी रूढ़ि व प्रतिश्रिया का रूस के तत्कालीन धार्मिक क्षेत्र में निदशन हो रहा था । धर्म भीर जनता को ईश्वर व परलोक का भय लिखता कर पादरी अकमण्य व भाग्यवादी बनाने का प्रयत्न कर रहे थे तथा धर्म शोषक वर्ग के हितों की रक्षा करनेवाला साधन व शोषण का महयोगी बन गया था । धर्म के इसी रूप का प्रगतिवादी साहित्य में अण्डन मिलता है ।

भारत में भी धर्म की परिस्थिति तत्कालीन युग में अधिक भिन्न नहीं रही है । आध्यात्मिक साधना से हट कर उसका स्वरूप रूढ़ि व प्रतिक्रिया से पूर्ण हो गया था जिससे मूल में बभ्रव-विनासिता का गहन रूप निहित था । प्रगतिवादिया की दृष्टि में ईश्वर व धर्म भी वतमान आर्थिक अल्पम्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बनाय रखने का साधन हैं अतः उनका अण्डन वाछनीय है ।

अचल ईश्वर का घृणा की धूलि से सत्कार करने है । * दिनकर का कवि दूध व अमावस में मर बच्चो की कद से, हडिया की पुकार सुन नक्षत्रा से उस भगवान का पता पूछता है जो बच्चो के प्रति भी इतना निदय बन गया कि दूध के अमावस में उनका प्राण घुटने दिये । वह भगवान के निवास स्वर्ग को नूतन व लिए अभियान करता है । + स्वर्ग-नूतन की कल्पना उनकी मजिल दूर नहा है' कविता में भी व्यक्त हुई है जिसमें कवि ने विनाशानुसृत मानव की गरिमा का धारण का संशोधन कर गव भरा उत्सव किया है । × बालकृष्ण शर्मा

• धवन — प्राज्ञ भी जनजन जिम करण्ड हाकर यात्र करन
नाम ल जिमवा गुनाग व निण परिष्ठा करन
किन्तु मैं उसका घृणा की धूलि से सत्कार करन

— दिनकर — दूध ! दूध !! तार बोरो इन बच्चा व क भगवान कहा है
हटा व्योम व मय पय में स्वर्ग नूतन हम आन है
दूध ! दूध !! ओ वरम तुम्हारा दूध शोजन हम जान है

> दिनकर — स्वर्ग के मन्त्र का जाकर लहर करन
राज ही आकाश चान जा रह है व
रोकिय जम बन इन स्वप्नवालों का
स्वर्ग का नौ धार बन जा रह व

नवीन की 'भूटे पत्ते' कविता में मनुष्य को मिररमग क रूप में धृणित विवृति का रूप देनेवाले ईश्वर के प्रति गुलगती प्रतिहिंसा तथा आधिक् वधम्यपूर्ण मामाजिक व्यवस्था का नष्ट करने की दृढ़ भावना व्यक्त हुई है ।* केदारनाथ अग्रवाल की 'वरदान' कविता में एक ऐसी गमवती नारा का चित्रण है जो मंदिर में स्वर्णसिंहासन पर बठी प्रभु-मूर्ति को देख कर कामना करती है कि उसकी कोमल म मनुष्य जीवधारी उत्पन्न न होकर यदि परपर ही पदा हो जाय तो वह गायक अधिक् भाग्यशाली हो सकती है परंतु, धनहीन के यहां उत्पन्न मानव प्राणी का जीवन काटमय ही हो सकता है । X

प्रगतिवाणी कविता में जहां आधिक विषमता क मूल में ईश्वरीय विघान एक ईश्वर के प्रति भावनापूर्ण आक्रोश प्रकट हुआ है वहां तथा माहिय में ईश्वर क धर्म के नाम पर भोली जनता को भुलावा न का मत्य अनावन किया गया है । प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' में जमींदार राय साहब के व्यवहार की किमान नायक होरी प्रशंसा करता है तथा अपने पुत्र गोबर क द्वारा जमींदार की आलोचना क विरुद्ध दुहाई देता है "छोटे बड़े मगवान क घर सब बन कर घात हैं । संपति बड़ी तपस्या में मिलती है । उहोनें पूव में म जम कम किये थे उसका धानद नाग रहे हैं । हमने कुछ नहीं मचा ता नागें क्या ?" + पर गोबर राय साहब की ईश्वर भक्ति पर कठोर व्यंग्य करता है जिसक सामन नारी पराम्त-सा हो जाता है "यह पाप का धन पचे कम ? इसीलिए नान धम करना पडता है एक दिन ऊव गोडना पड़े तो सारी भक्ति भूय जाय ।" •• यशपाल क देशद्राही

• बालकृष्ण शर्मा नवीन 'भूटे पत्ते' शीपक कविता

लपक चाटते भूटे पत्ते जिस दिन मैं देखा नर को

उस दिन सोचा क्यों न लगा हूँ आज आग इस दुनिया भर की

यह भी सोचा क्यों न टेटुआ घाटा जाय स्वयं जगपति का

जिसने अपने ही स्वरूप को रूप लिया इस धृणित विवृति का

X केदारनाथ अग्रवाल "युग की गया" 'वरदान' शीपक कविता

वमव की विशाल छत्र छाया में

स्वर्ण सिंहासन पर

रक्षणी देख मंदिर में पत्थर की मूर्तियाँ

धुब्ध हो गमवती ईश्वर में मांगती है वरदान

केवल पापाए हो

कोल की मेरी भी सन्तान

+ प्रेमचंद, 'गोदान', सरस्वती प्रेस बनारस, नवां संस्करण १९४०

पृष्ठ २२

•• वही पृष्ठ २३

न मत्सना की तथा जारगाही का साथ दिया । आन्नि की सफलता के परवान् श्वन्
 हमी सनिना (जार की शेष सेना) क माय मिल कर उन्होंने सोवियत गणतन्त्र की
 अग्रस्थ करन का प्रयत्न किया तथा विन्गी जासूसा का काम किया । रुस म अकाल
 (सन् १९२१) क समय गिजाघरा की सम्पत्ति को सोवियत सरकार ने राष्ट्रीय हित
 म उपयोग करन की घोषणा की तब भी उन्होंने उसका विरोध किया । अत प्रत्येक
 महान् धम क साथ जा रूढ़िवादिता व प्रतिश्रियाशीलता का रूप तगा रहता है उसी
 रूढ़ि व प्रतिश्रिया का रुस क तत्कालीन धार्मिक क्षेत्र मे निम्न हो रहा था । धम
 भीरु जनता को ईश्वर व परलोक का भय सिखला कर पादरी अक्रमण्य व भाग्यवाणी
 बनान का प्रयत्न कर रहे थे तथा धम शापक वग क हितो की रक्षा करनेवाला
 साधन व शोषण का सहयोगी बन गया था । धम क इसी रूप का प्रगतिवादी साहित्य
 म स्पष्टन मिलता है ।

भारत म भी धम की परिस्थिति तत्कालीन युग म अधिक भिन्न नहीं रही है ।
 आध्यात्मिक साधना स हट कर उसका स्वरूप रूढ़ि व प्रतिश्रिया से पूरा हो गया था
 जिसम मूल म वभ्रव-विश्रान्ति का नाम रूप निहित था । प्रगतिवादिया की दृष्टि
 म ईश्वर व धम भी वतमान आर्थिक वपम्पपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को बनाय रखन
 का साधन हैं अत उनका स्पष्टन वाछनीय है ।

अबल ईश्वर का पृष्ठा की धृति से सत्कार करन है । * दिनकर का
 कवि दूष क अभाव म मर बच्चा की कन्न स, हड्डिया की पुकार सुन नगत्रो
 स उस भगवान का पा पृष्ठा है जो बच्चा के प्रति भी इतना निम्न बन गया
 कि दूष के अभाव म उनका प्राण घुटने लिये । वह भगवान के निवास स्वर्ग को
 नूटन क लिए घमिषान करता है । † स्वर्ग-मूटन की कल्पना उनकी मजिन दूर
 नहा है कविता म भा ध्यत * है जिसम कवि न विनामा-मुस मानव की गरिमा
 का पाद का सशोधित कर गय मरा उल्लेख किया है । × बाबुगण शर्मा

* धमन — पाद भी अन्जन जिम करयद पाकर पाद करन
 नाम स जिमना गुणना क निम परिधान करन
 किन्तु मैं गका पृष्ठा की धृति स सत्कार करन

— दिनकर—दूष लिये । तार डोगो इन बच्चा क क भगवान कन्नो है
 ग्टो ब्योम के मय गय स स्वर्ग नूटन हम धान है
 दूष । दूष । पा क्यम तुम्हारा दूष गोरन हम जान है

दिनकर—स्वर्ग क मघान का जाकर मकर करन
 राज ही धाधान चडन जा रहू है व
 राहित जम बन इन स्वधनधानों का
 स्वर्ग की ही पार करन जा रहू व

नवीन की 'भूटे पत्ते' कविता में मनुष्य को भिखमगे के रूप में घृणित विवृति का रूप देनेवाले ईश्वर के प्रति मुलमती प्रतिहिंसा तथा धार्मिक व्यपश्यपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को नष्ट करने की दृढ़ भावना व्यक्त हुई है। * केदारनाथ अग्रवाल की 'वरदान' कविता में एक ऐसी गर्भवती नारा का चित्रण है जो मंदिर में स्वर्णसिंहासन पर बठी प्रभु-मूर्ति को देख कर कामना करती है कि उसकी कौशल में मनुष्य जीवधारी उत्पन्न न होकर यदि पत्थर ही पैदा हो जाय तो वह शायद धार्मिक भाग्यशाही हो सकती है परंतु, धनहीन के यहाँ उत्पन्न मानव प्राणी का जीवन कष्टमय ही हो सकता है। X

प्रगतिवादी कविता में जहाँ धार्मिक विषमता का मूल में ईश्वरिय विधान एवं ईश्वर के प्रति भावनापूर्ण आशीर्ष प्रकट हुआ है वहाँ कथा-माहित्य में ईश्वर के धर्म के नाम पर माली जनता की नृनाश करने का मर्यादाबद्ध किया गया है। प्रपञ्च के सपनाम 'गोदान' में जमींदार राय मानव के व्यवहार की क्रियात नायक हाथी प्रशंसा करता है तथा अपने पुत्र गाँव के द्वारा जमींदार की आशीर्षना के विरुद्ध दुहाइ देता है "छाटे बड़े भावान के घर में बन कर घान हैं। संपत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उहाँन पूर्व में मंत्रम कर्म किया था उसका घान भाग रह है। हमने कुछ नहीं मचा ता नागें क्या ?" + पर गोबर राय माहब की ईश्वर भक्ति पर कठोर व्यंग्य करता है जिसके सामने नारी पराधन-सा हो जाता है "यह पाप का घन पचे क्या ? मीठिया घान घर्म करना पड़ता है एक दिन ऊँच गोहना पचे तो सारी भक्ति भुज काय।" • • • • •

* बालकृष्ण शर्मा 'नवीन भूटे पत्ते' शीर्षक कविता

लपक चाटते भूटे पत्ते जिस दिन मैं देखा तू का

सस दिन मोचा क्यों न लगा है यात्रे प्राण तब दुनिया भर का

यह भी माचा क्यों न देखा घान तब पर जगपति का

जिसने अपने ही स्वल्प को तब किया इस घृणित विवृति का

X केदारनाथ अग्रवाल "धुग की गया" वर्णन' धार्मिक कविता

ईश्वर की विशाल छत्र छाया में

स्वर्ण सिंहासन पर

रखती देल मंदिर में पत्थर का मूर्तियाँ

धुग्य हो गर्भवती ईश्वर में मागती है वरदान

कवल पाषाण हो

कोल की मरी मी सन्तान

+ प्रेमचन्द, 'गोदान', मरस्वती प्रेस बनारस, नवीन संस्करण १९४६

पृष्ठ २२

•• वही पृष्ठ २३

उप-यास म उप-यास के तायक श० ख० ल० को पत्र म उदा कर ले जान क परचार
 यजीरी उसे कलमा पड़ा कर मनुष्यमान बना ला है। मद्रा इम धम-परिवतन की
 मजात समझ कर बेवमी की घबस्था म हस कर सह लेता है। गाम्प्रत्यायिक मायता
 पर ध्याय करते हुए यह ईश्वर व धम म धविश्यास प्रकट करता है 'धम और
 सम्प्रत्याय मत्यु व वा* मनुष्य को मगवान नव पट्टधाने की मज्जिमयां हैं। परंतु
 जब इम जीवन क मकट म गी मगवान न उमरी मुख न सी तब मविध्य म उनका
 वह क्या विश्वास करे ? * अज्ञेय धामिर रुडिया का धाधार ही अ ध
 विश्वास बनला कर उनका विगध करते हैं 'वह (धर) सिद्ध करना चाहता था
 कि सुधारो म भी जो प्रचलित नव परम्परा है कि रुडियां किमी जमाने में ठीक
 थी क्योंकि उस समय की परिस्थिति क लिए बुद्धिमता थी पर धय नयी परिस्थिति
 म असागत हो गयी हैं-वह भा* तपूण है क्योंकि बहुत स विश्वाओं की जट नधान
 या प्राचीन किसी भी परिस्थिति म धनिवाय नहीं है उनको जट है
 विशुद्ध अ ध विश्वास।' +

ईश्वर व धम म विश्वास न रगत हुए भी प्रगतिवाणियों ने मनुष्य के
 व्यवहार म नतिजता का धारोप मानव-स्वभाव क धाधार पर किया है।
 अनीश्वरवाणी प्रो० जूलियन हक्सले (Prof Julian Huxley) प्रकृति की नियम
 बद्धता के कारण ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करने की कोई आवश्यकता अनुभव
 नहीं करते। (I do not believe in the existence of god or gods so far
 as we can see that the universe rules itself) इसी प्रकार प्रेमचन् क
 उप-यास गोदान के पात्र प्रो० मेहता का कथन है 'अगर ईश्वर क विधान
 इतने अज्ञेय है कि मनुष्य की समझ में नहीं आते तो उन्हें मानने ही म मनुष्य का
 क्या सतोप मिल सकता है।' × प्रो० हक्सले मानव प्रकृति के विभिन्न पक्षों
 के सामञ्जस्य को ही मुक्ति मानते हैं तथा मानव स्वभाव की विभिन्न रुचियों के
 उद्घाटनाथ अतीविक तत्व की क पना यथ समझते हैं

I believe that there exists a scale of hierarchy of values
 ranging from simple physical comforts to the highest satisfaction of
 love aesthetic enjoyment etc I do not believe that these are

- यशपान 'देशद्राही विप्लव कायालय लखनऊ १९४६ पृष्ठ ५६
- + अज्ञेय जबर एक जीवनी भाग २ सरस्वती प्रेस बनारस द्वितीय
 संस्करण १९४७ पृष्ठ १४७
- × प्रेमचन् गोदान सरस्वती प्रेस बनारस, नवा संस्करण १९४८
 पृष्ठ ४०६

transcendental in the sense of being vouchsafed by some external power of divinity They are the product of human nature interacting with the outer world salvation means achieving harmony between different parts of our nature ”

“गोदान” के प्रो० मेहता के श० में प्रो० जूलियन हक्सले के उपरोक्त विचारों की ही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है और यह जो ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है इस पर ता हमे हसी आती है । यह मोक्ष और उपासना अहंकार की परानाथा है जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है । जहा जीवन है, त्रीडा है, चहक है प्रेम है वहीं ईश्वर है और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना और मोक्ष है। + मेहता चाहे अनीश्वरवादी हों कि तु उपासकार ने उनके चरित्र को पूण नतिक चित्रित किया है । यशपाल के “दादा कामरेड” उपासका पात्र राबट अनीश्वरवादी है । लेखक उसकी नास्तिकता को ही उसक नैतिक आचरण का कारण सिद्ध करने के प्रति सचेष्ट दिखाई देता है । एक समय के प्रेमी प्रेमिका अब ववाहिक जीवन व्यतीत करने पर भी विचार-परिवर्तन के कारण एक दूसरे से अलग रहते हैं । राबट की पत्नी पनोरा के उसके किसी अन्य प्रेमी से गम स्थापन हो जाता है और वह राबट से प्राथना करती है कि यद्यपि वह पहल से ही तलाक की इच्छुक रही है किंतु जब तक वह शिशु का प्रसव न करे राबट उसे अपनी पत्नी बनाये रखे जिससे कि समाज में उसे व उसके शिशु को लज्जित न होना पड़े तथा राबट कुछ आर्थिक सहायता भी भेजे । निश्चय ही यह राबट के लिए कठिन परीक्षा का समय है । पर इस अवसर पर वह जिस नतिक दृढता का परिचय देता है वह ईश्वर व धर्म की दुहाई देकर वास्तविक जीवन की समस्याओं से कतरा जाने की भावना से कही मयत्तर है । वह शल से कहता है ‘ किसी को मुसीबत में देख कर उसकी परवाह न करना भी तो कसूर है । यदि पनोरा मेरी जगह होती और मैं पनोरा की जगह तो वह कहती तुमने पाप किया है, तुम उसकी सजा भोगो । और वह स्वयं भगवान से प्रायना कर लेती—हे भगवान तू दयामय और “यायकारी है मुझ सकट में बचा । और उमका कतव्य समाप्त हो जाता । उसकी आत्मा और मन शान्त हो जाता । परंतु, मैं क्या करू ? मैं तो इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि वह मयत्तर सकट की परिस्थिति में है ।” X और राबट फलोरा को तत्काल तलाक न देने एवं आर्थिक सहायता भेजने का निश्चय करता है ।

ईश्वर व धार्मिक रुढ़िया में विश्वास न करते हुए भी प्रगतिवादियों का मनुष्य

+ वही, पृष्ठ २६४

X यशपाल ‘दादा कामरेड’, विप्लव कार्यालय, लखनऊ तीसरा संस्करण १९४३ पृष्ठ १६१

की सद्बतिया म विषयात प्राट होता ३ । अगाति प्रगति ने माग ईश्वर व धामिब
 हृदियों क प्रति हमारा विषयात हिना िया है । तूता रहस्यवादी भी आज ईश्वर
 के सबध म कहन लग हे 'ईश्वर को मरने दी यह फिर जी उठेगा-नव नव हों
 म । (पत) तन मनुष्य न नतिा मूल्यों क लिए कौन सा आघार है ? चाहे हम
 मध्यात्मवादी हो या भौतिकवाी हम यह आघार अपनी आंतरिकता म पाना
 होगा । वाई भी उास्थिति नाह्य उपस्थिति चाहे बह ईश्वर ह्यः ह। 'हारी नतिकता
 का आघार नही हो सकती । प्रगतिवादी बाह्य आवश्यकता के रूप म नतिकता को
 अपनाते हैं कि तु व ह्य आवश्यकता अपनी मा तरिकना के प्रति आलें मू द
 कर अनतिक व्यवहार के लिए बाध्य भी तो कर सकती है । हमारी नतिकता
 का आघार अन्तत स्वय हमारा आंतरिक विवेक ही हो सकना है । प्रगतिवाद
 नतिक आघरण के लिए ईश्वर व धम क प्रतिमानो का बहिष्कार करता है । हम सम
 ऋते हैं कोई भा बाह्य प्रतिमान उचिन नहीं है बह ईश्वर हो या बाह्य परिस्थिति ।
 अवश्य हम वह स्वत नता प्राप्त नहीं है जिसके लिए दास्तवस्की के उपग्यास के
 एक पात्र ने कहा था कामरेडो, मैंने आज एक समाचार सुना है ।' कमरे के सभी
 साथी झुठे हो गये । क्या समाचार है कामरेड ? कामरेडो मैंने सुना है नि ईश्वर
 मर गया । क्या ईश्वर मर गया ? उमग मे मर कर उन सब ने रहा 'तब हम
 कुछ भी करने को स्वतत्र हैं ।'

म भारत माग्य' आत्म हत्या करने के समय भारत को जागृत होने के लिए उद्योग देना है तथा अंग्रेजी राज्य का सामाजिक सुधारों के लिए समीचीन धक्का बटाता है 'दिलो विद्या का सूत्र पश्चिम से उभर हुआ चला आता है। अब सोने का समय नहीं है। अंग्रेज का राज्य पाकर भी न जगे तो अब जागोगे। मूर्खों के प्रचंड शासन के दिन गए अब राजा ने राजा का स्वत्व पहिचाना। विद्या की घर्षा फल चली सबकी सब कुछ कहने सुनने का अधिकार मिला, देश विदेश से नई-नई विद्या और कारीगरी आई। तुमको उस पर भी वही सीधी बातें, भोग के गोले, प्रामगीत वही बाल्य विवाह भूत प्रेत की पूजा, जन्म पत्नी की विधि, वही घोड़े में हातोप गण हाकन की प्रीति और सत्यानाशी चालें," •

समाज-सुधार

भारते दु युग में जिन सुधारों की माग साहित्य में प्रस्तुत की गयी वे सुधार भारतीय परम्परा की विवृति और नवीन पश्चिमीय सम्यता के ससग से उत्पन्न दुगुणों से संबंधित हैं। भारते-दु को इस बात का धोम है कि "लिया भी तो अंग्रेजों से धौगुन"। बालकृष्ण मट्ट भारतीयों की अनुकरणप्रियता पर आक्षेप करते हुए लिखते हैं कि केवल बुराइयों का अनुकरण करने में भारतीय अपनी तत्परता दिखाते हैं किन्तु अंग्रेजों के सद्गुणों का अनुकरण करना उन्हें अभीष्ट नहीं। + प्रतापनारायण मिश्र भी केवल अंग्रेजों की नकल कर कोट पेंट पहनने व अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीयों को अंग्रेजों की स्वजाति हितविता स्मरण दिलाते

• भारते-दु हरिश्चंद्र 'भारत दुदशा' (१८८०) भारते-दु नाटकावली द्वितीय प्रेस पृ० ६३४

+ बालकृष्ण मट्ट मट्ट निबंधावली भाग २ पृष्ठ ४३

जब से मुसलमान यहां के जेता हुए उस समय से हम उनकी चाल, ढाल नगिस्त बरखास्त के कायदे न केवल उनकी भरबी, फारसी तथा उर्दू भाषा बरन् दीन इस्लाम को अब तक अपनियाते आये आय से अब बदन हो गये यहाँ लौ कि मुसलमानों को अपना एक अंग बना लिया अब पचास साठ बरसे हिन्दु मुसलमान दोनों अपने नय नेता का अनुकरण कर रहे हैं। केवल उनमें जो कुछ बुद्धि है उसी का उनमें भलाई क्या है उसका नहीं उनका सा मध्यवसाय धुन बाँध के किसी काम को करना विघ्न होता रहे पर जिसे आरम्भ किया उसे कर के तब छोड़ना, स्वजाति पक्षपात, विद्याभ्यास एवम्, साहस धय, वीरता, विचार की दृढ़ता आदि उनके गुणों की ओर कभी ध्यान नहीं देते उनकी सी भोग-लिप्ता पान (मद्य) दोष इत्यादि को भलबता अपना रहे हैं।

हैं । * अस्तु फैशन मद्यपान मास भक्षण अशिक्षा फूट, जुघ्ना व्यभिचार आदि के विरुद्ध इस युग के साहित्य में राशि राशि विचार यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं । तत्कालीन समाज में प्रचलित कुप्रवृत्तियाँ देशोन्नति में बाधक थीं ।

भारतेन्दु ने पाश्चात्य सभ्यता के उस कुप्रभाव को देखा था जिसके परिणाम स्वरूप बंगाल में नीलकण्ठ, वृष्टीमोहन, माइकल मधुसूदन प्रभृति महानुभाव स्वधर्म को छोड़ कर ईसाई बन गये थे । यह प्रभाव बंगाल तक ही सीमित नहीं रहा । मास मद्य-सेवन की घोर आकृष्ट होकर भारतीयों ने ईसाई मत को अपनाना प्रारम्भ किया था । भारतेन्दु ने एक ओर मत मता तरों के भगडों एवं दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता के अघानुकरण पर क्षोभ प्रकट किया है

भारत में एहि समय भई है सब कुछ बिनाहैं प्रमान हो हुई रगी
आधे पुराने पुरानहि मानें आधे नये किरिस्तान हो हुई रगी ।†

भारतेन्दु युग की धार्मिक विचारधारा का पिछले अध्याय में विवेचन करते हुए हम देख चुके हैं कि इस युग के लेखकों ने मंदिर के पुजारियों आदि के मास, मद्य सेवन की प्रवृत्ति पर गहरा क्षोभ प्रकट किया है । धार्मिक सस्थाओं में मास मद्य-सेवन की प्रवृत्ति फल रही थी इसी से हम कल्पना कर सकते हैं कि समाज में यह प्रवृत्ति कितनी फल गयी थी । भारतेन्दु के वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में यमराज के सामने एक पात्र कहता है 'अग्नेयों के राज्य में इतनी गोहिंसा होती है, सब हिन्दू भीफ खाते हैं उन्हें आप दंड नहीं देते ।'× वस्तुतः भारतेन्दु ने मास मद्य सेवन का विरोध बस धार्मिक दृष्टि से नहीं किया किंतु इसमें वे राष्ट्रीय जीवन का पतन की ओर बतते दख रहे थे । वे ईसायियों या मुसलमानों से सद्गुणों को लेने के लिए तत्पर थे—'लखहु एक कसे सब मुसलमान त्रिस्तान' ।❖ किंतु

* प्रतापनारायण प्रयावली विजयशंकर मूल (सपा) नागरी प्रचारिणी समा वाराणसी, प्रथम खण्ड स० २००४ पृ० ६

सबको स्वांग बनाते हो तुम किससे कम हो जो काले रंग पर भी कोट पतलून पहिन कर निरे पनाडी ही बने जाते हो ? ऊपरी बातों की नकल और अपनी बोली में कँट पट मिलाने के सिवा अग्नेयों का सा स्वजाति हितपी काम तो कोई भी न देखा ।

† भारतेन्दु वर्षा-विनोद (१८०) भारतेन्दु प्रयावली, द्वितीय भाग नागरी प्रचारिणी समा काशी पृ ४२

× भारतेन्दु 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', भारतेन्दु नाटकावली, इण्डियन प्रेस, पृष्ठ ३८६

❖ भारतेन्दु "हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान" (१८८७) भारतेन्दु प्रयावली द्वि भाग

उनकी बुराईयों के अनुकरण के विरोधी थे ।

भारतेन्दु युग के साहित्य में नारी स्वातंत्र्य की भावना के रूप में भी समाज सुधार की प्रवृत्ति पाई जाती है । भारतेन्दु ने नवीन वातावरण में पश्चिमीय नारी समुदाय को स्वतंत्र वायु में सास लेते देखा था और देखा था कि जीवन के पथ पर वे किस प्रकार हसते हसते प्रगति की ओर अग्रसर होती हैं । इसके विपरीत उन्होंने अपनी मातृ जाति की ओर हृत्पात किया और गायी शादी के अवसर पर कन्या का क्रय विषय होना ही दुःख मुही बचिबया समुदाय भेज दी जाती है जो यौवन के प्रागमन के पूर्व ही विधवा हो जाती है जीवन मर ग्य की किरण नहीं देव पानी धार्मिक अथ विश्वास निरक्षरता, निष्ठलापन उनके जीवन के अभिगाथ है । नीलदेवी नाटक की भूमिका में भारतेन्दु ने भारतीय नारियाँ के लिये पश्चिमीय रमणियाँ की तरह लज्जा त्याग करना उपयुक्त नहीं ठहराया है कि तुम प्रायः बातों में भारतीय नारियों के दक्षता प्राप्त करने व अपना स्वत्व पहिचानने के वे पथ में हैं । * भारतेन्दु युग में नारी स्वतंत्रता की प्रेरणा का स्रोत यही पश्चिमात्य प्रभाव है । प्राचीन भारतीय परम्परा में परिषय प्राप्त कर उठाने पाया कि भारत में स्त्रियाँ की दशा सन्ध यही नहीं रही थी । अतः द्विगुणित उत्साह के साथ वे नारी स्वतंत्रता के उद्योग में प्रवृत्त हुए ।

नारी जीवन की प्रायः सभी समस्याओं पर इस युग के लेखकों ने प्रकाश डाला है । जीवन और यौवन से अनभिन्न शक्ति का पक्षों के बोध से माता पिता प्रयोग्य वृद्ध पति से विवाह कर देते हैं । इस कन्या विषय के सम्बन्ध में एक छोटे से वार्तालाप में भारतेन्दु उन पितामहों को प्रताड़ना देते हैं । + पर्दा प्रथा के प्रति भारतेन्दु का कथन है कि यह मुन्यमाना के द्वारा बनायी हुई कुरीति है और हम इसमें शीघ्रशीघ्र सुधार लाना चाहिये । बदलने में उद्योगों के विघना हो जाने के कारण समाज में अशान्ति और अविश्वसनीयता होगी या कि तुम जोर नतिक अनुशासन के कारण विधवा भूँग दृष्ट्याए करने लगी । भूँग-दृष्ट्याओं का रक्षण के लिये भारतेन्दु विद्या-विद्या, प्रावश्यक समझने के तथा इस सम्बन्ध में सरकार का हस्तगत भी वाञ्छनीय मानते थे । X विधवा के कष्टमय जीवन का वर्णन करते

* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'नीलदेवी' भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ६४३

+ (घ) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बचिबचन मुद्रा भाग ३ सन्ध्या ६ पृ ६५

(ख) वही सन्ध्या २ पृ १७

X भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हरिश्चन्द्र चरित्रा सङ्घ २ म० ३५ १६५

यदि सरकार कहें कि हम धर्म विषय में नहीं बोलते तो उसका हममें पहले उत्तर मुन्य । मनी ज्ञाना हमारे यही स्त्रियाँ का परम धर्म है दूसरा सरकार न बन पुरुष का शासन है ? क्या यह, धर्म प्रायः में सम्बन्ध रचना है और प्रजा का प्रायः की रक्षा करना मनुष्य पद्वि माय है । अब भी हम जा कहेंगे उमर में प्रजा के प्रायः में सम्बन्ध है इनमें सरकार का प्रवर्णन मुन्यता चाहिए ।

हुए वे शास्त्र सम्मत या असम्मत होने के पचडे म नही पडना चाहत वरन् युक्ति क आधार पर विधवा विवाह का समर्थन करते है । हिन्दी लेखकी म विधवा विवाह के सबसे प्रबल समर्थक कदाचिन् राधाचरण गोस्वामी है । उन्होने 'हि दु बाल विधवायो का 'याय ईश्वर के हाथ है और 'विधवा विवाह विवरण' नामक दो पुस्तिकाएँ लिखी जिनमें अनेक तरह की युक्तियाँ और हृदय द्रावक भावो का यक्त कर विधवा विवाह मडन का प्रयत्न किया । विधवा विवाह के प्रचार के लिये गोस्वामीजी क हृद्य म वचनी और जलन थी । * गोस्वामीजी को इस बात का दु ख है कि गायो की रक्षा का तो प्रयत्न किया जाता है कि तु बाल विधवा रूपी गोधा को बचाने की चष्टा नही की जाती । जिस तरह राधाचरण गोस्वामी समाज की सारी बुराइयाँ की जड विधवा विवाह निषेध को मानते है उसी प्रकार बाल कृष्ण भट्ट बाल विवाह को । + भारते तु युग के बहुत स नाटक यथा, शरण कृत 'बाल विवाह' (सन् १८७४), राधाकृष्ण दास कृत 'दु रि नि बाटा' (सन् १८८०) दक्कीनदन त्रिपाठी कृत 'बाल विवाह' काशीनाथ खत्री कृत 'विधवा विवाह' (सन् १८८२) तथा 'बाल विधवा सत्ताप' निडिसाल कृत 'विवाहिता विलाप' (सन् १८८३) त ताराम कृत 'विधवा विधम्बना' (सन् १८८४) देवदत्त मिश्र कृत 'बाल विवाह रूपक' (सन् १८८५) घनश्यामदास कृत 'बढ़ावरथा विवाह नाटक' (सन् १८८८), छुछहनलाल कृत 'बाल विवाह नाटक' (सन् १८९८) आदि विवाह की सामाजिक समस्या को लेकर ही लिखे गय ।

सब इस्लामवाद (Pan Islamism) का प्रसार-सामाजिक सुधारो का नवीन स्रोत

हिन्दुओ मे जिस समय ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज आदि धार्मिक संस्थाएँ

* राधाचरण गोस्वामी 'विधवा विवाह विवरण'

यह साठ लक्ष बाल विधवायें आपकी जाति मे हैं अथवा नही । यदि हैं तो इनके दुःख दूर करने के क्या उपाय ? यदि कुछ उपाय नही तो सबको एक बडे मैदान म सटा करके तोपा से उडा दीजिए । या जहाजो मे बिटला कर समुद्र मे डुबा दीजिए । नही तो एक एक पत्त का सखिया दे दीजिए । बस इसका दु ख मिटे । बस इस सृष्टि का प्रलय हो जाय । आकाश के चन्द्र सूर्य, तारागण टुकडे-टुकडे होकर गिर पडें और भारत की दीन दुलित साठ लक्ष बाल विधवाओ की अशेष यत्नणा भी इसी क साथ शेष हो ।

+ बालकृष्ण भट्ट 'नये तरह का जनून मष्ट निवधावली' भाग १ पृष्ठ १६२ ।
कर्मसिन का याह मुत्क से उठा दिया जाय, बस देश उन्नति के शिखर पर एक बारगी फलांग मार कर चढ जाय ।

समाज सुधार का काम कर रही थी उस समय सर सय्यद अहमद ने मुसलमानों में समाज-सुधार व शिक्षा प्रचार के लिए मलीगढ़ घाटोलन प्रारम्भ किया । सर सय्यद पाश्चात्य सभ्यता से सम्पर्क बढ़ाने तथा पाश्चात्य सभ्यता के आलोचकों में समाज सुधार के पक्षपाती थे । बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक मुसलमानों में राजनीतिक चेतना का सबका प्रभाव था । वे हिन्दुओं से मिल कर स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सबैष्ट हान की प्रेरणा कांग्रेसों द्वारा ही प्राप्त होना श्रयकर समझते थे क्योंकि हिन्दुओं के प्रति उन्हें सदेह था । इसी कारण साम्प्रदायिकता के आधार पर मुस्लिम लीग की स्थापना (सन् १९०८) की गई । किन्तु, राजनीतिक घटनाओं ने मुसलमानों का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का साथ देने के लिए प्रेरित किया । मुस्लिम लीग की स्थापना के पश्चात् पहले दशक तक मुस्लिम लीग ने राष्ट्रीय कांग्रेस का विरोध नहीं किया । लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन (सन् १९१६) में मुस्लिम लीग ने कांग्रेस का पूर्णतया साथ दिया । कांग्रेसी साम्राज्यवाद के विरुद्ध हिन्दु व मुसलमानों की एकता का कारण भारत से बाहर अन्य देशों में रहनेवाले मुसलमानों के साथ भारतीय मुसलमानों की एकता अनुभव करना था जो धार्मिक प्रश्न लेकर कांग्रेस के विरोधी बन गए थे । त्रिपोली पर इटली के आक्रमण (सन् १९११) एवं तदुपरान्त बल्कान में मुसलमानों की शक्ति के ह्रास में तुर्की साम्राज्य विश्वत्त्व हो गया एवं प्रथम विश्वयुद्ध महासमय में तुर्की का सुल्तान जो मुसलमानों का 'खलीफा' था इंग्लैंड के विरोधी पक्ष की ओर से उठा । भारतीय मुसलमानों ने तुर्की फारम मित्र त्रिपोली मोरक्को, चीन प्रभृति दशा के मुसलमानों के साथ एकता का अनुभव किया । इन सभी देशों में मुसलमानों की राज्य शक्ति व स्वतंत्रता का ह्रास हो रहा था इस्लाम के पतन ने मुसलमानों में सब इस्लामवाद (Pan Islamism) की भावना का प्रसार किया व कांग्रेसों के प्रति राजभक्ति की भावना छोड़ हिन्दुओं से मिल कर स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने की प्रेरणा दी । राजनीतिक क्षेत्र में द्वितीय युद्ध हिन्दु-मुस्लिम एकता के प्रयत्न का युग था जो असफल रहा ।

- Dr Sayyid Abdul atif The influence of English Literature, on Urdu Literature, Forsler Groom and Co Ltd London Pp 41

Till the beginning of this Century (muslims) had absolutely no idea of directly associating themselves with the Political movements of the country In fact they viewed them with suspicion and distrust They preferred to let the English govern rather than help their erstwhile subjects the Hindus to rule over them

राजनीतिक आवश्यकता न भारत-दु-युग म मुसलमाना क प्रति हिन्दुमा द्वारा अनुभव किय जानबाल सांस्कृतिक विभेद व मध्य-युग म मुगलमानों क अत्याचारा का भुला-भा गिया वरुपि सामान्य जनता क लिय उहें भुना पाता। घसमवसा था। अन्तु राजनीति म परिस्थितियों के अनुसार फिर फिर फूट क बीज प्रकुरित होने पर भी साहित्य म एकता व मैत्री भाव की ही प्रश्रय मिला। हिन्दी-युग म राष्ट्रीय भावना क विकास के माय हिन्दु मुस्लिम एकता क भावों का पापण हुआ। उर्दू-साहित्य इन समय साकी घोर हाला की इश्मिजाशी यविताप्रा की छोड़ कर समाज सुधार व जातीयता के भावों का अभिव्यक्त कर रहा था। हासी सिवली, आजाद इकबाल प्रभृति आयर समाज-सुधार व जातीय चेतना के विषया पर लिख रह थ। उर्दू क इन समाज सुधार व जातीयता परक अदब से हिन्दी साहित्यकार भी प्रभावित हुए। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पदसिंह शर्मा की प्रयने १० अक्टूबर १९०६ के पत्र म लिखा 'बायकुब्ज अबला विताप' की आपन खूब पहचाना आपका अनुमान ठीक है। हासी का चुपकी दान' दल कर ही हमन उय लिखा है।* मैथिलीशरण गुप्त न भारत-भारती' की रचना हासी क 'मुसद्ग' स प्रेरित होकर की। प्रेमचन् तो उर्दू स ही हिन्दी क क्षेत्र म आण थ। हिन्दी म निगना आरम्भ करने में पहल ही के विधवा विवाह की समस्या पर उर्दू म 'प्रेमा उपवास' लिख चुके थ। अत यद्यपि यह कहना अत्युक्ति है कि उर्दू साहित्य क प्रभाव स्वरूप हिन्दी में समाज सुधार व राष्ट्रीय चेतना की प्रवृत्ति का उदय हुआ क्याकि इससे पूर्व ही भारत-दु युग म इन विषया की अपनी समृद्ध परम्परा बन गयी थी तथापि समाज सुधार व दश भक्ति की हिन्दी की परम्परा को उर्दू क नवीन साहित्य क सम्पर्क स बल मिला।

नारी उत्थान की प्रवृत्ति

अतु समाज सुधार के क्षेत्र म भारते-दु युग स चली आने वाली नारी-उत्थान की प्रवृत्ति हिन्दी युग म अधिक तीव्र रूप में लिखाई देनी है। महात्मा गांधी न दश क राजनीतिक संघष म सफलता प्राप्त करने क लिए उसम नारी का योगदान आवश्यक माना। फलत नारी उत्थान क प्रयत्न किय गये।

नारी जाति की अवनति का हमारे देश म प्रधान कारण स्त्री शिक्षा का अभाव है। महावीर प्रसाद द्विवेदी स्त्री शिक्षा व नारी जागृति के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। व इस बात पर दुःख प्रकट करते हैं कि प्राचीन भारत म जहा

* महावीर प्रसाद द्विवेदी 'द्विवेदी पत्रावली (स० बजनाथसिंह विनो*) भारतीय पान पीठ, काशी प्रथम संस्करण १९५४ पृष्ठ ७८

स्त्रियां वेदाध्ययन किया करती थी व प्रथम श्रान्त व प्रथमवार म गिरी रहती हैं। रामचरित उपाध्याय के मत म स्त्रियों को शिक्षा देने स प्रथम सामाजिक युगदर्शक स्वत नष्ट हो जाएगी। वे स्त्री शिक्षा को पूर्ण प्रथा दूर होने का उपाय बतलान हैं। पूर्ण प्रथा समाप्त होने पर दुराचार पतने की घातका प्रकट करनेमाला के प्रति मिश्रव धुमो का कथन है गुजरात व बम्बई म पूर्ण न होने पर इस प्रकार की कोई शिवायत नहीं हुई। स्त्रियों को विद्वान बना कर हम उनसे स्वीन नहीं दितानी है उनसे बाल डास नहीं नचांग है, प्रेम पत्र लिखवा कर उह आचरण भ्रष्ट नही बनवाना है तथा कोशिलप की प्रथा नहीं प्रारम्भ करना है-इस प्रकार व युवक बनवाना कदापि आचरण भ्रष्टता नहीं है। आचरण की दुहाई देकर उन्नति के माग से मुह फेर लेना उचित नहीं है। क्या भवनत दशम म रह कर हम दिन रात आचरणो को ही चाटत रहेगे। और वे आचरण इस प्रकार बन नी कब तन रह सकेंगे ? जब घनाभाव स पीडित होकर एक दिन नारो को घर से बाहर लाना ही पडेगा तो उडे शिक्षा दिला कर समाज म उनकी प्रतिष्ठित स्थान क्यों न दें ? " अधिकारा लखक स्त्री शिक्षा के पक्षपाती तो थे कि तु व स्त्रियों को पुष्पो से मिश्र प्रकार की शिक्षा देना चाहते थे जिससे कि स्त्रियां सदृशहणी बन सकें तथा पुष्पो से प्रतिस्पर्द्धा करने के बदले उनस सहयोग करें। समयद घनीरमली (मीर) स्त्री शिक्षा के पक्षपाती होते हुए भी स्त्रियों के लिए पाश्चात्य शिक्षा को उचित नहीं मानते- 'स्त्रियों म उस समय तक अच्छी योग्यता नहीं प्रा सकती जब तक उहे पुष्पो से जुगी और ऊचे दर्जे की तालीम न दी जाये। हम लोग देख रह है कि जो एक दो म रतीय स्त्रियां नीति व्यवहार आदि म शून्य पुष्प विदेशी भाषा द्वारा उच्च शिक्षा प्राप्त करती है उनके विचार देशी नहीं रह जाते। फिर सतान को पालने पोपने की विद्या से तो व बिल्कुल कोरी रहती हैं।' स्त्री शिक्षा के प्रचार के प्रति विरोध रूप से सचेष्ट होने के साथ द्विवेणी काल म भारत मे शिक्षा प्रसार के लिए भी हिन्दी लेखको ने अपना अभिमत प्रकट किया। मथिलीशरण गुप्त ने 'भारत मारती म शिक्षा के अभाव को ही सामाजिक पतन का कारण माना पर व वर्तमान शिक्षा प्रणाली को दोषपूर्ण मानते हैं जिसे प्राप्त करक भी सरकारी नीति रियों का मुह जोहना पडता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'भारत म शिक्षा की दशा सेव में सरकार द्वारा शिक्षा व लिए समुचित व्यय न करने की नीति की निरा की है। वे स्कूलो के लिए बडे बडे भवनो मदानो व उपवनो के निर्माण के बदले शिक्षा को सस्ती बनाने के पक्षपाती हैं। राजनीतिक चेतना के प्रसार व निग वे शिक्षा के प्रसार को आवश्यक मानते हैं।

पाश्चात्य शिक्षा व सम्पत्ता व प्रभाव स्वरूप समाज म कुछ अश्रयस्वर समभी

• महावीर प्रसाद द्विवेदी विचार विमल भारती मण्डार काशी पृष्ठ ४२२

जानेवाली प्रवृत्तियाँ के प्रवेश की भी आशंका थी जिनमें मुख्य 'तलार' की प्रथा का प्रचलन सम्भ्रम गया। पतिव्रत धर्म का पालन भारतीय नारी के लिए सर्वोच्च मूल्य सम्भ्रम जाता रहा है। पाश्चात्य सभ्यता के भ्रवाद्यनीय प्रभाव से बचने के लिए इस मूल्य की रक्षा का सदैव प्रयत्न किया गया। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के आरम्भिक वर्षों में जापान राष्ट्रीय जागृति का प्रेरणा स्रोत रहा है। एशियाई देशों में जापान ने सब से पूर्व अपने को पाश्चात्य सभ्यता के अनुकूल ढाला। रामनारायण मिश्र अम गुणों में जापान का अनुकरण करने की सलाह देते हुए भी तलार प्रथा का अनुकरण भारत के लिए हानिप्रद बताते हैं। भीमसन शर्मा स्त्री शिक्षा का प्रभाव लख में पतिव्रत धर्म की श्रेष्ठता बताते हुए पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के कारण उसका महत्व कम होने की आशंका प्रकट करते हैं। किंतु पतिव्रत धर्म के पालन के लिए पत्नीव्रत के पालन की भी तो आवश्यकता है। प्राचीन कथाओं में पतिव्रत धर्म के आदेश को दगाने के लिए पत्नी द्वारा अशक्त पति को स्वयं उठा कर वेश्या के घर पहुँचाने का भी उल्लेख किया गया है कि, आधुनिक बुद्धिवादी युग में समानाधिकार की भावना इस प्रकार के व्यवहार को मान्यता नहीं देती। 'प्रेमचंद के सवा मदन' की सुमन का बद्ध गजाधर से विवाह कर मानो उस कुएं में डाल दिया गया है। मौली वेश्या के यहाँ मौलू के अवसर पर मौलवी मौलाना सेठ, गुमास्ता सभी मौजूद हैं। गजाधर को भी वहाँ जात हुए सकोच नहीं हुआ। वह अपनी पत्नी सुमन से कहता है "जब इतने मले मानस बठ हुए थे तो मुझे क्यों सकोच होने लगा। वह सेठजी भी आये हुए थे जिनके यहाँ मैं शाम को काम करने जाया करता हूँ।" गजाधर का यह उत्तर पतिव्रत धर्म की मूर्खता पर मानो घड़ो पानी डाल देता है। रामचरित उपाध्याय ने 'नीचता के मन मोदक' में व्यक्तिगत जीवन में उच्च आदर्शों को ताक पर रख कर नीचतापूर्ण कृत्यों में लीन रहनेवाले सिद्धांततः प्रगति के पक्षधर लोगों के प्रति योग्य किया है।

भारतीय सभ्यता की सुरक्षा के लिए पतिव्रत धर्म के पालन की शिक्षा देने से पहले पुरुषों का अपना आचरण सुधारने की आवश्यकता थी। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' में लक्ष्मण के चरित्र की उज्ज्वलता का सुदृढ़ आधार उन के एक पत्नीव्रत भाव को बनाया। मधनाद बघ के लिए बाण छाड़ते समय वे अपने एक पत्नीव्रत भाव की ही शपथ लेते हैं

यदि सीता न एक राम को ही बर माना
यदि मैंने निज बधू उमिला को ही जाना
तो बस अब तू समल बाण वह मेरा छूटा
रावण का वह पाप पूरा घट हाटक फूटा

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'बदेही बनवास में राम के एक पत्नीव्रत भाव को उनके चरित्र का विशेष गुण बतलाया है। नर और नारी के

विवाह व धन को हरिऔघजी ने आध्यात्मिक आघार प्रदान किया है। उनके मन में नारी के लिए पाश्चात्य रंग में रंगी रमणियों की तरह बनाव-शृंगार की उच्छ-खलता श्रेयस्कर नहीं। सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक) की विलासिता को भी व विनाशकारी बतलाते हैं तथा नारी को मर्यादा, शक्ति लज्जा, शिष्टता आदि गुण अर्जित करने की शिक्षा देते हैं। हिन्दी में जासूसी, एय्यारी व कुरुचिपूण उपयासों के प्रकाशन की वृद्धि की श्रौर संकेत करते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने उह दाम्पत्य प्रेम की भावना पर आघात करनेवाला बताया है। 'हिंदी की कविता किस ढंग की हो लेख में वे लिखते हैं

दत्त बकिम श्रौर रवीन्द्र बाबू के उपयासों में भी शृंगार रस का बखान है। पर उह पद कर अंत में दाम्पत्य प्रेम की ही शिक्षा मिलती है। इधर हमारे उपयासों की सबसे विपरीत दशा है। उनके परिणाम पर पहुँचने के पहले ही इतनी कुरुचि फैल जाती है कि उनकी शिक्षा के लिए स्थान ही नहीं रहता। उनके आदेश पात्र भ्रूण-हत्या तक कर डालते हैं। यह सबथा अनुचित है-ऐसा न होना चाहिये।' × अस्तु आलोच्य काल में पुरुष को सदाचारिता व पति श्रौर पत्नी के दाम्पत्य प्रेम की आवश्यकता पर दल दिया गया।

नारी-उत्थान के लिए अनेक सामाजिक बुराइयों को दूर करने की आवश्यकता अनुभव की गयी। पर्दा, ठहरोनी, दहेज बाल विवाह बद्ध विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध द्वितीया बाल में लेखिका ने अपने विचार प्रगट किये। केशवरायण पंडसे ने 'परदा' कविता में इस प्रथा पर व्यंग्य करते हुए लिखा कि नख से शिख तक वस्त्र ओढ़े हुए जब नारी राह में चलती है तो बेचारी पशु की तरह दृष्टि गत होती है। भारतीय इतिहास के पतनो मुखी युग में नारी को गृह काय करने वाले लहू, पशु व पुरुष की काम पिपासा शांत करने वाले साधन के अतिरिक्त कोई महत्व नहीं दिया गया था। ठहरोनी दहेज आदि की प्रथाएँ नारी को त्रय विषय की वस्तु मानने का सम्य (?) रूप मात्र है। हरिऔघजी ने चुभते चौपदे में नारी के बदन की चुम्बन को अतिव्यक्ति दी श्रौर धन देख कर विवाह करनेवाले व्यक्तियों की मत्सना की। महावीरप्रसाद ने 'ठहरोनी' कविता में इस कुप्रथा पर व्यंग्य किया। गयाप्रसाद शुक्ल स्नेही दहेज की कुप्रथा को विध्वंसक भाग के रूप में देखते हैं जिसमें परिवार के सारे मुख जल कर मरम हो जाते हैं। प्रेमचंद का 'सेवा सदन' दहेज के दुष्परिणामों का ही मूल रूप है। सुमन की माँ उसका छुटपन में ही व्याह करके 'नया-पान' का श्रेय संभुवन होना चाहती है किंतु सुमन क पिना कृष्णचंद्र नय विचारों से प्रभावित थे अतः उहोंने उसका बाल विवाह नहीं

किया। सुमन के सयानी होने पर उसके लिये बर डूँडा जाने लगा तब दहेज की समस्या सामने आयी। अपने को प्रगतिशील कहनेवाले शिक्षित लोग भी दहेज के बिना शादी करने के लिए तयार नहीं हुए। अन्त में कृष्णचन्द्र को दहेज के लिए धन इकट्ठा करने के लिये बुराई का रास्ता अपनाना पड़ा। रिश्वत न लेने का आदेश छोड़ कर उन्होंने रिश्वत ली किन्तु अभ्यस्त न होने से पकड़े गये थे ईमानदारी में आकर सब कुछ स्वीकार कर लेने से उन्हें सजा दी गयी। सुमन का भाग्य अधकार से घिर गया। उसका विवाह गाँव में बृद्ध गजाधर से हुआ। इस प्रकार, हम देखते हैं कि मध्यम वर्ग में रिश्वतखारी, बद्ध विवाह वाल विवाह आदि बुराईयों के मूल में आर्थिक संकट निहित है जिस ठट्टेरीनी दहेज आदि कुप्रथाएँ और भी तीव्र बना देती हैं। बाल विवाह की बुराई के लिए अश्वय माता पिता जिम्मेवार होते हैं किन्तु बृद्ध विवाह करने के लिए स्वयं पतिदेव ही लालायित रहते हैं। आलोच्य काल के लेखकों ने विवाह के इच्छुक बद्ध पर तीव्र व्यंग्य किए। रामचरित उपाध्याय ने बद्धों द्वारा बाल विवाह की रोक बद्ध विवाह प्रचार की वामना के प्रति व्यंग्य किया। 'शुभत चौपदे' में अयोध्यासिंह उपाध्याय बद्ध विवाह के विरुद्ध लिखते हैं। धन के बल पर बद्ध विवाह करने पर मैथिलीशरण गुप्त का व्यंग्य और भी अधिक पनाव गहरा है। वे बद्ध की नवेली बहू से शादी करने में उसकी मौत से शादी की कल्पना करते हैं।

विधवा विवाह एवं वेश्यावृत्ति

आलाच्य काल में नारी मुधार सबसे दो और समस्याओं का विवेचन आवश्यक है—विधवा विवाह एवं वेश्यावृत्ति। भारतीय नारी का सबसे दयनीय रूप उसकी विधवा अवस्था में देखा जा सकता है। परमुखापेक्ष विधवस रूप मानो वह जीवन की व्यंग्य है। आधुनिक हिंदी साहित्य में निरंतर रूप से नारी का यह कर्ण रूप साहित्यकारों के हृदय को झुंझारता रहा है। आलाच्य-काल में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने विधवा विवाह संबंधी पुस्तक को समालोचना करते हुए विधवा-विवाह का बुद्धिवादिता के आधार पर समर्थन किया तथा इस विषय में शास्त्रों की दुहाई देना भी उन्होंने व्यर्थ समझा। 'कथमह नास्तिक' में द्विवेदीजी बाल विधवाओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के कारण नास्तिक कहलाना भी उचित समझते हैं। बाल विधवा विलाप' में उ होने उ छिप, रूखा नीरम अ न खानवाली, चंडालिनी की तरह मुह ढांप कर बाहर निकलनवाली व रात-दिन गालिया सहनेवाली बाल-विधवा की कावणिक दशा का चित्र खींचा है। समाज से हृदयहीन रेंगता तिरस्कार पाकर उनके हृदय से निकला हुआ वचन निपात के सदृश तिरस्कार पाठकों के हृदय को स्तब्ध करने वाला है

धिक्कार ताहि हत भारतवर्ष देश

धिक्कार सभ्य समुदायहु निर्विशेष

विधवार बुद्धि बल वमव को हमेश
पावें जहा निबल नारि इतो बलेश

नाथूराम शंकर शर्मा की समाज के प्रति प्रतिन्या और भी तिक रूप मे हुई । वे समाज की नग्नता को स्पष्ट शताम उवाड कर रख देत हैं । कुल की मर्यादा नष्ट होने व्यभिचार फलन और नारी के प्रकृत धम लज्जा को छोड 'यमि चारिणी होन का प्रमल कारण विधवा विवाह निषेध ही है । प्रेमच - ने 'प्रेमा उपयास (लेखक के हम मुरमा व सबाब उपयास का अनुवाद) मे विधवाओं के प्रति सवेदना प्रगट की तथा विधवा-विवाह के रूप मे इस समस्या का समाधान प्रस्तुत किया । उहोन प्रतिना उपयास मे पुन विधवा-समस्या पर लेखनी उठाई जो कि उनके 'प्रेमा' उपयास का ही विकसित रूप है । अस्तु भारत-दु-युग मे विधवा विवाह की भावश्यकता पर निये जाने वाले बल की द्विवदी-काल म भी टेक निभायी गई ।

ग्रालोच्य-काल म नारी जाति की अत्यधिक जघप समस्या वेश्या-वति को भी लेखको ने अपना विषय बनाया । प्रेमच - ने 'सेवा-सदन' म वेश्यावति के सामाजिक कारणो को यथाथ रूप म देखा । सेवा-सदन मे न तो वेश्या जीवन क कुलविपूण चित्र हैं और न सटुचित नतिकता की दृष्टि से सुधार का भ्रमरण स्वर ही । उपयास के पात्र पद्मसिंह क शब्दा मे 'हम उनसे (बरयाओं से) घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है । यह उनके साथ घोर अप्याय होगा । यह हमारी ही कुवासनाए हम रे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कृप्याए हैं जिहोने वेश्यामा का रूप धारण किया है । यह दानमण्डी हमारे ही क्लुपित जीवन का प्रतिबिम्ब हमार ही पशाचिक अधम का साक्षात स्वरूप है ।' सुमन का चरित्र एक दृढ नारी का चरित्र है जो जीवन म पग पग पर कठिनाइयो का सामना करती है । सुमन का पनि उसक साथ दुग्धवहार कर उस घर से निकाल दता है । पढीसी पद्मसिंह स आश्रय पान की सुमन की आशा फलीभूत नहीं होती । तब भोनी वेश्या क मरदन म वेश्यावति को अपना ने के अतिरिक्त उसक सामन कोई रास्ता नहीं रहा । वेश्या वति अपना वर भी सुमन कभी किसी को अपना तन नहीं दे पाती क्योंकि वेश्यावति क प्रति उसक हृदय मे आठरिक्त घृणा का भाव है । सुमन के वेश्या होने क अपवात् क कारण बचन उन ही सामाजिक अप्याय का शिकार नहीं होना पडता वरत् बहन जाना को भी उसक कारण दुख भेलना पडता है । शान्ता की शापी क निय धायी हुई बरात को जब पता लगता है कि शाता भी बदिन वेश्या रह चुकी है तब बरात थापम लौट जाता है । विदुताम व पद्मसिंह के अधिक बहन पर सुमन विधवाश्रम में प्रवेश करती है । उधर शान्ता भी अपना को अपमानित अनुभव कर विधवाश्रम का सहारा लेती है । अब आश्रमवासियों को समन क पहल क वेश्याजीवन का पता

चलता है तो वह आश्रम में दुराचार फैलने की दुश्चिन्ता हो उठती है। दोनों बहनों को आश्रम छोड़ना पड़ता है। जब सुमन शांता के होनेवाले दुल्हे सदन से मिलती है तब वह उसकी क्षयरता व शांता के अपमान के लिए उसे धिक्कारती है। सदन अपने पिता से लड़ कर शांता से विवाह कर लेता है। अब शांता व सुमन दोनों सदन के साथ रहने लगती हैं। शांता के लड़का होने पर जब उसका श्वशुर सदन के यहाँ आते हैं उससे पहले ही अपने सभाव्य अपमान के भय से शांता गंगा की शरण ले लेती है। सुमन का पति गजाधर सयासी और नारी जाति के उद्धारक के रूप में समयोपशान्त सुमन को बचा लेता है तथा सुमन सेवा सदन की स्थापना कर नारी उद्धार के काम में लीन होती है। 'सेवा सदन' में प्रेमचन्द ने केश्या जीवन की समस्या का सुधारवादी हल प्रस्तुत किया है। किंतु उपन्यास का पात्र कुंवर अनिरुद्धसिंह केश्यावति के उमूलन के मूल उपाय का दृढ़ता प्रतीत होता है जब वह कहता है जिस समाज में अत्याचारी जमींदार रिश्वती राज-कर्मचारी अत्यायी महाजन स्वार्थी व धुआँधर सम्मान के पात्र हैं वहाँ दालमण्डी क्यों न आबाद हो। हराम का घन हरामकारी के सिवा और कहा जा सकता है। जिस दिन नजराना रिश्वत और सूट-दर-सूट का अंत होगा, उसी दिन दालमण्डी उजड़ जायगी व चिड़िया उड़ जायेंगी-पहूँचे नहीं। उपन्यास के अंतिम अंश में प्रस्तुत किया गया सुधारवादी हल कर्ना की दृष्टि से ही उपन्यास का सौंदर्य को कम नहीं करता वरन् ऐसा प्रतीत होता है कि सुमन व विद्रोही चरित्र को उपन्यासकार ने बरबस भुका दिया है। सामाजिक पाप, नारी जाति के अधिकारी के लिए सघप व नतिक मायतामा का नवीन मूल्यांकन कदाचित् समस्या का स्वाभाविक निदान होता न कि केवल एक नय आश्रम की स्थापना। द्विवेदी-युग की सुधारवादी प्रवृत्ति उपन्यासकार की, युग की विचारधारा के अनुकूल समाधान प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करती है।

नारी महत्ता का प्रतिपादन

समाज-सुधार की आवश्यकता दर्शाने हुए उपयुक्त रूप में नारी उत्थान के प्रयत्नों के साथ आधुनिक काल में नारी के प्रति उच्चता की भावना अभिव्यक्त की गई। 'यत्र नारियस्तु पूज्यते रमते तत्र देवता' की उक्ति को चरिताथ करनेवाले प्राचीन भारत में नारी जाति के प्रति समुचित आदर की भावना पायी जाती थी किन्तु, मध्य युग में उनकी स्थिति 'ढोर, गवार, शूद्र, पशु' से बढ़कर नहीं रही। आधुनिक-काल में स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में नारी के प्रति आदर की भावना अभिव्यक्त की गई। सांस्कृतिक पुनरुत्थान काल की नारी विलासिता की पुनर्लीला मात्र न समझी जा कर घर से बाहर भी पुरुष के कार्यक्षेत्र में सहयोगिनी मानी गयी-कवल सहयोगिनी ही नहीं आवश्यकतानुसार पुरुष को कतव्य सुझाने वाली प्रत्येक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित की गई। आदर्श के लिये आत्मोत्सव करने

वाली वह महिमामयी अजेय शक्ति के रूप में आदरणीया मानी गई। श्रीधर पाठक 'भारत माता' कविता में सती समाज का जय गान करते हुए आय महिला को विश्व की अजेय शक्ति कह उमकी गुणगान करते हैं। लाला भगवानदीन ने 'वीर क्षत्राणी' में कमला कलावती व क्रूरणादेवी को अपने सतीत्व की रक्षा करनेवाली वीर नारी के रूप में चित्रित किया नीलदेवी, वीराबाई कमदेवी दुर्गावती आदि क्षत्राणियाँ देश रक्षा के लिये कटिबद्ध हैं एव सुमित्रा अन्नूपी कुती रेणुका विदुला आदि माताएँ अपने पुत्रों का कत्त य पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। मथिलीशरण गुप्त ने अपनी एक प्रारम्भिक कविता में जसवतसिंह की पत्नी व चूडावन की रानी को युद्ध के लिये अपने पतियों को प्रेरणा देनेवाली शक्ति के रूप में चित्रित किया। रामनरेश त्रिपाठी के 'खण्ड काय मितान' की नायिका विजया पति के कत्त य में बाधक होनेवाली नारी के जीवन व सौन्दर्य को धिक्कारणीय मानती है

नारी के कारण से जय में
यदि न पति अग्रगण्य का भाजन
तो सबमच है धार पाप का
पतनस्वरूप यह नारी का तन
है धिक्कार योग्य नारी का
हास्य पटा न भरा वह जीवन
बनना है त्रिनके प्रभाव में
पुत्र पति अपहर्ति निकतन

उनके 'स्वप्न' की नायिका सुमन न बचने अपने पति के कत्त य माग की बाधक नहीं मानती बल्कि वह कत्त य भ्रष्ट पति का कत्त य प्रेरणा भी देती है। त्रिनेत्रिया द्वारा तन के पतनान्त हान पर सुमन अपने पति को दण्ड-रक्षा के लिए युद्ध में जान की प्रेरणा देती है किन्तु, उमका पति उमका रूप व जीवन पर मूग्ध है तथा अपने प्राणा का माह लिए धर धर घटा रहता है। सुमन स्वयं पुरुष वेश धारण कर युद्ध में जाती है। बूढ़ समय उपरान्त वह बचन हुए वेश में अपने पति के पास सोने जाती है त्रिमन कि उमका पति उमक पहचान न सके और स्वप्नेण रक्षा के लिए विभूत पुहार करता है। पति द्वारा समन के मरण में पुष्टनाथ करने पर वह उमक वीरपति पान की मिथ्या मूचना देती है। इसमें प्रभावित होकर सुमन का पति भी तन के लिए युद्ध में जाने का प्रस्थान करता है और त्रिनेत्री शत्रु को पराजित कर सुमन व उमका पति साथ सोने हैं। त्रिपाठी जी ने नारी को पुरुष में भी बढ़ कर कत्त य मान चित्रित किया है। इसमें आत्मोच्च-जान में नारी के प्रति आदर-भावना का परिषद मिलता है। 'मितान' में नारी के यह पुत्र पर कि

मिका और राष्ट्र इन दोनों में से उसका प्रेमी किसे अधिक प्रेम करता है तथा उसके लिए वह किसका त्याग कर सकता है पुरुष इस मानसिक द्विविधा को नारी अपने कृत व्य-पथ में सहयोगिनी होने के रूप में हल करता है जिससे कि उसे किसी का भी त्याग न करना पड़े ।

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं में कवियों द्वारा उपेक्षित नारी चरित्रों के प्रति सहानुभूति ही अभिव्यक्त नहीं की परन्तु उनकी गौरव गरिमा भी प्रतिष्ठित की । उनके 'साकेत' की उर्मिला सीता से भी अधिक त्यागमयी है । राम साथ जाने से सीता के लिए कुटिया ही राजमवन बन जाती है पर उर्मिला प्रिय-पथ की विघ्न न बनने के लक्ष्य से राजमहल में ठहर कर भी तपस्विनी सी रहती है । उर्मिला की विरह-पीडा असहनीय है । वह मन से चाहती है कि लक्ष्मण सीता प्रायें पर अवधि समाप्त होने के पहले राम और सीता की सेवा छोड़ लक्ष्मण के पीठ आने का अवचेतनावस्था में उसे भ्रम होन पर वह 'फरो फिरो' चिल्ला उठती है । चित्रकूट में लक्ष्मण द्वारा क्षण भर कुटिया में प्रवेश करने पर अचानक उन्हें छोड़ छाया-सी उर्मिला दिसलाई देती है तो वे भ्रमित से ही आते हैं । उस समय लक्ष्मण को बांध न रखने का उर्मिला का विनोद उसी की गरिमा के अनुकूल है तथा लक्ष्मण का उत्तर उर्मिला के गौरव को और भी महत्ता प्रदान करने वाला है कि उसके योग्य बनने के लिए लक्ष्मण को अभी तपस्या करना है सीता की बहिन उर्मिला केवल उपभोग की वस्तु नहीं । वतमान स्वतन्त्रता संग्राम में नारी पीछे नहीं रही इसकी प्रतिध्वनि साकेत के नारी चरित्रों की सृष्टि में मिलती है । जब लक्ष्मण के शक्ति बाण लगने का समाचार सुन शत्रुघ्न शखनाद करत है तो उस अवसर को सुन सम्पूर्ण साकेत-नगरी युद्ध-श्रमण के लिए प्रस्तुत हो जाती है । नवयी भी युद्ध के लिए साथ चलने को तयार होती है और उर्मिला सेनानी बन कर प्रायें बढ़ती है । उर्मिला का चरित्र यहाँ भी अत्यधिक उज्ज्वल रूप में प्रकट हुआ है । शत्रुघ्न वीरो को उत्साहित करते हुए स्वयं लका लूटने को तयार होने की प्रेरणा देते हैं तब उर्मिला चीख मची रोऊ कर उस पापमय सोने को न छूने का आदेश देती है तथा भारतीय आदेश की रक्षा के लिए शत्रुघ्न को दण्ड देकर भी अन्त में उनके प्रति दया की सीख देती है । इस प्रकार गुप्त जी ने उर्मिला को अत्यन्त परायण आदेश नारी के रूप में चित्रित किया है ।

गुप्तजी की 'यशोधरा' में भी गीतम की 'गौरव गाथा' को इतना महत्त्व नहीं दिया गया, जितना यशोधरा की 'वहण-कथा' वह कर-कवि ने उसके महान त्यागमय रूप को दर्शाया है । बुद्ध के सबंध में रचित अग्य सम-सामयिक रचनाओं में बुद्ध चरित (लेखक अनारिड लाइट थाव एशिया'- अनुवादक रामचन्द्र शुबल) व सिद्धाय (लेखक अरुण शम) में यशोधरा के चरित्र को विशेष गौरव प्राप्त नहीं हुआ । 'सिद्धाय' में तो कवि ने यशोधरा का वास्तवपूर्ण रूप ही दर्शाया है तथा रग

गृह-कारागार में सिद्धाथ यशोधरा की भुज-वल्लरियो की वष्य शृ खलाघो में बंदी बन जाते हैं। पर, गुप्तजी की 'यशोधरा' में गोपा का रूप सौंदर्य गीतम की बंदी बनाने के बदल उन्हें अधिक चिंताशील बना देता है। गीतम के गृह-त्याग में भी उनकी यशोधरा के प्रति प्रेम-भावना ही मूल प्रेरणा स्रोत है। वृद्धावस्था का रूप देख के यशोधरा के भी वृद्ध होने की भावना से व्यथित हो उठते हैं। सत्सार की निस्सार समझ के अर्थ निशा में यशोधरा की सोती हुई छोड़ कर मुक्ति की खोज में चले जाते हैं। प्रश्न उठना है, यशोधरा से बिना कहे सिद्धाथ क्यों चले गये? क्या वे समझते थे यशोधरा उनके कतब्य पथ में बाधक बनेगी? स्वयं अपने मन की कमजोरी के कारण यशोधरा से बिना कुछ भी कहे चले गये। कुछ ही, इससे यशोधरा के आत्म सम्मान की ठेग पहुँची है। नवयुग की नारी का सजग स्वर उनकी दृढ़ धार्मिक प्रकृति हुआ है

सिद्ध हेतु स्वामी गये यह गौरव की बात
पर चोरी चोरी गये यही बड़ा व्यापात
सखी के मुभम कह कर जाते
कह तो क्या मुभवा के अपनी पथ बाधा ही पाते ?
स्वयं सुमज्जित कर व क्षण में
प्रियतम की प्राणों के पण में
हमीं भेज देती हैं रण में
शात्र घन के नात

डा० सोमनाथजी गुप्त ने लिखा है सखि के मुभमे कह कर जाते वाले गीत में यशोधरा का हृदय की उस स्तानि का चित्र है जो मजग स्त्री पति द्वारा ठगे जाने पर अपने हृदय में अनुभव करती है। सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलनों के समय कितनी ही भारत की स्त्रियों ने यह सब (प्रियतम की प्राणों के पण में भेज) कर के दिया है। नारीच का यह अनुभव और उसकी सक्रिय ध्यजना गांधीवाद की बहुत बड़ी देन है। + अस्तु गीतम की सिद्धि ही गोपा के जीवन की सबसे बड़ी कामना बन जाती है। गीतम के प्रत्यागमन की सूचना मिलने पर वह सखी से पहला प्रश्न करती है प्राणी उन्हें सिद्धि ता मित्री है? पर वह मानिनी बुद्ध का पास नहीं जाती त्यागन ही धान है गोपा का मान रखने उगने द्वार पर। स्वयं बुद्ध अपनी सिद्धि प्राप्ति में गोपा के घोर ध्यान की मज्जा स्वीकार करती हैं जिनके कि उन्हें मार के पचारों में बचाया था। बुद्ध का अपने दीन न हो गान गुना हीन नहीं नारी कभी नारी की महत्ता की प्रतिपादन करता है एवं अज्ञान की तरह पाप भी बहुत धारता है 'गोपा के बिना नहीं गीतम भी

ग्राह्य मुझे' । भिन्ना लेने के लिए द्वार पर धाये हुए तयागत को अपना पुत्र राहुल जिसके साथ सिद्धाय की अनुपस्थिति में वह जीवन भर हसी खेली, रोई है, प्रतिपत्त कर देती है । इस भवसर पर गोपा के शब्द देवी की मंगलवाणी के सदृश प्रतीत होते हैं

तुम भिक्षुक बन कर धाये थे
गोपा क्या देती स्वामी ?
या अनुरूप एक राहुल ही
रहे सदा वह अनुगामी
मेरे दुःख में भरा विश्व-सुख
क्या न भरू फिर मैं हामी
धम्म शरण गच्छामि
बुद्ध शरण गच्छामि
सय शरण गच्छामि

अत आलोच्य-काल में नारी की प्रतिशय महत्ता से मण्डित किया गया है । कवियों की आत्मवादिता के कारण नारी चरित्रों का वणन विस्तार आवश्यकता से अधिक भी हा गया है । नददुलारे वाजपेयी का कथन है 'इसी समय से ऐसी साहित्यिक कृतियाँ प्रधान होने लगी थीं जो कदाचित् पुरानी साहित्यिक परम्परा के विरुद्ध नयी बात थी । इन चरित्रों के साथ एक प्रतिरिक्त भावनामयता लगी हुई है ।' तथापि साहित्य में प्रगटित नारी सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण से तत्कालीन युग की सामाजिक व सांस्कृतिक नव चेतना का परिचय मिलता है ।

अछूत जातियों के प्रति सहानुभूति

पद दलित जनों का उत्थान आलोच्य काल के साहित्य का युगधर्म है । समाज में नारी की दयनीय स्थिति ने ही नारी उत्थान की भावना की प्रेरणा दी थी । इसी प्रकार समाज का दूसरा पददलित अंग अछूत कही जाने वाली जातियाँ रही हैं । नारी जाति के उत्थान की तरह असृश्यता निवारण काय को भी महात्मा गांधी ने उठाया । वे एक भगी की लडकी को स्वतंत्र भारत में राष्ट्रपति के पद पर देखने के आकांक्षी थे । वस्तुतः छूमाछूत का भेदभाव राष्ट्रीयता के विकास में अत्यधिक बाधक था । अस्तु, आलोच्यकाल के साहित्य में हरिजन उदार की प्रवृत्ति पायी जाती है । मैथिलीशरण गुप्त अछूतों में महान् आत्मार्थो का दर्शन करते हैं । कबीर व रदास अछूत ही थे । मनुष्य अन्धे कार्यों से महान बनता है अतः छूमाछूत की भावना यथ है

† नददुलारे वाजपेयी 'आधुनिक साहित्य' भारतीय भण्डार कीदर प्रेस, इलाहाबाद पृष्ठ १४

श्री कबीर रदास कौन थे, सोचो वारम्बार
उनसे कौन घृणा करता है, जिन पर प्रभु का प्यार
शुद्धाचार विचार चाहिये और सत्य ध्यवहार
भारण करो साधुता लेगा पद रज तक ससार
पूत कम कर मातृभूमि के बनो विशेष सपूत
छूत बुरी है ग्रहोनाम्य है यदि हम हुए भ्रष्ट

दियारामशरण गुप्त की 'एक फूल की चाह' कविता में भ्रष्ट की मार्मिक वे
मुखरित हुई है। देवी के फूल को पाने की इच्छा लिय ज्वर-पीड़ित भ्रष्ट को
की मृत्यु हो जाती है और फूल लेने के लिय गया हुआ उसका पिता मन्दिर प्रवेश
भपराष में जब सात दिन का कारावास भेज कर लौटता है तो उसे शमशा
बालिका की राग की ठेरी ही मिलनी है। बद्रिनाथ मठ 'पतित का उलाह
कविता में छुआछूत के रक्षक ब्राह्मणों के प्रति व्यंग्य करते हैं। महात्मा गांधी
हृदय परिवर्तन की नीति द्वारा भ्रष्टोद्धार में उनका विश्वास नहीं प्रतीत होत
हिंदू समाज में भ्रष्टों को समुचित स्थान न मिलने पर 'पतित का उलाहना'
भ्रष्ट सबण हिंदुओं से अपनी जाति का विच्छेद कर स्वातंत्र्य भावना ध्व
करता है।

विवाह-समस्या

द्विवेदी युग में नारी-चरित्र के आदर्शीकरण का परिणाम छायावादी-यु
नारी को अती द्रोय रूप में चित्रित करने के रूप में पाया जाता है। वस्तुतः ग
युग के आदर्शवादी एवं श्रु गार उपभोग विरोधी भावना के कारण साहित्य में
चरित्र का आदर्शात्मक कल्पनात्मक स्वरूप अभिव्यजित हुआ था किंतु, पाश्
सभ्यता के प्रभाव स्वरूप जीवन की मायतामें बदलने लगी। छायावाद के अत
घाते घाते हम पाते हैं कि नारी क जिस आदर्श व मोहक रूप का चित्रण दि
जारहा था वही नारी भारतीय समाज की सबसे महत्वपूर्ण संस्था विवाह स
के प्रति ही विद्रोह करने लगती है। निश्चय ही आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान
प्रभाव-स्वरूप ही सामाजिक मायताओं में यह परिवर्तन उपस्थित हुआ है।

इधर मनोवैज्ञानिक कहे जानेवाले कथाकारों का लैंगिक-नतिकता।
विवाह-संस्था की उपयोगिता में विश्वास नहीं है। मनोवैज्ञानिक उपयासों
विवाह समस्या प्रधान रूप में चित्रित की गयी है। अतः यहाँ पर उस सम
का प्रवर्तन उचित होगा।

जनेन्द्र के पहले उपयास 'परल' (१९२६) में बाल-विधवा बट्टो हृदय
अपने मास्टरजी सत्यधन की चाहती है। पर सत्यधन जब गरिमा से विवाह क
चाहने लगता है तो बट्टो का सत्यधन के प्रति सरल-विश्वास हिलता नहीं।

वह सत्यधन के मित्र व गरिमा के भाई बिहारी के साथ 'एक प्राण दो काया' रहने के 'वध य-यज्ञ' के लिए प्रतिनाश्रद्ध होती है। कट्टो अपने मास्टरजी को सुखी देखने के लिए ही बिहारी के साथ बघती है। सत्यधन ने विवाह धन व सुविधा के लिए किया था। किंतु, गरिमा के पिता जब सारा धन बिहारी के नाम लिख कर मर जाते हैं तो बिहारी व कट्टो के प्रति उसके हृत्पथ में आक्रोश जगता है। इस समय कट्टो का यह प्रश्न 'क्या मैं सुभट्टारी नहीं हूँ' और चालीस हजार के नाट सत्यधन को सौंपना कट्टो के हृदय में सत्यधन के प्रति संचित प्रेम को ही अभिप्रेत करते हैं। यह प्रेम भाव-रूप है शारीरिक संबंध की अपेक्षा इसमें नहीं है। शारीरिक एकता का मान तो बिहारी व कट्टो के सम्बंध में भी नहीं मिलता। वे एक दूसरे से अलग होते हैं सेवा के कर्तव्य को लेकर। क्या यह आदर्शवाद मनोवैज्ञानिक आधार पर पापित हो सकता है? शायद नहीं शायद हाँ, पर यहाँ पर एक ही बात पर ध्यान केंद्रित होता है बाल-विषया कट्टो बिहारी के साथ बघ कर भी सत्यधन के लिए प्रेम संचित किये हैं और इस बात के कारण लेखक व पाठक की सहानुभूति उसके प्रति कम नहीं होती है वरन् इसी कारण बढ़ती है। क्या यह विवाह की प्रचलित मान्यता के प्रति विरोधी भाव व्यक्त नहीं करता ?

जनेन्द्र की सुनीता में स्पष्ट ही विवाह प्रथा के विरोध में बहुत कुछ ध्वनित जाना है। यद्यपि सुनीता और श्रीकांत सहमत हैं कि विवाह विवाहन योग्य सस्या है क्योंकि मानवता रुढ़ि-सस्था 'कुटुम्ब' पर आधारित है और कुटुम्ब विवाह पर टिका है और नामरिक्ता नहीं चल सकती यदि जीवन परांशण के लिए ही समझ लिया जाय, कानून तोड़ने ही के लिए, फिर भी श्रीकांत के मन में असमन भाव उठता है और हरिप्रसन्न को पहले ही पग में, जो उसे मिलता नहीं लौट आता है वह लिखता है 'हम दोनों का कुछ आंतरिक मेल नहीं।' जनेन्द्र स्त्री और पुरुष के सम्बंध को प्रकृत रूप में ही देखते हैं अतः विवाह सस्या को समाज की उपयोगिता की दृष्टि में भले ही वे मान्यता दें, जो कि वे देने हैं, किंतु यौन नतिक्ता (Sex Morality) एक ही स्त्री व पुरुष के सम्बंध के अस्तित्व को स्वाभाविक व अनिवार्य नहीं मानते। 'सुनीता में स्टडी रूप में हरिप्रसन्न और सुनीता हैं। फिर सम्बंध सब पास है यह सोचना ही व्यर्थ है। लेखक यादग्या करता है "हमने हरिप्रसन्न और सुनीता नाम दिए हैं। वे नाम भूठे नहीं हैं पर नाम ही हैं। सुनीता स्त्री है, हरिप्रसन्न पुरुष है। उन नामों के बहुत नीचे जाकर उन दोनों में एक केवल स्त्री रह जानी है दूसरा पुरुष रह जाता है परिवार पीछे आता है। नाम-रिश्त नाम मात्र, मत-पथ, वरुण सप्रनाय सब पीछे आते हैं। सुनीता नाम क तल सप्रहीत व्यक्तित्व के मानव वह मात्र और प्रकृत स्त्री है, उसी भावि दूसरा भी मान नाम

की समिधा छोड़ कर बग पुन्य है ।" ॐ धामुनिह मयोपगतानिर्हो क मय म स्त्री का एक पति के सामग्य म रहता सम्पत्ता पुन्य का एक स्त्री के मीन सम्पत्ता रचना पाह सम्पत्ता की न हो किन्तु स्वामाधिक नहीं है । समरित्री मनोवैज्ञानिक ए ए विन के अनुसार सम्पत्ति नीतिह स्थितों म भी सम्पत्ति म संयोग की भावना जग बिना नहीं रहनी जिन पर म स्वयं सन्तुष्ट हा उठती है । फिर भी यह माह उहे मुग्यकर भी प्रतीत होता है । + दार्शनिक बड्डेह रगन रना म पुन्य की स्वभावत बहुवैधाह्य प्राणी मानत है । X मुनीता के पति के अनिरिक्त सम्पत्ति के प्रति प्रेमाह्वयण का घातक मीरा क प्रतीक क रूप म व्यक्त हुमा है । सिनेमा हाल म प्रर्र्जित मीरा का चित्र मुनीता को उन्नित कर ेगा है । राणा क प्रति उस महानुभूति है पर मारा क प्रति भी घटा माह उमहता है जो पतिप्रता नहीं है । - इसक लिए मुनीता थीका उ स क्षमा-याचना भी करती है । पाठक यहा स्पष्ट समझता है मीरा की कथा प्रचारान्तर से मुनीता की हा कथा है । मीरा ही मुनीता है, एक रूप म थीकान्त ही राणा मीर हरिप्रसन्न कृष्ण बनवारी । मीरा के प्रति सहानुभूतिशील न हो पाना सम्भव है और यह विवाह प्रथा क, पतिप्रत पम धान्न के बंधन को ढीला करना है । थीकान्त हरिप्रसन्न को मुनीता क पास छोड़ कर दूसरे गहर म जाता है और वहां इना उद्देश्य से समिध ठहर जाता है कि हरिप्रसन्न व मुनीता समिध निकटता अनुभव कर सकें । निकटता की उत सीमा तब पदुष कर जहां ग्लानि का अनुभव होता है, हरिप्रसन्न लौट आता है और बिना कुप्यताये पर से चन पडता है । तब थीकान्त आकर उसस हरिप्रसन्न को न रोक सकन का उत्तर पाना चाहता है । मुनीता क यह कहने पर भी कि तब कहती हू मैंने अपने का नहीं बचाया' थीकान्त सरल विश्वास से बट-प्रवर कवीन केन हू नो रांग' कह अपने यग

जनेद्रकुमार 'मुनीता' हिन्दी प्रथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई शोषा सस्करण १९५६ पृष्ठ १००

+ A A Brill "I might say that this is one of those fanciful emotions that particularly all moral women sometimes secretly desire to taste We have named it the being for naughty desire or 'prostitution complex'"

X Bertrand Russel "I think that uninhibited civilized people, whether men or women are generally polygamous in their instinct"

-। जनेद्रकुमार 'मुनीता', हिन्दी प्रथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई शोषा सस्करण १९५०, पृष्ठ ५३

पर टिके सुनीता के चेहरे को घपपपाता है घपपपाता है । सुनीता पति द्वारा परित्यक्त न होने के अधिकार को मांगती है और वह अधिकार उसे प्राप्त है । इससे यह तो स्पष्ट ही है कि जनेन्द्र की दृष्टि में विवाह सस्था की उपयोगिता स्वीकार्य है किन्तु, अवश्य ही वे सेक्स मारलिटी के प्रतिपक्षी नहीं । जनेन्द्र के 'एक रात' कहानी संग्रह की अंतिम कहानी क्या हो' का नायक दिनकर फासी की सजा पाकर अपनी मृत्यु की कल्पना करता है तो अपनी पत्नी सुपमा के माग्य पर ही खुश है जिसे वह जीवन में कष्ट के प्रतिरिक्त कुछ दे नहीं पाया । वह अपने जीवित रहते ही सुपमा को कुलवन्त जो उसे सुपमा की धार अर्पित भी प्रतीत होता है, से विवाह कर लेने की प्रार्थना करता है और सुपमा अपने पति की आत्मा को शांति देने उसके जीवित रहते ही (फासी की सजा पाने के बाद दो दिन का महामान ही तो है वह) यह विवाह करने का निश्चय कर लेती है—जहर के प्याल को हस्त कर पीन का स्वाद से जिन्दगी भर घूट घूट । * जनेन्द्र विवाह सस्था की व्यक्ति के परो-मुख बनने का अवसर देने के साधन के रूप में उपयोगी तो मानते हैं कि तु वे उसे किसी रूप में व्यक्ति की अंतर्मावनाओं व जीवन सुविधाओं के प्रति कठोर नहीं बनने देना चाहते ।

ऊपर जनेन्द्र के उपयोगों के आधार पर विवाह समस्या व प्रचलित यौन नतिकता का विवेचन किया गया है । जनेन्द्र के उपयोगों की मूल समस्या विवाह की समस्या ही है । किन्तु अय मनोवैज्ञानिक उपयोगों में भी विवाह समस्या के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये गये हैं । इलाचंद जोशी के 'पदों की रानी' उपयोगों में इन्द्रमोहन किसी प्रकार निरञ्जना को प्राप्त करना चाहता है किन्तु, जब वह अपने सभी प्रयत्नों में असफल होता है तो अन्त में शीला से विवाह कर लेता है । इसलिए नहीं कि उसे प्रेम है बल्कि इसलिए कि विवाहित जीवन व्यतीत करने के कारण उसके सम्बन्ध में निरञ्जना की अच्छी धारणा बन जाएगी और तब वह शायद निरञ्जना को पा सकेगा । † इन्द्रमोहन के व्यवहार से समाज में विवाह सस्था के सम्मानीय स्थान की धारणा का परिचय तो मिलता ही है कि तु उसकी भाड़ में दुष्प्रवृत्तियों के पोषण का भीषण व्यग्य भी निहित है । अनेक व शोखर एक जीवनी व 'नदी के द्वीप' उपयोगों में उनकी विवाह सम्बन्धी धारणा प्रकट हुई है । नदी के द्वीप' से दो एक उदाहरण देखें । चन्द्रमाधव रेखा को पाना चाहता है पर

* जनेन्द्रकुमार 'एक रात', सरस्वती प्रेस बनारस द्वितीय संस्करण १९४६ पृष्ठ २१५

† इलाचंद जोशी 'पदों की रानी' भारती मण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद द्वितीय संस्करण स० २००२ पृष्ठ ११८ ।

उस घोर म प्रथित आशा न रहो पर गौरा की घोर भी धारणित होगा है किन्तु दोनो घोर से निरामा ही गिनती है गया रेखा व गौरा की घोर धारणित व प्रयत्नशील होने का उमर का कारण यह है कि यह स्वयं घरा विवाह ग बन्नी मनुष्य गी हो सका । इस सम्बन्ध में यह एक पत्र में रेखा को लिखा है 'पर मैं अपने विवाह का विवाह बन्नी नहीं मानूँ—एक विवाह सत्ता को जायज करने की रश्म से प्रथित कुछ नहीं है, न ही सकना है । * मन्नापय के मन में प्रपनी ही विवाहिता स्त्रा का पुन व पाणा करणे की भावना जगती है घोर उम उस पर दय, घाली है । विवाह पति व पत्नी व शीघ्र मयकर एकरमता जो मोरसता का रूप ग्रहण कर लेती है को ज म दता है । रेखा घोर भुवन प्रेमी प्रेमिका ही है पर जब मोन धमस्त हो जाता है तो रेखा कहती है 'बसे हम साग सात बरस से ब्याहे पति-पत्नी की तरह हा गये हैं—आतपीत व लिए कोई विषय नहीं मिलना तकलुफ की बातें कर रहे हैं'—भुवन ने ह्म कर कहा— "तकलुफ बाकी है यही क्या कम है ? साग बरस बाद तो जुर्द का बरत आ जाता है—या बिल्कुल मोन उपेक्षा का' । + रेखा को विना देने भुवन प्लेटफाम पर लडा है कि रेखा विषय से बापी म विरा कर भुवन को पढ़ाती है यह जो पढोसिन बठी है, मुझ से पूछ रही थी, ये भापके हजबड है ? मैंने कहा, हा । शादी को कितन बरस हुए हैं ? मने कहा सात । बोली बड़ी माग्यवती है भाप । बोयो ? कि सात बरस बाग भी भापके हजबड भापको इतना प्यार करते हैं । भुवन आकारो म ह्म बोयो इतना बध जाते हैं कि आत्मा मर जाय ।" X हेमद्र जब रेखा को तनाम देता है तो यह रेखा के लिए प्रसन्नता की ही बात है किन्तु तलाक की प्रया में भी सामाजिक याय के सम्बन्ध में रेखा आश्वस्त नहीं है क्योंकि असफल विवाह की ग्लानि, आत्मावसादो मर्मापातो का कोई उत्तर नहीं है । हेमद्र से तलाक के पश्चात् जब रेखा का रमेशचन्द्र से विवाह निश्चित होता है वह भुवन से लिखती है 'बरसा म श्रीमती हेमद्र कहलार्द, उसके क्या अर्थ थे ? अब श्रीमती रमेशचन्द्र कहलाऊगी—उसके भी क्या अर्थ हैं म इतना ही सोच पाती हू कि मेरे लिए यह समूचा श्रीमतीत्व मिथ्या है, कि म तुम्हारी हू ये पार्थिवता के बधन, ये आकार, ये सूने कवाल " । — । डा० देवराज के 'पथ की खोज' उपन्यास में धन्द्रनाथ का मित्र हरिशकर स्त्री पुरुष के लिए एव-

* प्रजेय नदी के द्वीप प्रोप्रेसिव पब्लिशस, दिल्ली १९५१ पृष्ठ ११८ ।

+ वही, पृष्ठ २७६ ।

X वही पृष्ठ ३२१ ।

। — । वही, पृष्ठ ४१५ ।

दूसरे के आकषण व भ्रूण के प्रशसावाचक नाम को ही प्रेम कहता है तथा इसे ही हिन्दु विवाह की सफलता का कारण माना है। विवाह के लिए माधना के नापसंद किये जान का समाचार जब चन्द्रनाथ को मिलता है तो वह विवाहित जीवन की व्याख्या करता है 'समाज की दृष्टि में विवाहित जीवन किसी उच्छ्वा दश की सोज या प्राप्ति के लिए नहीं है जिसके लिए समान मरिच्छक और समान दृष्टि तथा वेदनाधोवाले स्त्री-पुरुषों का साहचर्य आवश्यक है, वह उसे केवल काम-वासना का शीघ्र क्षेत्र तथा प्रजनन का यत्र सममता है। उसके व्यवहार से लगता है मानो दाम्पत्य जीवन व्यभिचारशाला है और विवाह उसका दर्वाजा जिसमें छड़े होकर युवक और युवतिया एक दूसरे से शारीरिक आकषण तथा एश्वय का मोल करते हैं। * विवाहित जीवन के असफल होने पर कष्टमय जीवन की वेदना प्रायः नारी के ही भाग्य में गिरती है।

प्रेम सबधी काडवेल की विचारधारा का आरोपण

प्रेम जीवन के साधन रूप में

प्रेम के सबध में प्रगतिवादियों का विशिष्ट दृष्टिकोण पाया जाता है। वे प्रेम का आधार आर्थिक मानते हैं। आदर्शवादियों की तरह वे प्रेम का शाश्वत रूप स्वीकार नहीं करते वरन् उनके अनुसार आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप प्रेम भावना में परिवर्तन स्वामाविक है। क्रिस्टफर काडवेल (Christopher Caudwell) का कथन है कि हमारे सामाजिक (आर्थिक) सबधों का भावात्मक पहलू ही प्रेम है। प्रेम चाह जितना महत्वपूर्ण हो किन्तु, आर्थिक उत्पादन से परे उसका महत्व नहीं है। अतः काडवेल विभिन्न युगों की आर्थिक व्यवस्था के अनुसार प्रेम की व्याख्या करते हुए प्रतिपादित करते हैं कि ग्रीक समाज में दास-प्रथा प्रचलित थी। अतः उस युग का प्रेम स्वप्नदर्शी (Platonic) था। सामन्ती-युग में सामन्तों के परस्पर युद्धों के कारण उसका स्वरूप रोमानी हुआ। पूँजीवादी-युग में व्यक्तिवाद के विवाह के फलस्वरूप अत्यधिक आकांक्षा, अतृप्ति तथा व्यक्तिगत प्रेम का प्राधाय हुआ पूँजीवादी युग में अधिकांश जनता एक और आर्थिक शोषण के चक्र में पिसती है तो दूसरी ओर इस युग की विकसित आर्थिक व्यवस्था से जीवनयापन के साधनों को अधिक मात्रा में उपलब्ध करने की सालसा बढ़ जाती है। विवाह तथा घमाहक जीवन अधिक खर्चीला हो जाता है। अतः लोग एक विचित्र प्रकार के कल्पनात्मक प्रेम में डूबे रहते हैं जिसमें अतृप्ति व वेदना की प्रधानता रहती है। प्रगतिवादियों के अनुसार वर्तमान समय में जीवन के भावात्मक व आर्थिक पहलू में दरार पड़ गई है।

में आर्थिक समता की स्थापना से ही दूर हो सकती है। अतः वे प्रेम की धमरगा में विश्वास नहीं करते तथा उसे जीवन के विकास व साधन रूप में ही स्वीकार करते हैं।

वस्तुतः वर्तमान युग की जटिल समस्याओं व बीष विषयों के कोमल तन्तु पर प्रेम के झट्टे बने रहने की कल्पना अथवा एम कल्पना है। यशपाल मनोवैज्ञानिक के बदले प्रेम के आर्थिक पहलू को प्रधानता देते हैं। 'दशा कामरेड' में एक रात हरीश शल से उसके प्रेम के अनुभवों को पूछता है तब शल अपने जो अनुभव बतलाती है उनका निष्पत्ति यही है कि प्रेम कल्पन जीवन का विस्तार करने के साधन रूप में अवश्य है। जहाँ प्रेम जीवन के विस्तार में बाधक बनता है वह नष्ट हो जाता। शल का एक लड़के से प्रेम संबंध होता है जिसमें वह गमवती हो जाती है और समाज व डर से उसका पिता अभिनिपात करवाने हैं। यह लड़का एक पुत्रहीन इकलौती लड़की के पिता बड़े जमींदार व गृही विवाह कर लेता है और प्रेम नष्ट हो जाता है। इसके उपरान्त शैल व राबर्ट व प्रेम में भावुकता का आभास मिलता है किन्तु उसका भी अन्त आर्थिक संबंध की बड़ी यथाथ भूमि पर होता है।

यशपाल के देशद्रोही में भी प्रेम का आधार आर्थिक आधारों पर रखा गया है। लेफ्टीनेंट डा० खन्ना को फौज के कुछ बजीरी उठा ले जाते हैं। डा० खन्ना की पत्नी राज का पौज से खन्ना की मृत्यु की सूचना भेज दी जाती है किन्तु खन्ना को परिस्थितिवश एक स्थान से दूसरे स्थान भटकना पड़ता है। बजीरियों के यहाँ उसका प्रेम कुण्ठित रहता है क्योंकि वहाँ प्रेम मोत के भय से कम नहीं है। वहाँ इन्वा व नूरन के प्रेम से उसे भय ही अनुभव होता है। पर गजनी व सौदागर अम्बुन्ला के हाथ बिके आसार (मुसलमान बना कर डा० खन्ना को दिया गया नाम) को अपने नये मालिक की लड़की नर्गिस के प्रति आकर्षण अनुभव होता है क्योंकि नर्गिस का प्रेम इन्वा व नूरन के प्रेम की भाँति आत्मसमर्पणकारी नहीं है और नर्गिस जहाँ इन्वा व नूरन से अधिक सुन्दर, निमल व व्यवहार कुशल है वहाँ आसार को अपने सिर पर भय की छाया भी डलती गहरी नहीं दिखाई देती है। सरकारवश आसार को दिल्ली में अपनी पत्नी राज का स्मरण आता है पर वह अपने मन को यही समझाता प्रतीत होता है कि जीवन में प्रेम का उपयोग विकास के लिये साधन रूप में ही हो सकता है वह स्वयं साध्य नहीं बन सकता।

मनुष्य के रूप में यशपाल ने अपने प्रेम सम्बंधी विचारों को अप्रहृष्ट व व्यक्त किया है। विधवा सोमा पशु की भाँति जीवन व्यतीत करते हुए भी समुदायवालों द्वारा मुसलमान के हाथों बेचे जाने के भय से मोटर ड्राइवर घनसिंह के साथ भाग जाती है किन्तु, पुलिस की नजर न बचा पान से घनसिंह का जेल जाना पड़ता है तथा सोमा को भाग-समाजी मन्त्री की सहायता व कम्युनिस्ट भ्रूषण के सम्पर्क से सेठ ज्वालामहाय की कोठी में आश्रय मिलता है। इस घर की लड़की मोरमा जिसके भाई जगदीश सराला से कम्युनिस्ट भ्रूषण की मित्रता थी

तथा बाद में मनोरमा से भी हो गई आदर्शवाणी प्रेम में विश्वास करती है। वह सोमा को सा त्वना देत हुए कहती है "यदि धनसिंह न भी आये, वह तुम्हें मूल भी जाय तब भी तुम उससे प्रेम करती रह सकती हो। यही कितना बड़ा सुख और सन्तोष है।" पर सोमा इसके उत्तर में जीवन की यथाथ समस्या उपस्थित कर देती है

हाय मैं कहीं रहूँगी क्या करूँगी ?" नित्य जीवन में असहाय स्थिति उत्पन्न होने पर गहन प्रेम भी घृणा में परिणत हो जाता है। इसका उदाहरण भी यशपाल के 'देशद्रोही' उपन्यास में देखा जा सकता है। राज अपने पति डा० खन्ना की मृत्यु का समाचार पाकर अफ़ीम खा सती होने का प्रयत्न करती है किन्तु वही राज दो तीन वर्ष बाद बदरी बाबू से विवाह कर लेती है क्योंकि व उसे व्यक्तिगत सहारे के रूप में मिते थे। राज की बहिन चानू जिस समय मृत्यु के मुख में जाते हुए डा० खन्ना का लेकर आश्रय के लिये राज के यहाँ जाती है तब राज उसे देखने तक में इन्कार कर देती है। ऐसी परिस्थिति 'मनुष्य के रूप में भी है। एक समय धनसिंह से यह कहने वाली सोमा यदि तुम पुन कहीं चले गये तो प्राण हत्या कर लूँगी' के पास सुनील जीवन के अन्तराल के बाद जब धनसिंह भूपण के साथ मिलने जाता है तो वह यही कह पाती है 'मैं सोमा नहीं हूँ तुम लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हो' क्यों कि अब वह सोमा पहचान है जो चित्रपट उद्योग में सबसे अधिक आय पैदा करती है और धनसिंह जन्म गरीब के साथ उसका निवाह नहीं हो सकता। अस्तु यशपाल की दृष्टि में 'प्रेम केवल जीवन का सहायक साधन है। •

प्रगतिवादी दृष्टिकोण से प्रेम के सर्वोत्तम रूप के संबंध में भी यशपाल के उपन्यासों में आभास मिलता है। प्रगतिवादी दृष्टि से श्रेष्ठ प्रेम वही है जिसमें आर्थिक आश्रय की मांग नहीं होती तथा व्यक्ति समानता के आधार पर परस्पर प्रेम बंधन में बाँध रहे हैं। 'मनुष्य के रूप में जब मनोरमा देखती है कि सोमा धनसिंह के प्रति उदासीन होकर उसके भाई जगदीश सरोला की ओर आवृष्ट होने लगी है तो उसके हृदय को ठेस पहुँचती है। क्या प्रेम परिवर्तनीय है विशेषकर भौतिक सुख सुविधा मात्र के कारण ? "सहसा उसका (मनोरमा का) मस्तिष्क बिजली की तरह कौंध गया

सभी स्त्रियाँ आश्रय का मूल्य, प्रेम का मूल्य अपने शरीर से चुकाती हैं। आत्म निभर प्रेम तो वही है जो मूल्य में आश्रय न माँगे। प्रेम के मूल्य में जीवन भर का आश्रय पाया या कुछ रूपये। प्रेम करने का अधिकारी वही है जो आश्रय न माँगे, जो अपने पाव पर खड़ा हो।" + ऐसा प्रेम 'देशद्रोही' उपन्यास में समरकण (रूस) में गुलशा डा० खन्ना के प्रति निवेदित करती है। गुलशा को डा० खन्ना से

• यशपाल, 'मनुष्य के रूप' विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६

+ वही पृष्ठ १७१

उमकी परिणीता राज का पता चलता है तो वह इसी से सतुष्ट हो जाती है कि जीवन भर स्नेह के माधुय की यदि नहीं पाया जा सकता है तो जितने क्षण भी पाया जा सके। पर डा० राधा के निरिक्व विश्वास पर इससे ठेस पहुँचती है। वह सोचता यह भी क्या जबरन अपने प्रेम का बोझ लादने फिरना। राज का प्रेम शील और सकोच भरा उसका माधुय लक्ष्मा के लिये स्पृहणीय बन जाता है और भारत के लिए गुलशा से विना लेने के पश्चत् लक्ष्मा अपनी मूल पहिचानता है। राज का प्रेम से गुलशा के प्रेम की तुलना कर वह पाता है कि गुलशा का जिस व्यग्रहार को उसने निलज्जता का फदा डालना समझा था वह वास्तव में उमकी धाम निभ रना का प्रामाणिकता था। अपने उदासीन अमचू बठोर व्यवहार का पश्चात्ताप रूप उसकी च्छा हुई वह एक विस्तृत पत्र लिख गुलशा को समझा दे, उसकी वह रूपवाई उसके मत सम्पूर्ण जीवन में स्त्री के गुणों के प्रति स्वीकार किए विश्वासों का परिणाम था जिसके अनुसार नारी का गुण पुरुष के प्रति अशीलता प्रकट करना है।*

दहती मायताम

प्रगतिवादी साहित्य की रचना सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन का ध्येय का लेकर की जाती है अतः स्वभावतः उसमें समाज की प्रचलित भावनाओं के प्रति आक्षेप पाया जाता है तथा प्रगतिवादी साहित्यकार उन्हें दहते हुए रूप में चित्रित करता है। वह पूँजीवादी सम्पत्ता का टोखलेपन को दर्शाता है तथा इस व्यवस्था में समझे जानेवाले सम्पत्ति, शिष्ट व सस्कृत को केवल कुत्सित मानता है। उमकी दृष्टि में पूँजीवादी व्यवस्था मानवीय मूल्यों का दम घोट देती है। वह इन निष्ठाओं का मूल्यांकन नवीन कसौटी जनाहृत का आधार पर करता है

धर्म नीति और सदाचार का मूल्यांकन है अनित्य
मत्य नहीं वह जनता से जो नहीं प्राण सम्बंधित ॥ †

वह स्पून जनहित के आदेश के आधार पर नवीन सस्कृति के निर्माण की ओर अग्रसर होता है। पूँजीवादी व्यवस्था जिसमें धनवान अधिक धनी व निधन अधिक धनहीन बन जाते हैं—सिद्धांत पर आधारित आधुनिक सम्पत्ता को प्रगतिवादी दृष्टि से दलते हैं। प्रेमचंद ने आधुनिक सम्पत्ता की 'महाद्वनी सम्पत्ता' कहा है जिसका आधार निधन जनता का आर्थिक शापण है। निराना ने आधुनिक सम्पत्ता पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि

* पद्माल, दानोरी, विप्लव कार्यालय १९३१, सतनऊ, पृष्ठ १६५

† सुमित्रान न पत्र पुणवाणी पृष्ठ ५

जिस प्रकार रात में वेश्यायें घोखा देती हैं उसी प्रकार स्त्रियों में सम्यता छलती है। • प्रमानन्द माधवे ने बीसवीं सदी' शोषक कविता में आधुनिक सम्यता के ढाँचे को वहाँ सधप पर आधारित बताया है। उनके अनुसार आधुनिक सम्यता में आदर्शों के पतन का कारण पूँजीपतियों का स्वार्थ है। 7

सम्यता का प्रमुख आधार शिक्षा है। पूँजीवादी व्यवस्था में शिक्षा का उद्देश्य सत्य का ज्ञान प्राप्त करना नहीं रहता बल्कि इस व्यवस्था को बनाये रखना ही हो जाता है। इस दृष्टि से प्रगतिवादियों ने आधुनिक शिक्षा का भी विरोध किया है। प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास में जमींदार राय साहब कहते हैं 'समाज की ऐसी अवस्था जिसमें कुछ लोग मोज करें और अधिक लोग पीसें और खायें कमी सुखद नहीं हो सकती। पूँजी और शिक्षा जिसे मैं पूँजी का ही एक रूप समझता हूँ इनका किला जितनी ज़न्द दूँत जाय उतना ही अच्छा।' राय साहब का यह विचार तो प्रगतिशील है किन्तु, प्रो० मेहना की प्रतिक्रिया दृष्ट्य है 'जितना बुद्धि आपके जवान में है काश उसकी आधी भी मस्तिष्क में होनी। इनसे प्रकट है प्रेमचन्द आधुनिक शिक्षा के उस रूप को हेय समझते हैं जिसमें गरीबों को लिखे लोग बढ़ने के लिये प्रगतिशीलता का दम भरते हैं किन्तु व्यावहारिक जीवन में प्रतिगामी तत्वों का साथ देते हैं। अर्थात् की दृष्टि में आधुनिक शिक्षा श्रम से जो चुराना सिखाती है। + डा० राम विलास शर्मा आधुनिक शिक्षा को विद्यार्थी एवं जन साधारण के बीच दीवार के रूप में देखते हैं। 8

प्रगतिवादी साहित्यकारों की दृष्टि में पूँजीवादी व्यवस्था के अतृप्त मिलने वाला 'याय सच्चा नहीं है बल्कि इस व्यवस्था की रक्षा के लिए निर्मित ढाँचा है। प्रेमचन्द के उपन्यास 'गोदान' में महाजन भिगुरीसिंह कानून और 'याय को पैसे का दास मानता है। वह मली प्रकार जानता है कि कानून चाहे लिखाने के लिये निधन के पन्थ में हो पर वास्तविकता इसके विपरीत है। वह कहता है कानून और 'याय उसका है जिसके पास पसा है। कानून तो है कि महाजन किसी आसामी के

• सूयकांत त्रिपाठी 'निराला'

दिन में वेश्यायें जैसे रात में
दगा की इस सम्यता ने दगा की

7 अर्थात् (सदा) तार सप्तरु प्रतीक प्रकाशन दिल्ली, १९४३

+ अर्थात् 'शेखर एक जोदनी' भाग २ सरस्वती प्रेस बनारस द्वितीय संस्करण

१९४७ पृष्ठ २१४

8 अर्थात् (समादक) तार सप्तरु, प्रतीक प्रकाशन दिल्ली, १९४३, प०

साथ बड़ाई न करे, कोई जमींदार किसी कास्तकार के साथ सख्ती न करे, मगर होता क्या है। राज देवते हो। जमींदार मुसल बंधवा के पिटवाता है और महाजन लात और झूठो से बात करता है। जो किसान बोड़ा है उससे न जमींदार बोलता है न महाजन। ऐसे आसमियों से हम मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आसमियों की गदन दबाते हैं कचहरी, अदालत उसी के साथ है जिसके पास पसा है। * यशपाल के 'दादा कामरेड' उप नास थे कम्युनिस्ट नेता हरीश व उसके साथियों पर पड़्यत्रकारियों द्वारा लूटे हुए रूपों से मजदूर हृत्ताल चलाने का अभियोग लगाया जाता है। अदालत में अभियोग के सुने जाने क समय शैल को हरीश का बयान स्मरण हो आता है जिसमें उसने पू जीवादी व्यवस्था में पू जीपतियों के द्वारा किये जानेवाले शोषण को साम्राज्यवादी शोषण के समान ही बतलाया था। अभियुक्तों की ओर से सुल्तान द्वारा दिया गया बयान पू जीवादी 'याम की नपन्ता को अनावत करता 'कुछ आजायें और व्यवस्थायें पू जीपति थोड़ी की व्यवस्था में पू जीपति थोड़ी के अधिकारों और शोषण को कायम रखने के लिए जारी की हैं। इस व्यवस्था का जारी रहना ही सरकार और अदालत की दृष्टि में याय है। X सुल्तान पू जीवादी व्यवस्था के शोषण को सबसे बड़ी हिंसा व दकती समझता है।

प्रगतिवादी कला साहित्य आदि सस्कृति के तत्वों को पू जीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत स्वतंत्र नहीं मानता। कला आदि सस्कृति के तत्व पू जीवादी के हाथों में दामो पर बिक कर अपनी स्वतंत्रता खो देते हैं क्योंकि इस युग में कला छुटा कला को जीविका के साधन रूप में अपनाने के लिये बाध्य होता है। प्रेमचंद के 'उपवास गोदान' में 'बिजली का सपादक आँकारनाथ उच्चादर्शी होने पर भी अधिक कठिनाई के कारण अंत में रायसाहब जैसे समाज के प्रतिगामी तत्वों की बुराई करने में असमर्थ हो जाता है। यशपाल के 'मनुष्य के रूप' उपवास में एक पात्र बनवारी सिनमा के लिये रचनायें लिख कर कला की साधना करना चाहता है किन्तु जीविकाप्राप्त की समस्या उसे शीघ्र ही सिखा देती है कि कला वही है जो जीविका द सके। अजय के 'शहर एक जीवनी में शहर की 'हमारा समाज पुस्तक इतनी शर्तों के बाद प्रकाशन के लिये ली जाती है कि पुस्तक के लेखक को कहना पड़ता है 'मने तो पुस्तक कुँ म डाल दी है और मुँडेर पर पड़े हुए ६०) ६० उठा लिय।' भवानीप्रसाद मिश्र की 'गीत फरोश' कविता में कला

* प्रेमचंद 'गोदान' सरस्वती प्रेस बनारस, नवा सस्करण १९४८ पृ ३२८

X यशपाल 'दादा कामरेड,' विप्लव कार्यालय सखनऊ तीसरा सस्करण १९४३ पृष्ठ २१३

के बाजार में बिकनेवाली जिन (Commodity) का रूप ग्रहण करने के प्रति गहरा व्यग्न व्यक्त हुआ है । *

अस्तु हम देखते हैं कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में सामाजिक विचारों में गहरा परिवर्तन दृष्टिगत होता है, जिसके मूल में परिवर्तित परिस्थितियाँ एवं पाश्चात्य प्रभाव दिखाई देता है । भारतीय समाज मध्ययुगीन रूढ़ियों से प्रस्त था । पश्चिम के सामाजिक जीवन को देख कर हिन्दी साहित्यकारों को नवीन प्रेरणा मिली तथा उन्होंने सुधारपरक दृष्टिकोण अपनाया । एक और देश में पश्चिम के प्रभानुकरण की घाँधी लठ खड़ी हुई थी तो दूसरी ओर हिंदू समाज में कट्टरपंथी लोगों का बहुमत था । हिन्दी साहित्यकारों ने जहाँ कट्टरपंथियों के विरुद्ध सामाजिक प्रगति का स्वर छेड़ा वहाँ वे पाश्चात्य सभ्यता के अंगुणों के प्रति भी सजग बने रहे । पश्चिम के सम्पन्न को समाज सुधार के लिए स्वर्ण अवसर माना गया तथा सामाजिक कुरीतियों की भस्मना की गयी । इसी प्रकार, उन्होंने पश्चिम के प्रभानुकरण से फल रही पश्चिमपरस्ती तथा आचरणहीनता का भी विरोध किया । सुधार का प्रमुख साधन नवीन शिक्षा को ही स्वीकारा गया तथा नारी-स्वातंत्र्य की भावना को विशेष प्रथम मिला । नारी स्वातंत्र्य की माँग सामाजिक दशा सुधारने के लिए ही उठायी गयी प्रतीत होती है अथवा कोर्टशिप की प्रथा व तलाक जसी पाश्चात्य रीतियों के कुप्रभाव से दूर रहने को उचित ठहराया गया है । यही नहीं, नारी के स्वस्थ प्राचीन सत्कारों—पतिव्रत धर्म को जीवित रखने के लिए पुरुषों के आचरण को सुधारने—एक पतिव्रत धर्म पालन करने पर बल दिया गया । विशेषतः उन मध्ययुगीन सरथाओं—वश्यावृत्ति आदि को समाप्त करने की अपील की गयी जो नारी की सामाजिक स्थिति को दयनीय बनाये हुए थी । स्वातंत्र्य सभ्राम में पुरुष के समान अपना योगदान देनेवाली नारी को साहित्य में महिमा मण्डित किया गया । पश्चिम में नारी को सामाजिक राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए सघन करना पडा था कि तु भारत में अपने त्याग बलिदान के कारण वह उसे सहज प्राप्य हो सका यद्यपि वह कितना वास्तविक था इसमें सन्देह है । भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था है । नृत्व के

- * अनेक (सपा) 'दूसरा सप्तक' प्रगति प्रकाशन दिल्ली, १९२१ पृ २७
 जी बहुत डेर लग गया हटाता हूँ
 गाहक की मर्जी अच्छा जाता हूँ
 है गीत बेचना वसे बिल्कुल पाप
 क्या करू मगर लाचार
 हार कर गीत बेचता हूँ
 जी हा, हज़ूर मैं गीत बेचता हूँ !

व्यापार पर रणभेद की भावना होने पर भी परिधम में घबरे ही सामाज्य के लोको
 में जाति पति की प्रया अहलीय थी । अत सामाजिक उन्नति के लिए अस्तुयता
 निवारण की भावना को साहित्य म प्रयय मिला । पाठ्यकार्य सम्पर्क के प्रति कथित
 प्रतिक्रियाओं के अतिरिक्त नतिरिक्त बच्चों से मुक्ति तथा पाठ्यकार्यतानुसार अयने को
 बालने के रूप में भी नवीन विचारों का प्रभाव प्रतिकसित हुआ । अस्तुय सुपार
 परर दृष्टि एव भारतीय भादगों की रणा की भावनाः हिन्दी साहित्यकारों की
 धारमिक प्रतिक्रिया ही थी । कानाअर में पाठ्यकार्य सम्पर्क के प्रति अहलीयता
 का भाव बढ़ने लगा तथा मूल्यों में अद्विजनन भी अस्तुय दिशा जाने लगा । नये मूल्य
 भारतीय भादगों के अतिरिक्त भी ये श्री विशाह पीर प्रेम सम्बन्धी नवीन धारणाओं
 म स्पष्ट है । अस्तुय प्रवृत्ति गिना के रूप अयाय आदि के सम्बन्ध म शका
 जगने लगी । सामाजिक अयतन के प्रति अनास्था का भाव हमारे साहित्य म अथिक्त
 मुखर होना आरहा है । अिर भी हमारे समाज म मानवी सम्बन्धों का स्वरूप
 अथिक्त अद्विजनन नहीं हुआ है अत साहित्य में अथिक्त नये सम्बन्ध कमी धारोपित
 भी जान र ने हैं श्री पाठ्यकार्य प्रभाव को पीर भी प्रामाणिक बनाता है ।

राजनीतिक-आर्थिक विचारधारा : सघर्ष व न्याय-कांक्षा

पृष्ठभूमि

हमारे देश में उन्नीसवीं सदी में होनेवाले धार्मिक व सामाजिक सुधार आन्दोलन राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए किए गए बीसवीं सदी के राजनीतिक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि थे। पहले अध्याय में हम राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास की ओर इंगित कर चुके हैं। तत्कालीन साहित्य की प्रवृत्तियों को समझने के लिए यहाँ भारत शासन की राजनीतिक आर्थिक नीति की ओर संकेत करना समीचीन होगा जिसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप साहित्य में नवीन प्रवृत्तियों का जन्म हुआ।

भारत में भारत शासन की स्थापना हो जाने पर अंग्रेजों ने सब प्रथम रणनीति की नीति को प्रथम लिया। सेना में किसी भी भारतीय को चाहे वह कितना ही भी शिक्षित और कुशल हा परन्तु अंग्रेज अफसरों के बराबर पद नहीं दिया जाता था। सिविल सर्विस के लिए यद्यपि भारतीयों को परीक्षा में बैठने की अनुमति थी तथापि एक सीमा तक ही उच्च पद लिये जाते थे। उसके बाद केवल अंग्रेजों को उच्च पद मिलते थे। अंग्रेजों और भारतीयों का सामाजिक जीवन भिन्न था और कुछ क्लब, पाक आदि में भारतीयों का प्रवेश नहीं हो सकता था। 'याय' के सम्बन्ध में भी अंग्रेज और भारतीयों में भेद किया जाता था। लाड रिपन के समय अंग्रेजों और ईसायियों द्वारा इलबट विल (१८८३) जिसका उद्देश्य 'याय' की दृष्टि में अंग्रेजों और भारतीयों के भेद को दूर करना था का घोर विरोध किया गया। भारतीयों ने समझ लिया कि यह विराय जातीयता पर आधारित है तथा काल और गोरे का यह भेद उन्हें अस्वीकार्य हो उठा। अंग्रेज शासकों द्वारा शान शौकत रखने के लिये अत्यधिक अप्रयत्न किया जाता था। लाड लिटन और लाड बर्जन के शाही दरबार तथा हाथियों पर बैठ कर निकाले गये जलूस शासकों की अदूरदर्शिता के सूचक थे। इससे जनता में असंतोष व्याप्त हो गया था। सत्तावन के विद्रोह के पश्चात् भारतीय सैनिकों को सेना में भर्ती करने के लिए कुछ विशिष्ट जातियों को 'सैनिक जाति' कह कर प्रधानता दी गई। इस प्रकार अंग्रेजों ने "फूट डालो व राज्य करो" (Divide and Rule) की अपनी इतिहास प्रसिद्ध नीति के बीज धारण में डाल दिये जिसका परिणाम स्वरूप आगे चल कर हिन्दु मुस्लिम व मनस्य बढ़ा। अंग्रेजों राज्य के परिणाम स्वरूप सब से बड़ा परिवर्तन आर्थिक क्षेत्र में आया। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति तथा भारत

में ब्रिजजी राज्य की स्थापना के बाद यहाँ के उद्योग पेशों को नष्ट कर दिया गया और भारत केवल कच्चे माल को बेचने वाला देश रह गया। विदेशों में सरीदे जानेवाले भारतीय माल की खपत में भारी कमी आ गई।

विदेशी माल की खपत भारत में बढ़ती गई किन्तु स्वदेशी माल की खपत बढ़ती ही नहीं गई। भारत का आर्थिक नियंत्रण पूणतया ब्रिजजी के हाथ में था। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब कि इंग्लैण्ड का औद्योगिक विकास हो रहा था वहाँ के बने हुए माल की खपत के लिए भारत ठेके का बाजार बना हुआ था। औद्योगिक प्रान्ति के परिणाम स्वरूप लकाशायर ससार में सूती कपड़े के उत्पादन का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया। जब तक भारत में सूती कपड़ों के कारखाने नहीं खुले यहाँ लकाशायर के सूती कपड़ों की ही खपत होती थी। भारत में सूती कपड़ों के कारखाने खुला पर भी इंग्लैण्ड से आनेवाले माल पर करों की कमी करने उसकी खपत को प्रोत्साहन दिया गया। चाय रबड़, काफी और नील के बड़े बड़े उद्योगों पर केवल ब्रिजजी का आधिपत्य था। रेलों का काम ब्रिजजी कम्पनियों को पूजा पर निश्चित ब्याज देकर सौंपा गया। चाय आदि के उद्योग ही नहीं वरन् सामुद्रिक यात्रा, बक बीमा आदि व्यापार भी ब्रिजजी के ही हाथ में थे। भारत का धन सहस्रों घाराओं में होकर इंग्लैण्ड बहा जा रहा था।

इंग्लैण्ड ने भारत में ही साम्राज्यवादी युद्ध नहीं लड़े वरन् देश के बाहर भी भारत की शत्रुओं से रक्षा करने के नाम पर कई युद्ध लड़े। इन युद्धों का अर्थ भी भारतीय जनता को टक्कों के रूप में देना पड़ता था। भारत में साम्राज्य विस्तार की योजना बनाई गई तथा भारत स्थित ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने पूर्वी देशों में साम्राज्य बढ़ाने के लिये मात्रो अभियान किया। इन सभी युद्धों का भार बरदाता सामान्य भारतीय नागरिकों पर पड़ता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राजत्व काल में प्रथम अफगान युद्ध (१८४०), पहले दो बर्मा युद्ध (१८२४-२६, १८४२) चीन (१८५६-६०) फारस (१८५६-५७), नेपाल (१८१४-१६), सिका (१७६८), मल्लका (१८१०), सिंगापुर (१८१६), जावा (१८११), केप कालोनी मिश्र (१८०१) आदि युद्ध लड़े गये। सन् १८५७ के गदर को दबाने का चार करोड़ रुपये का अर्थ और कम्पनी के राज्य का अस्त होने पर उसकी क्षतिपूर्ति के लिए तीन करोड़ सत्तर लाख रुपये भी भारतीय कोष से दिया गया। ब्रिटिश सरकार की अधीनता में जाने पर भी युद्धों का वही ताता बना रहा। अबीसीनिया ईराक, अफगानिस्तान (१८७८-८०) मिश्र सूडान बर्मा (१८८५) आदि के युद्ध कम्पनी का राज्य समाप्त होने के उपरान्त लड़े गये। इन युद्धों का व्यय भी भारत को देना पड़ता था। इस प्रकार आर्थिक शोषण और दुर्व्यवस्था का साम्राज्य था। किसानों की बेदखली दुमिक्त, बीमारियों आदि से जनता सग आई हुई थी।

मुसलमानों के प्रति दृष्टिकोण

राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये किये गये राष्ट्रीय आन्दोलनों में हिन्दु-मुस्लिम सम्बन्ध का अध्ययन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अंग्रेजी राज्य की भारत में स्थापना के पूर्व यहाँ की राजनीतिक व्यवस्था अत्यधिक विशृंखल थी। जनता सबसे बड़ कर शांति व सुव्यवस्था की इच्छुक थी। विगत काल के मुसलमान शासकों के अत्याचारों की माद धरती भी हिन्दु जाति के हृदय में तित्त बनी थी। अब तक हिन्दू मुसलमानी शासकों के अत्याचारों से घिसते आये थे। उनकी विद्रोही आत्मा मूक बनी और निवश पड़ी थी। अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ शांति और सुव्यवस्था स्थापित हुई। स्वभावतः इस युग के लेखकों ने मुसलमानी अत्याचारों से सतोंप की सास ली तथा मुसलमानों के प्रति अपनी विरोधी भावना को अभिव्यक्त किया।

सन् १८७५ में प्रिंस आफ वेल्स (सम्राट एडवर्ड सप्तम) का स्वागत करते हुए भारतेन्दु ने ब्रिटिश राज्य को मुसलमानी राज्य से अधिक सुखदायक ठहराया। इसी प्रकार बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भारत में अंग्रेजी राज्य को ईश्वर का वरदान रूप मानते हैं क्योंकि यह विगत युग के अन्धकारपूर्ण मुसलमानी राज्य के अन्त तथा सुव्यवस्था के नवीन युगारम्भ का सूचक प्रतीत होता है। + भारतेन्दु युग के अधिकांश ऐतिहासिक नाटकों के प्रधानक मुगल काल से लिये गये हैं जिनमें मुसलमान शासकों की लम्पटता व कामुकता का निदर्शन तथा हिन्दु राजा व रानियों के उदात्त चरित्र का चित्रण हुआ है। भारतेन्दु कृत 'नील देवी' (१८८२) राधाकृष्ण दत्त कृत 'महाराणा प्रताप' (सन् १८९७) काशीनाथ खत्री कृत 'तीन परम मनीह' ऐतिहासिक रूपक' (सिन्धु देश की राजकुमारिया, गनोर की रानी, महाराजा लब्ध का स्वप्न-सन् १८८४) राधाचरण गोस्वामी कृत 'अमरसिंह' (सन् १८९५) आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं।

- श्री राजकुमार शुभागमन वर्णन (१८७५) भारतेन्दु प्रधावली द्वितीय भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पृ ६९६
जसे भातप तपित को छाया सुखद गनाठ
जवन राज के अन्त तव आगम तिमि हरसात
मसजिद लखि विमुनाप दिग परे हिये जो धाव
ता कह मरहम सरिस यह त्रव दरसन नर राव
- + यवन राज्य अन्धकार अनेकिन की सुधि आवत
अजहूँ लीं हम भारतीय को हिय हहरावत
बच्चो कण्ठगत प्राण होय जाकर मन भारत
सहि अंग्रेजी राज केरि सम्हरत से भारत । (प्रेमघन)

भारतेंद्र के रूपक 'नीलदेवी' म पजाब क राजा मूयदेव क घमीर भवदुशरीफ ला मूर के युद्ध का कथानक है। घमीर घमम युद्ध का घाम्यर सेजर रात्रि में ही मूयदेव की सेना पर घात्रमण कर देना है तथा राजा का बन्नी बना लेता है। पिजडे म बन्द मूयदेव से जय इस्लाम स्वीकार करने क लिय कहा जाता है तो वह घृणा से धूक देता है। इस पर घमीर क सैनिक शम्भ सेजर उस मारने दौड़ते हैं। राजा पिजडे को छोड़ कर बाहर निरल घाता है और कई यवनों का सहार कर वीर गति प्राप्त करता है। राजा की मृत्यु होन पर राजपूत मेना निराश और छिन्न भिन्न हो जाती है रानी नील देवी भय कोई उपाय न देख नतकी का छधवेप धारण कर पति के हत्यारे से बदला लेने का निश्चय करती है। वह नतकी के वेप में घमीर के घम म पहुँच जानी है तथा घाने मृत्यु व गान से सब को मुग्ध कर लेती है। जब शराब के नशे म मशगूल होकर घमीर रानी का 'जान साहब' कह कर संबोधित करता है तब वह उसकी छाती में छुरा मोक रती है। इसी समय राजकुमार सोमदेव घपने सनिको के साथ घमीर के शिविर को छिन्न भिन्न करते हुए भा पहुँचता है तथा भारत वप की जय 'घायकुल की जय' महारानी नीलदेवी की जय' के नारों से घाकाश गु जायमान हो जाता है। घत मे रानी मुखपूवक सती होने का सकल्प प्रगट करती है। यहाँ हम नीलदेवी को वीर नारी क रूप म पाते हैं। रीतिकाल की नारी केवल अभिसार व विलास की सामग्री थी किन्तु भारते दु-युग के साहित्य म चित्रित हि दु नारी केवल अपने व्यक्तित्व को ही नहीं पहचानती वरन् अपने देश की उन्नति व जातीय अभिमान से भी मडित है।

भारतीय नारी दीन हीन नहीं है उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष अभी शेष नहीं हुआ है या नहीं होना चाहिय यह राधाचरण गोस्वामी ने अपने नाटकों 'अमर सिंह राठोड' (१८६४) और सती चद्रावली में नारी पात्रा की मृष्टि करके बत लाया। अमरसिंह की स्त्री महारानी अपने पति की लाश स्वयं सशस्त्र वेप मे मुगल दरबार मे सना सहित पहुँच कर ले घाती है। सती होने के पूव वह जो सदेश देती है वह किसा शहीद होनेवाले राजनीतिक नेता के शब्द लगते हैं। *

सती चद्रावली' नाटिका मे च द्रावली जातीय अभिमान से मडित दर्शायी गई है। असरफ हजरत सलामत का भाई हाने का दम्भ भरता है तो च द्रावली गव

* राधाचरण गोस्वामी 'अमरसिंह राठोड' पृष्ठ ४२

जिस प्रकार बने देश का कल्याण कीजिए और एय करके फिर देश के स्वाधीन होने की चेष्टा कीजिये। यह तो मेरे प्राणनाथ अमरसिंह अकेले ने देश के लिये घातम समपण किया है, इसी प्रकार जब और लोग भी घातम समपण करेंगे तब देश स्वाधीन होगा।

से कहती है मुझे नहीं जानते मैं कौन हूँ मैं एक हिंदू लडकी हूँ ।' साम्प्रदायिक भावनाओं को लिये हुए चन्द्रावली का विरोध हिंदू नारी के आत्मनिष्ठता से मद्धित है । भारतेन्दु अपनी कविताओं में जब भी विगत युग का स्मरण करते हैं तो उनके सामने हिंदुओं के आश चरित नायक ही आते हैं । मुसलमानों का वे जब भी स्मरण करते हैं तो विरोधी तत्व के रूप में । गोवध, अत्याचारों आदि का वर्णन करते हुए प्रताप नारायण मिश्र ने युग भावना के अनुकूल उसे मुसलमानों राज्य के पतन का कारण माना है ।* स्वयं भारतेन्दु ने मुसलमानों शासन के अत्याचारों की धोमपूरा शब्दों में अभि यक्ति की है । वे बार बार अपनी रचनाओं में 'जयचन्द' को कोसते हैं जिसने फूट के बीज डाले और भारत में यवन राज्य स्थापित होने से भारतीय सभ्यता नष्टप्राय हो गयी ।

अस्तु मुस्लिम राज्य काल में हिंदुओं पर होनेवाले अत्याचारों की अभि-यक्ति भारतेन्दु युग के साहित्य में मिलती है । इसी कारण कुछ आलोचकों ने भारतेन्दु-युग की राष्ट्रीयता को हिंदु राष्ट्रीयता की सना प्रदान की है । किंतु, गहराई से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग के लेखकों ने केवल विगत युग में किये गये मुसलमान शासकों के अत्याचारों को बुरा बतलाया है । उन्होंने इस्लाम धर्म का कभी विरोध नहीं किया । इसके विपरीत भारतेन्दु ने 'कुरान का अनुवाद श्रद्धापूर्व शब्दों में किया । 'पंचपवित्रारमा इतिहास पुस्तक में उन्होंने इस्लाम धर्म के प्रवक्तृ मुहम्मद अली, बीबी फातमा इमाम हुसेन तथा इमाम हसन की जीवनीया लिखी । भारतेन्दु ने मुस्लिम काल की अपेक्षा अंग्रेजी राज्य काल को अच्छा बतलाया है । इसका कारण यह नहीं था कि वे अंग्रेजी राज्य की बुराइयों से अवगत न हो वरन् धर्म के नाम पर मुस्लिम काल में हानिवाले अत्याचारों से सुख की सास पाना ही वे पर्याप्त समझते हैं और इसी से अंग्रेजी राज्य की बुराइयों से अवगत होते हुए भी उसे अपेक्षा कृत कम बुरे' (Lesser evil) के रूप में अच्छा बताते हैं । इस दृष्टि से भारतेन्दु की 'बादशाह दण' रचना में भारतेन्दु युग की राष्ट्रीय भावना निम्नान्त रूप में प्रकट हुई है ।— जहाँ तक विदेशी शासन द्वारा होने वाले आर्थिक शोषण एवं राजनीतिक पराधीनता के पाश से मुक्त होने का प्रश्न है वे

* प्रताप नारायण मिश्र 'कानपुर महात्म्य' प्रताप-लहरी पृष्ठ ११२

'इही पापनते चोपट मा ज्वानो राज मुसल्लम बयार'

+ डा बैसरी नारायण शुक्ल (सम्पादक) भारतेन्दु के निबंध 'सरस्वती मंदिर, जतन घर बनारस, सवत् २००८ बादशाह दण' पृष्ठ १७४

यद्यपि उस उद्देश के अनुसार बागवा आया गुलिस्तां में कि सयाद आया जो कोई आया मेरी जान को जल्लाद आया क्या मुसलमान क्या अंग्रेज भारत

हिन्दु मुस्लिम एकता के पोषक हैं। किंतु, हिन्दु सस्कृति के सरक्षण के विषय में वे मुसलमानों को भ्रष्टों से भी बढ़ कर शत्रु मानते हैं। युग की परिस्थितियों के अनुरूप भारतेन्दु-युग के अग्र लेखक भी हिन्दु-मुस्लिम एकता के समर्थक हैं किंतु, भ्रष्ट शासकों के मुसलमानों के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार तथा मुसलमानों के हिन्दुओं से भ्रष्टों को भ्रमण रखने की नीति का उन्हें सदैव शोक बना रहता है। अस्तु एक उद्ग पत्र के सम्पादकीय मे गोवर्ध का पक्षपात करने पर प्रतापनारायण मिश्र 'भालमे तस्वीर' ॥ निबंध में हिन्दु मुसलमानों को एक दूसरे का सहायक होने का सन्देश देते हैं। बालकृष्ण भट्ट भी मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ बर

को सभी ने जीता किंतु उनमें तब भी बड़ा भ्रष्ट है। मुसलमानों के बाल में सत सहस्र बड़े-बड़े दोष थे किंतु दो गुण थे। प्रथम तो यह कि उन सब ने भ्रष्टता घर यही बनाया था उससे यहाँ की लक्ष्मी यही रहती थी। बीच-बीच में जब कोई भ्रष्टा मुसलमान बादशाह उत्पन्न होते थे तो हिन्दुओं का रक्त भी उष्ण हो जाता था। किसी ने सब कहा है कि मुसलमानी राज्य हैज का रोग है और भ्रष्टों क्षयी का। इनकी शासन प्रणाली में हम लोगों का धन और वीरता निशेष होती जाती है। बीच में जाति पक्षपात मुसलमानों पर विशेष दृष्टि आदि देख कर लोगों का मन और भी उदास होता है। यद्यपि लिबरल दल से हम लोगों ने बहुत सी आशा बाध रखी है पर यह आशा ऐसी है जैसे रोग असाध्य हो जाने पर विषवटी की आशा। जो कुछ ही मुसलमानों की भाँति इन्होंने हमारी देवमूर्तियाँ नहीं तोड़ी और स्त्रियों को बलात्कार से छीन नहीं लिया न घास की भाँति सिर काटे और न जबर-दस्ती मुह में धूँक कर मुसलमान किये गये। अभाग्ये भारत को यही बहुत है। विशेष कर अंग्रेजों से हम लोगों को जसी शुभ शिक्षा मिली है उसके लिये हम उनके ऋणी हैं। भारत कृतघ्न नहीं है। यह सग मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेगा कि भ्रष्टों ने मुसलमानों के कठिन दण्ड से हमको ज्ञाया यद्यपि अनेक प्रकार से हमारा धन भि गये किंतु पेट भरने को मीठ मागने की विद्या भी सिखा गये।

॥ विजय शंकर भल्ल (सम्पादक) 'प्रताप नारायण प्रयावती'
'भालमे तस्वीर' पृ० १८१

हिन्दु मुसलमान दोनों भारत माना के हाथ हैं। न इनका उनके बिना निवाह है न उनका इनके बिना। भ्रष्ट सामाजिक नियमों में एक दूसरे के सहायक हों। इनमें दोनों का कल्याण है। कोई दाहिने हाथ से बायाँ हाथ भ्रष्ट बाएँ से दाहिना हाथ काट के मुँची नहीं रह सकता।

भाव छोड़ने की प्रेरणा देते हैं । *

राजभक्ति की भावना

सत्तावन के विद्रोह के पश्चात् महारानी-विक्टोरिया की घोषणा ने भारतीयों में राजभक्ति की भावना को पोषित करने में अत्यधिक योग दिया । अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना से प्रसन्नता का दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि अंग्रेजी साम्राज्य पश्चात्य गम्यता के नवीन रूप को लेकर आया था जिससे ससग से भारतीय समाज में नवीन सुधारों, नवीन जागृति व नवीन ज्ञान की आकांक्षा जागृत हुई । भारतेन्दु ने भी अपने 'बलिया का भाषण' में अंग्रेजी राज्य के सुकाल को सामाजिक सुधारों के लिये स्वर्ण काल बतलाया । % राधाचरण गोस्वामी अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के साथ अंधेरे, अज्ञान व असभ्यता के समय का अन्त समझते हैं । =

भारतेन्दु युग के लेखक व १८५७ का विद्रोह

अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति राजभक्ति की भावना का प्रदर्शन गदर के प्रति तत्कालीन साहित्यकारों की प्रतिक्रिया से स्पष्ट हो जाता है । हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि १८५७ के विद्रोह के सबब में हमारे साहित्य में केवल अंगुलियों पर गिनी जा सकनेवाली पत्तियाँ ही लिखी गयीं । इसका एक कारण गदर के पश्चात् होनेवाले अंग्रेजी राज्य के दमनकारी रूप को ठहराया गया है । भारतेन्दु ने इस दमन के आतंककारी रूप की ओर सचेत

* बालकृष्ण भट्ट 'हिन्दी प्रदीप, नवम्बर १८८५ पृ० १३

हिन्दुओं को समझना चाहिए और बहुत से हिन्दु समझते हैं कि मुसलमानों की हिजो में अपने ही भाइयों की हिजो है और मुसलमान भी हिन्दुओं की हिजो को अपनी ही हसी समझें । अफसोस है कि बहुत थोड़े मुसलमान शायद इस बात को जानते हैं कि एक ही लपट हिन्दुस्तानी या नेटिव हिन्दु मुसलमानों दोनों को सूचित करता है । हम दोनों के बरी यूरोपियन किरानी जब कभी हेटफुल निगारों शब्द का स्तेमाल करते हैं तो उसके मानी से मुसलमानों को पलंग नहीं छेक देते मुसलमानों को चाहिए कि हिन्दुओं के साथ बँर भाव को अब सदा के लिए तलाक दे देना हर तरह पर मुनासिब समझें ।

% भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'बलिया भाषण' कविवचन सुधा जिल्द १ सख्या ३ पृष्ठ ८

अंग्रेजों के राज में सब प्रकार का सामान पाकर भी हम लोग इस समय जो उन्नति न करें तो केवल हमारे अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही है ।

= राधाचरण गोस्वामी 'विधवा विवाह विवरण' पृ० ७

किया है । + इसी प्रकार, प्रतापनारायण मिश्र ने गदर के दमन को एक अनर्थ के रूप में स्मरण किया है । ❁ 'हम राज भक्त हैं' निबंध में व विद्रोह में भाग लेने वाले भारतीयों को नमक हराम कहते हैं तथा भारतीयों द्वारा गदर के समय में अंग्रेजों को मदद दी जाने के सम्बंध में गौरव अनुभव करते हैं । X उन्होंने 'ब्रिटिश स्वागत' में गदर का वर्णन केवल कुछ भारतीय सेना के बिगड़ सके होने के रूप में किया है तथा भारतीय प्रजा की ब्रिटिश राज्य के प्रति सहानुभूति दर्शाई है । *

+ कठिन सिपाही—द्रोह अनल जा जल बल नासी
जिन भय सिर न हिलाय सकत कहें भारतवासी
(भारते दु)

❁ प्रतापनारायण मिश्र 'प्रताप लहरी' पृष्ठ २०७
सन् सत्तावन मा गलवा या भये सब हिंदु हाल बहाल
जितनी तिरिया कम्पू कटि गद सो तो जानत है ससार
बड़े लहयन बालक कारे जिन मुह ब दूध की धार
भाग कम्पनी कायम रहिय खलि है जुगन जुगन तगि नाव
अनर्थ जो न होय सो घोरो यह सब धरती को परभाव । ३४

X प्रतापनारायण मिश्र हम राजभक्त हैं, ब्राह्मण जिल्द ५ अध्याय २ पृष्ठ ६
धार्मिक गवर्नमेंट के भूटे खुशामदी सन् १८५७ के बलबे के सिवा और
कोई दोष नहीं लगा सकते पर उन्हें भी समझना चाहिए कि वह अपराध प्रजा का
न था, किसी प्रतिष्ठित हिंदु मुस्लिम का दोष न था केवल थोड़े से नमकहरामों के
कारण भारतीय नेशन मात्र को बलबे लगाना बुद्धिमानी से दूर है । यदि मान ही
सैं कि वह अपराध हिन्दुस्तानिया का ही था तो भी इसका उत्तर है कि उस समय में
हमारी सरकार को सबमुक्त सहायता किसने दी थी ? हमी ने !!! क्या कि हम
राज भक्त हैं । राजभक्ति हमारा सनातन धर्म है ।

- सन सत्तावन माहि जबहि कुछ सना बिगरी
तब राजा गिनि रही सुदृढ ह्व परजा सिगरी
दुष्ट समुक्ति अपने भाइन कह साथ न दीनों
भोजन बिन बिदाहिन को बन निरबल को-रो
ठीर ठोर निज घर सुटवाय प्रभु पुत्रवाये
प्राण गोप बहु ब्रिटिश बग के प्राण बचाय
पदागत प्रिय लोग कहें कहिबो जो बहदा
प साथे भूनाय भक्त भारत मुन बहदा

(प्रतापनारायण मिश्र के द्वारा स्वागत)

सामन्तवाद का विरोध

भारतेन्दु युग में अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति की भावना की विविध प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। मुसलमानी राज्य के अत्याचारों के पश्चात् अंग्रेजी-राज्य काल में देश में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना हुई। भारतेन्दु-युग में राजनीतिक चेतना देश व्यापी नहीं हुई थी। अंग्रेजी शासन की दमनपूर्ण नीति के कारण उम समय उसका खुला विरोध नहीं हुआ अर्थात् तत्कालीन युग की राजभक्ति की भावना के कारण बताया जाते हैं। यह सभी कथन आशिक समय के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं। किन्तु, जिस सत्य की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता वह यह है कि अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ भारतीयों ने जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण को अपनाया। अंग्रेजी राज्य की स्थापना से सामन्तवाद नष्ट प्राय हो गया। १७ का गदर मृत सामन्तवाद की प्राप्ति रक्षा के लिए किया गया प्रतिम हत्या प्रयत्न था। यह भारतेन्दु की दूरदर्शिता थी कि उल्टे उस युग में भी पहिचान लिया कि देशोक्ति में राजा व नरेश—सामन्त वग, सहायक नहीं हो सकता। पवनो-मुन्वी सामन्तों का भारतेन्दु की रचनाओं में अत्यधिक सजीव चित्रण हुआ है। भारतेन्दु के प्रथम अद्वितीय नाटक 'विद्या-सुन्दर' में स्वयंवर के लिए आये हुए राजकुमारों के प्रति कथा का पिता राजा कहता है कि उनका केवल राजवंश में जन्म हुआ है पर वास्तव में वे पशु तुल्य हैं। राजकुमारों के प्रति यह अशोभनीय उक्ति राजवंश के प्रति अश्रद्धा की द्योतक है। राजशेखर के 'कपूर मजरी' सट्टक का भी भारतेन्दु ने अनुवाद किया है जिसमें राजा की स्त्रियाँ की काम वासना का शिकार चित्रित किया गया है। केवल अनुवाद ही नहीं, भारतेन्दु ने अपनी मौलिक रचनाओं में भी सामन्त वग का अत्यात्मक चित्रण किया है। उनकी रचना 'वदिक हिंसा हिंसा न भवति' का सामन्ती पात्र राजा मदिरा पान को ही मुक्ति का द्वार समझता है। 'अवेर नगी' का चौपट राजा तो बकरी मरने का दण्ड-विधान करते करते स्वयं ही स्वेच्छा पूवक फाँसी पर लटक जाता है। 'विपस्य विपमोपधम्' बडोदा नरेश मल्हार राव गायत्रवाड को गद्दी पर से उतारे जाने की घटना के आधार पर लिखित भाण है। मल्हार राव ने लक्ष्मीबाई नामक सौभाग्यवती स्त्री से जबरदस्ती विवाह कर लिया जिस पर उनके पति ने मल्हार राव के विरुद्ध नानिशा करदी। इसी कारण मल्हार राव को राजगद्दी से उतारा गया। 'विपस्य विपमोपधम्' का यही

† भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'विद्यासुन्दर' भारतेन्दु नाटकावली पृष्ठ ६

× भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'वदिक हिंसा हिंसा न भवति' भारतेन्दु नाटकावली ३७६।

क्यात्मक आधार है। इस भाण में भारतेन्दु ने अंग्रेजों द्वारा महारार राव की गद्दी से उतारने का निरूपण या समझन किया है तथा विपरीत राजाओं के विरुद्ध अंग्रेजी शासन के विषय की सराहना की है। "भाण" का पात्र महाशय महारार राव की अत्यधिक कामुकता का उल्लेख करता है।* 'दिल्ली दरबार दृश्य' में भारतेन्दु ने देशी नरेशों की सांस्कृतिक हीनता और कायरपन की बड़ी मीठी चुटकियाँ की हैं। सम्य समाज के आधार व्यवहार से अनभिन्न व घोषी मान के दिखावे में ही यह धम अपनी वाह वाही समझता है। +

इसी प्रकार 'लेवी प्राण लयी' शीपक से भारतेन्दु ने बनारस में गवर्नर जनरल साठ मयो के सम्मान में हुए दरबार का चित्र खींचा है जिसमें इस दरबार को 'कठपुतली का तमाशा' कहा गया है। अंग्रेजों के सामने यह सामन्ती-व्यग

* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - विषय विषयमोपधम् " भारतेन्दु नाटकावली पृ० ५६१

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र दिल्ली दरबार दृश्य कवि वचन गुणा सङ्ग २, कोई तो दूर से ही हाथ जाड़े भाए और दो एक ऐसे थे कि जब एडिडकांग के बन्दन श्रुता कर इशारा करने पर भी उन्होंने सलाम न किया तो एडिडकांग ने उनकी पीठ पकड़ कर घीरे से धुका दिया। कोई बठ कर उठना जानते ही न थे महा तक कि एडिडकांग को उठो कहना पड़ता था। कोई भडा, समगा सलामी और खिताब पाने पर भी एक शब्द अग्रवाद का नहीं बोल सके और कोई विचारें इनमें से दो ही एक पदाय पाकर ऐसे प्रसन्न हुए कि श्रीयुत वाइसराय पर अपनी अपनी जान व माल निछावर करने को तयार थे। कितने वाक्य ऐसे थे जिनके कुछ अर्थ ही नहीं हो सकते और नवाब साहब को अपनी अंग्रेजी का ऐसा कुछ विश्वास था कि अपने मुह से केवल अपने ही को नहीं बरन् अपने दोनों लडकों को भी अंग्रेजी, अरबी ज्योतिष, गणित आदि ईश्वर जाने कितनी विद्याओं का पंडित बताए गए। २६ तारीख को सब के अंत में महारानी तजोर नकाब में आई। वे तास का सब घसन पहने थी और मुह पर भी तास का नकाब पड़ा हुआ था। इसके सिवाय उनके हाथ पांव दस्ताने और मोजे से ऐसे ढके थे कि सबके जी में उन्हें देखने की इच्छा रह गई। वाइसराय से मिसेस फथ (Interpreter) ने हाथ मिलाया। वाइसराय की किसी बात के उत्तर में एक बार महारानी के मुह से 'दश' निकल गया जिस पर श्रीयुत ने बड़ा हृष प्रकट किया कि महारानी अंग्रेजी भी बोल सकती हैं, पर अनुवादक मेम साहब ने कहा कि वे अंग्रेजी में दो चार शब्द से अधिक नहीं जानती।

प्राण उठा कर देखने को भी साहस नहीं कर सकता । •

भारतेन्दु ने देशवासियों को जागृति के लिए भपील करते हुए उन्हें सामन्त व ग्राह्यण वगैरे सचेत रहने की चेतावनी दी है। अपने 'बलिया मे भाषण' में भारतेन्दु ने स्पष्टतया राजा, नवाब हाकिम व पण्डिता को निकम्मा कहा है । + प्रस्तु ५७ का विद्रोह केवल पतनोन्मुखी साम उवाद व ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बीच राजनीतिक सघष मात्र नहीं था। वह प्राचीन व अर्वाचीन के बीच सावमूलक सघष था। भारतेन्दु की दूरदर्शिता ने प्राचीन के बदले अर्वाचीन का पल्ला पकड़ा ।

• भारतेन्दु हरिश्चन्द्र "लेवी प्राण लेवी" (कवि वचन सुधा जिल्द २ स० ५ पृ० ३४)

साह साहब की लेवी" समझ कर कपडे भी सब लोग अच्छे पहन कर घामे थे वे सब उस गर्मी में बड़े दुःखदायी हो गये। जामे वाले गर्मी के मारे जामे से बाहर हुए जाते थे। पगड़ीवालों की पगड़ी सिर की षोक सी हो रही थी और दुशाले और कमखान की चपकन वालों को गरमी ने अच्छी भाति जीत रक्खा था। सब के अगों से पसीने की नदी बहती थी मानो श्रीयुत को सब लोग आदर स "अध्य पाच" देते थे। कोई खडा हो जाता था कोई बठा ही रह जाता था कोई डेरे के बाहर घूमन चला जाता था इतने म कोलाहल हुआ साह साहब आते हैं रामनारायण साहिव ने फिर अपने मुह को खोला और पुरारा 'स्टैंड अप (सडे हो जाव) सब के सब एक साथ सडे हो गए। राय साहब का 'सिट डोन' कहना तो सबको अच्छा लगा पर 'स्टैंड अप' कहना सब को बुरा लगा मानो भले चुरे का फन देने वाले राय साहब ही थ। इतने म फिर कुछ माने म दर हुई और फिर सब लोग बठ गये। वाह वाह दरवार क्या था 'कठपुतली का तमाशा' था या बल्लमटेरो की 'कवायट' थी या बदरों का नाच या किसी पाप का फल भुगतान था या फौजदारी की सजा थी हाय पश्चिमोत्तर देशवासी कब कायर पन छोडेंगे और कब इनकी ननति होगी और कब इनको परमेश्वर यह सम्मता देगा जो हिन्दुस्तान के और खण्ड के वासियों ने पाई है।

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'बलिया म भाषण' (हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खड १ सख्या ३ पृ १२।

राजे महाराजे नवाब हाकिम देशोन्नति नहीं कर सकते। कुछ समय बचा भी तो उनकी क्या गरज है कि हम ग दे काले आदमियों से मिल कर अपना मनमोल समय खोवें। भाइयों राजा महाराजों का मुह मत देखो मत मह भाशा रक्खो कि पण्डितजी क्या म कोई ऐसा उपाय बतावेंगे कि देश का रचना और वृद्धि बढ़े तुम आप ही अगर कसो आलस छोडो।

राजभक्ति एवं देशभक्ति की सम्मिलित धारा

अंग्रेजी शासन के प्रति आशाओं का प्रमुख कारण गदर व झां महारानी विक्टोरिया की धारणा थी जिसमें भारतीय प्रजा पर पुत्रवत् शासन करने का आश्वासन दिया गया था। यह आशाएं पसवती नहीं हुईं। भारतवासियों ने इसके लिए इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट में अजरबटिय बहुमत की दोषी समझा घतः लिबरल दल के प्रति नवीन आशाएं बांधी गईं परन्तु लिबरलों का बहुमत हान पर भी यही दशा रही। अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति भारतीयों की आशा की निराशा में परिणति भारतीय इतिहास की अत्यधिक अरुणपूर्णा घटना है। इसी राजनीतिक विचारधारा के अनुरूप भारतेन्दु युग के साहित्य में ब्रिटिश शासन के प्रति आरम्भ में राजभक्ति की भावना पाई जाती है किन्तु राजनीतिक चेतना के साथ देशभक्ति की भावना भी यहाँ तक कि विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह का स्वर भी प्रकट होने लगा।

भारतेन्दु युग के लेखकों ने अंग्रेजी राज्य के बेशक बघाये नहीं बघाय। इस युग के लेखक राजवशीय व्यक्तियों के स्वागत गान में देशहित की बातें रखते थे। भारतीय विचारधारा के अनुसार भारतेन्दु राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते हैं। राजघराने के किसी भी व्यक्ति के स्वागत में अष्टाञ्जलि अर्पित करते हैं। साथ ही प्रजा के दुखों से राजा को अवगत कराना वे अपना धर्म मानते हैं। वे राजभक्त और देशभक्त दोनों साथ हैं। किन्तु एक पराधीन देश के प्राणी के लिए राजभक्त व देशभक्त के माग भिन्न भिन्न होते हैं—दो रास्तों में से उसे एक की चुनना होता है। भारतेन्दु के उनके साधियों ने प्रजा के हित का माग अपनाया फलतः आगे चलकर उन्हें सरकार का धोप माजन बनना पड़ा।

भारतेन्दु ने नवीन विक्टोरिया के पति इसबट की मृत्यु के अवसर पर १४ सितम्बर सन् १८६१ की अल्बर्ट दृशम अतसार्दिका" कविता की रचना की यह भारतेन्दु की आरम्भिक काल की रचना है। यह कविता शोकोगार होने के बदले पद्यात्मक श्लोक ही है। सन् १८६६ में ज्यूक ब्राफ एडिनबरा के भारत आगमन पर भारतेन्दु ने श्री राजकुमार स्वरागत पत्र लिखा। इस कविता में 'वट श्रुतु हृषिक की योजना है। कवि राजकुमार की पुजा भुजा की छांव में अमय पद दान' की माग करता है। 'सुमनोज्जलो' (सन् १८७०) ज्यूक ब्राफ एडिनबरा के काशी आगमन पर पढ़ी गयी रचनाओं का संग्रह है। 'प्रिंस ऑफ वेल्स के पीठित होने पर लिखी गयी कविता (सन् १८७१) में भारतेन्दु ने विक्टोरिया के सम्बन्ध में लिखा— 'जिनकी माता सब प्रजाजन की जीवन प्राण'। ज्यूक ब्राफ एडिनबरा की रूस की राजकुमारी ग्रेण्ड डचेज मेरी से विवाह के अवसर पर (सन् १८७५) 'उहोने मुह दिखायना' लिखी जिसमें 'आशा दासी' को भेंट करने की

कल्पना है। प्रिंस ग्रॉफ वेल्स के भारत प्रागमन पर भारतेन्दु ने 'राजकुमार शुभा-गमन वरुण' (१८७५) कविता लिखी। इस कविता में कवि प्रतिधि एडवर्ड सप्तम के प्रति सम्मान की भावना प्रकट करते हुए इस अवसर पर सुसज्जित नगर का ध्वजात्मक चित्रण करता है तथा उसके पूर्वयुगीय बभ्रव का स्मरण करता है। इसी अवसर पर भारतेन्दु ने एक अन्य कविता भी लिखी है—'भारत मिशा'। यह कविता बंगाल के कवि हेमचन्द्र बनर्जी की एक कविता का भावानुवाद है। भारतेन्दु की इससे पूर्व लिखित राजघराने के व्यक्तियों से संबंधित कविताओं में देश की दुःशा का ध्यान नहीं किया गया है किंतु 'भारत मिशा' में कवि भारत मात को अश्रुनिपात करती ध्याकुल जननी के रूप में चित्रित करता है। वह अपनी पूर्वकालिक गौरवपूर्ण सभ्यता का स्मरण करती है तथा अविच्छन्न इच्छाओं को भी प्रकट करती है। इस कविता में अंग्रेजी शासन के घातक की ओर भी संकेत किया गया है। 'मानसोपायन' (सन् १८७७) कविता को मूमिका में 'बिचारे छोटे पद के अंग्रेजों को हमारे चित्त की क्या खबर है ये अपनी ही तीन छटांक पकाना जानते हैं' का विद्रोही स्वर भी व्यक्त हुआ है। तथापि सभी अंग्रेज शासकों को भारतेन्दु ने बुरा नहीं कहा। 'रिपनाष्टक' लिखकर कवि ने कृपापूर्ण शासन का स्तवन किया। कवि के हृदय में राज परिवार के लोगों के प्रति पूरा सम्मान है। यह सम्मानपूर्वक उस परिवार के लोगों के सामने यदा कदा देश की दुःखदशा की ओर संकेत करता है।

भारतेन्दु की तरह 'प्रेमधन' भी राज परिवार के प्रति अनुकूल अवसरों पर अपनी राजभक्ति की भावना प्रकट करते हैं। महारानी विक्टोरिया की हीरक जुबली के अवसर पर उन्होंने 'हादिक हर्षादिश' कविता की रचना की जिसमें उन्होंने सन् १८५७ ई० के स्वातंत्र्य-संग्राम की निंदा की तथा धर्मराज, रघु और राम के सहस्र 'अंग्रेजों के सुखद राज की गति' के अटल बने रहने की कामना की।† सम्राट एडवर्ड सप्तम के भारत साम्राज्याभिषेक के अवसर पर उन्होंने 'भारत-बघाई' (१९०३ ई०) शीपक राजभक्ति से पूरा कविता की रचना की। युवराज जाज फेड्रिक अर्नेस्ट अलबर्ट प्रिंस ग्रॉफ वेल्स के भारत प्रागमन पर उन्होंने स्वागतार्थ 'आर्यामिन-दन' (१९०६) शीपक कविता लिखी। सम्राट पंचम जाज I के मे साम्राज्याभिषेक पर भी प्रेमधन ने बघाई रूप में सोभाग्य समागम अथवा भारत सम्राट सम्मिलन' शीपक कविता की रचना की।

प्रतापनारायण मिश्र ने भी राजकुमार विक्टर के प्रागमन (१८९० ई०) पर 'युवराजकुमार स्वागतार्थ' कविता राजभक्ति से प्रेरित होकर लिखी। मिश्रजी

† प्रेमधन 'हादिक हर्षादिश' प्रेमधन-सवस्व तेरे सुख राज की गति रहे अटल इत धर्मराज, रघु राम प्रजा हिम में जिमि अ कित ।

की 'ब्रेडला-स्वागन' और लाड रिपन सम्बन्धी कुछ कविताएँ राजमक्ति पूरा है जिनम देशमक्ति की भावना का भी समावेश हुआ है।

भारतेन्दु युग के कवियों में पंडित मुवाकर द्विवेदी ने भद्रजी राज्य की निर्बाध प्रशंसा की है। महारानी विक्टोरिया की हीरक ज्वली के अवसर पर उन्हें महामहोत्सवों की पन्नी भी दी गयी थी। यद्यपि मुवाकर जी का अभी तक कोई काव्य संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है तथापि उनके स्फुट पद्यों में अंग्रेजी भाषा, विद्या का प्रचार देन दियामनाई आदि आविष्कारों की प्रशंसा की भावना मिलती है। श्री किशोरीलाल गुप्त के शब्दों में "मुवाकर जी इतना न सोच सके कि ये सब अंग्रेजी राज्य की बरकतें नहीं थीं समय की बरकतें थीं।"†

राजाह्वय ने भी महारानी विक्टोरिया की हीरक ज्वली के अवसर पर जुबनी कविता की रचना की। विक्टोरिया की मृत्यु पर विजयती विलाप शीघ्रक कविता में उन्होंने शोक प्रकट किया।

अंग्रेजी राज्य के प्रति भारतेन्दु युग के साहित्यकारों की भाषा बरी थी, किंतु अंग्रेजों की आर्थिक शोषण की नीति के कारण यह भाषा शीघ्र ही निराशा में परिणत हो गयी। स्वयं भारतेन्दु ने ही इस भाषा के मिथ्यापन को पहचान लिया था। 'भारत दुःशा' नाटक में उन्होंने भारत दुःख के मुह से कहलवाया

'कहा गया भारत मूख जिसको अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी (बहीन विक्टोरिया) का भरोसा है। X पार्लियामेंट में स्लेडस्टन के प्रधान मंत्री पद पर चुनाव के अवसर पर उनके प्रति जानबूझती सभा कलकत्ता के तत्वावधान में कृतज्ञता पापन के लिये सभा आयोजित की गई जिसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिबरलो के प्रति आशाएँ व्यक्त की।* किंतु अल्प काल में ही यह भाषा निराशा

† किशोरीलाल गुप्त 'भारतेन्दु और अंग्रेज सहयोगी कवि' हिन्दी प्रचारक पुस्तक सय बनारस १९५६ पृष्ठ ४२६

X भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'भारत दुःशा' नाटकावली पृष्ठ ६०२

● भारत मित्र अंक ७

आपकी और आपके सहयोगियों की इस प्रकार दया और समवेदना का विषय अनुमोदन करने से यह हम सब का निश्चय हुआ कि विलायत में भी ऐसे बहुत महान्त हैं जो भारतवर्ष के दुःख से दुःखी और मुल से मुली होते हैं अतएव यह धार्मिक विचारित नहीं हुआ है तो भी हम लोगों को यह सम्पूर्ण आशा हो गयी है कि भविष्य में इस विषय की प्रथमा और किसी विषय की प्राथमा ब्रिटिश पार्लियामेंट में कही जायगी तो ध्यान ऐसे उदार और स्वाधीनता प्रिय महागणों की मांग का द्वारा हम लोग को आशानुसार फनोमसा ।

परिणित हो गयी। 'पालियामट घोर भारतवप' निबध का लेखक ग्लेडस्टन की नीति को भी कजरवेटिव शासको की नीति के समान ही भारत के लिए हानि द ठहराता है।+ अतत इसकी परिणति शिद्रोहात्मक रूप म पायी जाती है। वतमान राजनीति की चर्चा' शीपक निबध म इस युग का लेखक अग्रजे शासको की मनमानी का तीव्र विराध करता है।X

विदेशी शासन के विरोध के कुछ मनोवैज्ञानिक कारण

विदेशी शासन की बुराई आर्थिक शोषण ही नहीं है, इसके साथ ही विजित देश के आत्म-सम्मान को ठेस पहुचाना तथा अधिकारों से वचित कर उसकी स्वतंत्रता का अपहरण करना भी उसका परोक्ष लक्ष्य बन जाता है। भारतवासियों को 'काला' कहना, उन्हें असम्य समझना और उनके साथ अमानवीय व्यवहार रखना न्याय की दृष्टि से काले और गोरे म भेद बतना, सिविल सर्विस म भारतीयों को स्थान न देना सेना म भर्ती करने म भेद नीति रखना, प्रेस और हृदियार रखने की स्वतंत्रता पर प्रतिबध लगाना भारतवासियों से अपनी उच्चता प्रदर्शित करने के लिए अग्रजी प्रशासकों द्वारा वभव का अवाधनीय प्रदर्शन करना, साम्राज्यवादी शापण के ऐसे कट्टु अनुभव ये जिहोंने राजा को ईश्वर का रूप समझनेवाली भारतीय प्रजा की राजभक्ति के सामने एक बड़ा प्रश्न चिह्न तथा दिया। भारत दु-युग के लेखका न भारतीयों क साथ क्रिय जानेवाले इस प्रकार के अत्याचार के विरुद्ध क्षोम प्रकट किया है तथा यह क्षोम प्रकट करत समय उनकी देशभक्ति की भावना राजभक्ति के सिर पर चढ कर बोलती है।

रगभेद

यह इतिहास का व्यग है कि यूनान, मिश्र व चीन की तरह भारत की प्राचीन सस्कृति अत्यधिक समृद्ध होने हुए भी उन्नीसवी सदी की विदेशी गारी शासक जाति ने इस देश के निवासियों का अफीका के हंसियों की तरह असम्य और जगली समझा तथा उन्हें काला व 'नेटिव' शब्दों से सम्बोधित किया। जिस प्रकार शेक्सपियर के 'मर्चेंट आफ वनिस' (Merchant of Venice) म यहूदिया

+ भारत-मित्र अक १४

हम यह नहीं कहते कि कजरवेटिव ही हम लोगों पर विशेष तीव्र भाव रखते हैं लिबरल ग्लेडस्टन साहब न भी चीन गृह युद्ध का भार भारत पर अर्पित किया था।

X सारसुधा निधी वतमान राजनीति की चर्चा अक ३०-३१ पृ० ३५०

यह समय ऐसा आ गया है कि समझने से कहना कठिन है भारतवप उन लोगों (इंग्लैण्ड निवासियों) की क्रीडा-भूमि नहीं है कि जो इच्छा सो ही करें।

के साथ दुर्भंगहार से शापसाह की आत्मा व्यपित हो उठती है उसी प्रकार भारतवासियों की आत्मा की दृष्टि से 'काना' बहूने पर भारतभू की आत्मा व्यपित हो उठती है। + सत्तार में सबसे पहले 'सम्य, सूर सुखरासी' होनेवाले भारतीयों को प्रसन्न व काना बहूने पर 'प्रेमघन' दोम प्रकट करते हैं। X दादा भाई नौरोजी के इगन्ध की शक्तिशाली के सदस्य बनने के उद्देश्य में विरचित 'मगलाशा धयवा शक्ति धयवा' (सं १८८२) कविता में 'प्रेमघन' को 'कालेपन' पर प्रतिमान हो आता है। • म प्रेजों द्वारा प्रयुक्त नेटिव शक्ति का बालकृष्ण मट्ट विरोध करने हैं। (क)

म प्रेजों के वैभव प्रवर्धन का विरोध

काले और गोरे के बीच की नीति विदेशी शासकों के रग रग में भरी थी। यही कारण है कि म प्रेज शासक भारतीयों से सामाजिक व्यवहार तो रखना दूर मिलने जुलने में भी घटना आमान समझने थे। उन्हें अपने देश आराम के सामने देश की दशा का ध्यान ही नहीं रहता था। प्रतापनारायण मिश्र विदेशी शासकों

+ कहि कृष्ण इ हैं मति तुच्छ करो नहीं कीटहु तुच्छ विचार घरो
 इनहूँ कह जीवन देह दया इनहुँ कह ज्ञान सनेह मया
 इनहुँ कह लाज तृपा ममता इनहूँ कह शोष क्षुधा समता
 इनहूँ तन शोभित हाड तुवा इनहूँ कह आखिर ईस रवा (भारते-दु)

X जाहिल भी जगली जानवर कायर कूर कुचाली रामा
 हरि हरि हाथ कहावे भारतवासी काला रे हरि
 भये सरल नम म पहिले जे सम्य सूर सुखरासी

(प्रेमघन)

• प्रजरज होत तुमहु सन गोरे बाजत कारे
 तासो कारे कारे शब्दहु पर हैं वारे
 अह बहुधा कारन के हैं आधारहि कारे
 विष्णु कृष्ण कारे कारे ससहु जय कारे

प्रेमघन (मगलाशा और हादिक धयवाद)

(क) बालकृष्ण मट्ट हिन्दी प्रीत सितम्बर १८८६ पृ० १३
 हमारा राज्य ही हमसे छीन गटक बड़े और अब तक हमें सूख बताते ही जाते हैं। नेटिव, मूख, झूठे कुम्भज धर्म उधारिया देने हुए आप बड़े बुद्धिमान और सच्चे उदार बनते हैं।

के इस व्यवहार के प्रति असंतोष प्रकट करते हैं ।*

बालकृष्ण भट्ट अंग्रेजों के शान्त शोकात् से रहने के डग की आलोचना करते हैं ।† वे अंग्रेजों को ही सरकारी ऊँचे ओहदे देने की नीति की भत्सना करते हैं तथा सेना में भारतीयों को ऊँचे पद न मिलने के कारण अंग्रेजों की नीति को पक्षपातपूर्ण ठहराते हैं ।×

इलबट बिल—'याय की दुर्घ्यवस्था

इलबट बिल का विरोध रंगभेद की नीति का ज्वलत प्रतीक था । इस बिल के पास होने के पहले भारतीय 'यायाधीश किसी भी अंग्रेज का 'याय नहीं कर सकता था जब कि अंग्रेज 'यायाधीश को किसी भी भारतीय अधिकारी का दण्ड देने का अधिकार था । इस युग के साहित्यकारों ने अंग्रेजों द्वारा 'इलबट बिल' के विरोध पर क्षोभ प्रकट किया । 'अंग्रेजों से भारतवासियों का जी क्यों

- * जे अनुशासन करन हेतु इत पठये जाही
ते बहुधा बिन काज प्रजा सो मिलत लजाही
जिते न्यास हया रहहि तिते कहैं लघु अवसर मह
जन रजन हित कराहि न स्वीकृत कहु कष्ट कह
तनिकहु भोग विलास माहि भुटि करन न चहही
नेकहि भीसम लखे पबतन कर पय गहहीं

(प्रतापनारायण मिश्र)

† बालकृष्ण भट्ट "हिन्दी प्रदीप" मार्च १८८५ पृ० १३

कसी उम्मा बराडेदार बारिको मे एक अदना सा गोरा रहता है और कितना बहुमूल्य खाना खाता है । कितने गाय बँल बकरे साल भर में उसके पोषण के लिए चाहिए कसी कसी बड़े दाम की औपधिया उन्हें निराग रखने को दी जाती है । इसी के मुकाबले हिन्दुस्तानी सिपाहियों की पलटनों को देखिय फी सिपाही पीछे १२ रुपया या १५ रुपया से अधिक लख सरकार का न पढता होगा । हम हम देखत है गवनर जनरल से लेकर जिलो के कनक्टर और जट तक सब अंग्रेज ही अंग्रेज भर रहे है देशी लोगो को कही एक औहदा भी एसा नहीं मिलता ।

× वही पृष्ठ १४

इतनी पलटनों में एक भी देशी मनुष्य कप्तान या मैजर आदि के पद पर नियुक्त न किया जाय ।

नहीं मिलता' लेख में इस पक्षपात का स्पष्ट विरोध मिलता है।— प्रतापनारायण मिश्र ने 'बेकार न बठ कुछ किया कर' निबंध में इस बिन्दु के विरोधियों का विरोध किया।—

अंग्रेजी राज्य काल में न्याय की व्यवस्था के प्रति भी इस काल के साहित्य में क्षोभ पाया जाता है। पाप व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह था (और अभी है) कि वह सब साधारण को मुक्त नहीं हो पाता था। एक अदालत से दूसरी अदालत में जाने में धन का जो व्यय होता था उसके कारण सर्व साधारण को न्याय मिलना कठिन था। फिर 'यायाधीश पक्षपाती भी होते थे। अस्तु भारतेन्दु का 'सत्य हरिश्चन्द्र नाटक' तत्कालीन युग में न्याय की दुर्व्यवस्था की प्रतिप्रिया में विरचित प्रतीत होता है और उसमें सच्चाई पर दृष्ट रहने की आवश्यकता ध्वनित होती है। 'अधेर नगरी' नाटक में अंग्रेजी राज्य काल के न्याय पर गहरा व्यंग्य है।

'न्याय की दुर्व्यवस्था के साथ ही भारतीयों के प्रति अंग्रेजों के दुर्व्यवहार पर इस युग के लेखकों के मन में क्षोभ था। प्रतापनारायण मिश्र ने 'टैंड जानि शका सब काहू' तथा 'सब सहायक सबल के निबंधों में भारतीयों के प्रति अंग्रेजों के दुर्व्यवहार की घोर निन्दा की है। भारतेन्दु ने ककड स्तोत्र निबंध में अंग्रेजी राज्यागत शक्ति व्यवस्था की चुटकी ली है। बालकृष्ण मट्ट हिन्दी

+ हरिश्चन्द्र चरित्रका' खण्ड २ अध्या ३।

अंग्रेजी पद लेन को किसी हिन्दु के विस्तान हो जाने को बहुत स लोगों के अंग्रेजी चाल ग्रहण कर लेने को हम मिलना नहीं कहते हम इन दोनों जातियों का जो तब मिला सम्पर्क जब एक के चित्त में दूसरी की ओर से सहज स्नेह हो और परस्पर के दुःख सुख के साक्षी हो। हिन्दु लोग जसा इनको अपवित्र विदेशी, क्रूर इत्यादि दोषों से पूरित समझते हैं वैसे ही अंग्रेज लोग हिन्दुओं को पराजित मूल अंधेरे में पड़े हुए समझते हैं यहाँ तक कि हिन्दु मध्य, अंग्रेज मक्षक यह सम्बन्ध टूट ही रहा है और अंग्रेजों के जाति-पक्षपात से यह गाँठ और भी टूट होती है और परिणाम इसका बुरा दिखाई पड़ता है। क्या कारण है कि हिन्दु मजिस्ट्रेट अंग्रेज को दण्ड न दे सक पर अंग्रेज हिन्दु को द ? केवल पक्षपात नीलवालो का बम्बई में सिपाही का और ऐसे ही यदि अखबारों में चुने जाय तो सक्डो मुकदमे होंगे जिनमें अंग्रेजों का अंग्रेजों ने पक्षपात किया है।

— विजयशंकर मल्ल प्रतापनारायण अयावली 'बेकार न बठ कुछ किया कर' पृष्ठ ४४।

इलबट ने गुड दिखा के ईट मारी है। इन्हें अंग्रेज अधिकारियों का इतना पक्षपात कि हिन्दुस्तानी हाकिम, बिना युरोपियों की पचायत बठे उनका न्याय ही न कर सकें। क्यों न हो 'पर का परसया अंधेरी रात।

‘जीप’ में प्रायः पुलिस के हथकण्डों के विरुद्ध लिखते थे। भट्टजी ने ‘सा अजान और एक सुजान उपन्यास’ में भी पुलिस के अप्टाचारों का वर्णन किया है। पुलिस दरगा सोचना है, ५००) रुपया रोज पैदा किए बिना दातून करना हराम है। अच्छा फिर हमारा गुजारा भी तो किसी तरह होना चाहिए। बड़े बड़े नवाबों का जो खर्च न होगा वह हम अपने जिम्मे बाधे हैं।

ग्राम्स एक्ट व प्रेस एक्ट

तत्कालीन युग में ‘ग्राम्स एक्ट व ‘प्रेस एक्ट’ के विरुद्ध भी साहित्यकारों ने क्षोभ प्रकट किया। अंग्रेजी राज्य के प्रति स्वाभिमक्ति की भावना रखने वाले भारतवासियों की स्वतन्त्रता पर यह प्रहार मारते-टु को अर्धचक्र प्रतीत हुआ। × प्रतापनारायण मिश्र ने भी ग्राम्स एक्ट का विरोध किया। = प्रेमघन ने ‘जीणपद’ कविता में रामनीला का वर्णन करते हुए परोक्ष रूप में ग्राम्स एक्ट की निन्दा की है। अब योद्धाओं के लिये केवल नकली युद्ध में भाग लेकर अपना कोतुक दिखाना ही शेष रह गया है। -

× सर्वोच्च भाति नृप भक्त जे भारतवासी लोग
शस्त्र और मुद्रण विषय करी तिनहु की रोक

(भारतेन्द)

= निज तन रक्षा हित किन हाथ हथिया रहू नाहीं ।
लूटि लहिं घर चोर चह जब जेहि निसि माहीं ।

(प्रतापनारायण मिश्र)

“ प्रेमघन प्रेमघन-सवस्व जीणपद पृ० ३१ ।
बड़े बड़े योद्धा दुहु आर अपने कपि निश्चर
भिरत परस्पर लरत महाकरि बाण परस्पर
मनहु असम्भव अंग्रेजी क राज लराई
जानि लडाके लोग युद्ध झूठे मे आई
कमक निकातरत मन की निज करतब निखरावत
भूले युद्ध नवाबी के पुन याद करावत ।

इसी प्रकार प्राचीन समय की धीर जानियों को घबराते करके अपनी जीविका पालन करते देख के उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं ।+

भाषा नीति, गोवध

दफ्तरों में हिन्दी के बन्ने उद्गू को स्थान गोवध आदि अन्य विषय थे जिनके कारण तत्कालीन साहित्यकारों की अंग्रेजी भाषकों के प्रति द्रोह था । महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के अवसर पर लिखित प्रतापनारायण मिश्र के 'जुबली' शीपक लेख में इन विषयों का संकेत मिलता है । X

भारत शासन के प्रति विरोध की भावना इसी तथ्य से प्रकट है कि इस युग में रहे गये पौराणिक नाटकों में भी प्रकारान्तर से भारत शासन की बुराईयों को ही दर्शाया गया है । बालकृष्ण मट्ट के वेणु सहार पौराणिक नाटक में भृगु के द्वारा नाट्यकार माने अपने युग की बात कहता है

क्या कारण है कि हमारा आश्रम इन दिनों निरन्तर जन सञ्चार विहीन सा रहता है । मनुष्य की कौन कहे पशु पक्षी तक उल्टासीन से मालूम होत हैं । काल विषयय सा हो गया है । ठीक समय पर अच्छी वर्षा न होने से आश्रम पादप सब

+ वही पृष्ठ ५५ ।

रहे वीर योद्धा थे आज किसान गए बनि
लेत उसास उदास सप जैसे खोया मनि
रहे चलावत जे तलवार तुपक एडाने
आजु चलावहि ते कुदरि फरसा बिलखाने
जे छाटत अरि भुङ सभर मह पीठि सिंहासन
कडवी बालत बठि खेत काटि बनी बेदम
रहत मान अमिमान भरे सजि अस्त्र शस्त्र ज
सस्य भार सिर धरे लाज सो दवे जात वे

X प्रतापनारायण मिश्र जुबली, ब्राह्मण खण्ड ४ अंक १ पृष्ठ ८

अनेक स्मारक चिह्न बने और बधुए छूटे अनेक कविता की गई अनेक एड्रेस भेजे गए पर अन्तर्गत भारत के लिए क्या किया ? यदि आम्स एक्ट उठा लिया जाय हम शस्त्रास्त्र सञ्चालन की आज्ञा फिर हो जाय तो अथवा गोवध उठा दिया जाय तो अथवा जो दिल्ली की सी घातें करने वाली उद्गू दफ्तरों से भगा दी जाय तो हम और हमारे वंशज सदा यही कहेंगे कि साहस के बिना दूत दुःशास्त्र के बिना कचहरी में यथातथ्य अक्षरों के बिना भारतवासियों के जू (जीव) दिल्ली को भक्ति अर्पण्य थ सो महारानी की दया से वही जित बली अर्थात् बलिष्ठ हो गए अथवा इनकम टेक्स ही से हमारा गला छूटे तो सदा कहेंगे कि जीउ बलि अर्थात् जीव का बलिदान देने वाला रामस महारानी के शताब्दी सम्बन्धी उत्सव ही में मारा गया ।

पुरस्काने से हैं। जान पड़ता है यह सब राजा के उपद्रव का परिणाम है क्योंकि मनावष्टि तथा प्रजा में आदि व्याधि रोग शोक आदि ब्रष्ट का फैलना बिना राजा के अत्याचार के नहीं होता। राजा में लोभ के आते ही सुख समृद्धि का अन्तर्भाव हो जाता है तो निश्चय इस समय कुछ राजोपद्रव है जिससे लोग दुःखी हो रहे हैं।*

आंग्ल शासन के आर्थिक शाषण का विरोध

अंग्रेजी राज्य के प्रति भारतीयों से असंतोष का प्रधान कारण हमारे देश का आर्थिक शोषण था। जो देश कमी धन था य से पूरा था जहाँ धरतू उद्योग घड़े समृद्ध था जहाँ की भूमि रत्नगर्भा थी अब नष्ट बकारी, अशिक्षा और असंतोष सुरसा की तरह बढ़ने जा रहे थे। सबसे दुःख पूरा बात तो यह थी कि यहाँ का धन विदेश चला जा रहा था। भारत का धन बवल इ गलण्ड ही नहीं जा रहा था बल्कि इ गलण्ड अपने साम्राज्य और राजनीतिक प्रभाव के विस्तार के लिए जिन युद्धों को लड़ रहा था उनका भार भी प्रायः भारत को ही उठाना पड़ता था। 'फ्री ट्रेड' की नीति के कारण भारत का व्यापार नष्ट हो गया। इस पर भी देश में अकाल और महामारी का प्रकोप बढ़ चला। १८५७ के विद्रोह के पश्चात् बंगाल में किये गये किसानों के बन्धुवस्त से किसानों की कठिनाइयाँ बढ़ गईं। १८६६ ई० में अकाल पड़ा जिसमें दस बीस लाख मनुष्यों की मृत्यु हो गयी। इस वर्ष मन्दी का जमाना था। सन् १८६८-६९ में फिर अकाल पड़ा। तरकालीन युग के अवाल, महामारी, टक्सों का ताता अंग्रेजी साम्राज्यवाद के शोषण के प्रतीक थे।

साम्राज्यवादी शोषण

इस आर्थिक शोषण के विरुद्ध भारतेन्दु युग के लेखकों ने आवाज उठाई। भारतेन्दु ने अपने 'बलिया में भाषण' में 'हजार तरह से' विदेशों में जाने वाली भारत की लक्ष्मी को रोकने की अपील की। † साम्राज्यवाद के सूक्ष्म आर्थिक शोषण को

* मद्र निबन्धावली, (स०) धनजय मद्र सरल पृ० ६०

† भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'बलिया में भाषण' (हरिश्चन्द्र चन्द्रिका भाग १ सख्या ३) जैसे हजार घारा होकर गंगा समुद्र में मिली है वैसे ही तुम्हारी लक्ष्मी हजार तरह से इंग्लैंड फ्रांसिस जर्मनी, अमेरिका को जाती है।

और श्री

भीतर भीतर सब रस चूसे हसी हसी के तन मन धन भूसे
जाहिर बातन में प्रति तेज, क्यों सखि सज्जन, नहीं अंग्रेज !

(नये जमाने की मुकरी)

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
वे धन विदेश चलि जात इहे प्रति ह्वारी

भारतेन्दु ने पहिचाना था । 'भ्रम ग्रेज स्तोत्र' में उन्होंने भांगल शासन को विष्णु कह कर व्यंग किया है जो लक्ष्मी को अपने ही पास रखता है । - प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी कविता में साम्राज्यवाणी शोषण के प्रति व्यंग किया है । - समय का फेर निश्चय में उन्होंने जीवन यापन की आवश्यक सामग्रियों के चतुर् एव विशेषी माल खरीदन की महत्सना की । • युवराज एडवर्ड सप्तम के भारत प्राग मन के भ्रमचक्र पर बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने 'हाकि हर्षाश्र' कविता में सम्पत्ति के क्षीण होने के कारण सुकाल को भी भ्रकाल बताया । ✓

ताहू पे महंगी बाल रोग विस्तारी
 त्नि त्नि दूने दुख ईस दंत हा हा री
 सब के ऊपर टिककस की आफत आई
 हा हा भारत दुशशा न देखी जाई

(भारत दुदशा पहला भ्रक)

हिंद चूरन इसका नाम बिलायत पूरन इसका काम
 चूरन जब से हिंद में आया इसका धन बल सभी घटाया
 चूरन साहब लोग जो खाता सारा हिन्द हजम कर जाता

(प्रधेर नगरी)

+ डा० कमरी नारायण शुक्ल (सम्पा) भारतेन्दु के निष्पन्न सरस्वती मन्दिर,
 जतनवर बनारस स २००८ 'अथ भ्रम ग्रेज स्तोत्र लिख्यते' पृ० ६८

— नाव न लीज धन दीनति को टिककस दीजे काटि कर जान
 और बातन के सब सुख है मानो रामचन्द्र के राज
 कर अथ चला पथ हा लक्ष्मी जाय विशेष बसी है
 नोन तेल लकरिहु के हित नित रहती प्रजा तरसी है ।

×

×

×

सबसु लिये जात भ्रम ग्रेज, हम केवल लेकवर क तेज ।

• विजयशंकर मल्ल (सम्पादक) प्रतापनारायण ग्रन्थावली समय का क्र
 पृष्ठ २७२

✓ यद्यपि तिहारे राज भयो भारत प्रति उन्नत
 भाग सो अब सब काळ सब विधि सुख पावत
 पे दु ख प्रति भारी इक यह जो बढत दीनता
 भारत में सम्पत्ति की दिन दिन होत छीनता
 सुख सुकालहु जिह अकालहि के सम भारत
 कई कोटि जन सहत सत्त भोजन की सासत

(हादिक हर्षाश्र)

साम्राज्यवादी आर्थिक शोषण के विभिन्न व अनेक तरीके थे। भारत की लक्ष्मी 'हजार तरह से' विदेशों में जा रही थी और उसके जाने का सबसे बड़ा माग व्यापार था। भारत के सभी घरेलू उद्योग नष्ट हो गये थे। नये कल कारखाने नहीं खुल पा रहे थे। भारत इंग्लैंड को केवल कच्चा माल भेजनेवाला देश रह गया। भारत से जो कच्चा माल इंग्लैंड जाता वही वहां से बन कर पुनः भारत में आकर कई गुनी कीमत पर बिकता। देश में उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक था कि विदेशी माल के भारत में आने पर उस पर अधिकतम कर लगाया जाता किन्तु विदेशी शासन से इसकी अपेक्षा करना व्यर्थ था। श्रीनिवासदास ने 'भारत खण्ड की समृद्धि' निबंध में ग्लासगो व एडिनबरा व रूस की नीति के अनुरूप भारत में आनेवाले विदेशी माल पर कर लगाने की नीति को अपनाने की अपील की। बालकृष्ण भट्ट ने भी भारत में आने वाले विदेशी माल पर आयात कर न लगाने की अपेक्षाओं की नीति को स्वायत्त बतलाया। X

टक्स

आर्थिक शोषण का दूसरा रूप था भारतवासियों पर टैक्स लगाना। सामान्य अवस्था में तो देश में विभिन्न प्रकार के टैक्स लगाये ही गये थे किन्तु, अंग्रेजी

+ श्रीनिवासदास 'भारत खण्ड की समृद्धि' सारसुधानिधि' जिल्द १ स ६ पृ २६

बहुत से लोग तो इस बात को भी नहीं जानते कि यहाँ से कई विलायत को जाती है और वहाँ से वस्त्र बन कर आता है जिसमें कितनी हमारी हानि होती है। जिस समय यहाँ से कपड़ा इंग्लैंड में जाता था उस समय (सन् १७७३) ग्लासगो और एडिनबरा के निवासियों ने कैसे उद्वेग से यह सम्मत किया था कि 'भारतखण्ड का बना हुआ कपड़ा कोई न ले और सरकार से प्रायना करके हिन्दुस्तानी पदार्थों पर कर बढ़ाया जाय। सभी रूस के तुर्किस्तानी गवर्नर ने यह आज्ञा दी है कि 'चाय' और 'अफीम' भारतखण्ड से रूसी एशिया के विभाग में न आने पावे और हिन्दुस्तान के सब पदार्थों पर कर अधिक किया जाय। इसी प्रकार क्या हम लोगों को उचित नहीं है कि अपने हानि-लाभ का प्राय विचार करें।

X बालकृष्ण भट्ट 'आत्म त्याग' भट्ट निबंधावली भाग २ पृ १८

किन्तु वहाँ (इंग्लैंड में) और के मुकाबले खुदगर्जी का प्रभावता बेहद दखल है। आपस में आत्म-त्याग और सहानुभूति ज्यों की त्यों कायम है। लक्ष्मी शायरवालों को बड़ी हानि के ख्याल से रूस के माल पर इम्पोर्ट ड्यूटी का न लगाना गवर्नमेन्ट की हाल की कायवाही इस बात की गवाही है। इस खुदगर्जी के लिए जो सरासर धम्याय और धम नीति के विरुद्ध है अंग्रेजी गवर्नमेन्ट को दुनिया की और सलतनतों नाम रखती है पर वहाँ 'स्वायत्त शक्ति ही भूखतार' का सिद्धांत सब को दबा रहा है।

साम्राज्यवाद को विदेशों में किसी प्रकार का युद्ध लड़ना होता तो उसका व्यय भी भारतवासियों पर टैक्स लगाकर वसूल किया जाता। भारतवासियों को १८५७ के विद्रोह का व्यय ही टैक्स के रूप में नहीं देना पड़ा वरन् अफगानिस्तान बर्मा, काबुल, मिथ्र आदि में लड़े गये साम्राज्यवादी युद्धों का व्यय भी देना पड़ा। इन टैक्सों के विरुद्ध भारते-दु-भुग के माहित्य में राशि राशि भावों की अभिव्यक्ति मिलती है।

विदेशी युद्धों का व्यय

अफगान-युद्ध की समाप्ति पर भारते-दु ने 'विजय वल्लरी' की रचना की। अफगान युद्ध अंग्रेजों ने भारतीय सेना को भेजकर जीता था। युद्ध में विजयी भारतीयों को प्रसन्न देखकर कवि प्रश्न करता है कि क्या भूमि का कर उठ गया अथवा टैक्स माफ हो गया या सिविल सविक्ष में प्रवेश पाने का जन-साधारण का अधिकार मिल गया अथवा नाट्य-प्रदर्शन, भाषण और समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता मिल गयी अथवा भोवब बंद हो गया जिससे कि भारतीय सैनिक इतने प्रसन्न दिखाई देते हैं। कवि प्रश्न ही अंग्रेजी साम्राज्यवादी नीति पर तीव्रभंगी प्रकाश डालते हैं जिसमें उसकी सारी नग्नता उघड़ कर प्रकट हो जाती है। तत्पश्चात् कवि वास्तविक स्थिति को प्रकट करता है कि 'अफगान युद्ध में अंग्रेजी सरकार के विजयी होने के कारण भारत-वासियों में यह प्रसन्नता का भाव क्यों उदित हुआ है। इसका प्रतिकार करते हुए वह कटु सत्य को व्यक्त करता है कि युद्ध न होने से भारतवासियों पर नया टैक्स नहीं लगेगा तथा इस प्रकार उनका धन नष्ट होने से बच सकेगा केवल मात्र इसी बात की उम्मीद प्रसन्नता है। †

† नहिं नहिं कारन नहीं अहै और ही बात
जो भारतवासी सब प्रमुदित अतिहि लखात
काबुल सो इनको कहा हियै हरज की भास
ये तो निज धन नास सो रन सों और उदास
सुजस मिले अंगरेज को होय रूस की रोक
बड़े ब्रिटिश वाणिज्य पै हमको केवल शाक
भारत राज मभार जो कहै काबुल मिल जाई
जज बलेकर होइहैं हिन्दु नहिं तित धाई
ये तो केवल भरन हित द्रव्य देन हित दीन
तासों काबुल युद्ध सों ये जिय सदा मलीन
इनने जिय के हरक को औरहि कारण कोय
जो ये सब दुख भूल के रहे मनन्दित होय

शुली है 'लोन' न युद्ध बिना लागिहै नहीं टिबकस
रहि है प्रजा मनद सहित बडि है मत्री जस

विलियम म्योर के आगमन पर काशी में गंगा के तट पर रोशनी की गई थी। भारतेन्दु ने उस समय एक नाव पर रोशनी से एक घोर ओह टैक्स (Oh Tax) घोर दूसरी घोर

‘स्वागत स्वागत धन प्रभु श्री विलियम म्योर
टैक्स छुड़ावहूँ सबन को विनय करत कर जोर’

लिखवाया। ‘विलियम म्योर के आगमन पर शीपदान’ शीपक लेख में उन्होंने नगर के प्रकाश को दूषित स्त्री की तरह शीहीन बताया। + ‘अथ अग्रेज स्तोत्र लिख्यते’ निबंध में भारतेन्दु ने अग्रेजों के लिए लिखा है ‘तुम बद हो इनकम टैक्स तुम्हारा बलक है।’ × मुद्रों के कारण बढ़ने वाले टैक्सों व दरिद्रता का ‘प्रेमघन’ ने होली की नकल या मोहरम की शकल ॐ कविता में तथा राधाचरण गोस्वामी ने होली के एक गीत * में विरोध किया। ‘सार

यहि सोचि आनन्द भरे भारतवासी जन

प्रमुदित इत उत फिरहि आज रञ्छित लखि निज धन, भारतेन्दु)

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कवि वचन सुधा’ जिल्द २ स० १२

उस समय का शीपदान काशी के शुभ चिन्तकों को ऐसा जान पड़ता था जैसे काशीपुरी अपने हृदय की प्यास के दुःख की अग्नि को प्रकट दिखाती थी। मला जिस स्त्री ने महीना से भ्रत का दर्शन मात्र नहीं किया यदि उसको कोई पोंडसी शृंगार करके बैठाने तो उसे सुख प्राप्त होगा कदापि नहीं। यही दशा इस नगर की थी।

× डा. केसरीनारायण शुक्ल भारतेन्दु के निबंध ‘सरस्वती मन्दिर, जतनवर, बनारस स० २००८ अथ अग्रेज स्तोत्र लिख्यते’ पृ० ६७

ॐ प्रेमघन

रिपत गये जब सो उत हाय तब सो विपत परी उतराय
इफरिन लाट मये इत भाय प्रथम परे भति सरल सुनाय
पर इत भाय किये मन भाय करनी कहु कही नहीं जाय
रो ओ सब मुह बाय बाय, हय हय टिक्कस हाय हाय
रावलपिंडी छूब सजाय माल दरबार की ह हरखाम
दिल्लो काबुल युद्ध करवाय जग स पूरत मुमट बुलाय
‘योता भन विधि तिहें जिवाय माल खजाना गिहिन सुटाय
रो ओ सब मुह बाय बाय हय हय टिक्कस हाय हाय

* —राधाचरण गोस्वामी सार सुधानिधि वष १ अ क ८
इत अकाल उत टिक्कस लगायो कर सब धै बरजोरी
तेज अनाज ठिक्क कहूँ नाही भरत प्रजा सब ठोरी
भीख मागत ले भोरी !

सुघा निधि' में 'हिन्दु समाज शीघ्र एक लक्ष प्रकाशित हुआ जिसमें काबुल व अमीर सीनिया के युद्धों का भारत पर व्यय सामने का विरोध व्यक्त हुआ है। प्रतापनारायण मिश्र ने 'हुची चोट निहाई के माथे' निबंध में मिश्र तथा रूस के विरुद्ध लड़े जानेवाले युद्धों में भारतीयों का भाग जन का विरोध किया। ❖

व्यापार और उद्योग

भारत की कला और उद्योग नष्ट हो गए। भारत का धन विदेशों में लक्ष कर खला गया। टक्स की मार से भारतवासी मुख्य की सास नहीं ले पाते थे। इस पर भी अंग्रेजी राज्य की शान शौकन को खिलान में होनेवाला व्यय भारतवासियों के हृदय के कांटे की तरह चुभने लगा। भारत का वाइसराय साइमेयो की जब शेरमशी ने हत्या की तो राज्य व्यवस्था का समर्थक भारतेन्दु ने शेरमशी के लिए कठिनतम दण्ड विधान की सम्मति दी। किन्तु तीन महान बाद साइमेयो की स्मृति में बननेवाले बहुमूल्य स्मारक का निर्माण को व धनव्यय समझते हैं।

❖ सार सुघानिधि वप १ अ व ५ (१७ फरवरी १८७६) पृ० ५२

काबुल के युद्ध से क्या फल हुआ काबुल रूस ने शठता का फल पाया दूसरे इंग्लण्ड को क्या फल हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर में यही कहना पड़ेगा कि एक तो इनकी स्वायत्तता का परिचय हुआ। दूसरे एक प्रशस्त आमदनी का रास्ता हुआ अब भारतवर्ष को क्या फल हुआ। इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि भारतवर्ष को क्या फल होना है। ये तो बराबर ही से मारवाड़ी बल है इसको सिवाय बोझ उठाने के और क्या मिलना है। अमीरसीनिया की लड़ाई में भारत को बोझ उठाना पड़ा था। इस लड़ाई में भी भारतवर्ष को ही बोझ उठाना पड़ेगा। राजा की इच्छा चरिताय हुई एक प्रशस्त आमदनी का रास्ता हुआ पर धार-बर्दाना सब भारत के सिर लादा गया मरे को मारना और दबे को दबाना मुनासिब नहीं है।

❖ विजयशंकर मल्ल प्रतापनारायण प्रयागली हुची चोट निहाई के माथे' पृ० ६१

मिश्र ने मेहदा से उलभने को भी हिन्दुस्तानी ही झोके गये हैं। यदि सम्राज कुछ सनके तो भी हुची चोट निहाई के माथे हमी तोप के मुहुर होग। हमारे ही देश की लक्ष्मी का हवन होगा। जवाब इसका यह होगा कि 'महा' रक्षा के लिए सब होता है। हम कहते हैं कि हमारी ही रक्षा किमनिय की जाती है वसीलिए न कि हम कमाते जाए और आप ल ले के घपना घर मरते जाए।

एक मूर्ति निर्माण के लिए लाखों रुपये खर्च करने के बदले इसे उपयोगी कामों में खर्च करना व जनता का टक्स के भार से मुक्त करना उह अधिक उचित प्रतीत होता है । +

व्यापार की दुर्दशा

भारत में ब्रिटिश प्रथम नीति के अनुसार भारत का बच्चा मान तो सस्ते दामों पर इंग्लैण्ड में जाता ही था तथा वहाँ में वस्तुएं बन कर आती जो भारत में कई गुने दामों पर बची जाती किन्तु भारत में भी बड़े बड़े सामंदायिक व्यापारों पर प्रग्रेजी व्यापारियों का प्राधिपत्य था । व्यापारिक कुछ क्षेत्रों में एकाधिपत्य के कारण भी भारतीयों का प्राधिक शोषण कम नहीं होना था । कभी २ ऐसा भी होता कि प्रग्रेज व्यापारी कुछ क्षेत्रों में सम्पूर्ण फसल कम दामों में जबरदस्ती ही खरीद लेते तथा जब मंडी में दाना भी नहीं रहता तो मनमाने दामों पर धान बचते । इनकी वार धान देश से बाहर निर्यात कर दिया जाता और देश को मनुष्य निर्मित अकाल का सामना करना पड़ता । प्राधिक शोषण के इस रूप को भारतेन्दु युग के लेखकों ने अत्यधिक धाम के माध्यम पहिचाना । 'कष्टानिकष्टतरम् शुधा' X लेख में बालकृष्ण मट्ट ने भारतीय व्यापार की हीन दशा का वर्णन किया है । उनका कथनानुसार देश में घोडा बहुत व्यापार है—वह केवल धान के निर्यात का है जो देशवासियों को भूखों मारने का कारण है । कलकत्ता व बम्बई जमे कुछ शहरों को छोड़ कर शेष सभी स्थानों के व्यापारी जिनके यहा रूपों की मनमनाहट छाई रहनी थी 'मीन साये वसना बिछाये हाथ पर हाथ घरे बैठ रहते हैं केवल व्याज की या गांठ की आमदनी से अमीरी ठाठ बाधे हुए हैं । होली है • लेख में प्रतापनारायण मिश्र देश में कृषि बाणिज्य शिल्प सरकारी नौकरी सभी की दुर्व्यवस्था का अवन करतें हैं 'जो कुछ बचता भी है वह बट के खलिहान में नहीं आ पाता । ऊपर की ऊपर सद जाता है रुजगार व्यवहार में कुछ देखी नहीं पड़ता । जिन बाजारों में अभी १० वष भी नहीं हुए कचन बरसता था वहाँ अब दुकानें

+ भारतेन्दु कविवचन सुधा त्रिलोक ३ सख्या १३ (२४ फरवरी १८७३) पृ० १०६

उस पत्थर की मूर्ति व स्तम्भ से तो हम यही जानते कि हिन्दुस्तान की प्रजा को भयो साहब का नाम सदैव स्मरण रहगा । यदि ऐसा ही लोगो को करना हां तो सब रूपया एकत्र करके सरकार के कोष में जमा करदें जिसमें टिक सष्ट जाय जिसमें विचारे दुखी पिसे जाते हैं ।

X बालकृष्ण मट्ट 'कष्टानिकष्टतरम् शुधा' मट्ट निबन्धावली भाग २ पृष्ठ १०३

प्रतापनारायण मिश्र होली है ब्राह्मण पृष्ठ ६२

नाय भोग्य होती है।" प्र प्रज व्यापारी किस प्रकार बाजार का सारा भान जबरदस्ती सारीद कर मा" म महुने दापो पर बेचो तथा भागव निमित्त अनाज को भयकर बनाने म सहायक होते इसकी ओर बालकृष्ण भट्ट ने अपने निबन्धों 'नाम मे नई कल्पना' और 'बोध मनोयोग और मुक्ति म सबत किया । *

भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में कृषि बढाने का उद्बोधन' एक सम्पादकीय शीपक म नील, चाय आदि उद्योगो से प्र प्रेजा को साधों रुपयों मे लाभ का उल्लेख किया है । +

गरीबी व म महगाई का चित्रण

उपयुक्त रूप म देश के आर्थिक शोषण व परिणाम स्वरूप भारतीय जनता को गरीबी और गरीबी के कारण होनेवाले गमी कष्टो का कटु अनुभव हुआ । देश की गरीबी व महगाई का इस युग के साहित्यकारो ने कष्टान्द्र चित्रण किया । भारतेन्दु के होरी क गीतो म देश की दयनीय दशा का सजीव भवन हुआ है ।

नया सबद' कविता ने प्रतापनारायण मिश्र नील तेल व सबडो क लिए

* बालकृष्ण भट्ट नाम म नई कल्पना' मट्ट निबन्धावली-भाग १ पृष्ठ ५

हमारे किसान मर मर पच २ करोडो मन गेहू पदा करें । यह यदि सब का सब हमारे काम में आवे तो चुकाय न चुके पर गेहूँ खेत में रहता है तभी रेली ब्रस के कारि दे गाव गाव धूम खेत का खेत चुकता कर लेते हैं हम मु ह ताकते रह जाते हैं । रेली ब्रस के होसने का मत सब होगा कि हिन्दुस्तान म एक दाना भी गेहूँ का न रह जाय सब का सब जहाजो म लाद विलायत तथा और मुक्तों म पहुँचा दें ।

(ब) बालकृष्ण भट्ट बाध मनोयोग और मुक्ति मट्ट निबन्धावली भाग २ पृष्ठ १३

वर्तमान दुर्मिष में कितनो की बन पडा है जो कमी अन्न का रोजगार नही किये थे वे भी इस समय रोजगारी बन बट हैं । सरकार की ओर से बडी बडी कोशिश करने पर भी कि अन्न सरता बिके उनके कारण नही बिकने पाता ।

+ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृषि बढाने का उद्बोधन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खंड १ अंक ५

क्या दु ख का विषय है कि नील इत्यादि चीजों को हमारे देश में उत्पन्न करके प्र प्रेज लोग साधों रुपया पैदा करते हैं और हम लोग खाली मुस्त ताकते रहते हैं ।

जुरि आए पाके-मस्त होली होय रही

पर मे भू जी मांग नहीं है तो भी न हिम्मत पस्त

होनी होय रही

तरसती हुई तथा भ्रम व धी के बदले सागपात पर जीनेवाली प्रजा की भावनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं । +

महगाई और टक्स के कारण मिश्रजी को होली का त्यौहार सबया फीका दृष्टिगत होता है । त्यौहार मनाना तो दूर की बात है साने के भी लाले पडे हैं और जलाने के लिए ई घन भी एकत्रित करना कठिन है । × 'महापव' शीपक कविता में उन्होंने देश की दशा का बणन करते हुए कहा है कि देश में चौपाई से अधिक

महगी पगी न पानी बरसा, बजरउ नाही मस्त

धन सब गया अक्लि नाहि भाई तो भी भगल वस्त

होली होप रही

परबम वायर त्रूर भालसी मये पेट-परस्त

भूभन दुध न बसत माहि ये भे खराव औ वस्त

×

×

×

भारत में मची है होरी

धूर उडत सोई अंबिर उडावत सबको नयन भरो री

दीन दशा असुभन पिचकारिन विलार भिजयो री

(भारतेऽ)

+ शक्ति रही नहीं काहू विधि की पूजन काका कीजे
हा अभाग । निज देश माहि रही परदेशी समभी ज
कर अरु चदा पय हा लक्ष्मी । जाय विदश बसी है
नोन तेल लकरीहू के हिल नित रहति प्रजा तरसी है
अब सब भाति असक्त हवनहित कहा अन्न घृत पावें
हम तो साग पात सा हा हा जीवन काल बितावें

('नया सबन्' प्रतापनारायण मिश्र)

× महगी और टिकम के मारे सगरो वस्तु भ्रमाली है
कोन भाति त्यौहार मनए कस कहिये होली है

×

×

×

अब तो चेत करो रे भाई

उपज घटे घरती की दिन दिन नाज नितहि महगाई

कहा खाय त्यौहार मनावें भूखे लोग लुगाई

सब घन ढोयो जात विनामन रह्यो दल्लिदर छाई

अन्न वस्त्र कहू सब जन तरसैं होरी कहा स भाई

बन कटि गये लकरिया महगी तहू टिकस अधिकारी

जहाँ ई घन की आफत है तहू सब को देर जराई

(प्रतापनारायण मिश्र)

मनुष्या का पेट भर पाना भी नहीं मिलता ।- कांग्रेस के पांचवें अधिवेशन में भाग लेने के लिए जब ब्रेडला महोदय इंग्लैंड से भारत में आये तो मिश्रजी ने उनके सम्मान में 'ब्रेडला स्वागत' कविता लिखी । यह कविता मिश्र जी के दश श्लोक के भावों की अच्छी प्रतीक है । ब्रेडला के आगमन पर कवि अपने हृदय की प्रसन्नता प्रकट करता है । देश में घन गरीबी रहने के कारण वह उन पर नपना के मुकाहल (मिश्र) यौधाकर करता है एवं हृदय-व्यथ का उपहार भेंट करता है । इंग्लैंडवासी भारत के साथ समुद्र पार रह कर भारत की वास्तविक दशा से परिचित नहीं हो सकते और न भारत में दशाटन के लिए आनवाले यूरोपीय यात्री दो चार दिन ठहर कर ही वास्तविक भारत को देख पाते हैं । दिल्ली बम्बई, कलकत्ता, मद्रास की बड़ी सड़कें और जगमगाती रोजनी ने दूर एक दुसरे भारत है जिसके निवासियों को रहने को मकान, पढ़ाने को कपड़ा व खान को भोजन मयस्सर नहीं होता । कवि उसी भारत के दर्शन करने के लिए ब्रेडला को आमंत्रित करता है । X अस्तु भारतेऽयुग के साहित्यकार विन्धी शासन के द्वारा किये जायेवाले आर्थिक शोषण व दश की आर्थिक हीनावस्था के प्रति पूरा संजग थे ।

+ चौथाई ते अधिक जन मरि न सके निज पेट
तेहि पर पुन कलत्र को बिता देत चपेट
निज परजन एकत्र फिर करहि जो रुजगार
दुसरे राज कर को परत तिन पर अनुनित भार
(‘महा पव प्रतापनारायण मिश्र)

X जब सब विधि सा सुबित होय कबहु फिर एहो
कठुव काल यह दश दणिव के झित रेहा
तब लखियो जह रह्या एक दिन कचन बरमा
तह चौथाई जन रुबी रोटी कह तरसत
जह जामन की गुनग अरु बिरछन की छाल
ज्वार चून मह पति योग परिवारहि पाले
लोन तेलहु घासहु पर टिकस लभ जह
चना चिरोजी माल मिले जह दीन प्रजा कह
जहाँ कृपो वारिगज्य शिप सेवा सब मानो
दशन के हित कछु तव कह कसेहु नाहीं
बहिय कहा लागि नृपति दर के जन् रिन मारन
जह तिनकी क्या कथा जा ग्रही रहे सधारन

(‘ब्रजला स्वागत प्रतापनारायण मिश्र)

तत्कालीन युग में यदि एक ओर सामंत वगैरे पतनोन्मुखी था तो दूसरी ओर व्यापारी वगैरे देशोन्नति की भावना से रहित विलासिता में निमग्न था। लाला श्रीनिवासदास के परीक्षा-गुरू' उपन्यास में मदनमोहन अपने मित्रों की चाटुकारिता तथा व्यय की प्रदर्शन प्रियता के कारण बज में फस जाता है तथा उस पर मुकदमा होता है और अदालत में बन्दी बना लिया जाता है। किन्तु ब्रजकिशोर के उद्योग से अदालत बन्द होने तक वह जुड़ा लिया जाता है। अंत में मदनमोहन का यह कथन 'मैं मन से पसन्द करता हूँ झूठी मडक दिखाने में कुछ सार नहीं है।' % उसका हृदय परिवर्तन को दर्शाता है। उपन्यास के आरम्भ में सौभाग्य ब्राइट के यहाँ जब मदनमोहन अपने साथियों से घिरा हुआ फर्श की वस्तुएँ खरीदता है तब मदनमोहन को इस बात का क्षोभ होता है कि इन कारीगरों की निरर्थक चीजों के बदले हिन्दुस्तानी अपनी दौलत बचा खोय देते हैं। (*) ब्रजकिशोर एक स्थल पर ब्रजनाथ से वार्त्तालाप करते समय शिक्षित लोगों के देशोन्नति के प्रति उदासीन रहने पर आक्षेप करता है 'विद्या की उन्नति कला के प्रचार पृथ्वी के पैदावार बढ़ाने की नई नई युक्ति और लाभदायक व्यापारिक बातों पर जसा चाहिये ध्यान नहीं देते।' † बालकृष्ण मट्ट के सौ भ्रजान और एक सुजान' उपन्यास का कथानक भी 'परीक्षा गुरू' के समान है तथा उसमें धनी व्यापारिक वगैरे पतनशीलता का चित्रण मिलता है। सेठ हीरानन्द के जीवन-काल में ही उसके पुत्र रूपचन्द की मृत्यु होगई थी। हीरानन्द की मृत्यु के बाद उसके पौत्र श्रद्धिनाथ तथा निधिनाथ नन्ददास, बुद्धराम, बसन्त आदि की सर्गति में पड़ कर पयभ्रष्ट हो जाते हैं तथा वेश्यागमन सुरापान, घूत नीडा आदि कुप्रवृत्तियों के शिकार होते हैं। अन्न में पचानन की सहायता से कथा का नायक चन्द्रशेखर उन दोनों का उद्धार करता है तथा नन्ददास और बुद्धराम की जाली 'स्तावेज बनाने के अपराध में कारावास का दंड मिलता है। भारत-दु-युग के सुधारवादी उपन्यासों में देश की आर्थिक दुदशा को सुधारने की आकांक्षा पायी जाती है।

भारत-दु युग के लेखकों की राजनीतिक व आर्थिक चेतना

विदेशी शासन द्वारा आर्थिक शोषण व स्वतंत्रता के अपहरण का प्रतिकार करना आवश्यक था। इसके लिए निष्प्रयत्ना को झोड कर राजनीतिक चेतना का

% श्रीनिवासदास 'परीक्षा गुरू' (१८८४) पृ० १७५

* वही पृ० ४-वही पृष्ठ ३०

सच्चा करना युग धम बना । भारते-दु-युग के प्राय सभी लोगोंने देश की दुदशा व कारणों को बताते हुए उनके सुधार की आकांक्षा की है ।

भारतीय व्यापार की हीनावस्था का उत्तम पीछ किया गया है । उद्योग धंधे बढ़ाने के बदले भारतीय व्यापारी कबल व्याज का धन कमा कर अपनी शान रखने थे । जिनके पास इतनी रकम नहीं थी कि व्याज से कमा सकें उनमें दहेज का धन लेकर लचने की बुरी सत पढ़ गई थी । दश म उद्योग धंधों के विकास के लिए मिथजी ने उद्योग धंधों में धन लगाने की प्रेरणा दी । कविता तथा 'जरा अब तो आखें मोलियाँ' + 'विलासत यात्रा * 'समय का केर' × प्रभृति निबंधों में धनीय की । भारते-दु ने हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान ॥ म देश में उद्योग धंधों का विकास करने की प्रेरणा दी । भारतवासियों के उद्योग धंधों में धन लगाने पर प्रतापनारायण मिश्र सीक प्रकट करते हैं । 'जरा अब तो आखें मोलियाँ' निबंध में धन को उत्पन्न में लगाने की सलाह देते हैं । 'विलासत यात्रा' तथा 'समभदार की मोत है' + * निबंध में धन सिवित सबिस के लिए धन व्यय करने की अपेक्षा उद्योग बढ़ाने की लाभदायक बताते हैं । आधुनिक युग में उद्योग धंधों का विकास मशीनों के अधिकाधिक प्रयोग पर अवलम्बित है । अतः भारते-दु-युग के लेखकों ने निस्कोच मशीनों के अधिकाधिक प्रयोग पर बल दिया । भारते-दु ने 'हिन्दी की उन्नति पर 'व्याख्यान' में भारत में कल की वस्तुओं के बनने पर ही गरीबी दूर होगी यह अभिमत प्रकट किया । × × प्रतापनारायण मिश्र ने 'भारत कहे जाओ नामद तो लुदा ही ने बनाया है' निबंध में धरेयू उद्योग धंधों के नष्ट होने पर क्षोभ प्रकट किया । % विदेशों से आने

• प्रतापनारायण मिश्र 'प्रताप लहरी' पृ० ४४

+ विजयशंकर मल्ल (सम्पादक) प्रतापनारायण प्रथावली प ३७

* वही, प ५६६

× वही, पृष्ठ २७२

॥ बने वस्तु कल की इत मित दीनता से (भारते-दु)

+* विजयशंकर मल्ल प्रतापनारायण प्रथावली पृ ६६

× × कल के बल छनन सा छन हते व योग

नित नित धन सो धन है बात्त है दुख सोग

भारकीन भलमल बिना चलत क्यू नगी काम

परदेसी जूनहान के मानहु भये गुताम

जानि सकें सब केहु सगह विविध कला के भे

बने वस्तु कल की इत मित दीनता से (भारते-दु)

% विजय शंकर मल्ल (सम्पादक) प्रतापनारायण प्रथावली पृ २३

वाली वस्तुओं के भारत में ही बनाये जान पर बल दिया तथा अपने पत्रों में इस मत की सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिखी ।

देश के उद्योग-उद्योगों का विकास के लिए विदेशी माल का बहिष्कार कर स्वदेशी माल को अपनाना एक अमोघ साधन है । महात्मा गांधी ने भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इसी अस्त्र का प्रयोग किया था । किंतु महात्मा गांधी द्वारा स्वदेशी आन्दोलन चलाने के प्रायः अर्ध शताब्दी पूर्व ही भारतेन्दु ने स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार के लिए देशवासियों से अपील की थी । अपने 'बलिया में भाषण' में उन्होंने स्वदेशी के प्रचार पर बल दिया । × धार्मिक सुधार के लिए भारतेन्दु ने 'तदीय समाज' की स्थापना की थी । तदीय समाज की सदस्यता का एक नियम यह था कि जहाँ तक होगा वे देशी पदार्थों का ही व्यवहार करेंगे । भारतेन्दु ने स्वयं भी यथासाध्य इस नियम का पालन किया । वस्तुतः स्वदेशी वस्तुओं के लिए किया गया वह आन्दोलन भावी स्वदेशी आन्दोलन की पूर्व पीठिका था जिसे प्रायः आधी शताब्दी बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश में प्रारम्भ किया ।

राजनीतिक चेतना के अभाव में भारतेन्दु युग का साहित्य समाज सुधार

● भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'सम्पादकीय', हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खण्ड १ अंक ५

जब तक यहाँ के पत्र-लिखे घनी लोग बैठे बैठे व्याज खाना छोड़ के अपने रूपों को ऐसे रज्जगार में न लगाएँगे जिनका देश में सम्पूर्ण अभाव है जब तक यहाँ के देशी लोग हरेक रकम की कलें बना के उन सब चीजों को जिसके लिये आजकल हमको विदेशियों का मुँह ताकना पड़ता है आनन बनायेंगे तब तक हम लोगों की बनी भी उन्नति न होगी ।

× भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 'बलिया में भाषण' हरिश्चन्द्र चन्द्रिका भाग १ सख्या ३ पृष्ठ १८

ग्लियासलाई जोसी तुच्छ वस्तु भी वही विनायत में आती है । जरा अपने ही को देखो तुम जिस मारकीन की घाती पहने हो अमरीका की बनी है जिस लकड़ साट का तुम्हारा अंगा है यह इंग्लैंड का है फ्रांसीस की बनी कधी से तुम सिर भारत हो । और जर्मनी की बनी चरबी की बत्ती तुम्हारे सामने बल रही है । यह तो वही मसल हुई कि एक बेकिंगर मगनी का कपडा पहिन कर किसी महकिल में गए कण्ठे को पहिचान कर एक ने कहा अजी यह अंगा तो फलाने का है दूसरा बोला अजी टोपी भी फलाने की है तो उन्होंने इसका जवाब दिया घर की तो मूर्ख ही मूर्ख हैं हाय अफसोस तुम ऐसे हो गये कि अपने निज के काम की वस्तु भी नहीं बना सकते । भाइयों अब तो नीद में चोंको परनेसी वस्तु और परदेनी मापा का भरोसा मत रखा ।

अभिष्यक्ति दी । X 'प्रेमधन' ने कांग्रेस के प्रतीक चिह्न 'चरने' पर कविताएँ लिखीं जिनमें स्वदेशी प्रचार व स्वराज्य प्राप्ति की कामना मुखरित हुईं + एक अन्य कविता में उन्होंने विदेशी वपड़ों का होली जलान व भारतवासियों में एकता स्थापित करने का उल्लेख किया है । = 'पामो के साथ हमारा कतव्य' — निबंध में प्रतापनारायण मिथ ने राजनतिक नेताओं का ध्यान नगरी को छोड़ गावों की ओर जाने के प्रति आकर्षित किया । उन्होंने घरती माता ++ निबंध में खेती की उन्नति एवं घरती माता की पूजा निबंध में वना की रक्षा की आवश्यकता दर्शायी * ।

भारतेन्दु युग व लेखकों का राजनीतिक दृष्टिकोण संक्षेपित रहा था ।

X प्रतापनारायण मिथ 'श्रेष्ठता स्वागत' प्रताप लहरी प ११७

य भवही तो इ गतिशुभ की बड़ी समा मह
मन लगाय नहीं सुनत सब हमरी चरखहु कह
भवही तो हम याही हित सुर सुक्त मतावें
बलहूँ कोसित मह निज प्रतिनिधि पठवन पावें

+ चल बन चरखा तू दिन रात

कात जान कर सूत मैनचिम्बर को कर दे मात
टेकुमा का सर साथ धनुष रघुवर की सेकर तात
सका से सकाशायर का कर विलम्ब नित धान
तेरे चलने का चरखा सुनि यूरप जो धकूलात
ज्यों ज्यों तू चलता रयो त्या धाता स्वराज्य नियरा=
चल तू जिससे साथ दुखी भर पट दाल झी भात
सस्ता शुद्ध स्वदेशी खदर पहिन छिपावे गात
हिन्दू मुसलिय जैन पारसी ईसाई सब जात
सुधी होंय हिम भरे प्रेमधन सकल भारती जान
(प्रेमधन)

= ज्यों ज्यों चलन चरखा चलन

बसन व्यापारी विन्नेगी सनि विलसि कर मनन
बहिष्कृत होलिका बीच बसन विन्नेगी जनन
एकठा सांघा सवारि स्वराज्य सिक्का डलन

(प्रेमधन)

— विजयनगर मन्त्र (सभा) 'प्रतापनारायण सभा'की प० ३१७

++ वही पृष्ठ २६६

* वही पृ २६६

हिंदी भाषा भाषी प्रदेश के प्रतिरिक्त बंगाल, महाराष्ट्र आदि अन्य प्रांतों की चेतना से भी वे प्रवृत्त थे तथा उनसे प्रेरणा लिया करते थे। यही नहीं उनसे सामान्य अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण भी रहता था। भारत ने 'बलिमा म भाषण' में देशोन्नति के लिये विदेशों से भी प्रेरणा लेने की अपील की। तत्कालीन युग में रूस ने अफगानिस्तान में सड़क बनाने की शुरुआत कर दी जिससे अंग्रेजों को भारत पर रूस के आक्रमण की आशंका होने लगी थी। प्रतापनारायण मिश्र व बालकृष्ण मट्ट प्रभृति लेखकों ने रूस के महत्व का विरोध तो किया ही किन्तु इस अवसर पर आंग्ल शासन के विरुद्ध लिखन में भी नहीं चूके 'सरकार नियंत्रण करके मारे डालनी है। रुसी भी मारे होंगे।' + बालकृष्ण मट्ट साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़नेवाले देशों की स्वतंत्रता के पक्ष में 'हिंदी प्रदीप' लिखा। रूस और रूम के युद्ध के अवसर पर उन्होंने रूम के प्रति सहानुभूति दर्शाई है लिखा "रूसी लोग कहीं हूँदी के समान हैं जो जार के गले में उतरते ही गले फाड़ डालेंगी और पैर में पहुँचें प्राँतों काट डालेंगी।" % बर्मा के बिना के प्रतिरोध के अंग्रेजों को आत्म समर्पण कर देने पर मट्टजी ने 'बर्मा की जनता' का उपासना दिया = आयरलैंड के स्वाधीनता संग्राम में मट्टजी की सहानुभूति साम्राज्यवादियों के विरुद्ध आयरलैंड की जनता के प्रति थी। X अस्तु देश में राजनीति

* हरिश्चंद्र चंद्रिका भाग १ सख्या ३ पृष्ठ १८

अमेरिकन अंगरेज पारसी आदि तुर्की ताजो सब सरपट दौड़े जाते हैं सारे जों में यही है कि पात्रा हमों पहले छूँ। इस समय हिंदु काठियावाड़ी खासकर खड़े खड़े टाप में मिट्टी खोदते हैं। इनकी पीरो को जाने दीजिये जापानी टट्टी को हाँकने हुए दौड़ते दख करके भी लाज नहीं मानी।

+ विजयशंकर मल्ल (सपा) प्रतापनारायण अथा 'समझदार की मौत है' प० ६६

% 'हिंदी प्रदीप' सितम्बर १८७७ पृ० १३

= वही १८८६ प० १४

ये ब्रह्मावाले मनुष्य हैं अथवा कुत्ता बिल्ली सभा हान काह छुद्र पशु रख हैं जो बिना जरा भी सींग पूछ हिंसाये अंग्रेजों शासन के बशीभूत हागये। हम लड़ने ही को प्रत्यक्ष शीघ्र हीन दुर्जन और निरसत समझे हुए थे किन्तु ये ब्रह्मा के निवासी हमसे भी अधिक निर्दुःखपायी मान्य होते हैं।

X वही पृ० ८

आयरलैंड वह घोड़ा नहीं जिस पर इंग्लैंड सवार होकर अंग्रेजी प्रभु की सगाम से उमड़ी भरने बंग म रखें। एक दिन वह सवार का अवश्यमद पकर भरनी पीठ खाली करेगा हमसे कुछ सदेह नहीं।

चेतना का प्रमग किन्तु निश्चित विरात हो रहा था ।

भारते-दु-युग की राजनीतिक विचारधारा में सीधे मोड़ दिखाई देते हैं । इस युग के तत्कालीन न सच से पटन तो प्राग्ज शासन का स्वागत किया क्योंकि इससे शांति और सुखवस्था की स्थापना हुई । इन विचारधारा का दूसरा मोड़ राजभक्ति व देश भक्ति की सम्मिलित धारा है जब कि साहित्यकार ब्रिटिश शासन की सद्भावना में विश्वास रखते हुए अपने कर्तव्य व मांगों का निर्वहन करते हैं । इस विचारधारा का प्रतिम मोड़ प्राग्ज शासकों द्वारा भारत में प्राथिक शोषण व दमनपूर्ण नीति व विराय करने के रूप में दिखाई देता है जिसका आरम्भ भारते-दु के समय में ही हो गया था तथा भारते दु युग के अन्त में हिन्दी के साहित्यकारों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रेरणा ली आरम्भ की ।

भारते-दु युग की अर्थ-नीति विदेशी शासन द्वारा भारत के प्राथिक शोषण के विरोध पर आधारित थी । विदेशी माल पर आयात कर न लगान भारतवासियों पर टैक्स लगान, भारत रक्षा व नाम पर विदेशी युद्ध का खर्चा भारत पर लादना तथा दश के प्रमुख व्यवसायों पर प्राग्ज व्यापारियों व एकाधिकारियों का इस युग के लेखकों ने विरोध किया । साम्राज्यवादी प्राथिक शोषण के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के साथ ही उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने तथा कल कारखाने खोल कर उद्योग बनाने व सुभाव रूप में देश की प्राथिक उन्नति का माग बताया ।

द्विवेदी युग

राजनीतिक संघर्ष

भारते-दु युग में तत्कालीन युग की परिस्थितियों के प्रतिनिधित्व स्वरूप दश भक्ति की भावना का विकास हो रहा था । द्विवेदी युग में राजनीतिक चेतना विचारों तक ही सीमित नहीं रही बल्कि उसने जन आन्दोलनों का रूप ले लिया । अन्त विदेशी शासन के दमन का चक्र भी अधिक तीव्र हो गया । बंग मग आन्दोलन (१६ अक्टूबर १९०५) के समय बंदे मातरम् के नारे पर रोक (१ नवम्बर १९०५) लोकमाय तिलक को छ वष का निर्वासन दण्ड (१९०८) सेडीशन मीटिंग्स एक्ट (१९०९), प्रेस एक्ट (१९१०) के द्वारा यह दमन तीव्रतर रूप ले रहा था । कांग्रेस ने केवल प्रस्ताव पास करने की नीति का परिस्थान कर विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, स्वदेशी आन्दोलन एवं राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रम को अपनाया । हिंदू मुस्लिम एकता का प्रयत्न किया गया । सन् १९१६ में श्रीमता एनी बेसंट तथा लोकमाय तिलक के होम रूल आन्दोलन की धूम थी । दमन की तीव्रता के परिणामस्वरूप कांग्रेस का एक दल वधानिक सुधारों में विश्वास करता था । माटेगू चेम्सफोर्ड योजना (१९१८) के अनुसार भारतीयों को शासन व्यवस्था में कुछ अधिकार दिये गये परन्तु प्रथम विश्व युद्ध (१९१४-१९) की समाप्ति के

पश्चात् भारतवासियों की आशा के विपरीत रोलट एक्ट (१९१६) के रूप में शासकों का दमन चक्र धीरे धीरे तीव्र हो गया। जलियावाला बाग के हत्याकांड के प्रतिश्रिया स्वरूप देश में सरकार के विरुद्ध असंतोष की लहर सी फैल गई। महात्मा गांधी व नवतंत्र में असहयोग आंदोलन (१९२०-२२) छेड़ा गया परंतु असफल रहा। गांधीजी अग्नी देश के भावी आंदोलन (१९३०-३२) की तयारी की प्रतीक्षा में ठहरे थे।

इस राजनीतिक उथल-पुथल से घट कर देश में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव आर्थिक क्षेत्र में एक नया रूप में भी अनुभव किया गया। जिन पाश्चात्य सभ्यता का भारत में आगमन हुआ वह पूंजीवादी सभ्यता थी। भारत पर आर्थिक क्षेत्र में पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव की कहानी सामंतवादी व्यवस्था के पूंजीवादी व्यवस्था में बदलने की कहानी है। आंग्ल शासन ने भारत में सामंतवादी व्यवस्था का नष्ट नहीं किया बल्कि किसानों के आर्थिक शोषण के लिये उसे अपने महायुद्ध रूप में कायम रखा। इस प्रकार किसानों का देशी जागीरदारों व विदेशी शासकों द्वारा दुहरा शोषण किया जाने लगा। लगान का बोझ बढ़ जाने से किसानों को महाजन से रक्षणा उधार लेकर उसे चुकाना पड़ता। रूपाय चुकाने में असमर्थ हान पर किसानों को बेदखल कर दिया जाता। जागीरदार, कारिदा, महाजना और पुलिस के शोषण की भट्टी में पिस कर किमान चूर हो रहा था। देश में औद्योगिकीकरण के साथ पूंजीवादी व्यवस्था पनप रही थी। भारतीय अर्थनीति का प्राचीन आधार घरेलू उद्योग धंधे नष्ट हो गये तथा उत्पादन के साधनों में परिवर्तन हान से पुराने सामाजिक मूल्य टूटने लगे। ग्रामीण निवासी के श्रम का गौरव तथा कौटुम्बिकता का स्नेह शक्ति पूर्ण वातावरण नष्ट हो गया। बदले में पूंजीवादी प्रतिस्पर्धा प्रजातंत्र शासन व्यवस्था के रूप में व्यक्ति स्वतंत्रता और श्रमिक वर्ग के आर्थिक शोषण का युद्ध रूपा। देश में होनेवाले राजनीतिक आंदोलन में निम्न मध्यमवर्ग ने अधिकतर सहयोग दिया। किसान आंदोलन व श्रमिक आंदोलन स्वतंत्र रूप में पनप रहे थे। आर्थिक क्षेत्र में अपने संगठन को अलग रखते हुए किसानों व श्रमिकों ने राजनीतिक आंदोलनों का साथ दिया।

अस्तु आलोच्य-काल में उपर्युक्त राजनीतिक आर्थिक परिस्थितियों की प्रतिश्रिया स्वरूप साहित्य में राजनीतिक आंदोलनों की अभिव्यक्ति, हिंदु-मुस्लिम एकता की भावना, जर्मनी प्रथा का विरोध, नवोदित औद्योगिक सभ्यता के प्रभावों आदि की प्रवृत्ति पाई जाती है।

साम्राज्यवाद का विरोध

भारत-दु-युग की तरह द्विवेदी-युग के लेखकों को भी भारत के आर्थिक शोषण अंग्रेजों की रण भेद की नीति आदि विषय प्रेरित कर रहे थे।

बालमुकुन्द गृह्य द्वारा त्रिगित 'निवृत्त शत्रु के चिह्ने तथा पिट्टे घोर शत्रु' (१६०८) पुस्तक में संकलित निबन्धों में साम्राज्यवादी अधिकांश शोषण व दमन की तीव्र मत्सना की गयी है। शाहस्तानी व रात' (१६०८) में लेमन ने अंग्रेजों के शासन तथा व्यापारी दोनों साथ साथ होने पर व्यय किया है। 'भाषा का अन्त में लेमन भारत को भोग्य भूमि समझने के कारण अंग्रेजों व प्रति अंग-लोप प्रकट करना है।

आर्थिक शोषण के प्रतिरिक्त अंग्रेजों द्वारा अपनायी गयी रण-भेद की नीति भारतीयों के लिए अत्यधिक अपमानजनक थी। इस रण-भेद की नीति के कारण अंग्रेज शासन भारतीयों से मिलना तक अपनी शान्त व विरह समझते थे। बाल मुकुन्द गुप्त ने अत्यन्त ही शोभ के साथ लिखा कि युजवातियों की तरह प्रजा कृपण व उद्वेग रूपी शासकों से मिलन भी नहीं पाती। जमनी के बेसर व हस्त के चार जसे तानाशाह होने ही अपनी प्रजा की बात सुन से किन्तु अंग्रेज शासक भारतीयों को अपने पास फटकने भी नहीं देते। राय देवीप्रसाद पूजा' जैसे वैधानिकता में विश्वास करनेवाले लेखक ने भी दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों द्वारा प्रयुक्त होनेवाली 'रणभेद' की नीति की मत्सना की। मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपनी 'स्वदेन-संगीत' रचना में 'अफ्रीका सत्याग्रह' कविता में रणभेद की नीति का विरोध किया है।

आंग्ल जाति स्वयं को भारतीयों से श्रेष्ठ समझती थी अतः उसे अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के भूठे तरीके भी अपनाने पड़े। अंग्रेजी शासकों ने 'यय के प्रदर्शन में अपार धन व्यय किया जो सत्वालीन साहित्यकारों के शोभ का कारण बना। बालमुकुन्द गुप्त ने साठ बजन द्वारा 'विक्टोरिया ममारियल हाल तथा दिल्ली दरबार' में किये गये व्यय को 'कृतव्य' के बदल प्रदर्शन बताया। उन्होंने इस प्रदर्शन की प्रवृत्ति की मत्सना की तथा अंग्रेजों से किसी भी प्रकार की आशा को दुराशा मात्र बताया। आलोच्य काल के अधिकांश लेखकों का अंग्रेजों की 'पितृ सुल्य' शासन पद्धति में विश्वास नहीं रहा तथा 'स्वराज्य के लिए वे विगत युग की अपेक्षा अब अधिक आशावादी बन गये।

बग भग आ दोलन की अभिव्यक्ति

भारतीय स्वतंत्रता आ दोलन की प्रथम महत्वपूर्ण घटना बग भग आ दोलन थी। बग भग आ दोलन का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव प्रतिफलित नहीं हुआ। वस्तुतः युग की मूढ-य मासिक पत्रिका सरस्वती के समान अन्य पत्रिकाएँ व लेखक राज नीति से प्रायः दूर रहते थे अथवा राजमक्ति का पोषण भी करते थे किन्तु बालमुकुन्द गुप्त बंगाल की राजधानी कलकत्ता से 'भारत मित्र' का सम्पादन कर रहे थे। उनकी आँखों के सामने बग भग आ दोलन उठ रहा था। उठा ही नहीं इतना शक्तिशाली बन गया कि पांच वर्ष पश्चात् इंग्लैण्ड के सम्राट के राज्यारोहण के अवसर पर किये गये दिल्ली दरबार' में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अपनी भूल सुधार कर जनता की मांग को स्वीकार करना पड़ा तथा बंगाल के विच्छेद की

भाषा वापस ली गई । तब स्वाभाविक था कि बालमुकुन्द गुप्त के लेखों में राजनीतिक आन्दोलन की आकांक्षाएँ तरंगित हुईं । बंगाल के विभाजन को उन्होंने बग-देश पर धारह रखना बतलाया । ब्रिटेन के 'व-दे मातरम्' गीत की अनुगूँज सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गयी थी । (+)

हिन्दु मुस्लिम एकता का प्रश्न

आलोच्य-काल में स्वातन्त्र्य आन्दोलन की प्रमुख प्रवृत्ति हिन्दु-मुस्लिम एकता की भावना थी । विगत-युग (भारतेन्दु युग, में सांस्कृतिक दृष्टि से साहित्यकारों में मुस्लिम विरोध की भावना होती हुए भी उन्होंने राजनीति की दृष्टि से हिन्दु-मुस्लिम एकता की भावना को प्रश्रय दिया था ।

आलोच्य-काल के हिन्दी साहित्यकारों में बालमुकुन्द गुप्त ने सब प्रथम हिन्दु मुस्लिम एकता की राजनीतिक आवश्यकता को पहचाना तथा उसे पूरातया प्रगीकार किया । बालमुकुन्द गुप्त की रचनाओं में मुसलमानों के प्रति कहीं भी विद्वेष की भावना नहीं है । मुसलमानी राज्यकाल में हिन्दुओं पर अत्याचार हुए इस तथ्य को भुलाया ही नहीं जा सकता था किन्तु, बालमुकुन्द गुप्त को उस सबध में भी मौन ही अभिप्रेत है । X

(+) बालमुकुन्द गुप्त 'शिव शम्भु के चिट्ठे'

'आपके (लाड कजन) एक इशारे से इस देश की शिक्षा पायमाल हो गई स्वाधीनता उठ गयी । बंग देश के सिर पर धारह रखा गया । यह बग-विच्छेद बंग का विच्छेद नहीं है । बग-निवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए बरञ्च और युक्त हो गये । जिहोंने गत १६ अक्टूबर का दृश्य देखा था वह समझ सकते हैं कि बग-देश या भारतवर्ष में नहीं पृथ्वी भर में वह अपूर्व दृश्य था । आय सत्तान उस दिन अपने प्राचीन वेप में विचरण करती थी । बग भूमि ऋषि-मुनियों के समय की आय भूमि बनी हुई थी । किसी अपूर्व शक्ति ने उसका उस दिन एक रात्री में बाँध दिया था । बहुत काल के पश्चात् भारत-सत्तान को होश हुआ कि भारत की मिट्टी वदना के योग्य है । इसी से वह एक स्वर से 'व-दे मातरम्' कह कर चिल्ला उठे । बंगाल के टुकड़े नहीं हुए बरन् भारत के अन्त्याय टुकड़े भी बंग देश से भाकर चिपट जाते हैं ।

(X) बालमुकुन्द गुप्त 'शाइस्ताखा का खत'

यह कायना है कि दूसरी वीम की हुकूमत ही को लोग जुलम से बढ़कर जुलम समझते हैं । इससे हिन्दु हमारी हुकूमत को उस जमाने में बुरा समझते हों तो एक मामूली बात है । तो भी मैं तुम्हारे जानने को कहता हूँ कि हम

आमोच्य काग में लिखे गये यह ऐतिहासिक आख्यायिका प्रकार राष्ट्रीय
 सेवा के प्रचार व आमोच्य की प्रेरणा के माध्यम बन कर आने हैं यह युव
 गोविन्दसिंह की कथा केरानी के प्रति करीबी उक्ति में रूप में है । लिखार करने
 समय काग के छोड़े हुए बाण में एक गमिली हरिणी आदिग शोकर प्राण त्याग देती
 है । मरती हुई हरिणी की कथायुक्त हृदि को देग कर कथा का हृदय भावित हो
 उठता है एवं मातृ-मनानि म पीडित हाकर यह मंगार में विरक्त हो आवाणी बनने
 को तरसर होजा है । तभी युव गोविन्दसिंह की उद्वाचन बाणी उनक जीवन माग को
 बन देती है । समाप्त लेने के करने यह देग की बनता पर होनेवाले आयापारों
 का प्रतिहार करने का प्रयत्न होता है

हरिणी पर तो पड़ी तुम्हारी
 कदगा हृदि, लोक की बुद्धि
 पर त्रिग पर यह लड़ी हुई थी
 पड़ी म उत परणी पर हृदि
 यह मी' स्वर्गा'वि मरीचगी
 जननी जग भूमि विरजान
 देखा उगरी घोर म तुमने
 था बेचारी का क्या हाम ।
 देतो सब मी देता रही यह
 पड़ी तुम्हारा यह मुह जोह
 मुझे उसी की-सी लगती है
 उत हरिणी की मांगे घोह

मुझे उबारो मुझे बचाया
 तुम्हें पुकार रही मां भ्रान्त
 और पुत्र होकर उसके तुम
 खोज रहे हो यह एकांत !

उपयुक्त पत्तियों म अभिप्रेरित देश भक्ति की भावना शय रचनाकार के
 युग की विह्वल पुकार थी । आत्मोत्सग के लिए ऐतिहासिक आख्यायिका के माध्यम से
 देश प्रेमियों को यह आह्वान था । राष्ट्रीय आन्दोलन में हिन्दु मुस्लिम एकता की
 भावना के साथ साहित्य म भी वही भावना अधिकाधिक मुखरित होने लगी

मन्दिर म या चांद चमकता मस्जिद में मुरली की तान
 मक्का हो चाहे बृदावन प्रापस में होते धुरवान
 सूखी रोटी दोनों खाते पीते ये गंगा का जल
 मानो मन घोने की पाया, उसने भ्रहा उसी दिन बन

गुरु गोविन्द तुम्हारे बच्चे जब भी तन नुचवाते हैं
पय से विचलित न हो अहा गोली से भारे जाते हैं

गुरु गोविन्द के बच्चों का जीवित ही दीवार में चुनवाया जाना घटना न होकर शुद्ध प्रतीक बना गया है। अंग्रेजी साम्राज्यवाद की गोलिया के शिकार होने-वाले हिन्दु तथा मुसलमान सत्याग्रही यहाँ बलिदानों के रूप में देखे गये हैं।

हिन्दु मुस्लिम एकता की भावना आगे चल कर हरिकृष्ण प्रेमी क मुगलका लीन इतिहास पर आधारित नाटकों में सब से प्रभावशाली रूप में प्रकट हुई। प्रेमीजी के 'रक्षा बाधन' (१९३४) में हुमायूँ के इस कथन में, 'चलिए महात्मा आपको बाकामदा मेवाड़ के तख्त पर बठा कर अपने सर से राखी का कज उतार लूँ। पूरा कज तो उस दिन उतरेगा जब सारी मुस्लिम कौम की बहनें हिन्दु भाइयों के हाथों में बेहिचक राखी बाधने की हिम्मत करेंगी', हिन्दु-मुस्लिम एकता की भावना प्रकट हुई है। प्रेमीजी के 'स्वप्न भग' (१९४०) नाटक में दारा औरंगजेब के विपरीत हिन्दु मुस्लिम एकता का समर्थक है। दारा की मृत्यु के रूप में उस एकता का स्वप्न भी भग हो जाता है।

बग भग आन्दोलन द्वारा राष्ट्रीय जागृति का जो स्फुलिंग अकुरित हुआ उसे प्रज्वलित न होने देने के उद्देश्य से विदेशी शासन द्वारा राजनीतिक जागृति का दमन किया जा रहा था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में नरम व गरम दल के राजनीतिक मतभेद प्रस्तुत थे। यद्यपि जनता में ब्रिटिश राज्य के प्रति अमतीय था तथापि नेतागण सब मिला कर 'मिलती जुलती नीति' से ही दशोन्नति की कामना कर रहे थे। इसका प्रभाव तत्कालीन हिंदी साहित्य पर भी पडा। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' में प्रकाशित करने के लिय भेजे गये कुछ राष्ट्रीय गीतों को यह कह कर लौटा दिया कि 'राजनीतिक स्थिति उपयुक्त नहीं है'। † मैथिलीशरण गुप्त द्वारा 'मुसद्द' के अनुरूप 'भारत भारती' (१९१२) की रचना क प्रकाशन के सम्बन्ध में द्विवेदीजी द्वारा राजा रामपालसिंह से लेखक की कानून स रक्षा कराने की जुम्मा लेने की माग की गई थी। मैथिलीशरण गुप्त को द्विवेदीजी ने एक अग्र्य पत्र में लिखा

कोई बात समय और सरकार के विरुद्ध न रहे। इशारा भी न रहे। कानून नया कानून बना है। कानून क्या माशक ला जगो कानून है फासी तक की सजा है। X

† महावीर प्रसाद द्विवेदी पत्रावली (म० बजनायसिंह विनोद) भारतीय विद्यापीठ काशी पृ ८२

X वही पृष्ठ १५०

अस्तु यह आश्चर्य की बात नहीं है कि परतंत्रता के युग में भी राष्ट्र-कवि के द्वारा विदेशी शासन की प्रशंसा की गई है। 'भारत भारती' (१९१२) के सम्बन्ध में गुप्तजी ने लिखा है 'मान लीजिये वह कल की वस्तु थी और वासी हो गयी। मैं यह भी मानता हूँ कि साधारण रोटी पकवान की भाँति स्थिर नहीं रह सकती। परन्तु एक बार की मूल शांत करके ही क्या वह इत कृत्य नहीं हो जाती" + 'भारत भारती' में ब्रिटिश राज्य की प्रशंसा की गयी फिर भी उसमें दवे स्वरो में निम्न उक्तियों में ब्रिटिश सत्ता का उपहास भी किया गया

'नि शक्त देव शृगाल घायल सिंह पर चढ़ने लग', बस पास पसा चाहिये फिर कुछ असुविधा है नहीं भादि।

कांग्रेस की नम दल नीति का प्रभाव

१९१४ के पश्चात् प्रथम विश्व युद्ध के छिड़ने पर अंग्रेजों ने भारतीयों को राजनीतिक अधिकारों का आश्वासन दिया। इसके बाद हिन्दी साहित्य में अंग्रेजों के प्रति जातीय घृणा की भावना नहीं पाई जाती।

यदि एक ओर ब्रिटिश शासन के दमन की तीव्रता से अनुभव किया जा रहा था तो दूसरी ओर कुछ ऐसे कवि भी थे जो देश की धार्मिक प्रगति में विश्वास करते थे। राम देवीप्रसाद पूण नैदानिक तरीके से राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने की विचारधारा के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। उनका कहना था

'मेरे मत से, मेरे बया बडे बडे नीतिवेत्ताओं के मत से एक्सट्रीमिस्ट (गरम) दल की प्रणाली से देश का भला नहीं हो सकता कि तु उससे क्या ही राजा भी प्रजा में विरोध बढता है।'

एनी बेसेंट के ईश्वर सन्नाह और देश के लिये' भाव का ही पूणजी की निम्न पंक्तियों में अनुवाद हुआ

परमेश्वर की भक्ति है मुख्य मनुज का धर्म
राजभक्ति भी चाहिए सच्चो सहित मुकम
सच्चो सहित सुबम देश की भक्ति चाहिए

अंग्रेजों से मिल जुल कर चलने की नीति के वे पक्षपाती थे। मिटो-मार्ल सुधार जिसके द्वारा कौंसिल में भारतीय सदस्यों की वृद्धि हुई के अवसर पर पूणजी ने उसे 'सुखद चांदनी' की उपमा दी। अंग्रेजी राज्य की 'यामतों का बतान करते हुए वे सरकार को बदनाम करनेवालों की भत्सना करते हैं। राम देवीप्रसाद पूण भारत में कल की उन्नति के समर्थक थे। वे तो उन देशों वस्तुओं का उपयोग भी हानिप्रद समझते थे जो कल से न बनी हो

(+) मैथिलीशरण गुप्त 'साहित्य सदेश अगस्त १९४१

पृष्ठ ५३५

दियासलाई, एक, चाजे, मोटरकार
 बाईसिकल, करधे दवा रेल तार हवियार
 रेल तार हवियार विविध बिजली के आले
 धूम्रपोत, हल, पत्र, अमित औजार मसाले
 बनें यहा और छपें नहीं तो सुन लो माई
 दशोपन को अभी लगा दो दियासलाई
 कल है बल उपयोग का कल उन्नति की मूल
 कल की महिमा मूलना है अति मारी मूल

तथापि यह समझना भूल होगी कि राय देशीप्रमा "पूरा मे देश भक्ति की
 भावना नहीं थी । उनकी देशभक्ति दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों पर किये जाने
 वाले अत्याचार के विरुद्ध निम्न पक्तियों से स्पष्ट है

'यदि दक्षिण अफ्रीका के गोरे को भारतवर्ष को प्रतिवर्ष कोयला भेजने का
 गव है और उषी के बल पर वे हमारे ऊपर अत्याचार कर रहे हैं तो हमारा भारत
 सरकार से कहना है कि हमें ऐसा वृष्टिगत कोयला दरकार नहीं अपने कोयले से वही
 गोरे अपना मुंह काला कर लें ।'

अस्तु विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध असतोष बराबर प्रकट किया जा रहा
 था । 'निर्जर' कविता में जिसे 'एक भारतीय आत्मा' ने तिलक के स्वगवास पर लिखा
 असहयोग आन्दोलन के पूर्व की स्थिति का भारत मा के मुंह से काय पूरा बरण
 बताया गया है

मैं 'मुंह बन्द' का हार लिये
 'मन लिलो' कठिन ककण धारे
 भारत रक्षा के मूलों की
 पावों में बेड़ी भुनकारे
 'हवियार न ला की हयकडियां
 रौलट का नियम घाव लिये
 डायर से अपने लाल बटा
 कहनी थी आचन लाल किये
 य दूट पड़े गे +

ये देवताप्रा को स्वार्थी वह निरुत् से भारत में ही असहयोग आन्दोलन के
 युग में अपने का अनुराग करत हैं । एक भारतीय आत्मा' की कविता में देश के

+ माधननाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' 'हिमकिरीटिनी'

सरस्वती प्रकाशन मॉडर, जाज टाउन, इलाहाबाद तृतीय संस्करण

सं० २००५ पृष्ठ ७६

तिष्ठ बलिदान की भावना प्रबल हिसोर सेती है। 'हिमचिरी' की सभी कविताओं में देश की परतंत्रता के कारण अक्षय व्यथा है। 'एक भारतीय छात्र' की राष्ट्रीय कविताएँ प्रतीकात्मक शक्तों में सिंगी गई हैं। अक्षयजी राज्य में सरकारी नौकरी करते हुए देश भक्ति की बातें करनेवालों के प्रति एक गहरा अक्षय विन्म पतियों में है।

बवान क तिर हो
 बरए तो पाटता है
 भौक से क्या सिंह
 की यह डांटता है
 रोटीया गाली तो
 ताहस राा पुता है
 प्राणो हो पर प्राण से
 यह जा पुता है +

१९२० के असहयोग आन्दोलन के समय एक और हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्रयत्न सफल भूत हो गया था यद्यपि वह म पुन वमनस्य बहने लगा, दूसरी ओर महात्मा गांधी के नेतृत्व में सम्पूर्ण देश में राजनीतिक चेतना फल गई। इससे तत्कालीन युग में सत्याग्रही बलिदानियों के अक्षय उत्साह का अक्षय किया जाने लगा। भारत के साहित्य में राजनीतिक परवशता के विरुद्ध शोभ की भावना थी किन्तु द्विवेदी युग में बलिदान के उत्साह और स्वतंत्रता प्राप्ति की आशा अभिव्यक्ति हुई है। रामचरित उपाध्याय एवं 'विशून' की कविताओं में यह उत्साह प्रभूत है। शत्रु की मारने की नहीं किन्तु सत्य पर मरने की प्रेरणा से इन कविताओं में पुष्प शोक पाया जाता है। बलिदान की यह भावना भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के विशिष्ट अक्षय रूप का परिणाम थी। गांधीजी के प्रभूत प्रभाव एवं असहयोग आन्दोलन से प्रेरित होकर अछूतादार, नारी उत्थान कृषकों की दशा में सुधार आदि प्रयुक्तियों तत्कालीन साहित्य की उपजीव्य बनी।

छायावाद युग

गांधीवाद का सांख्यिक पक्ष

हिन्दी की राष्ट्रीय कविता की सब से अधिक महात्मा गांधी के व्यक्तित्व एवं गांधीवादी विचारधारा ने प्रभावित किया। यद्यपि गांधीवाद व्यापक व्याख्या की अपेक्षा रखता है किन्तु सक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि राजनीति में विश्वस्त बलि (इस्टीशिय), अधिकार प्राप्ति के लिये अहिंसात्मक सत्याग्रह तथा अक्षय नीति की दृष्टि से गांधी के चर्चा उसके प्रतीक हैं। एवं इन सब पर एक नतिक आधारण

उसे विशिष्ट सज्जा प्रदान करता है । हिन्दी कविता में हम गांधीवाद का यह सुस्पष्ट रूप पाते हैं ।

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में गांधीवाद का प्रभाव प्रतिफलित हुआ है । बारडोली सत्याग्रह के सम्बन्ध में उनकी निम्न पक्तियाँ अहिंसा की गांधीवाद के अनुकूल व्याख्या प्रस्तुत करती हैं

ओ बारडोली ! ओ बारडोली !
 ओ भारत की धर्मापोली
 नहीं, नहीं फिर भी सशस्त्र थी
 ग्रीक सैनिकों की टोली
 उठी इसलिए नहीं तू जो बुरा है
 उसे गूँथ कर देने को
 तुली हुई है किन्तु बुरे को
 स्वयं भला कर लेने को

ग्रीक स्वातन्त्र्य-युद्ध धर्मापोली में स्वतंत्रता के आदर्श को लेकर लड़ा गया था । बारडोली का सत्याग्रह अहिंसक था । बुरे को भला बनाने की नीति गांधीजी के हृदय परिवर्तन सिद्धांत की द्योतक है । अतएव भी गुप्तजी ने पापी पर बरहणा परन्तु पाप का प्रतिकार करने की नीति की पुष्टि की है

पापी का उपकार करो हा
 पापो का प्रतिकार करो

आग्रह करके सदा सत्य का
 जहा कहीं हो शोध करो
 डरो कमी न प्रकट करने में
 जो अनुभव हो बोध करो
 उत्पीड़न आश्रय कहीं हो
 किन्तु विरोधी पर भी अपने
 बरहणा करो न शोध करो

गांधीवादी विचारधारा के अनुसार धनवानों का धन उनके पास गरीबों की यात्री रूप में है तथा उन्हें उसका गरीबों के उत्थान के लिये उपयोग करना चाहिये । गांधीजी का राजनीतिक आदर्श रामराज्य था । गांधीजी के 'रामराज्य' की कल्पना के अनुसार गुप्तजी ने भी राम-राज्य की प्रजा की यात्री रूप में कल्पना की है

राज्य है प्रिये, भोग या भार

रक्तपात हम नहीं करेंगे
भेलेंगे सब स्वयं आर्हिसक मरण करेंगे

क्योंकि

हिंसानल से शांत नहीं होता हिंसानल
जा सबका है वही हमारा भी है मगल

अतः विजयिनी बनती है । मानो गांधी-युग में हिंसात्मक विद्रोह पर यह आर्हिसात्मक आंदोलन की विजय घोषणा है । 'उ-मुक्त' का प्रकाशन यद्यपि सन् १९४० में हुआ किन्तु उसकी रचना का आरम्भ प्रथम महायुद्ध के समय ही हो गया था । जब उसका प्रकाशन हुआ उस समय सत्तर द्वितीय महायुद्ध की लपटों में जल रहा था । यह स्पष्ट ही गया था, हिंसा की विजय केवल कहलाने को है । मैथिली शरण गुप्त ने 'उ-मुक्त' की स्थापना में लिखा

"सत्तर में इस समय जो हिंसा कांड हो रहा है, जिस प्रकार निरीह नागरिकों की हत्या की जा रही है, और विज्ञान का दुरुपयोग करके जसा पराचिक प्रणय मचाया जा रहा है, उसे देख कर जिसने अपने मारक रोग की उपेक्षा करके उसके विरुद्ध अपने पाठकों की सहानुभूति प्रबुद्ध करने का प्रयत्न किया है, मरे निवृत्त स्वयं सफलता से उसके उद्योग का मूल्य अधिक है ।"

आर्थिक सघय

जर्मोदार प्रथा का विरोध

साम्राज्यवादी विरोधी भावना के अतिरिक्त आन्वेष्य काल में दलित वर्ग की भावनाओं की अभिव्यक्ति भी राजनीतिक विचारधारा का अभिन्न अंग थी । भारत-दु-युग में आर्थिक शोषण के साम्राज्यवादी पहलू धन के विदेश जाने पर लेखकों ने अपना क्षोभ प्रकट किया था, किन्तु द्विवेदी-युग में लेखकों के सामने शोषण का यह रूप अधिक सुरुष्ट होकर आया । देश प्रेम का केवल भावात्मक रूप ही नहीं रहा वरन् आर्थिक समस्याओं पर लेखकों की दृष्टि केन्द्रित होने लगी । महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा "यदि देश भवित वा अथ देश में रहनेवाला की भवित करने से है तो देशवासियों में अधिक सख्या किसानों की है । परन्तु देश की उन्नति के लिए अब तक जो प्रयत्न किया गया है और इस समय जो किया जा रहा है उससे कितने का सम्बन्ध किसानों से है ? हर साल जो यह काप्रेस होती है उसमें आज तक किसानों पर कितनी भवित प्रकट की है ?" × किसानों की भवित को द्विवेदीजी ने इन शब्दों में दर्शाया है, 'भारतवर्ष में कृषकों की दुरवस्था और निधनता के कई कारण हैं । एक तो यहाँ किसानों में शिक्षा का अभाव है । दूसरे यहाँ की गवर्नमेंट ने देश की कुछ भूमियों को छोट कर अल्पसंख्यक लोगों की भूमि को अपने अधिकार में कर रखा है । वही उनकी यात्रिक बन बड़ी है । अतएव उसने भूमि के लगान और मालगुजारी के सम्बन्ध में जो कानून बनाये हैं

× म० प्र० द्विवेदी 'विचार विमल' पृ० ४०२

वे बहुत ही कठे हैं। फिर जहाँ वही तल्लुकेगारिया हैं वहाँ किसानों के सुभीते का कम तल्लुकेगारों के सुभीते का अधिक रपाल रकवा गया है। यही सब कारण है जो किसानों को पनपने नहीं दते।” —

रूस की अक्टूम्बर १९१७ की शान्ति की सफलता ने भी आर्थिक समस्याओं की ओर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया। प्रथम विश्व युद्ध के उत्तरकाल में रूसी शान्ति की सफलता ने पराधीन देशों की गरीब जनता में नवीन प्रेरणा का संचार किया। प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' (१९२२) का नवयुवक किमान पात्र बलराज कहता है

तुम लोग तो ऐसी हसी उड़ाते हो जान कास्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेर पास जो पत्र आता है उसमें लिखा है कि रूस देश में कास्तकारों का ही राज्य है। वह जो चाहते हैं, करते हैं। उसी के पास कोई और दश बलगारी (बलगेरिया) है। वहाँ अभी हाल की बात है कास्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है। और अब किसानों और मजदूरों की पचायत राज्य करती है।”

प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' (१९२२) उपन्यास में किसानों और जमींदारों की समस्या राष्ट्रीय समस्या का रूप धारण करती है। लखनपुर गाँव जमींदार व किसानों के अधिकार-युद्ध की पृष्ठभूमि है। जमींदार का चपरामी किसानों से धी मागता है तब सभी तो धी देने को राजी हो जाते हैं परन्तु मनोहर इस अतिरिक्त कर को देने से मना कर देता है। मनोहर का लड़का बलराज इस सम्बंध में और भी उग्र विचारों का है। वह इस अतिरिक्त बेगार का विरोध करता है। शोषक बग किसानों की चुनौती पर बौगला उठता है। गाँव का मुद्राघना करने को आनेवाले सरकारी अधिकार व उनके अनुयायी सारे गाँव पर अत्याचार करते हैं। सुकलू चौधरी का झूठे जुम में फसा कर जेल भेज दिया जाता है। दुखरन मगत को पुलिस कोड़े लगाने हैं क्योंकि वह बगार में टेनिस क्लब लाने की धास छीलने से इंकार कर देता है। सारा गाँव उस समय मडक उठता है जब जमींदार का कारिदा गौसदा मनोहर को पत्नी को कलकित व अपमानित करता है। मनोहर कारिदे को कत्ल कर देता है और स्वयं आत्म हत्या कर लेता है।

उपन्यास में प्रेमशंकर सुषारङ्ग नेता के रूप में चित्रित किया गया है जो कि किसानों को जमींदारों के विरुद्ध मार्चा संगठित करने का प्रेरित करता है। मायाशंकर समाजवादी विचारधारा में विश्वास करता है। वह अपने शूर जमींदार चाचा का हटाकर स्वयं काय समालता है। प्रेमचंद ने जमींदारों का

हृदय परिवर्तन दिखाया है। आदश कृषि काम की स्थापना की जाती है और गांव भर की सुख शांति लौट आती है। प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' में जमींदार-वर्ग का हृदय परिवर्तन कर आदर्शवादी हल प्रस्तुत किया है।

प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' (१९२२) व 'रगभूमि' (१९२४) में देशी राजाओं की प्रथा को साम्राज्यवाद का पोषक बतलाया। जमींदारी का विरोध साम्राज्यवाद के विरोध के अंग रूप में ही चित्रित किया गया है। जमींदार अंग्रेजी साम्राज्यवाद के दलाल हैं यह 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशरर के शब्दों से स्पष्ट है।

'आपस में (किसानों में) विरोध क्यों है? दुःख-वस्थाओं के कारण जिनकी उस वनमान शासन ने सृष्टि की है। परस्पर प्रेम और विश्वास क्यों नहीं? इसलिए कि यह शासन इन मर्दमालों को अपने लिए घातक समझता है और उस पनपन नती नेता। उस परस्पर विरोध का मब में दुःखजनक फल क्या है? भूमि का अमश अल्प-अल्प भागों में विभाजित हो जाना और उसके लगान की अपरिमित वृद्धि।'

यह जमींदारी देशद्रोह करने के पुरस्कार स्वरूप भी प्रदान की जाती थी। 'प्रेमाश्रम' (१९२२) में राय कमलानंद चानशकर को अपने रियासत प्राप्त करने की कहानी बताने हुए कहते हैं कि वास्तव में यह उनकी जामदाद नहीं है। राजद्रोह के समय उनके पिता द्वारा अंग्रेजों का सहायता देने के कारण वह उन्हें प्रदान की गयी थी। प्रेमचंद देशी राजाओं एवं जमींदारों को 'कठपुतली' रूप में चित्रित करते हैं। विनय राजमदान में एक ऐसे राजा से मिलता है जो शिवजी का परमभक्त है परन्तु वह शिवजी से भी अधिक अंग्रेज रेजीडेंट में डरता है। मायाशकर के शब्दों में प्रेमशकर ने निर्भय रूप में जमींदारी प्रथा को अनुपमापी ठहराते हुए उसका अर्थ की कामना की है।

"भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की है या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है, इसलिए उस किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप में ले या हममें कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। वह इसलिए नहीं है कि प्रजा की पसीने की कमाई को विलास और विषय भोग में उड़ाए। ऐसे निरकुश प्राणियों से प्रजा का जितनी जल्द मुक्ति हो उतना भार प्रजा के सिर से जितना ही जल्द दूर हो उतना ही अच्छा है।'

प्रेमचंद का 'रगभूमि' उपन्यास प्राचीन ग्राम्य-व्यवस्था के नष्ट होने की वरुण एवं औद्योगिक सभ्यता के विकास की निमग कहानी है। प्रेमचंद ने औद्योगिक

गिक सन्धना के दुष्परिणामों का दर्शाया है। जॉन सेवक पाण्डेपुर गाव की एक बजर जमीन पर अपनी सिगरेट की फकट्री बनाना चाहता है। यह जमीन अर्धे भिखारी सूरदास की है जो उसे बेचना नहीं चाहता। सूरदास की मनोवृत्ति सामन्त-युग के उस ग्रामीण की मनोवृत्ति है जो अपनी जमीन से प्रेम करता है। इस जमीन पर वह अपने पुरखों के लिए स्मारक भी बनाना चाहता है। जमीन गाव के मवेशियों के लिए चारागाह का काम देती है। इसके विपरीत जान सेवक गाव में फकट्री खुल जाने पर गाव के निवासियों को आर्थिक-लाभ होने का प्रत्याभूति देना है। सूरदास इसका तीव्र विरोध करता है और फकट्री खुलने पर गाव में फैलने वाली बुराइयों व नतिक पतन की आशंका प्रकट करता है। सूरदास को जमीन बचने का विरोध करने पर भी वह उससे छीन ली जाती है और इसमें राजकीय अधिकारी जान सेवक का पक्ष लेते हैं। अन्य गाव के गरीबों की भापड़िया भी मिल मजदूरों के मकान बनाने के लिए खाली करवा ली जाती है। सूरदास अपनी भापड़ी खाली करने से इंकार कर देता है। तब पुलिस बुलाई जाती है और मीठ पर गालिया बरसाई जाती है।

ग्राम सत्तावाद के विरुद्ध गांधीजी ने सत्याग्रह का अस्त्र को अपनाया था। प्रेमचंद के 'रंगभूमि' का नायक अर्ध भिखारी सूरदास सत्याग्रही और के सहस्र हमारे सामने आता है। वह अत्याय व अन्याय को नहीं सह सकता और पाण्डेपुर गाव की सारी जनता अर्धे सूरदास के साथ है जब कि अंग्रेज शासक, भारतीय राजा जमींदार सूरदास के विरोधी स्वार्थी जान सेवक का साथ देते हैं। सूरदास 'रंगभूमि' का वह खिलाड़ी है जिसके माथ पर कभी शिकन नहीं आई, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी, जिसने कभी कदम पीछे नहीं हटाया जीता तो प्रसन्न चित्त रहा हारा तो जीने वालों से कभी काना नहीं किया कभी घायली नहीं की, प्रतिद्वन्द्वी पर छिप कर चाट नहीं की, सूरदास की हार में भी जीत का स्वर है

'हम हारे तो क्या, मदान से भागे तो नहीं, रोए तो नहीं, घायली तो नहीं की। फिर खेलेंगे जरा दम ले लेने दो हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत हागी, अवश्य होगी।' = फिर खेलेंगे जरा दम लेने दो' शी में १९२० के असहयोग आन्दोलन में असफल होने पर भी उस आत्मा का स्वर निहित है जिससे देश भविष्य में पुन नया आन्दोलन के लिए उत्तर हुआ।

कम नमि' में प्रेमचंद ने राजनीतिक आन्दोलनों की सचेष्ट अभिव्यक्ति की है। अछूतों के लिए, मंदिर प्रवेश, मजदूरों के लिए मकान बनवाने को म्युनिसिपलटी के विरुद्ध आन्दोलन, किसानों की लगान बंदी का आन्दोलन आदि कथा के उपजीव्य हैं। अन्तिम आन्दोलन को उपयाम में सबसे अधिक उभारा गया है। किसानों

की दरिद्रता और उत्साह का ममस्पर्शी चित्रण किया गया है। उपन्यास की परिसमाप्ति समझीते के लिए बैठाई गई कमेटी के रूप में होती है। 'प्रेमभ्रम' में प्रेमचन्द किसानों के सघष का आदर्शवादी हल प्रस्तुत करते हैं। 'रगभूमि' का 'सूरदास भावक सत्याग्रही है 'रगभूमि' का अमरवात आन्दोलन में भाग लेने वाला योद्धा है कि तु गोठान का किसान होरी' यथाथ जीवन की कठिनाइयों को झेलनेवाला तिल तिल कण्टो से झूझनेवाला निरीह सजीव प्राणी है। इन उपन्यासों में प्रेमचन्द ने पश्चिमी सभ्यता की देन पूजावात् के उस विघटनकारी प्रभाव को दर्शाया है जिससे ग्रामीण सभ्यता नष्ट हो जाती है और किसान नयी सभ्यता में मजदूर बन कर शोषण की चक्की में पिसने को विवश हो जाता है।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में प्रेमचन्द साम्यवाद की ओर आकर्षित होने लगे थे। 'महाजनी सभ्यता' निबंध में उन्होंने लिखा—“अब एक नयी सभ्यता का सूय सुदूर पश्चिम से उदय हो रहा है जिसमें इस नारकीय महाजनवात् या पूजावाद की जड़ खोद कर फेंक दी उसके राज्य में अब एक पूजापति लाखों मजदूरों का खून पीकर मोटा नहीं हो सकता। घब है वह सभ्यता जो मालदारी और व्यक्तिगत सम्पत्ति का अंत कर रही है और जल्दी या देर से दुनिया उमका पदानुसरण अवश्य करेगी। यह सभ्यता अमुक देश की समाज-रचना अथवा धर्म मजहब से मेल नहीं खाती या उस वातावरण के अनुकूल नहीं है, यह तक नितांत असंगत है।”

प्रगतिवादी युग

सामयिक राजनीति

भारतीय राजनीति में यदि एक ओर आदर्शपरक गांधीवाद तथा तदनुकूल कांग्रेस आन्दोलन का सावभौम प्रभाव था तो दूसरी ओर युग की परिस्थितियों के अनुरूप प्राथिक सकट की अनुभूति ने उसके विरुद्ध प्रतिप्रिया उत्पन्न कर दी। सन् १९१७ में रूसी क्रांति की सफलता ने विश्व के सभी देशों के शासितों में नवीन आशा का संचार किया। सन् १९२७ में भारत में भी कम्युनिष्ट पार्टी की स्थापना हुई। देश में मजदूर आन्दोलन बल पकड़ने लगे। सन् १९३५ के बाद जब कि भारत में प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना हुई हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा पनपने लगी।

भारत में सम-सामयिक राजनीति की प्रमुख प्रवृत्तियाँ भारत में आतङ्कवात् गांधीवाद तथा साम्यवात् रही हैं। प्रगतिवादी साहित्य में प्रथम दो प्रवृत्तियाँ का स्पष्टन तथा अन्तिम प्रवृत्ति का पोषण पाया जाता है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास-क्रम में भी इन तीनों प्रवृत्तियों का क्रमागत विकास हुआ।

प्रगतिवादी आतङ्कवाद से हट कर अपनी रचनाओं में प्राथिक राजनतिक

प्रश्नों का अधिक मन्त्र वेते हैं। यशपाल ने उपन्यास 'दादा कामरेड' का नायक हरीश आतंकवादी के रूप में अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ करता है किन्तु, वह अनुभव करने लगता है कि स्वराज्य प्राप्ति का यह पथ सही नहीं है। इससे जनता का सम्पर्क नहीं रहता। अतः दश की जनता का शोषण समाप्त कर उसके लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करना स्वराज्य का यह सही रूप प्राप्त नहीं किया जा सकता। आतंकवादी परिणाम के बदल शहादत को ही साध्य मान बैठता है। रूसी-क्रान्ति का उदाहरण देकर हरीश बतलाता है कि वहाँ भी आतंकवादियों को इसी कारण सफलता नहीं मिल सकी तथा लेनिन ने प्रातिकारियों को सर्वसाधारण जनता के प्रश्नों को लेकर जनता में चेतना भरने के लिए कहा था।* उपन्यास समाप्ति के निकट हम आतंकवादी दल को लक्ष्य भ्रष्ट छिन्न मित्र, उसके नेता 'दादा' को उदासीन तथा साम्यवादी दल के सन्ध्य के रूप में हरीश व शल को मजदूरों की हड़ताल सफल कराने के लिए प्रयत्नशील पाते हैं। 'दादा' मानते अपने दल की नहीं सिद्धान्त की भी पराजय मानते हुए कहता है समय बदल गया है कितनी जल्दी! ऐसा जान पड़ता है नदी को पार करने के लिए हमने नाव ठलनी शुरू की थी परन्तु नाव के नीचे से जल की धारा ही हट गई और हम आ टिके हैं सूखी रेतों पर। जल की धारा दूसरी ओर घूम गई है " हरि ठीक कहता है, बजाय जल की धारा को घुमा कर नाव के नीचे लाने के नाव को ही उस ओर घसीटना चाहिए।

मरा मतलब है जनता की जल धारा में।† अनेक के शेखर एक जीवना' उपन्यास में शेखर के पिता अपने रहस्यमय प्रातिकारी जीवन की बातें कहते हुए आतंकवाद को यथ ठहराते हैं 'इसलिए नहीं कि यह टटीहरी का प्रयास है अधिक इसलिए कि घणा का प्रचार कभी अच्छा फल नहीं ला सकता।"× शेखर के मन में पिता के अनुभव के विरुद्ध दजनों प्रवाण उठने हैं जा उसके, प्रातिकारी व्यक्तित्व के लिए स्वाभाविक ही है पर भविष्य में शेखर अनुभव करता है कि किसी के विरुद्ध लड़ना

* यशपाल 'दादा कामरेड' विप्लव कार्यालय लखनऊ तीसरा संस्करण १९४८ पृ० ६५

रूस में भी पहले स्वतंत्रता के आंदोलन ने आतंकवादी काय का रूप लिया था उस समय रूस में जनता का आतंकवादियों के कार्यों से कोई संबंध नहीं था। लेनिन ने रूस के प्रातिकारियों को इस कमजोरी को समझा। उसने प्रातिकारियों को अपनी शक्ति राजनीतिक हत्याओं में नष्ट न कर सब साधारण जनता के जीवन के प्रश्नों को लेकर जनता में चेतना और अधिकार की भावना पैदा करने के लिए कहा।

† यशपाल, वही पृ० २०५

× अनेक 'शेखर एक जीवनी' भाग २, सरस्वती प्रेस बनारस पृष्ठ १३६

पर्याप्त नहीं है 'किसी के लिए' लड़ना भी जरूरी है और पाठक अनुमान करता है शेखर का बिद्रोह भविष्य में विनाश के लिए नहीं बरन् नवनिमाण के लिए होना चाहिए।

सद्वार्तिक दृष्टि से प्रगतिवादियों ने चाहे अतकवादी का विरोध किया हो किन्तु अतकवादियों के व्यक्तित्व के प्रति उनमें एक प्रकार की श्रद्धा पायी जाती है और उनके मानवीय गुणों के प्रति आस्था। इसका कारण सम्भवत यह है कि प्रगतिवादियों में से कुछ यथा यशपाल अथवा आदि स्वयं एक समय अतकवादी रह चुके हैं। अथवा ने 'काठरी की बात कहानी संग्रह में आत्मिकारियों के जीवन चित्रों को बड़े ही कलात्मक व सवेदन पूर्ण ढंग से अंकित किया है। 'शेखर एवं जीवनी' के दादा और 'दादा कामरेड' के दादा की मानव सहानुभूति की भावनाएं यथार्थ और विशाल हैं।

गांधीवादी विचारधारा का भी प्रगतिवादी साहित्य में विरोध पाया जाता है। गांधीवाद के प्रमुख सिद्धांत अहिंसा व सत्याग्रह हैं जिनका प्रगतिवादियों ने खण्डन किया है तथा स्वतंत्रता-प्राप्ति के मांग में उन्हें बाधक ही बताया है। प्रेमचंद के उपन्यासों में उपन्यासकार का अहिंसा, सत्याग्रह व हृदय-परिवर्तन में विश्वास था किन्तु बाद में उनका इन सिद्धांतों पर विश्वास उठ गया। यशपाल के देशद्रोही उपन्यास में शिवनाथ व खन्ना एक जुलूम के पास में खड़े लोगों पर लाठी व गाली चलने दंग कर खुश हो उठते हैं—'इससे क्या फायदा!' उनका अहिंसा में विश्वास नहीं और वे अतकवादी बन जाते हैं यद्यपि शीघ्र ही उनके अतकपूर्ण कार्यों का अंत हो जाता है। अथवा के शहर एक जीवनी उपन्यास में अहिंसा व अहिंसा का व्यापक विवेचन किया गया है। अनुशासन हीनता के दण्ड स्वरूप जब शहर कालज के दो विद्यार्थी बालटिपरी की कार्रवाई के लिए बाहर निकाल देता है और इस सब में शेखर को गुजारा चलाने की सलाह दी जाती है तथा उसके कृत्य (विद्यार्थियों की निवारना) को हिंसा कहा जाता है तो शहर अहिंसा पर एक हल्का योग्य करता है। आपके प्रश्न का उत्तर भी हिंसा ही होगा। जल में पुत्र शहर विद्याभूषण तथा शारा मन्नासिंह के साथ हिंसा व अहिंसा की विवेचना में उलझता है। विद्याभूषण के मन में आदेश के लिए भी जान बाली हिंसा बुरी नहीं बरन् बहूँ घम है और शांति ? जो भी भावना मानव और मानव के भेद को मिटाने की, उसकी सीमाओं और बंधनों को अधिकाधिक प्रसारित करने की चरटा करती है। इसलिए योरूप में राष्ट्रीयता का नाम पर होनवाला हिंसा पाप है क्योंकि वह मानव व मानव के भेद का नहीं मिटाती और दंग व अपमान को सुभान के लिए सी आई डी को पीटकर जेल जाना अहिंसा है। नागूर को काटना हिंसा नहीं क्योंकि उसमें चिकित्सा का स्वाध नहीं है। शहर का सत्य बन्ना है। पर हिंसा से होना है क्या ? यह नकारात्मक है। चाहे नकारात्मक ही विद्याभूषण बन्ना है वह पाठक का है बिना नागूर

काटे शुभ्रुपा कसी ? और मन्सिंह अहिमा की नवीन रूप में व्याख्या करते हैं। अहिमा में भी हिमा भाव रहता है अथवा अहिमा न-कुछ है। उनके अनुसार, आत्म पीडन व आत्म बलिदान में भी एक प्रकार से रक्तपात निहित है। अहिमा आत्म-पीडक होने के कारण रक्तपात से पूरानया शून्य नहीं है। तब रक्त जो गिरता है वह हिमात्मक है या अहिमात्मक इसकी कसौटी मेरा या दूसरे का रक्त नहीं हो सक्ता वरन् इसके लिए सामाजिक कर्मों का होना आवश्यक है। बाबा की दृष्टि में अहिमा तभी सफल हो सकती है जब कि वह आश्रमक रूप ग्रहण कर ले यथा, सारी दुनिया का बहिष्कार अपना ही बहिष्कार हो जाता है, उसे बिट्टेन के विरुद्ध केन्द्रित करने पर ही, बिट्टेन के विरुद्ध आश्रमण का भाव लाने पर ही वह सफल हो सकती है। अतः सामाजिक कर्तव्य के पालन के लिए की गयी हिमा भी अहिमा ही है। इस प्रकार प्रगतिवादी गांधीवादियों की तरह आततायी के हृदय-परिवर्तन में नहीं वरन् उसके विरुद्ध आश्रमण भाव में विश्वास रखते हैं। उनके मत में सद्भावितक दृष्टि से अहिमा एक मुद्दर भादश प्रतीत हो सकता है किन्तु वह व्यावहारिक नहीं है। भारत-भूषण अग्रवाल एक व्यंग्य में लिखते हैं

खाना खाकर कमरे में विस्तर पर लेटा
 साच रहा था मैं मन ही मन हिटलर बेटा
 बड़ा मूख है, जो लड़ता है तुच्छ धुद्र मिट्टी
 के कारण क्षण-भंगुर ही ता है रे ! यह मज वैभव
 घन ! अत लगेगा हाथ न कुछ दो दिन का मेला
 निछू एक खत हा जा गांधीजी का चेला
 वे तुम्हको बतलायेंगे आरमा की सत्ता
 होगी प्रकट अहिमा की तब पूरा महत्ता
 कुछ भी ता है नहीं घरा दुनिया के अन्दर
 छत पर से पत्नी चिल्लाई—'दौड़ो बन्दर' +

अहिमा के समान सत्याग्रह का भाव भी प्रगतिवादियों को माय नहीं है। वे अनशन को व्यर्थ ही नहीं वरन् अभाव प्रस्त श्रेणी के लिये घोषे की टट्टी मानते हैं। 'दशदोही' उपन्यास में मजदूरों की हड़ताल के समय कांग्रेसी नेता वद्री बाबू का आश्रम अनशन जहा एक और अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए है वहाँ दूसरी और मजदूरों की शक्ति रोकने का भी काम करता है। विशेषतः इसलिए कि वद्री बाबू मिल मालिक से दा ह्जार रुपये मजदूरों की सहायता के नाम पर ले आते हैं और मिल मालिक वद्री बाबू को मजदूरों का नेता मान कर ही समझौता करने के लिए तयार होते हैं। कम्युनिष्ट प्रभाव से पूरा मजदूर समा के नेताओं को वे

पक्ष रूप में स्वीकार नहीं करते। अतः उपयोग धारा १४३ भी प्रगतिवादी प्रतीति का के अधिकारों की रक्षा के लिए मध्यम वर्ग के हाथ में देना करने का मात्र समझत हैं।

संवैधानिक राजनीति घटनाओं में विचारधाराओं में तीव्र भ्रष्ट रेखा नीचे वाले महत्वपूर्ण घटना द्वितीय महायुद्ध है। इस युद्ध में प्रगतिवादी एवं फासिस्ट शक्तियों के बीच सघर्ष का अंतरराष्ट्रीय स्तर धारण कर लिया था। युद्ध के समय भारत की स्थिति विचित्र थी। उसका सामने एक धारा का अंतरराष्ट्रीय ध्रुवामुख राजनीति में फासिस्टवादी प्रगतिवादी में एक का युद्ध था तो दूसरी ओर साम्राज्यवादी ब्रिटेन से अपने देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने की इच्छा थी। राष्ट्रवादियों ने देश की स्वतंत्रता के लिए आंदोलन छेड़ दिया किन्तु, प्रगतिवादी साहित्यकार उन राजनीतिक पार्टियों की विचारधाराओं में अधिक प्रभावित थे जो अंतरराष्ट्रीय उत्तरदायित्व को राष्ट्रीय स्वतंत्रता से अधिक महत्व देती थी। अंग्रेजों के नदी के द्वीप उपवास में भुवन गौरा को गहरी चिन्ता संपन्न लिखता है जिसमें यूरोप में युद्ध के आरम्भ की सृष्टि का आदिसित बतलाता है यह युद्ध किस लिए लड़ा जा रहा है सहमा नहीं कह दिया जा सकता। ठीक स्वाधीनता के लिए ही है यह कह देना भोलापन होगा क्योंकि स्वाधीनता के साथ कितने इतर स्वाध भी तो मिले हुए हैं, पर यह जरूर कहा जा सकता है कि इस युद्ध में नहीं तो इस युद्ध में आरम्भ करके हमें सृष्टि के उमानो रु लिए सघर्ष करना है जिनको स्वयं हमारी इस सृष्टि ने जोर में डाल दिया। + यशपाल युद्ध को राजनीतिक दृष्टि से देखते हैं। 'देशद्रोही' में डा० रामा जो इस वंश में डा० वर्मा के नाम से कानपुर में रहता है युद्ध के प्रति साम्यवादी नीति को ही इन शब्दों में व्यक्त करता है समाजवाद का आन्दोलन अंतरराष्ट्रीय है। उसकी विराधी ओर समर्थक शक्तियाँ अंतरराष्ट्रीय हैं। भारत के समाजवादी समाजवाद के विरुद्ध या पक्ष में अंतरराष्ट्रीय सघर्ष की अपेक्षा नहीं कर सकते। भारत शोषित पीड़ित और पराधीन है। सत्तार के शापित, पीड़ित और पराधीनों की विजय में उसकी मुक्ति है। इस समय सत्तार की शापित जनता का हित मित्र राष्ट्रों के साथ मिल कर जर्मनी और जापान के नाजीवाद का विरोध करने में है। यह भारत के लिए आत्मरक्षा का प्रश्न है। नाजीवाद की सफलता भारत को सत्ता के लिए साम्राज्यवादियों का शिकार बना देगी। X युद्धकाल में अंग्रेज आंदोलन के प्रतिरिक्त

+ अंग्रेज- 'नदी के द्वीप' प्रायः सित वर्षों तक, दिल्ली १९२१ पृष्ठ १०१

X यशपाल 'देशद्रोही' विप्लव कायालय लखनऊ तीसरा संस्करण १९४६ पृष्ठ १६५

राष्ट्रीय जीवन में एक नवीन परिस्थिति नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जेल से भाग कर जापान में आजाद हिन्द फौज बनाने तथा जापान की सहायता से भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त करने के प्रयत्न रूप में मिलती है। स्पष्ट ही प्रगतिवादी फासिस्ट शक्ति जापान के विरोधी और युद्ध में ब्रिटेन की सहायता के पक्षपाती थे। अतः जापान व आजाद हिन्द फौज के भारतीय स्वतंत्रता में सहायक बनने के भाव के प्रति प्रगतिवादियों ने विरोध प्रकट किया है। बंगाल का अकाल के समय लिखी डा० रामविलास शर्मा की कविता 'गुरुदेव की पुण्यभूमि' में सुभाष व आजाद हिन्द फौज की ओर संकेत करते हुए कवि ने जापान की ओर मुह जोहने को वायरता बताया है तथा बंगाल की रक्षा की अपील की है

कायर वह जो नेता बनता था चला गया

मिल गया लुटेरों की सेना में, कायर

उस नीच नगूची को न मिले यह रवि ठाकुर का

प्राणों से भी ध्यारा शांति निवेदन *

देशद्रोही' में राजाराम के महा राजनीति चर्चा में भारत पर जापानी आक्रमण को निरापद समझने की मूल का डा० खन्ना प्रतिवाद करते हैं लेकिन यही तो मूल है कि जापान अंग्रेजों से कुरसी लहने की बहादुरी दिखाने के लिए हमारे देश पर आक्रमण कर रहा है? क्या साहब चीन पर जापान ने क्या आक्रमण किया? इण्डोचाइना कोरिया, मंगोलिया, मचूरिया वह क्या हड़प गया? सम्पूर्ण एशिया को अपने साम्राज्य में लपटने की महत्त्वकांक्षा जापान की बहुत पुरानी है।^(१) मनुष्य के रूप में एक स्थल पर यशपाल ने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों के साथ जापानी अफसर का नृशंस व्यवहार दर्शाया है। अदली व धर्नासह खाद्य सामग्री लेने के लिए जापानी अफसर के पास जाते हैं तो एक बोरी में काली मिच देव अफसर पूछता है 'क्या काम घाती है? यह बनाये जाने पर कि खाने के, अफसर चावल की बारी के बदले काली मिच की बोरी ही थोप देता है जिसे न ले जाते बन रहा था न छोड़ते। अस्तु प्रगतिवादी युग की यह सामयिक राजनीति साहित्य में उस व्यापक मार्क्सवादी राजनीतिक आधिक्य आंदोलन का फल थी जिसकी विवचना हम आगे 'प्रगतिवाद' शीर्षक अध्याय के अंतर्गत करेंगे।

* अनेक (सपा) तार सप्तक', प्रतीक प्रकाशन दिल्ली १९४३ पृष्ठ ६७

(१) यशपाल, 'देशद्रोही' विप्लव कार्यालय, लखनऊ तीसरा संस्करण १९४६ पृष्ठ ३०४

आयावाद-रहस्यवाद : काव्य-चेतना का प्रसार

पृष्ठभूमि

भारतीय राजनीति की दृष्टि से दो महायुद्धों के बीच का काल अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस काल में महात्मा गांधी का नेतृत्व में सन् १९२० और सन् १९३० का अहिंसात्मक आंदोलन हुए। राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति की दृष्टि से यह आंदोलन सफल नहीं कहे जा सकते परंतु इनसे देश की जनता में अभूतपूर्व जागृति का संचार हुआ। आंदोलनों की असफलता के कारण निराशा की भावना का गन्तव्य होना स्वाभाविक था। सन् १९३० के पश्चात् यह निराशा और भी गहरी हो गयी। एक ओर आंदोलनों की असफलता के कारण निराशा का वातावरण था तथा दूसरी ओर राजनीति के क्षेत्र में उग्रता के लिये अवसर भोप नहीं रहा। अतः काव्य का अतमुत्थी हो जाना स्वाभाविक था। इसी समय विश्व विद्यालयों में अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन की अधिकारिक स्थान मिलने लगा। अंग्रेजी रोमांटिक काव्य में व्यवस्त मानसिक स्थिति भी बहुत अंशों में हिंदी के साहित्यकारों की मनोदशा का अनुकूल ठहरी। अतः जीवन से असम्पृक्त होकर नवीन परिस्थितियों के अनुकूल छायावादी कविता का प्रेरणा-स्रोत अंग्रेजी रोमांटिक काव्य का अथवा पश्चात्य विचारधाराएँ बनीं। †

† भगवती चरण वर्मा 'मधुकर' (भूमिका) अयोध्या व यु आश्रम प्रयाग सन् १९३२ पृ० १८

हिन्दी कविता में प्रथम बार भाव परिवर्तन देश की राजनीतिक हलचल के समय देखा गया है और इसलिए यह कहा जा सकता है कि छायावाद की नींव देश में राजनीतिक जागृति के समय में पड़ी है। भारतवर्ष की वीरता में देश भक्ति तथा राष्ट्रियता का भाव नया है और राजनीतिक जागृति के समय यह भाव पश्चात्य देशों से लिया गया तथा हिन्दी साहित्य में राजनीतिक कविताएँ अथवा पश्चात्य साहित्यों की राजनीतिक कविताओं के आधार पर लिखी गयीं। इसके अलावा भाव परिवर्तन का रास्ता साफ हो गया और राजनीतिक ही नहीं बरन अन्य विषयों की कविताओं से भी नया भाव लिये गए। यह ध्यान में रखना पड़ेगा कि इस समय तक हिन्दी में कविता निम्नलिखितों में अंग्रेजी

छायावादी कविता निकट यथाय से हट कर लिखी गई कविता है। जब कलाकार यथाय से पराङ्मुख होता है तो यह स्वामाजिक है कि वह सी दय स्रष्टा बनेगा, उसकी कल्पना प्रखर हो उठेगी तथा वह प्रकृति में सो-दय के दर्शन करेगा। यथाय से पराङ्मुख होने पर यह भी सम्भव है कि सामाजिक चेतना के अभाव में कला स्रष्टा केवल निष्प्राण पूर्व आदर्शों का अनुकरण मात्र करने लगे। परन्तु कलाकार में जिस सीमा तक सामाजिक अस्तित्व का उस सीमा तक यथाय जीवन में प्राप्ति न कर सकने के कारण वह साहित्यिक रूढ़िवाद में प्राप्ति करेगा, यह प्राप्ति केवल रूप तक न होकर विषयगत भी होगी। परन्तु यथाय जगत् की पराजय की छाया उस पर पड़े बिना नहीं रह सकती। इसी दृष्टि से साहित्यकार स्वप्नदृष्टा होता है छायावादी कविता के सम्बन्ध-में हम कह सकते हैं वह आधी यथाय और आधी स्वप्न है। वस्तुतः उसके इस विशिष्ट रूप का कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ ही थीं। छायावादी कविता के रूप में भारतीय समाज की आत्मा ने मध्ययुगीन सकीणताओं के आवद्ध वातावरण से निकल कर नवीन प्रकार में उभरकर सामने ली है। यद्यपि यह युग राजनीतिक पराधीनता का युग है परन्तु साहित्य में हम उस जागरण के दर्शन करते हैं जो किसी भी सुपुष्प समाज की जागृति के लिए आवश्यक होता है। श्री रामचारीसिंह दिनकर के शब्दों में 'प्राकाश में आच्छन्न होनेवाले वात जिस प्राप्ति से उमड़े थे, छायावाद में ठीक उसी प्राप्ति का पुनर्लाभ था। जिस प्राप्तिकारी भावना के कारण बाह्य जीवन में राजनीतिक दुर्वस्थाओं की अनुभूतियाँ तीव्र होती जा रही थीं, वही भावना छायावाद का रूप धारण कर लड़ी हुई थी और मनुष्य की मनोदशा, विचार और सोचने की प्रणाली में विप्लव की सृष्टि कर रही थी।'

अस्तु, पश्चात्तय प्रभाव की दृष्टि से छायावादी कविता पर आन्त रोमांटिक काव्य का प्रभाव सबसे महत्वपूर्ण है। यहाँ सदेव में आन्त रोमांटिक काव्य की परिस्थितियों एवं विचारों का परित्यक्त देना उचित होगा।

आन्त रोमांटिक काव्य

इतिहास

अठारहवीं सदी के मध्य में, विशेष कर फ्रांस जर्मनी और इंग्लैण्ड में यूरोपीय और यूरोपीय कवियों के आदर्शों पर काव्य रचना की जा रही थी। साहित्य के

पदे लिखे लोग कम मिनते थे पर राष्ट्रीयता की लहर ने उन हिन्दी भाषा भाषियों को हिन्दी साहित्य के प्रति अपने कर्तव्य का ध्यान दिला दिया जो अग्रजों पढ़ कर हिन्दी को गजरा की भाषा समझने लगे थे। अग्र साहित्य में ऐसी लोको ने प्रवेश किया जो अग्रजों पढ़े थे और जो अग्रजों साहित्य से यथेष्ट प्रभावित थे। उन लोगों ने पश्चात्तय भावों को अपना कर उनका समावेश हिन्दी साहित्य में किया और यहाँ हम आधुनिक छायावाद की कविता के विकास के मूल सत्त्व को देखते हैं।

इतिहास में वह नया श्रेणिक युग (Neo classical Age) था। परंतु इस युग के काव्य को श्रेणिक काव्य प्रतलाया उचित नहीं है क्योंकि इससे प्राचीन यूनानी कवियों और नया श्रेणिक काव्य की उपलब्धियों में समानता समझने का भ्रम उत्पन्न हो सकता है। आगस्टन युग (Augustan Age) के रोमीय कवियों ने पेरिकलीज युग (Pericles Age) के महान् यूनानी दुःखान्त नाटककारों के आदर्शों पर अपनी रचनाएँ लिखी थीं। इन रोमीय कवियों का फ्रांसिसी कवियों ने अनुकरण किया तथा फ्रांस के नया श्रेणिक काव्य रचयिताओं का इंग्लैंड के जमनी के कवि अनुकरण कर रहे थे। इस प्रकार दुहरे तिहर अनुकरण में मूल की प्रेरणा का अभाव भी शेष नहीं रहा। यूनानी कविता ने जिस सहज प्रेरणावश काव्य की रचना की थी वह प्रेरणा इन अनुकर्ताओं को प्राप्त नहीं थी और न उनकी तरह वे अपने भावों और विचारों की सहज अभिव्यक्ति कर पाते थे। प्रथम श्रेणी के काव्य की सृष्टि के लिए जिस उन्नत भावना व कला-कुशलता की आवश्यकता होती है उसका नया श्रेणिक काव्य युग में सबंधा अभाव था। प्राचीन यूनानी कवियों की गहन अनुभूति तथा मूर्ति विधायिनी कल्पना के अभाव में वे केवल छंद भाषा और वक्त्रालंकारों के नीरस व निष्प्राण अनुकरण द्वारा कृत्रिम काव्य सृष्टि कर रहे थे।

विज्ञान व पूंजीवाद के उदय के साथ नया नगरीय एवं नागरिक सभ्यता का निर्माण हो रहा था। विचारों के क्षेत्र में हाब्स (Hobbes) ने राजा के ईश्वर प्रदत्त अधिकारों का विरोध किया तथा धार्मिक व्यवस्था के लिए प्राकृतिक विधान को उचित ठहराया। चर्च का प्रभाव क्षीण होने लगा। लॉक (Locke) ने आत्मा की अमरता के बटने विचारों की शारारिक व भौतिक अनुभवा पर आधारित ठहराया। विज्ञान व भौतिक उन्नति की आशावादिता में उन परिस्थितियों से अनभिन्न जो अपने घर में अमेरिका का स्वातंत्र्य युद्ध एवं 'फ्रांसिसी क्रांति' को लिए थीं नवोन्मिता पूंजीपति एवं हूंसो युग सामंत वर्ग अष्टाचार एवं अर्थहीनता में लीन थे।

इन परिस्थितियों में नया श्रेणिक युग Neo Classical Age के कवियों ने नागरिक जीवन को अपने काव्य का विषय बनाया। नगर का जीवन तथा नगर की समस्याओं की अभिव्यक्ति श्रेष्ठ साहित्य का गुण समझी जाने लगीं। साहित्य मनोरंजन की सामग्री मान लिया गया। इस युग की कविता में भौतिकता उन्नत भावना, मूर्तिविधायिनी कला आदि के लिए स्थान नहीं था। केवल उक्ति विषय जिसके लिए स्वाभाविक प्रतिभा की अपेक्षा अभ्यस की आवश्यकता समझी जाती थी काव्य का प्रधान गुण माना गया।

फ्रांस नया श्रेणिक काव्य का केन्द्र स्थल था। यद्यपि फ्रांसिसी राज्य क्रांति से पूर्व रुमो और वास्तेयर के विचारों तथा उसके पश्चात् साहित्य द्वारा के रूप में फ्रांस में नया श्रेणिक काव्य के आदर्शों के विरोध में रोमांटिक काव्य द्वारा प्रवाहित

हूँ परन्तु उसका उद्गम ग्यारहवीं व बारहवीं शताब्दी में हो गया था जब दक्षिणी फ्रान्स में लटिन भाषा के बदले रोमनिक या रामान भाषा में साहित्य रचना होने लगी। अठारहवीं सदी के अंत में जर्मनी में फ्रान्स के नव्य श्रेणिक काव्य के विरुद्ध प्रत्यावर्तन हुआ जिसके मूल में जर्मनी में राष्ट्रीय भावना की जागृति थी। उस समय जर्मनी के शिक्षित वर्ग की बोलचाल व साहित्य की भाषा फ्रेंच थी तथा जर्मन भाषा को हय दृष्टि से देखा जाता था। राष्ट्रीय भावना की जागृति ने जर्मनी में फ्रान्स के राजनीतिक व सांस्कृतिक प्रभावों से मुक्त होने की भावना जागृत की।

इंग्लैंड में यद्यपि नव्य श्रेणिक काव्य के विरुद्ध रोमांटिक आन्दोलन प्रासिमी दार्शनिक हंसो की विचारधारा से अनुप्रेरित होकर आरम्भ हुआ किन्तु, इससे पूर्व के आग्रज साहित्यकारों शेक्सपीयर (Shakespeare) व स्कॉट (Scott) की रचनाओं से जर्मन रोमांटिक आन्दोलन ने प्रेरणा ली। इंग्लैंड से प्रेरणा देने में जर्मन रोमांटिक आन्दोलन के मूल में राष्ट्रीय भावना ही प्रधान थी। जर्मन रोमांटिक काव्य में प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रति भी आकर्षण पाया जाता है।

इंग्लैंड में रोमांटिक काव्य की प्रवृत्तियां बडसवय व कॉलरिज से पूर्व भी पायी जाती हैं। वस (Burns) की कविता में शैली की तरह क्रांति की भावना बडसवय की तरह सरल भाषा का प्रयोग मिलता है। ब्लेक (Blake) के गीतों में बडसवय व समान शब्दों की सरलता के प्रति पवित्र भावना का आभास दिखाई देता है। ग्रे (Gray) की एलेजी (Elegy) में उस अवसाद का स्वर है जो अधिकांश रोमांटिक कविता में मद शिथिल गूँज लिये प्राप्त है।

अंग्रेजी रोमांटिक काव्य का आरम्भ सन् १७६० में बडसवय व कॉलरिज के 'लिरिकल बलेड्स' (Lyrical Ballads) के प्रकाशन से माना जाता है जिसमें अठारहवीं सदी के नव्य श्रेणिक काव्य के विरुद्ध विषय व अभिव्यक्ति दोनों की दृष्टि से सचेष्ट अलगपाया जाता है। बडसवय एवं कॉलरिज नवीन रोमांटिक काव्य के आरम्भिक कवि थे। शैली, कोट्स व बायरन इनके पश्चात्बती महत्वपूर्ण कवि हैं। बडसवय ने 'लिरिकल बलेड्स' में काव्य में काव्य के निम्नलिखित उद्देश्य बतलाये

- (१) सामान्य लोगों के जीवन की साधारण घटनाओं और अवस्थाओं का वर्णन।
- (२) कविता में बोलचाल की भाषा का प्रयोग।
- (३) वर्णन को मनोरंजन बनाने के लिये उसे कल्पना से अनुरजित करना।

(४) घटनाओं और घवस्थाओं के इन वर्णनों में प्रकृति के साधारणतः नियमों को अभिव्यक्त करना।

(५) विचारों और भावों को सहज उद्बेक के रूप में व्यक्त करना।

इन कविताओं में प्रस्तावित प्रमुख लक्ष्य सामान्य जीवन की घटनाओं और स्थितियों को चुनना और सम्पूर्णतया, जहाँ तक सम्भव हो वास्तविक जीवन में लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषा का प्रयोग करना एवं साथ ही उन पर अशत कल्पना का रंग चढ़ाना जिससे कि साधारण वस्तुएँ मन की भाषा के सामने असाधारण रूप में प्रकट हो तथा सब से बढ कर इन घटनाओं व स्थितियों में हमारी प्रकृति के मूलभूत स्वरूप की सत्यतापूर्वक उद्घाटित कर उन्हें मनोरञ्जक बनाना मुख्यतया मन की उद्बगपूर्ण अवस्था में उद्बुध भावों को सुसम्बद्ध रूप में व्यक्त करना है। +

यह उद्देश्य अठारहवीं सौ के नये श्रेणिक काव्य के उद्देश्यों बाह्य सुदौलता बौद्धिकता व नागरिक जीवन की प्रतिभक्ति के उद्देश्यों के विरुद्ध थे।

रूसो (Rousseau) को विचारधारा प्रकृति दर्शन

काव्य में सामान्य लोगों के जीवन को चित्रित करने की प्रवृत्ति में रूसो (Rousseau) के मानववाद का प्रभाव था। ईसाई मत के अनुसार जब शतान ने सृष्टा के विरुद्ध विद्रोह किया और एडन के उपवन से आदिम नारो ईव को ईश्वर द्वारा वरिजित फल खाने के लिए प्रेरित किया तथा ईव के क०ने से आन्मि पुरुष आदम ने भी उसे चकवा तब ईश्वर ने क्रुद्ध होकर आदम और ईव को एडन के उपवन से निकाल दिया और उन्हें मृत्युलोक के जीवन का अभिशाप दिया। एडन के उपवन से वरिजित फल खाना पहला पाप था और उसी पाप के कारण मनुष्य ससार में जन्म लेता है। ईसाई धर्म के अनुसार मनुष्य केवल चर्च की सहायता

+ Wordsworth Lyrical Ballads

The Principal object then proposed in these poems was to choose incidents and situations from common life and to relate or describe them throughout as far as possible in a selection of Language really used by men and at the same time to throw over them a certain colouring of imagination whereby ordinary things should be presented to the mind in an unusual aspect and further and above all to make these incidents and situations interesting by tracing in them truly though not ostentatiously, the primary laws of our nature chiefly as far as regards the manner in which we associate ideas in a state of excitement

से आत्मि पाप के दोष मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील हो सकता है। ईसाई धर्म की हम मायता व विपरीत रूमो ने धोषित किया कि मनुष्य जन्म से अर्द्धा होता परन्तु, सामाजिक सभ्यता उसे बुरा बना देती है। रूसो के अनुसार बुराई को नष्ट करने का उपाय आधुनिक सभ्यता का परित्याग करना है। मनुष्य प्रकृत अर्द्धा होता है और सभ्यता से अर्द्धा मनुष्य अपनी क्षुधा शांत करने के बाद शेष प्रकृति व अपने सहायियों के साथ शांतिपूर्ण समझौता कर लेता है। रूसो ने सोशल कन्ट्रैक्ट (Social contract) पुस्तक में राजा के 'ईश्वर प्रदत्त अधिकार' का विरोध किया। उसके अनुसार मनुष्य जन्म लेने के समय स्वतंत्र होता है परन्तु वह प्रत्येक स्थान पर बेडियों में जकड़ा है। मशीन युग की सभ्यता और आधुनिक शहरी जीवन के प्रति यह एक प्रतिनिधा थी। साहित्य में इसका प्रभाव प्रकृति प्रेम, शैशव के आदर्श-करण, शहरी सभ्यता से दूर रहनेवाले ग्रामीणों के प्रति सहानुभूति आदि रूपों में दिखाई देता है। प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण बृहद्तर प्राकृतिक दर्शन का ही अंग था जिसने आधुनिक सश्लिष्ट सभ्यता की बुराइयों से दूर प्रकृति के सम्पर्क में अर्द्धात्रम जीवन व्यतीत करने की लालसा उत्पन्न की। रूसो के 'द कॉन्फेशन ऑफ फेथ ऑव द सोवियार्ड विकार (The confession of faith of a savoyard Vicar) का नायक विकार अपने कार्यों में बुद्धि की अपेक्षा भावना से अधिक संचालित होता है। अंग्रेजी रोमांटिक कविता पर रूसो के इन विचारों का प्रभाव पाया जाता है' जैसा कि लिरिकल बॉलैड्स (Lyrical Ballads) से उद्धृत बडसवथ व उपरोक्त अंग्रेजी प्रकट होता है अंग्रेजी रोमांटिक कवियों का प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण है। वे प्रकृत जीवन के पक्षपाती हैं तथा प्रकृति उन्हें दिव्य संदेश देती है। शिशु जीवन व ग्रामीण जीवन के प्रति उन्हें विशेष प्रेम है तथा वे उसमें पवित्र जीवन की भांकी पाते हैं।

फ्रांसिसो क्रांति की प्रतिनिधा

रोमांटिक कवि, रूसो की विचारधारा के अतिरिक्त स्वयं फ्रांसिसो क्रांति से भी प्रभावित हुए थे। बडसवथ व कालरिज दोनों ने आरम्भ में क्रांति का स्वागत किया। परन्तु क्रांति-काल में हिंसा व रक्तपात की अति ने उन्हें क्रांति से विमुख कर दिया। क्रांति की हिंसात्मक परिणति से क्षुब्ध होकर बडसवथ ने प्रकृति चित्रण में तथा कालरिज ने अपनी कविता में अलौकिक तत्व का समावेश कर क्रांति सम्बन्धी अपने स्वप्न और निराशा का भुला दिया परन्तु शैली क्रांति का महान् गामक था। गिल्लोटिन (Guillotine) से हुई हत्याओं को शैली साधारण समझता हो यह मान नहीं थी और न समीपस्थ दुष्टता के बावजूद महान् भविष्य निर्माण की ही भाशा थी। तथापि उसकी कल्पना स्थूल न होकर अत्यधिक स्वप्निल (airy) थी। वह वास्तविक घटना की अपेक्षा विचारों से प्रेरित होता था। क्रांति की वास्तविक घटना का उसे उसके लिए अस्तित्व ही नहीं

की भावना में वह एक मरीचक भावना को जगता करता था। मरीचक भावना को वास्तविक (Realism) की सहायता नहीं है। उगता विरोध भावनाओं पर घायल है जीवन की सामाजिक परिस्थितियों में सहायता नहीं। मरीचक भावना में उगते व्यंग्य कविता जगता जगता मरीचक को जगता नहीं है जिसे समीप में घायल को भूत कर मृत्यु को जगता का पान करे सगता है। X

प्रकृति

आदर्शात्मा विरोध

'श्रीधरपूज्य आदर्शात्मा म मरीचक जिसे जगता सगता वा निर्माण किया है उतम प्रेम' ही मृत्यु पर सहाय करनवाली शक्ति है। कवि न सहायता को प्रेम व हृदय व राज्य में पुनर्जीवित हाथ हुए दर्शाया है। परता का कर्म कर्म पुनर्जायमान हो उठता है व सभी व्यक्ति हृदय में उल्लसित हा उठते है। मरीचक "मास्क ऑफ एनार्की" (Mask of Anarchy) म शक्ति पर किय जानवाये प्रत्याधारा का प्रथम यथार्थ व शक्तिवासी शक्ति म विरोध किया है तथा जीवन सघन व तिए उन्हें तत्पर होने का उद्बोधन दिया है।

सौन्दर्य

अंग्रेजी रोमांटिक कवियों में कीटस (Keats) म सौन्दर्य प्रेम की भावना सबसे अधिक सुगर है। उसकी दृष्टि म सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य ही सौन्दर्य। (Beauty is truth, truth Beauty) सुगर वस्तु विरमानदायिनी है। उसकी मधुरता सत्व बढ़ती है वह कभी नष्ट नहीं होती *Thing of beauty is a joy for ever Its loveliness increases it will never pass into nothingness*

कीटस ग्रीक कला के सौन्दर्य एवं इटली के मध्ययुगीन कला श्रम से प्रत्यक्ष प्रेरित हुआ था। कलासिद्ध सौन्दर्य भावना जहां वास्तु सुधीनता पर केन्द्रित थी वहां रोमांटिक सौन्दर्य भावना मिश्रित है। कवि की आत्मा भारतजगत् के आलोक में पाश्चिमी सीमाओं से परे जिन सौन्दर्य मूर्तियों का दर्शन करती है वे सहज उद्रेक से उसके हृदय में जागृत होती हैं तथा पूर्वकालिक सम्बन्ध सूत्रों एवं स्मृतियों को जगाती हैं। वडसवध व शेली की कविता में जहां सौन्दर्य की सूक्ष्म व अपाश्चिमी योजना हुई है वहां कीटस की कविताओं में रंगीनी जीवन व उल्लास के साथ एड्रिय चित्रण की प्रधानता है।

X Shelley Preface to Prometheus Unbound

Poetry lifts the veil from the hidden beauty of the world and make, familiar objects to be as if they were not familiar

श्रवसाद

रोमांटिक कवि मूलतः स्वप्न दृष्टा है। किंतु यथाय जगत् में स्वप्न भग होने पर उसे निराशा होती है। इसी कारण रोमांटिक कवियों में मद श्रवसाद की भावना पायी जाती है। यह निराशा बडसत्रथ की 'लूसी, शेली की स्टन्जाज रिटन इन डिजेवशन' ओड दु द स्काई लाक', कीट्स की ओड दू मेलनक्ली', 'दू नाइटगल' टेनीसन की 'लाटस ईटस' आदि कविताओं में व्यक्त हुई है।

कल्पना-प्रेम

रोमांटिक कवियों की एक प्रय प्रवृत्ति अलौकिक तत्त्व श्रवना परियों व श्रवसादों का वर्णन करना है। इस सम्बन्ध में कालारिज के नाम का पहले उल्लेख किया जा चुका है। स्विनबर्न (Swinburn) की एटलण्टा इन कलीडोन' Atlanta in Calydon) तथा कीट्स की 'ला वन डेम सा मर्सी' आदि कविताओं का भी इसी सम्बन्ध में उल्लेख किया जा सकता है। रोमांटिक कवियों में सुदूर के प्रति प्रेम पाया जाता है तथा वे उसे अपनी कल्पना से रग कर मनोरम रूप में देखते हैं।

छायावादी कविता एवं रोमांटिक काव्य में समानताये

हम देख चुके हैं नव्य श्रेणिक काव्य की परम्परा का विरोध, प्रकृति चित्रण, आदर्शात्मक विद्रोह, सौन्दर्यवाद, मद श्रवसाद, अलौकिक तत्त्व तथा अतीत का काल्पनिक मनोरम चित्रण आ प्रोजी रोमांटिक काव्य की प्रमुख विशेषतायें हैं। प्रायः यही विशेषताएँ छायावादी काव्य की भी हैं। आलोच्य काल की हिन्दी कविता पर आ प्रोजी रोमांटिसिज्म के प्रभाव के दो कारण थे। प्रथमतः अक्षययोग आन्दोलन की असफलता के कारण यथाय जीवन की समस्याओं से हट कर हिन्दी कविता अन्तर्मुखी हो गयी। बाह्य परिस्थितियों में आन्तिक अभाव में कवियों ने भाव-लोक में आन्तिक की। द्वितीय, इस युग में पाश्चात्य सभ्यता के अधिकारिक सम्पर्क व विश्व विद्यालयों में आ प्रोजी शिक्षा के परिणामस्वरूप आ प्रोजी साहित्य से भी भारतीय साहित्यकारों का सम्पर्क हुआ। उस समय के विश्व विद्यालयों में पाठ्य क्रम में आ प्रोजी रोमांटिक कवियों का विशय स्थान था जो आज भी है अतः उनके विचारों का अवोदित साहित्यकारों पर प्रभाव पडना स्वाभाविक था। इनके अतिरिक्त एक अन्य कारण यह भी था कि आ प्रोजी रोमांटिक काव्य का विकास नव्य श्रेणिक काव्य की परम्परा के विरोध में हुआ था। छायावादी कविता में भी द्वितीय युगीन काव्य आदर्शों तथा ऐतिहासिक काव्य आदर्शों का विरोध किया गया। ऐतिहासिक के स्थूल शृंगार जो कहीं कहीं अश्लील वर्णन की सीमा को छूने लगता है का इस युग में विरोध किया गया। इसी प्रकार, द्वितीय-युग की अतिशय नतिकृत और असाध्य वर्णनात्मकता का भी विरोध हुआ। भाव क्षेत्र में इस विद्रोह के साथ काव्य के बाह्य रूप विधान में भी आन्तिक हुई। इस प्रकार, आ प्रोजी रोमांटिक

कविता और छायावादी कविता की प्रयत्नशील परस्पर अनुकूलता है। अंग्रेजी रोमांटिक कविता में मध्य श्रावणकाल की परम्परागत नियमबद्धता तथा पानो-मुनी सामंता की वन्द्योक्ति स्वाधिनित पूजा की समाज की सजीवता का विशेष किया तथा कवि की व्यक्तिक अनुभूति एवं कल्पना विताम क द्वार मुक्त कर दिया। छायावादी कविता भी व्यक्तिक प्रदान काव्य है जिम्मे रोडराम सधनी प्राने याली सस्वृत की ह्यासयुगीन साहित्यिक मायताओं का विराप किया तथा द्विवदीयुगीन प्रतिशय नविता की सजीवता क विरुद्ध गयीन सौम्य धनना क द्वार खोल दिया। तथापि अंग्रेजी रोमांटिक कविता और हिन्दी छायावादी कविता में कुछ आधारभूत भेद भी हैं। अंग्रेजी रोमांटिक कविता एक स्वतन्त्र दश की कविता है जब कि छायावादी कविता विदेशी साम्राज्यवाद के प्रोपण म विरुद्ध याली पराजित जनता की वाणी है। यदि अंग्रेजी रोमांटिक कविता ने समता स्वतन्त्रता और मधुन का नारा देनेवासी प्रातिमो प्राति की सपनाता से प्रेरित हाकर नये स्वप्न दन का छायावादी कविता की पृष्ठभूमि म देश के असफल राष्ट्रीय आगनों की स्मृति थी। यही नहीं, अंग्रेजी रोमांटिक कविता के रचना काल में विज्ञान का ध्वजारोह रूप प्रकट गी ह्यमाया परतु छायावादी कविता की भूमिका म प्रथम विश्वयुद्ध की दुख पूण स्मृति थी तथा युद्ध के उपरांत भारत में उपस्थित होनेवाले धार प्राधिक सक्ती का कट अनुभव था। इसके परिणाम स्वरूप छायावादी कविता म धवसाद और वेदना का रग अधिक गहरा है तथा उसके स्वप्न अस्पष्ट और धूमिल हैं छायावादी कविता का अंग्रेजी रोमांटिक काव्य से भेद बतलाते हुए डा० नगद्र का कथन है वहा (इंग्लैण्ड) के रोमानी काव्य का आधार अपेक्षाकृत अधिक निश्चित और ठोस था, उसकी दुनिया अधिक मृत थी उसकी आशा और स्वप्न अधिक निश्चित और स्पष्ट थे, उसकी अनुभूति अधिक तीव्र थी। छायावादी तरह वह निश्चय ही कम अतमुत्ती व वायवी था।” × अस्त, रोमांटिक व छायावादी कवियों की मानसिक स्थिति भिन्न थी पर उनकी चेतना समान थी। छायावादी कविता पर रोमांटिक कविता का प्रभाव इतना गहरा है कि वह प्रायः उसकी छाया सी, अनुवर्तनी प्रतीत होती है। स्वयं छायावादी कवियों ने अपनी कविता पर अंग्रेजी रोमांटिक कविता का प्रभाव मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है। श्री सुमित्रानन्दन पत ने लिखा है ‘पल्लव काल म मैं उन्नीसवीं शदी के अंग्रेजी कवियों मुख्यतः शेली बडसवथ कीटस और टेनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन युग का सौंदर्य बोध और मध्य

× डा० नगद्र ‘विचार और अनुभूति’ गीतम बुक डिपो दिल्ली दूसरा संस्करण, पृष्ठ-५८

वर्गीय सस्त्रुति का जीवन स्वप्न दिया है।" + महादेवीजी छायावादी कविता को पारश्चात्य साहित्य व बंगाल की नवीन काव्य धारा में प्रभावित मानती है 'यह युग पारश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगाल की नवीन काव्य धारा से परिचित था या ही साथ ही उनके सामने रहस्यवाद की भारतीय परम्परा भी रही।' इलाहाबाद जोशी रामकुमार वर्मा, बच्चन प्रभृति छायावादी कवियों ने भी अपने-अपने रोमांटिक कविता व अन्य पारश्चात्य साहित्यकारों का प्रभाव स्वीकार किया है।

आरम्भिक स्वच्छन्दवाद

पश्चिम व सम्पन्न से भारत की दृढ़ बाह्य विधानों व बंधनों को बिश्रुत कर देने में लगे रहने जब कि उनके आत्मा पारश्चात्य सम्पत्ता व रंग की गतना का सपना कर चमक उठी। स्वच्छन्दवाद की प्रवृत्ति इसी चमक की द्योतक है। बंधी हुई प्रणाली पर चलनेवाली काव्यधारा का विरोध, प्रकृति प्रेम और काव्य निकता स्वच्छन्दवादी धारा की प्रमुख उमिया है जिनकी विलोल और बम्पन हालाँच्य काल में मद मयूर सुनाई पड़ती हैं।

भारत-साहित्य में हम नवीन विषयों का समावेश अवश्य पाते हैं किन्तु, यह विषय बहिर्मुख हैं और उनमें "सबसे ऊँचा स्वर श्रेष्ठ मक्ति की वाणी का है।" द्विवेदी-युग की कविता पर भी सामाजिक प्रभावों की प्रधानता है किन्तु इस काल में कवि मानस की अन्तर्भूमियों में हम उस रस-धारा के उद्वेलन का प्रथम परिचय पाते हैं जो भावी युग में (छायावाद) सम्पूर्ण काव्य-क्षेत्र को प्रभावित कर देती है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने १९०१ में 'सरस्वती' का सम्पादन आरम्भ किया तथा इसी वर्ष 'सरस्वती' में विद्यानाथ मिश्र के कवि कृत व्यंग्य विषयक दो लेख प्रकाशित हुए जो हिन्दी में सर्वप्रथम स्वच्छन्दवाद की सद्भावितक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं। कवि कृत व्यंग्य लेख में प्रकट किए गए विचारों की बहसबध (Words worth) के 'लिरिकल बलड्स (Lyrical Ballads) से समानता पायी जाती है। जिस प्रकार "लिरिकल बलड्स" आंग्ल रोमांटिक आन्दोलन का मैनीफेस्टो" कहा जा सकता है उसी प्रकार 'कवि-कृत व्यंग्य हिन्दी कविता में स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति के आगमन का अग्रदूत है। इस लेख द्वारा हिन्दी में पहली बार पहचाना गया कि "गद्य और पद्य दोनों ही में कविता हो सकती है। कविता का लक्षण जहाँ वही पाया जाय, चाहे वह गद्य में हो या पद्य में कविता है।" स्पष्ट ही काव्य की बंधी हुई प्रणाली से यह मिश्र स्वर है। रीतिकालीन शृंगारिकता का विरोध साधारण जीवन से नये विषयों को अपनाना भाव पत्र की प्रधानता प्रकृति चित्रण तथा

+ सुमित्रानन्दन पंत 'आधुनिक कवि' २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पद्मार्णव चतुर्थ संस्करण सन् २००६ पृष्ठ-१३

कल्पना की प्रधानता एवं भाषा व छन्दों के प्रयोग के संबन्ध में इन भेदों में स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति लक्षित होती है। यमुना व किनारे बेनि-तीतुस्त व धरुस्त वगण' व प्रति स्त्रीभ प्रकट करते हुए लेखक 'घोटी में लहर हाथी पयग वसु मिथुन से लेकर राजा पयन्त मनुष्य' आदि के विषय प्रयाने की प्रेरणा देता है। लेखक का यह कथन कवि जिन विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तात्पर्य हो जाना चाहिए' बहससंघ की वाक्य परिभाषा (Spontaneous overflow of powerful feelings) का स्यावायुवाद प्रतीत होता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी 'कवि और कविता' लेख में स्वच्छन्दवादी के उपयुक्त तत्वों को प्रयोजित किया। सुब्रह्मण्य आदि को द्विवेदी जी कविता का केवल 'वस्त्रामरण' मानते हैं। उनके अनुसार कवि में जिनकी अधिक कल्पना शक्ति होगी उतनी ही अच्छी वह कविता लिख सकेगा। वे इस सत्य में कविता में प्रकृति-वर्णन व मानव-स्वभाव व अध्ययन पर भी बल देते हैं और कविता में बोलचाल की भाषा के प्रयोग के समर्थक हैं। कल्पना न होगी विद्यालयकाल की भाषा में कविता लिखने का विचार उठेगा। आंग्ल रोमांटिक वाक्य के प्रयोजन बहससंघ से ही प्रकृत किया। बहससंघ का प्रतीक श्रेष्ठ कविताओं में इस सिद्धान्त को नहीं निभा पाया था पर द्विवेदीयुगीन अधिकांश कविता इस सिद्धान्त का पालन करने से शुरुक्त गद्यात्मक ही बन गयी। फिर भी बहुत कुछ कविता द्विवेदी जी के प्रभाव से बाहर भी लिखी गयी जिसमें स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति व दर्शन होते हैं।

स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति 'प्रकृति' और 'प्रेम' इन दो विषयों में प्रधानतया व्यक्त होती है। आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति वर्णन एवं प्रेम वर्णन के नवीन रूप का सूत्रपात श्रीधर पाठक द्वारा किया गया आंग्ल रोमांटिक वाक्य के अनुवादक के रूप में पाठक जी का अत्यन्त महत्व था और यह स्वभाविक ही है कि हिन्दी में स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति के ये प्रवक्तक बने।

प्रकृति

श्रीधर पाठक की कविताओं में प्रकृति का सुन्दर दृश्य विधान एवं विभिन्न रूपों में चित्रण मिलता है। टामसन (Thompson) की 'सीज़न्स' (Seasons) कविता का उनके श्रुत वर्णन की कविताओं पर विशेष प्रभाव दिखाई देता है। टामसन के प्रकृति चित्रण में यथातथ्य दृश्य विधान, प्रकृति के सुन्दर व भयकर दोनों रूपों का वर्णन एवं पीडितों के प्रति सहानुभूति की विशेषताएँ मिलती हैं। पीडितों के प्रति सहानुभूति की भावना गोल्डस्मिथ के प्रकृति काव्य में भी पायी जाती है जिसका श्रीधर पाठक की कविताओं पर प्रभाव पड़ना स्वभाविक था। पाठक जी ने अपनी मेधागमन कविता में वर्षा का वर्णन करते हुए वर्षा के आनन्ददायक व भयकर दोनों रूपों को चित्रित किया है। रीतिकालीन कविता में वर्षा का चित्रण प्रायः विरहिणी की वेदना के

उद्दीपन रूप में किया जाता था कि तु 'मेघागमन' में प्रकृति की भयंकर पृष्ठभूमि में बाल विधवा का भय प्रकम्पित रूप दर्शाया गया है ।†

घन विजय कविता में पाठक जी ने दुर्मिक्ष की अवस्था का वर्णन करते हुए बादल से जल बरसा कर सतत प्राणियों का दुःख हरने की प्रार्थना की है । पाठक जी के प्रकृति वर्णन के इस रूप में आगल रोमांटिक काव्य के प्रभाव के साथ समाज सुधार व देश भक्ति की भावना का प्रभाव भी स्पष्ट है । हिंदी कविता में प्रकृति के प्रायः मनोहर रूप का ही वर्णन किया जाता था, आगल रोमांटिक काव्य के प्रभाव से प्रकृति के भयंकर रूप का भी वर्णन किया जाने लगा । रामचंद्र शुक्ल 'हृदय का मधुभार' कविता में बाल्यकाल की स्मृतियों का वर्णन करते हुए मिर्जापुर के विध्य पर्वत में घूमने का वर्णन करते हैं तब पहाड़ों व जंगलों का दृश्य चित्रित सा हो जाता है । कवि का एक साथ उस पावस्य प्रदेश के बीच स्थित एक एकाकी पेड़ के नीचे पटुचता है । वहाँ वह पहले से बठ हुए हापते कुत्ते को दूर कर स्वयं अपने लिए जगह करता है इस पर कवि मनुष्य और प्रकृति के स्वभाव की तुलना करते हुए कहता है कि मनुष्य कितना स्वाथ परायण है जब कि प्रकृति सबके लिए समान रूप से उदार हृदया है । शुक्ल जी के एडविन अर्नाल्ड (Adwin Arnold) के लाइट ऑफ एशिया' (Light of Asia) के अनुवाद बुद्ध चरित' में प्रकृति के आनन्ददायक व भयंकर दोनों रूपों का चित्रण किया है । बुद्ध के हृदय में राक्षसों द्वारा भय उत्पन्न कराने के उद्देश्य से बुद्ध चरित में प्रकृति का भयंकर रूप चित्रित किया गया है ।

स्वच्छन्दवादी कविता में प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति भी पायी जाती है । यह प्रवृत्ति छायावादी कविता में और भी अधिक दिवस्थित रूप में मिलती है जो आगल रोमांटिक काव्य के प्रभाव की दर्शाता है । श्रीधर पाठक की 'काश्मीर सुपमा' कविता में हिंदी में सब प्रथम प्रकृति के मानवीकरण का रूप मिलता है ।=

† श्रीधर पाठक 'मेघागमन'

अधियारी रात हाथ न दिखात

दिन नाथ बाल विधवा डरात

= श्रीधर पाठक 'काश्मीर सुपमा'

प्रकृति महा एकांत बठि निज रूप सवारति
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन धारति
विमल अम्बु सर मुकुरन मह मुख विम्ब निहारति
अपनी छवि प मोहि आपहि तन मन वारति
सजति सजावति, सरसति हरसति, दरसति प्यारी
बिहरती विविध विलास मरी जीवन के मद सानि

पाठक जी की 'स्वर्गीय बीणा' कविता में प्रकृति विषय-संचानक परोक्ष गत्ता की धार रहस्यपूर्ण मकेत प्रदान करती है । *

प्रकृति दण्डन का उपयुक्त स्वरूप ध्यात रामाटिन काव्य के प्रकृति चित्रण के अनुरूप है । छायावादी कविता में यह रूप और भी स्पष्ट तत्र चित्रित हुआ है । नवीन कविता में प्रकृति चित्रण के संबंध में यह स्मरणीय है कि यह मध्ययुगीन कविता की तरह सुना सुनाया अथवा पाथी ज्ञान पर आधारित नहा है वरन् कवि के सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित है । बालमुकुन्द गुप्त की भसे का स्वर्गीय कविता में गाँव के दृश्य का यथाय चित्रण मिलता है । +

आगे की छायावादी कविता में इस प्रकार के यथाय चित्रणों का अभाव है । छायावादी कविता में प्रकृति चित्रण यद्यपि सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित है किन्तु

ललकति पुलकति निरस्ताति धिरवाति बनि ठाने
मधुर मज्जु छवि पुज छटा छिन्नाति बन कुनन
चितवति रिम्भवति हमति डतति नुसिक्वाति, हरति मन
यह सुरूप सिंगार रूप घरि घरि बहु भातिन

* श्रीधर पाठक "स्वर्गीय बीणा"

कही प स्वर्गीय कोई बाला सुमज्जु बीणा बजा रही है
सुरा के संगीत की सी कसी सुरीली गुजार आ रही है
भरे गगन में है जितने तारे हुए हैं मन्मस्त गत पे सारे
समस्त ब्रह्माण्ड भर को माना दो उगलिया पर नचा रही है

+ बालमुकुन्द गुप्त "भसे का स्वर्ग"

कोसों तक का जंगल है धीरे हरी घास लहराती है
हरियाली ही दीख पडे है दृष्ट जहा तक जाती है
कही लगा है झडवरी और कही लगी है उवार
कही छडा है मोठ बाजरा कही घनी सी ज्वार
कहीं पे सरसो की बयारी है कही कपास के खेत रने
जिसमे निकलें मना बिनौल अथवा पडियो खली बने
मूंग मोठ की पडी पतारन और चने का खार
कही पडे चोक के डठल कही उन्द का यार
कही सक्डो मन भूसा है कही पे रक्ली सानी है
कच्चे तालाबो में आधा कीचड आधा पानी है
धरी है वा भीग दान से मरी सक्डा नाद
करते हैं भसे और भसे उछल कूट और फाद

वह कल्पना में प्रनुरजित है। मन्त्र में नवयुग में प्रवृत्ति-वर्णन के प्रति कवियों के आक-
पण का कारण प्राग् रोमांटिक काव्य में सम्भव के प्रतिरिक्त यह भी जान पड़ता
है कि प्राग्ल साम्राज्य की स्थापना एवं धीर्घागिक विकास का फलस्वरूप नागरिक
मन्यता का प्रसार होने लगा था तथा गाँवों का प्राकृतिक सौन्दर्य नष्टप्राय हो गया
था। प्रेमघन, बालमुकुन्द गुप्त, श्रीधर पाठक प्रभृति साहित्यकारों ने नगरों के
आवाद हान एवं गाँवों के उजड़ने का तथ्य का द्योमपूवक वर्णन किया है। †

प्रेम

इस युग की कविता में प्रेम की भावना में स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति दिखाई
देती है। प्रेम का जो रूप लौकिक जीवन में धारमसात् नहीं हो पाता वह कवि की
कल्पना में भुंवर हो उठता है एवं वह प्रेम की आदर्शात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता
है। रीतिकाल में प्रेम शारीरिक सौन्दर्य-वर्णन से स्थूल श्रृंगारिक भावना में
सीमित था। द्विवेदी काल में रीतिकालीन श्रृंगारिकता का विरोध
किया गया। मदन मोहन मालवीय ने श्रृंगारिकता में दूरे साहित्यकारों का देश की

† वहाँ गए वह गाँव मनाहर परम मुहाने (प्रेमघन 'जीणपद')

घनी जना की तथा विषय सुख दप भरी भमिलापा पर

हरे भरे सुठि ग्राम गय उठ वसुधा से कितने नस कर (श्रीधर पाठक)

कालाकाकर का स्मरण हुए बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा

स्वप्न की भाँति वह पन्द्रह सालह साल का बीता हुआ जमाना याद आता
है। वहाँ न लम्बी पीली सड़क थीं न आकाश से बातें करने वाली ऊँची
ऊँची इमारतें थीं। न छोटा गाड़ियों की भड़ भड़ थी न माग चलते मीठ
में भञ्जर और गाड़ियों के पेट में आकर दब मरने का भय था। न वहाँ
कदम कदम पर लुभाने वाली या तथोपत दिगाड़ने वाली चीजें थीं। न
रोशनी थी न बल-कारखानों और चिमनियों का दम घाटने वाला कड़वा
घुआ था, न सड़कों पर बूढ़े कचड़े के ढेर थे न गलिया बंदबू से सड़ती थीं।
राजा साहब की भद्रमारी क सिवा वहाँ कहीं एक बोटल तक न दिखाई देती
थी बाजारी स्त्रियों और बदचलन पुरुषों से वह भूमि एकदम पाक थी।
कालाकाकर भूलने की वस्तु नहीं है। वह छोटा-सा रम्य स्थान सचमुच
स्वर्ग का टुकड़ा था। उस समय उस स्थान का हृदय में इतना आदर
न था। आज कलकत्ता में वह सब बातें एक एक कर आती हैं
पर क्या वह सब फिर मिल सकती हैं ?

दुःखसा की घोर ध्यान दिलाया । × मिश्र बंधुओं ने शृंगारिक विषयों के प्रति अक्षि दर्शाते हुए काव्य की बंधी प्रणाली का विरोध कर सस्कृत व बंगला में प्रेरणा लेने की आवश्यकता बतलायी । +

गोविन्ददास ने रीतिकालीन शृंगारी कवि पद्याकर व मतिराम को भुनाकर अंग्ल रोमांटिक कवियों को आदर्श मानने की प्रेरणा दी । = अस्तु, द्विवेदी-मुगीन कविता में शृंगारिकता का विरोध किया गया । तथापि इस युग की कविता में नैतिक वजनाओं के रहते हुए कहीं कहीं समोग चित्र उभर भाय हैं परन्तु युग की स्वच्छ दवादी धारा में प्रेम का उदात्तकृत रूप पाया जाता है ।

× मदनमोहन मालवीय 'काव्य-बला', प्रथम विरण (१८८५ ई) पृ १००

भारत चारहूँ ओर दुःख भोगत बीतिये वष हजारन
ध्यान रतिक दियो चाहिये दुख कौन उपाय सो होय निवारन
सो सब दूरि रहे मकरन्द समै इन बातन मे किहि कारन
होय सो होय इहा नहि भूलवो राधिका रानी कदम्ब की डारन

+ मिश्रबंधु—

दस अंग लखी कविना सकल कितु भरी शृंगार रस
शृंगार छोड़ कविना मिली नहीं बहुत सुन्दर सरस
करो प्राकृतिक चाँद विषे वरणिन मुद मारी
यथा सस्कृत मध्य कहे कवियो ने मारी
मैकल मधुसूदन दत्त ने मेषनाद बध ज्यो कहा
बकिम, रमेश ने अग्र्य रच सदा साकहित ज्यो चहा

= गोविन्ददास 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' प्रथम खण्ड अंक २०

गुप्ता पर खडिता पर तो आपको सहसो सबये मिल जायेंगे पर मानव जीवन पर मानव जीवन के गूढ रहस्या पर, प्रेम पर प्रतिभा इत्यादिक पर आपको कुछ भी नहीं मिलेगा अर्थात् कविता को देखो वहाँ आपको गुप्ता व विदग्धार्थें न मिलेंगी । वहाँ आपको दादरो व दूतियों की दौड़ घूष न मिलेगी । वहाँ मिलेगी आपको 'गूँल के फूल की सहज शोभा' पर कविता वहाँ मिलेगी आपको जन्म भूमि के अनुराग', 'जीवन के रहस्य, व 'सन्तोष के सुख' पर कविता । अतः हमें इस समय पद्माकर व मतिराम को भूल कर बडसबध 'आरुणिग' 'काऊपर व टनीसन को ही अपना आदर्श बनाना चाहिये । नायिका-भेद के गुलदस्ते अथ बासी पड गय हैं, उनमें मुग्ध नहीं रही उनमें शोभा नहीं रही ।

शालोच्य-काल में शारीरिक विलास से युक्त प्रेम के उदात्त रूप की अभिव्यक्ति मिलती है। गोल्डस्मिथ (Goldsmith) के हरमिट (Hermit) का शीघ्र पाठक न अनुवाद किया। यह अनुवाद अत्यधिक लोकप्रिय रचना थी। उसमें मौलिक ग्रंथ सा ही हृदय को प्रभावित करने वाला गुण था। 'एकान्तवासी योगी' का नायक एडविन निधन है किन्तु नामिका आग्नेता उसके गुणों को ही धन मानती है। इस काव्य में मनोवैज्ञानिकता का भी सुंदर समावेश हुआ है। आग्नेता एडविन में प्रेम करती है तथा नारी सुलभ लज्जा व आत्म-सम्मान की भावना से वह उस प्रेम को छुपानी ही नहीं प्रयुक्त एडविन के प्रति विरक्ति भी दर्शाती है। एडविन अपने प्रेम को असफल समझ कर बरागी बन जाता है। अग्लना को पश्चात्ताप होता है तथा वह योगिन की तरह अपने प्रेमों की खोज में बन बन भटकती है। अंत में उनका मिलन होता है तथा वे दोनों सुखपूर्वक रहते हैं।

'एकान्तवासी योगी' से प्रभाव ग्रहण कर हिंदी में प्रेमकथात्मक काव्य लिखे गये जिनमें जयशंकर प्रसाद का 'प्रेम पथिक' रामनरेश त्रिपाठी का 'मिलन' व 'पथिक' प्रमुख हैं। द्वितीय युग के ग्रंथ प्रबंधों, जो गौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथानकों को लेकर लिखे गए हैं के विपरीत, इन प्रबंधों में नूतन कथा प्रसंगों की उद्भावना की प्रवृत्ति मिलती है जो इन कवियों की स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति की द्योतक हैं। 'एकान्तवासी योगी' के प्रभाव को प्रसाद के 'प्रेम पथिक' के कथानक में भी देखा जा सकता है। आनन्द नगर का वासी पथिक एक दिन तापस जीवन अर्पित करने वाली चमेरी की कुटिया में आता है। कुञ्ज में बठी हुई चमेरी जब उसे अपनी कथा सुनाती है तो सहसा उसे पता जाता है कि उसका श्रोता पथिक ग्रंथ कोई नहीं उसका बाल्यकाल का प्रेमी ही है जिसके साथ उसका परिणय न हो पाने के कारण ही उसने तपस्विनी जीवन अपनाया था। किन्तु अब वासना छोड़ कर विश्व प्रेम में ही अपने प्रेम को खोज करने का वह अनुरोध करती है। +

प्रेम का यह उदात्तकरण (Sublimation) रामनरेश त्रिपाठी के खण्ड काव्यों में राष्ट्र प्रेम व लोक सेवा का पक्ष लेकर प्रकट हुआ है। सीधी राजनीति से इन खण्ड काव्यों का कोई संबंध नहीं है किन्तु काल्पनिक कथा प्रसंगों के बीच देश प्रेम की भावना का सुन्दर समावेश हुआ है। उनके 'स्वप्न' खण्ड काव्य का

+ जयशंकर प्रसाद 'प्रेम-पथिक'

पथिक प्रेम की राह अनोखी सभल सभल कर चलना है
धनी छाह है जो ऊपर तो नीचे बाटे बिछे हुए
प्रेम यत्न में स्वाय और कामना हवन करना होगा
सब तुम प्रियतम स्वर्ग विहारी होने का सुख पावोगे

नायक वसंत भीरु हृदय है। उसके देश पर विदेशी घात्रा-ताप्रा का घात्रमण होता है तब देश की रक्षा करने के बदले वह अपनी पत्नी की गोद में मुह छिपा कर दुबका रहना चाहता है। अतत उसकी पत्नी ही युद्ध क्षेत्र में जाती है। पर वह युद्ध क्षेत्र से छद्म वेश में लौट कर अपने पति के पास आकर अपनी ही मृत्यु का समाचार देती है तथा वसंत को देश रक्षा के लिए स्वातंत्र्य युद्ध में भाग लेने की प्रेरित करती है। वसंत का अपनी प्रियसी के प्रति प्रेम देश प्रेम का रूप में लेता है एवं वह युद्ध क्षेत्र में जाकर शत्रु से युद्ध कर देश को मुक्ति दिलाने में सफल होता है। इसी प्रकार त्रिपाठी जी के 'पथिक' व 'मिलन' के नायक अपनी पत्नी से प्रेम करते हैं किंतु उनका प्रेम क्रमशः प्रकृति राष्ट्र व विश्व प्रेम में पदचलित हो जाता है। +

यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आरम्भिक स्वच्छन्दवादी कविता यद्यपि द्विवेदी युग में रची गयी थी किंतु वह उस युग की बस एक प्रवृत्ति थी। यही नहीं आरम्भिक स्वच्छन्दवादी कविता स्वयं द्विवेदी जी के प्रभाव में सुवर्ण होकर लिखी गई थी। द्विवेदी युग की अधिकांश एवं महत्वपूर्ण काव्य रचनाएँ इतिवत्तात्मक हैं। उनमें बाह्य वरुण की प्रधानता पायी जाती है तथा वे सामाजिक उद्देश्यपूर्ण रचनाएँ हैं। यद्यपि स्वयं द्विवेदी जी ने स्वच्छन्दवाद की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि का निरूपण किया किंतु उनके हाथों स्वच्छन्दवाद का विकास नहीं हुआ। यहां तक कि श्रीधर पाठक द्वारा प्रवर्तित स्वच्छन्दवाद की धारा द्विवेदी जी के प्रभाव में लिखी गई रचनाओं के बाहुल्य एवं महत्व के कारण अवरुद्ध हो गई। आगे चल कर जिम छापावादी कविता में आरम्भिक स्वच्छन्दवाद का विकास हुआ उसे द्विवेदीयुगीन काव्य रुढ़ियों के प्रति विद्रोह करना पड़ा।

द्विवेदी युगीन काव्य रुढ़ियों के प्रति विद्रोह काव्य की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति

द्विवेदी युग में कविता किसी आख्यान को लेकर लिखी जाती थी। कवि उस आख्यान के माध्यम से कुछ उपदेश भी देना चाहता था। शृंगार वरुण यद्यपि द्विवेदी-युग की प्रधान प्रवृत्ति नहीं थी परंतु कवि जहां सौंदर्य वरुण करता वहां स्थूल समीप चित्र उभर आते थे। काव्य पद्धति और काव्य रूप भी सीमित ही थे। कवि शास्त्र सम्मत महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं छोटे आख्यान-काव्यों की

- + रामनरेश त्रिपाठी 'मिलन'
जन जन में प्रेमी को दिखती
है प्रियतम की कान्ति
इससे उसे लोक सेवा में
मिलती है भक्ति शक्ति

सस्कृत वृत्तो में रचना कर सतुष्ट हो जाता था। सीमित विषय एवं अभिव्यजना के सीमित प्रकारों में घाबद्ध कविता कथिमता का रूप धारण कर चुकी थी। असहयोग घा-दोलन की असफलता से जय राजनीतिक पराजय की कटु अनुभूति ने कवि को अनमुखी बनने की प्रेरणा दी। कवि जिम मध्यम वग का प्राणी था उसकी सामाजिक स्थिति दयनीय थी। किन्तु उसमें किसी प्रकार परिवर्तन लाना उसके लिए सम्भव नहीं था। अतः उसकी दृष्टि अतमुखी बन गई। इस समय आंग्ल रोमांटिक कवियों से प्रेरणा लेकर कवि ने भाव-जगत् में नया परिवर्तन उपस्थित किया।

यह भाव परिवर्तन द्विवेदी युग के बाह्य वरुण के विपरीत अन्तजगत् के भावों की अभिव्यक्ति, नवीन सौ दय चेतना एवं अभिव्यजना के नवीन प्रकारों के रूप में प्रतिफलित हुआ।

छायावाद का प्राक्तन द्विवेदी-युग की मूख्य पत्रिका 'सरस्वती' से न होकर नवीन मासिक पत्रिका 'इन्दु' से हुआ जिसमें नवीन काव्य धारा के प्रवक्तृ जयशंकर प्रसाद ने लिखा 'साहित्य का काय लक्ष्य विशेष नहीं होता।' प्रसाद जी के अनुसार 'कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश विदेश की सुंदरी के बाह्य वरुण से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।' प्रसाद जी ने साहित्य की व्याख्या द्विवेदी-युग के धार्मिक सामाजिक सुधार की आकांक्षा के विपरीत की है। महादेवी जी भी प्राचीन काव्य आदर्शों के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप में छायावाद का उद्भव मानती है। X

छायावादी कवियों की सौंदर्य दृष्टि अतमुखी है। प्रत्येक युग सौंदर्य के नवीन रूपा का निर्माण करता है। जिस युग के सौंदर्य रूपों में नवीनता का अधिक समावेश होता है, सौंदर्य चेतना की दृष्टि से वह युग उतना ही समृद्ध समझा जाता है। सौंदर्य चित्रण पूर्वयुगीन आदर्शों के अनुकरण पर होने लगता है तब उसमें कृत्रिमता का समावेश हो जाता है। रीति काल का सौंदर्य चित्रण ह्रास युगीन सस्कृत साहित्य में 'यवहृत नारी सौंदर्य के उपमानों और कवि हृदयों पर आधारित था। द्विवेदी-युग की सौंदर्य भावना में मौलिक अंतर दृष्टिगत नहीं

X महादेवी वमा 'यामा' पृ० ११

उसके (छायावाद) जन्म से प्रथम कविता के बचन सीमा तक पहुंच चुके थे और सृष्टि के बाह्यकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छंद छंद में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है।

होता। बाह्य आकार का स्थूल चित्रण ही उस युग में सौन्दर्य का पर्याय बना रहा। अंग्रेजी रोमांटिक कवियों ने अपने पूर्ववर्ती नव्य-श्रेणिक काव्य युग की सौन्दर्य भावना को विरुद्ध जो केवल बाह्य अंगों तक सीमित थी विरोध किया उसी प्रकार छायावादी काव्य में बाह्य आकार के स्थूल सौन्दर्य चित्रण के प्रति विरोध पाया जाता है। यह कवि सौन्दर्य का दर्शन केवल चम चक्षु से नहीं, चम चक्षु के साथ मन की दृष्टि से करते हैं। सत्य की जिज्ञासा लिए वे अपने मन के भीतर की अरूप छवियों को प्रकृति व नारी की विविध सौन्दर्य कल्पनाओं में यत्र तत्र छिटका देते हैं। छायावादी कविता में अतमुखी सौन्दर्य-चेतना प्रकृति व नारी के सौन्दर्य अकनक रूप में व्यक्त हुई है। प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण के साथ छायावादी कवियों ने प्रकृति में अनेक मानवीय भावों का आरोपण किया है। नारी सौन्दर्य के चित्रण में शरीरज सौन्दर्य अंगों की अपेक्षा अतमुखी भाव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है।

छायावादी कविता में द्विवेदीयुगीन काव्य रूढ़ियों से भिन्न काव्य रूपों को अपनाया गया है। छायावादी कवि सहज अभिव्यक्ति को कला का प्रधान गुण मानते हैं। प्राचीन काव्य परिपाटी के पक्षपातियों ने आरम्भ में छायावादी कवियों पर रस छन्द, मापा आदि की अज्ञानता का आरोपण किया था। परन्तु वे गुंजन में तब बसा गान गीत में इन आक्षेपों का उत्तर देते हुए बताया है कि अवश्य, इन बातों का उसे ध्यान ही नहीं रहना—प्रत्युत उसके लिये प्राण स्वयं ही गीतों में फूट पड़ते हैं। *

द्विवेदी-युग की प्रवृत्ति का यह पद्धति, जिसमें आख्यान वस्तु, चरित्र सृष्टि व विचार गम्भीरता की प्रधानता थी से भिन्न छायावादी काव्य पद्धति गीतिपूर्ण है जो कवि के भावात्मक दृष्टिकोण के आधक उपयुक्त है। इस युग के महाकाव्य कामायनी में भी कथात्मक गतिशील नहीं है और उसकी शैली गीतात्मक है। प्रसाद का 'माला', पत की 'प्रिय' आदि अन्य बहुत कम प्रवृत्तिकाव्य इस युग में लिखे गये। अधिकांश छायावादी कविता की स्वतंत्र गीतों के रूप में रचना हुई है। अतः छायावादी कविता में गीति काव्य की सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं। छन्द एव अलंकारों की प्राचीन परिपाटी का छायावादी कविता में विरोध पाया जाता है। पत ने 'पल्लव' की भूमिका में रीतिकालीन छन्द व अलंकारों की परम्परा का विरोध किया। निराला ने रीतिकालीन विचार भूमि से नवीन

* सुमिथानन्दन पत गुंजन भारती महार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
संवत् २००६ पृष्ठ १०६

गान ही में रे मरे प्राण
अखिल प्राणों में मेरे गान

काव्य की स्वतंत्रता का सम्बंध मुक्त छन्द के साथ जोड़ दिया। उनके अनुसार भावों की मुक्ति के लिये छन्दों की मुक्ति आवश्यक है। उन्होंने लिखा—‘मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।’ प्रगल्भ प्रेम कविता में निराला ने कविता-प्रेयसी के लिए छन्दों की राह को सकीर्ण बतलाया है तथा वे उससे बंधनमय छंदों की छोटी राह को छोड़ कर अपने हृदय-कमल में आने के लिए आनन्दित करते हैं। ● नय आकाश में कवि विहंग नये स्वर का आलाप छेड़ता है। ❧

अस्तु, छायावादी कविता में द्विवेदीयुगीन काव्य रूढ़ियाँ के प्रति भाव एवं अभिव्यजना दोनों दृष्टि से विद्रोह पाया जाता है। इस विद्रोह के मूल में पार्श्वात्य प्रभाव की प्रेरणा थी। जहाँ तक काव्य के अतमूखी होने का प्रश्न है युग की परिस्थितियाँ ही प्रधानतया इसके लिए उत्तरदायी थी। परन्तु, नवीन सौंदर्य चेतना प्राग्ल रोमांटिक काव्य के प्रभाव का परिणाम थी तथा अभिव्यजना के स्वरूप पर बहुत अशोक बंगला के माध्यम से फ्रांसीसी प्रतीकवाद का प्रभाव प्रतिफलित हुआ।

प्रकृति चित्रण

प्रकृति चित्रण छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। उसमें प्रकृति चित्रों की अत्यधिक प्रचुरता है तथा पूर्व युगीन हिन्दी कविता में प्रकृति वर्णन से भिन्न रूप में प्रकृति चित्रण का विकास हुआ है।

हम देख चुके हैं कि आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति वर्णन का सूत्रपात श्रीधर पाठक द्वारा किया गया। श्रीधर पाठक गोल्डस्मिथ व टामसन के प्रकृति

● सूयका त त्रिपाठी निराला ‘अनामिका’, भारती मंडार, इलाहाबाद सवत् १९६५ प ३४

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह
अध विकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये छोड़ कर बंधनमय छंदों की छोटी राह !
गजगामिनी पथ तेरा सकीर्ण कटकाकीर्ण
कैसे होगी उसमें पार ?

❧ सूयका त त्रिपाठी निराला ‘गीतिका’,
भारती मंडार, इलाहाबाद स० १९६५
नव गति नव लय, ताल छंद नव
नवल कण्ठ, नव जलद मन्द रव
नव गम के नव विहंग वृन्द को
नव पर नव स्वर दे !

वर्णन से प्रभावित हुए थे। द्वितीय युग में प्रकृति-वर्णन की प्रवृत्ति का अधिक विकास नहीं हुआ था। द्वितीय जी के प्रभाव से पौराणिक आध्यात्म का प्रचार हुआ जिनमें पृष्ठभूमि रूप में प्रकृति के यथानुसंग अथवा अनन्तरित वर्णन को ही स्थान मिल सका। छायावादो कवियों ने अग्रणी रोमांटिक कविता का अध्ययन किया एवं उनके प्रकृति चित्रण से प्रभावित हुए। अतः उनकी कविता में प्रकृति सौन्दर्य चित्रण की धीरे धीरे वृद्धि हुई है।

प्रकृति से प्रेरणा

छायावादी कवि प्रायः प्रकृति से अनुप्रेरित हुए हैं। पतञ्जली को कविता करने की प्रेरणा प्रकृति निरीक्षण से मिली।—उनकी बीणा और पंचद वान की कविताओं में प्रकृति की सुन्दर वस्तुओं का आरपक वर्णन मिलता है। पतञ्जली को प्रकृति का सुन्दर रूप ही आकृष्ट करता है।—वे प्रकृति को अपने से अलग मन्त्रोक्त सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में देखते हैं। × महादेवी जी प्रकृति की अनेक रूपता में एकता के दर्शन करती हैं तथा उसे अतीन्द्रिय व्यक्तित्व मान करती हैं।*

+ सुमित्रानन्दन पंत आधुनिक कवि २ हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
वस्तु सस्करण सन् २००५ पृष्ठ १

कविता करने की प्रेरणा मुझे प्रकृति से मिली है, जिनका श्रेय मरी जन्मभूमि
कूर्माचल को है।

= सुमित्रानन्दन पंत वही पृष्ठ ३

साधारणतया प्रकृति के सुन्दर रूप ही ने मुझे लुभाया है प्रकृति का उग्र
रूप मुझे कम रुचता है। यदि मैं सधनप्रिय अथवा निराशावादी होता तो
'Nature red in tooth and claw' वाला कठोर रूप जो विज्ञान का सत्य है
मुझे अपनी आर आकर्षित करता।

× सुमित्रानन्दन पंत वही, पृष्ठ ३

प्रकृति को मैंने अपने से अलग सदा सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में
देखा है।

* महादेवी वर्मा

जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे
तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक धीरे असीम चेतन और दूसरा
उसके समीप हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अश एक अतीन्द्रिय
व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।

प्रकृति सजीव सत्ता के रूप में

छायावादी कवि प्रकृति को स्वतंत्र सजीव सत्ता के रूप में देखता है। छायावादी कविता का आरम्भ प्रसादजी की 'भरना' काव्य पुस्तक से माना गया है। प्रसादजी भरना को चेतनाहीन जलप्रवाह मात्र नहीं मानते वरन् उसके मधुर कल कल नाद में वे छिपी हुई गहरी बात सुनते हैं। + उनकी 'विपाद' कविता में भरना किसी व्यथा से विकल होकर बिलखता ठुकराता फिरता है यह विपाद मानव विपाद की परछाही मान नहीं है वरन् स्वयं निभर के विपाद के रूप में प्रकट हुआ है। * प्रसादजी 'किरण' का अलंकारपूर्ण वर्णन करते हुए उससे सुमनो को खिला कर सोया बसंत जगाने की प्रार्थना करते हैं। किरण किसी के अनुराग में रगी हुई घरा पर प्रार्थना सहस्र घाती है। वह मौन समीत से पूरा है। न जाने किस अज्ञात विश्व की वेदना दूती-सी आई है। वह पृथ्वी और स्वर्ग को जोड़ कर उनमें सम्बन्ध स्थापित करती है। कदाचिन् पृथ्वी का शोक हर लेगी। माना वह ऊषा सुन्दरी के कनक वलय से विकीर्ण हुई है तथा उसके घर का सकेत कर रही है। परन्तु वह जैसे ऊषा के प्रेम निवेत का सकेत करती है। कवि उससे सुमनो को खिला कर नव बसंत जगान की प्रार्थना करता है। X यहाँ कवि प्रकृति को अपने मन के भावों से अनुरजित

+ जयशंकर प्रसाद 'भरना' पृष्ठ १

मनोहर भरना

कठिन गिरि कहा विदारित करना

यात कुछ छिपी हुई है गहरी

मधुर है स्रोत मधुर है लहरी

* निभर कौन बहुत बल खाकर बिलखाता ठुकराता फिरता
खोज रहा है स्थान घर में अपने ही चरणों में गिरता
किसी हृदय का यह विपाद है छेड़ो मत यह सुख का कण है
उत्तेजित कर मत दोषाग्रो कष्टना का विधात चरण है (यही पृष्ठ १७)

X किरण तुम क्या विश्वरी हो आज रगी हो तुम किसके अनुराग ?
किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन
स्वर्ग के सूत्र सहस्र तुम कौन, मिलाती हो उससे भूलोक
जोड़ती हो कैसा सम्बन्ध बना दोगी क्या बिरज विशोक ?
सुग्नि मणि वलय विभूषित उषा सुन्दरी के घर का सकेत
कर रही हो तुम किसको मधुर किसे दिखलाती प्रेम निवेत
धपला ! ठहरो कुछ तो विश्राम चल चुकी हो पथ शून्य अनन्त
सुमन मन्दिर के खोले द्वार जगे फिर सोया वहाँ बसत !

(प्रसाद किरण)

करके देखता है ।

पतञ्जी प्रकृति के सुकुमार कवि हैं । 'मोह' कविता में वे प्रकृति के सौंदर्य में इतने प्रविक्रित हो जाते हैं कि उन्हें नारी-सौंदर्य आकृष्ट नहीं कर पाता । प्रकृति से सम्बन्ध तोड़ कर वे बाल-जाल' में अपनी भावों को नहीं उलझाना चाहते । + अभी तो कवि का बाल-हृदय चिड़ियाँ बादल, इन्द्रधनुष भ्रोस-तारे, नदी-भरने ऊषा-सध्या आदि में ही लीन रहता है । कवि की काव्य-कल्पना समय-समय बाल प्रकृति के गले में बाहे डाल कर विहार-गी बरती प्रतीत होती है । पतञ्जी प्रकृति को मा के रूप में देखते हैं तथा स्वयं बालिका का रूप धरना कर उसकी गोद में सोने की कल्पना करते हैं । * उनकी प्रथम रश्मि कविता में बाल-मुलम जिज्ञासा सुन्दर रूप में व्यक्त हुई है । प्रातः काल के समय पक्षी चहचहा उठते हैं । कवि के मन में सहसा यह भाव जागृत होता है कि ग्रहण की प्रथम रश्मि के घाने का विहगिनी को किस प्रकार पता चला । अभी तो वह स्वप्न नीड में सोई हुई थी । नीड के बाहर जुगनू प्रहरी अपने पक्षों के सुलभ मूमते हुए द्वार पर घूम रहे थे । अलग से सुन्दर रूपवाले यह पक्षी चन्द्रकिरणों की डोर से पृथ्वी पर उतर कर नवीन कलियों के मुल का चूम उन्हें मुस्कराना सिखा रहे थे । स्नेह रिक्त तारों के दीपक जल रहे थे और तर के पात निस्पन्द थे । पृथ्वी पर स्वप्न विचर रहे थे तथा चारों ओर भ्रमण था । तब चूम की प्रथम रश्मि का पृथ्वी पर प्रागमन हुआ । कवि के मन में जिज्ञासा का भाव उत्पन्न होता है कि बाल विहगिनी को सूर्य रश्मि के घाने का किस प्रकार पता चला और वह जग कर कब उसका स्वागत-गान गाने लगी । X

+ सुमित्रानन्दन पतञ्जी काव्यिक कवि २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुर्थ सस्करण सन् २००६ पृष्ठ १

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाल तेरे बाल जाल में कैसे उलझा हुआ लोचन ।

● सुमित्रानन्दन पतञ्जी कविनी पृष्ठ २७ ।

माँ सबसे छोटी होऊ
तेरी गोदी में सोऊ

X सुमित्रानन्दन पतञ्जी काव्यिक कवि २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, चतुर्थ सस्करण सन् २००६ पृष्ठ ३

प्रथम रश्मि का घाना रगिणि
कस तू ने पहचाना ?
कहा, कहा है बाल विहगिनि
क्या तू ने यह गाना ?

प्रकृति के प्रति कौतूहल और जिज्ञासा की भावना पन की कविताओं में राशि राशि पायी जाती है। प्रकृति के दृश्यों को देख कर वे उसमें चेतना का अनुभव करते हैं। 'पवत-प्रेश म पावस' कविता में वे पवत का एक दोषकाय चेतना स्वरूप देखते हैं जो अपने ही परो तले पड तान लपी दपण म सहस्र सुमना के दृग फाड कर अपने महाकार देखता है। X

पाश्चात्य प्रभाव से पहले की हिन्दी कविता में प्रकृति वर्णन से छायावादी कविता का यह स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन सर्वथा भिन्न है। पाश्चात्य प्रभाव से पहले की कविता में प्रकृति का प्रायः उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है। मनुष्य के दुःख में प्रकृति दुःखी चित्रित की गयी है और उसके सुख में आह्लास दायक। अधिक से अधिक प्रकृति का यथातथ्य वर्णन किया गया है। परन्तु प्रकृति की मनुष्य के दुःख सुख से अलग स्वयं स्वतंत्र सत्ता है, वह सजीव है और मनुष्य की तरह स्वयं भी अनुभव कर सकती है, यह विचार अंग्रेजी रोमांटिक कवियों की देन है। वडसवय न एक स्थल पर लिखा है And it is my faith that every flower enjoys the air it breathes

पतजी भी लहरो का शीत म लहरो को अपने ही सुख में लीन देखते हैं

अपने ही सुख में फिर चंचल
हम खिल बिना पडती हैं प्रतिपल

इसी प्रकार निरानाजी बाल्य राग में छोटे छोटे पीधों में चेतना का आरोप करते हैं। वे हसते हैं और बाल का बरमने के लिये बुलाते हैं। वडसवय की तरह हम यहाँ प्रकृति के बीच मानव-व्यापारों की दया पाते हैं। +

X आधुनिक कवि २ पत पृष्ठ ३।

मेवलाकार पवत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड
पवलीक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार
जिसके चरणों में पडा ताल
दपण-सा पला है विशाल।

+ निराला 'बादल राग'
हसते हैं छोटे पीधे लघु भार
शस्य अपार

पतञ्जी की 'बादल' 'एक तारा' और 'नौका विहार' कवितायें स्वतंत्र प्रकृति वणन के सुन्दर उदाहरण हैं। डॉ० नगेन्द्र ने पत के 'बादल' की शैली के 'बलाउड' (Cloud) से तुलना करते हुए कहा है कि 'बादल' की अघिक्रम कल्पनाएँ शैली के 'बलाउड' से प्रभावित हैं। वे 'बलाउड' की कल्पनाओं से मिलती हैं। 'बादल' की रचना में पत शैली से प्रभावित हुए हैं। इन दोनों कविताओं में यह भिन्नता है कि जहाँ शैली ने बादल के मयकर रूप का भी चित्रण किया है वहाँ पत उसके कोमल व रमणीय रूप की ओर आकर्षित हुए हैं। पत के 'बादल' 'धूम धुआँ' और 'विकारों' होकर भी 'मदनराज के वीर बहादुर' ही हैं। शैली के बादल की तरह वे विद्रोह का घोष नहीं करते। यदि कभी अचानक मूतों का विकट महाकार प्रकट करने उनकी हृत्सी कठकती है और ससार पराने लगता है तो दूसरे ही क्षण वे कवि की कल्पना में अत्यन्त स्निग्ध रूप धारण कर लेते हैं। वे परियों के बच्चों की तरह सीपी से सुन्दर पक्षों को पलाकर चन्द्र किरण रूपी इन्दु बरों को पकड़ धवन ज्योत्सना के समुद्र में तरने लगते हैं। कवि ने शांत वातावरण का ही चित्रण किया है। +

'एक तारा' में भी कवि ने सध्या के शांत वातावरण का चित्रण किया है। नीरव सध्या में सारा ग्राम-प्रांत मौन हुआ हुआ है। पत्तों के शिथिल होठों पर वन का सारा ममर बीणा के तारों के मौन हो जानेवाले संगीत की तरह सो गया है। पक्षियों का कलरव शांत हो गया और गोघृत्ति भी नहीं दिखायी देती। भँगुरों का स्वर तीर की तरह वातावरण की शांति को चीर देता है। सध्या की स्वर्णभा नष्ट हो गयी है जैसे होठों की लालिमा तीखी ठंड से ढर कर नीली पड़ जाय। पेड़ का शिखर से सूय-किरण का विहग न जान किस ओर किस गुहा-नीड में

हिल हिल
तिल तिल
हाथ हिलाते
मुझे बुलाते

+ सुमित्रानन्दन पंत "आधुनिक कवि र र्णो साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृष्ठ
संख्या २४

फिर परियों के बच्चा स हम
मुमग साप स पक्ष पक्षार
समु" परत शुचि ज्योत्सना म
पकड़ इन्दु क कर मुकुमार

उड़ गया है और तटवन पर स्वप्नों से भरा नीला कोमल मधेरा छा गया है ।
उस मधकार में एक नक्षत्र ज्योतिर हो रहा है ।

‘एक तारा’ में प्रकृति के स्थिर सौंदर्य का वखन है परन्तु ‘नीका विहार’ में प्रकृति के चल सौन्दर्य का भी चित्रण हुआ है । कवि धवल ज्योत्सना में स्नात गया तट के शान्त वातावरण को चित्रित करता है । पालों के पल खोल कर हसिनी की तरह नाव चल पड़ती है । नाव चलने पर पानी में पड़नेवाली नम की परछाही हिल उठती है जैसे नम के धोर धोर हिल पड़े हो । कवि ने नाव के बीच धार में जाने और तट पर लगने का सूक्ष्म चित्रण किया है ।

प्रकृति का मानव मन पर प्रभाव

पतंजी ‘एक तारा’ और ‘नीका विहार’ कविताएँ सुन्दर दृश्य चित्र उपस्थित करती हैं परन्तु उनकी एक अथ विशेषता है प्रकृति का मानव मन पर प्रभाव डालना । फ्रांसिसी दार्शनिक रूसो (Jean Jacques Rousseau) ने प्रकृति के सम्पर्क में रहनेवाले मनुष्यों पर प्रकृति के सुखद प्रभाव का सिद्धांत प्रतिपादित किया था । अंग्रेजी रोमांटिक कवि बडसवथ रूसो की विचारधारा से प्रभावित हुए थे । वे प्रकृति को पवित्र भावों को जगाने वाली सत्ता मानते हैं

Well pleased to recognize in Nature,
And the language of the sense
The anchor of my present thoughts
The guide the guardian of my heart,
And the soul of my moral being

पतंजी ‘एक तारा’ और ‘नीका विहार’ कविताओं में प्रकृति के मानव मन पर पड़नेवाले प्रभाव को व्यक्त करते हैं । कवि ‘एक तारा’ के रूप में नील नम को रजत सीप सश आकाशा का तीप लिये देखता है । मानी नम अपनी आत्मा के स्वरूप को ढूँढ रहा है । कवि मानव व जीवन के सम्बन्ध में विचार करने लगता है ।

क्या उसकी आत्मा का चिर घन
स्थिर, अपलक नयनों का चितन
क्या खोज रहा वह अपनापन !
दुलभ रे दुलभ प्रसन्नान्न लगता यह निखिल विश्व निजन
वह निष्फल इच्छा से निघन
आकाशा का उद्भ्वसित वेग
मानता नहीं बधन विवेक
चिर आकाशा से ही धर धर उद्भ्वलित रे महरह सागर

नापती सहृद पर हृदर सहृद ! †

“नौका विहार” में प्रकृति के साहचर्य से कवि का मन मग्न हो गया जिससे प्रकृतिक विचारों से उल्लासित हो उठा है तथा प्रकृति के शाश्वत रूप का स्पर्श कर उस मृष्टि जीवन की शाश्वतता का भाव हुआ है जिसकी प्रमां में वह अज्ञान अज्ञान से दूर भूत जाता है । ✕

निराला की नगिस’ कविता में ‘नगिस’ की सुगंध पाकर कवि का चिन्तनशील मन पृथ्वी पर ही स्वयं अनुभव करता लगता है । ॐ तभी वसन्त ऋतु’ गीत में उन्होंने वसन्त के आगमन पर बस में सँ जाते-वासे हुए का गहन रिया है । ॐ

† सुमित्रानन्दन पंत ‘गुग्जन’ भारतीय मंडार, सीटर प्रेम इलाहाबाद
संवत् २००६ पृष्ठ ८५

✕ सुमित्रानन्दन पंत वही पृष्ठ १०५

ज्या ज्यों लगती है नाव पार
जल में झालोकित शत विचार
इस धारा सा ही जग का प्रेम, शाश्वत हम जग का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत सगम
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हाम
शाश्वत लघु सहरोँ का विकास
हे जगजीवन के कणधार ! चिर ज म मरण के धार पार
शाश्वत जीवन नौका विहार
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमृतत्व-दान !

ॐ निराला ‘अनामिका भारतीय मंडार, इलाहाबाद स० १९९५
पृष्ठ १८८

‘स्वयं शुक भवे यदि धरा पर तो सुंदर
या कि यदि धरा उड़े स्वयं पर तो सुधर ?”
बही हवा नगिस की छा गई सुगंध
धम्य स्वयं यही, कह किये मैंने हग वग्द

ॐ सूयकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ गीतिका भारतीय मंडार
इलाहाबाद, तृतीय संस्करण संवत् २००५ पृष्ठ ५

वङ्मवध 'डेफोडिल्स' (Daffodils) कविता में जिम प्रकार वन-श्री को नहीं भूलते और वह उनके उदास मन या प्रवकाश क्षणों में स्मृति में सजग हो उठती है, निराला को भी वन-श्री नहीं भूलती । +

महादेवी जी की कविता में प्रकृति परोक्ष प्रियतम की प्रणय स्मृतियों से रगी हुई है । प्रातः सौम्य का स्वतंत्र वर्णन करते हुए वे लिखती हैं कि प्रातः कालीन किरण प्रकाश काण की तरह पृथ्वी के शरीर में चुभ जाती है । सौरभ व पेशों को फैला कर समीर परियाँ विहार करती हैं । तिलियों के नव कुमार भूम भूम कर भीगी केसर का मद पीने हैं । नीले मधुर स्वप्नों के पलों को फैला कर क्षितिज के पार उड़ जाती है तथा आँसु के कज कोषों में विस्मृति का कुमार छटा जाता है । हृदय का चतुर चितेरा स्मृति के प्रातः को आसू और हास से रग कर अकित कर देता है । X प्रसाद जी की 'कामायनी' में प्रकृति-वर्णन का अत्यधिक समृद्ध रूप मिलता है । प्रकृति मानवीय श्रियाओं की पृष्ठभूमि स्वरूप चित्रित की गयी है तो वही प्रकृति ही मानवीय भावनाओं की प्रतीक बन गयी है । मनु के मन में आशा का संचार होने से पहले प्रकृति अपने कल्याणकारी रूप में चित्रित की गयी है । * काम' मग में वसत का वर्णन यौवन के प्रतीक रूप में किया गया है । जीवन-वन में रजनी के पिछले पहरो में मधुमय वसत का आगमन किशोरावस्था के पश्चात् यौवन व आगमन का सूचक है । प्रसाद जी ने प्रकृति का मानव भावों से अनुरजित और वही पर यथाय किंतु अलंकारिक वर्णन किया है । आशा सग और रहस्य सग में हिमालय के वर्णन में यह भेद स्पष्ट है । प्रथम वर्णन में प्रकृति के स्रिलिप्त चित्र का उपस्थित करते हुए कवि ने स्वर्ग के प्रतीक आकाश और पृथ्वी की तुलना की है तथा पृथ्वी अभावमय

+ निराला वही पृष्ठ १०१
रही आज मन में
वह शोभा जो देवी थी वन में

X महादेवी वर्मा आधुनिक कवि १ हिंदी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग चतुर्थ संस्करण सवत २००६ पृष्ठ २४

* जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' मारता मठार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
अष्टम संस्करण सवत २०१० पृष्ठ २३
ठपा सुनहले तीर बरसनी, जय लक्ष्मी सी उन्तित हुई
उधर पराजित काल रात्रि भी, जल में अतनिहित हुई

मानव को हिमालय के रूप में सतार के मान इ धीरे धमक को बतलाती है । +
पर द्वितीय में हिमालय के सौंदर्य का अलंकारिक वर्णन किया गया है । X वह स्वयं
के काव्य की तरह 'कामायनी' में प्रकृति मानव को सतार देती है । थड़ा विगत
स्मृतियों में भूले मनु को कर्म क्षेत्र में प्रवृत्त होने के लिये प्रेरणा देती है ।*

प्रकृति से शिक्षा ग्रहण

अब्रोजी रोमांटिक काव्य में प्रकृति चित्रण की एक विशेषता प्रकृति से शिक्षा
ग्रहण करना भी है । वह स्वयं की दृष्टि में श्रेय और अधःश्रेय का जो ज्ञान प्रकृति के
साहचर्य से प्राप्त होता है वह मानव समाज के बड़े बड़े नाना धीरे पठित भी नहीं
दे सकते

One impulse from the vernal wood,
Can teach you more of man
Of moral evil and of Good,
Than all the sages can

+ वह अनन्त नीलिमा व्योम की
जड़ता-सी जो शांत रही
दूर दूर ऊँचे से ऊँचे
निज अमास में धरात रही
उसे निसाती जगती का सुल
हनी, धीरे उन्नास अज्ञान
माना दुःख तरंग विरव की
हिमगिरि की वह मुझ उठान (वही पृ ३०)

X नीचे जनपद दोर रहे से
सुन्दर सुरधनु माता पहले
सुजर कर्मम सदा इन्नाते
अमकान अमला क पहले
प्रवृत्तान अ निम्न देश में
शोउन का न्य निर्भर ऐसे
महाभवेन गजराज गज से
दिवरा मनु-वागवें जैत (वही पृ २५८)

• अजयपुर प्रगाथ वही पृष्ठ ५३
प्रकृति के जीवन का अनुसार
कर्म का भी न बाधा पूरा
मिनेय व आकर धनि शीघ्र
धार् उग्युह है उरदा पूरा
दुःखनता का यह निर्मात्र
कर्म करती न प्रकृति वन गह
निम्न अमला का आनन्द
दिन है परिवर्तन में देर

प्राधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति से शिखा ग्रहण करने की प्रवृत्ति सचचा परिचय की ओर नहीं है। तुलसी की कविता में भी प्रकृति का उपदेशात्मक रूप पाया जाना है। अष्टौजी रोमांटिक काव्य के प्रभाव स्वरूप प्रकृति-चित्रण के इस रूप में और भी सौंदर्य प्रकट हुआ। तुलसी की तरह छायावादी कवि उपदेश के लिए प्रकृति से केवल उदाहरण नहीं ढूँढते बल्कि प्रकृति में तादात्म्य अनुभव करते हैं। इस प्रकार, पत कहते हैं

वन की मूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुस्काना
मैं सीख न पाया अब तक
दुःख से सुख को अपनाता। +

पत के प्रकाश में जो सत्य प्रकट नहीं होता उसे महादेवी प्रकृति की वस्तुमा में पाती है। × दुःख स्वार्थ 'लाक' में शेली स्वार्थ 'लाक' से अपने को गीतों की मधुरता प्राप्त करने के लिए प्रायना करता है

Teach us sprite or bird
What sweet thoughts are thine,
I have never heard
Praise of love or wine
That panted forth a flood of rapture so divine
Teach me half the gladness,
That thine brain must know
Such harmonious madness,
From my lips would flow
The world should listen then as I am
listening now ? *

+ सुमित्रानन्दन पत 'यु-जन' भारती मठार लीडर प्रेस,
इलाहाबाद सन्त २००६ पृष्ठ २२

× महादेवी वर्मा

यह बताया भर सुमन ने
यह बताया मूक तृण ने
यह कहा बेसुष पिकी ने
चिर पिपासित चातकी ने
सत्य जो दिव कह न पाया था अमित संदेश में

* P B Shelley : To a skylark An Anthology
of famous English and American poetry The Mod
Lib, New York, 1945 Pp 253

भोतिवशात् की देन है जिगकी उन्नति विज्ञान व विध्यसकारी प्रमाथ के कारण छायावादिमा का भावपित नहीं कर सकी । तथापि छायावादी कविता म प्रकृति व उग्र रूप का कुछ सरो म चित्रण हुआ है । हम दत्त चुके हैं, आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रकृति व उग्र रूप के चित्रण का आरम्भ श्रीधर पाठक द्वारा किया गया जो कि इस रूप म प्रकृति-वर्णन करने के लिए टामसन व प्रकृति चित्रण से प्रभावित हुए थे । छायावादी कविता म प्रकृति व उग्र रूप का अधिक उर्जापूर्ण चित्रण हुआ । 'वामादनी' म देव सृष्टि व प्रलय व वर्णन म तथा मनु की हठा पर अधिकार करने की कामना को व्यक्त करने म प्रकृति का रौद्र रूप चित्रित किया गया है । † पत ने भी 'परिवर्तन' कविता म प्रकृति क भयकर रूप को चित्रित किया है । परंतु यह कविता चित्रण प्रधान होने के कारण स्वभावतया इसमें प्रकृति व कोमल व भयकर दोनों रूपों का समावेश हो गया है । नरेन्द्र ने 'ज्येष्ठ का मध्याह्न कविता म मध्याह्न को सप व रूप म देता जो धरती की छाती पर कुण्डली मारे बठा है तथा सूर के रूप मे वह विषमरी भयावह प्रखार करता है जो महाशूय म महानाश व पहाड़ के सट्टन ठहर जाती है ।

प्रकृति के माध्यम से ऐतिहासिक अनुपगो की उद्भावना

इतिहास के ज्ञान ने छायावादी कविता म प्रकृति चित्रण की एक नवीन प्रवृत्ति को जन्म दिया । इसमें पूव भारत दु की कविता में भी ऐतिहासिक नामों का उल्लेख कर भाग्य के प्राचीन गौरव का स्मरण करने की प्रवृत्ति मिलती है । आनु छायावादी कविता मे प्रकृति की वस्तुएं ऐतिहासिक अनुपगो को जगाती हैं तथा कवि सुदूर भतीत मे अपनी मूला हुआ गान पाता है । X इस प्रकार, निराला

† जयशंकर प्रसाद 'वामादनी', भारती मंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद स० २०१० पृष्ठ १४ तथा पृष्ठ १८५ ।

• नरेन्द्र 'पलाश वन' भारती मंडार, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण सन् १९४६ पृष्ठ ७१ ।

X मूकगत त्रिपाठी 'निराला' परिमल, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, पृष्ठ ७९

कठिन श्रमला बजा बजा कर

गाता हू भतीत के गान

मुझ मूल पर उस भतीत का

क्या ऐसा ही होगा ध्यान ?

शिशु पाते हैं माताओं के वक्षस्थल पर मूला गान

माताएं भी पाली शिशु व भवरा पर अपनी सुस्वान

‘यमुना के प्रति’ म यमुना की लहरों में प्रतीत का गान सुनने हैं ।* दिनकर के ‘रेणुका’ काय सग्रह की प्रायः सभी कविताओं में प्रकृति की वस्तुएँ इतिहास की स्मृतियों को जगाती हैं । हिमालय कविता में कवि देश की वर्तमान दशा की ओर निहारने के लिए उपसे प्राथना करता है और इस पर दुःख प्रकट करता है कि देश का भतीत गौरव शेष हो गया है । ऐतिहासिक अनुपमों को जगाने की प्रवृत्ति के सब्र में स्वामाविक रूप से अग्रजी लेवक वाल्टर स्कॉट की ओर ध्यान चला जाता है जिसके उपमाओं में प्रकृति की वस्तुएँ प्राचीन युग की कथाओं को कहती हुई चित्रित की गयी हैं ।

प्रकृति का मानवीकरण

छायावागी कविता में प्रकृति चित्रण के रूपा में प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है । अग्रजी रोमांटिक कवियों में कोट्स शेली स्विननरन प्रभृति कवियों ने प्रकृति की वस्तुओं को संबोधित करके जो गीत (Odes) लिखे हैं उनमें प्रकृति का मानवीकरण किया गया था । प्रकृति के मानवीकरण की यह प्रवृत्ति छायावागी कविता में भी पायी जाती है । प्रसादजी की ‘निभर’, किरण तथा पत की ‘बाल’ ‘श्यामा’ आदि सबाध गीतियों से हम पीछे उदाहरण दे चुके हैं जिनमें प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति मिलती है । संबोध गीतियों के अतिरिक्त अथ काय रूपों में भी प्रकृति के मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण मिलता है ।

कामायनी के ‘प्राणा’ सग म रजनी एक प्रेमिका के रूप में समीर के मिस हाँकनी सी अपने प्रेमी से मिलने के लिए जाती है । प्रेम में उमत्त वह खिनखिला उठती है तथा उसके प्रेमी पान से तुहिन वण व फेनिल लहरों में उत्पात मच जाता है । चादनी के घूँघट को उठा मन में प्रणय स्मृतिवा जगाये वह पय भ्रात सी बढी जा रही है । उस समय उसे सुधि नहीं रहती और उसके पचल से तारों की मणिराजिशा विखर पडनी हैं । उसके कहीं फटे हुए नीले वसनों से अगो का यौवन भाँक उठता है तथा अकिंचन सत्तार उसके शीर्ष्य को निहार कर निहाल हो जाता है । अनन्त ऐश्वर्य की स्वामिनी होते हुए भी अपने प्रेमी के विधोग में वह विकल हो उठी है । वह हृदय के उन घावा को टटोल

* सूयकाम्त त्रिपाठी ‘निराला’ वही, पृष्ठ १६ ।

यमुने तेरी इन लहरों में
किन भयरो की भाकुल तान
पथिक प्रिया सी जगा रही है
उस भतीत के नीरव गान

रही है जो प्रणय स्मृति के रूप में हृन्मय स्पन्दन म करते हैं। X प्रगादनी 'सहर' में प्रकृति के दृश्य चित्रों का मानवीकरण के रूप में चित्रण करते हैं। ये बीती विमावरी जागरी' गीत में सौन्दर्य की प्रतिभा को जगाने के लिये ऊषा धार सता को नारी रूप में प्रकृत करते हैं जो पनघट से जल भरने की नारी मुलम त्रिया म लीन है।

पत भी प्रकृति को नारी रूप में देखते हैं। हम पीछे उम्नेस कर घुरे हैं कि अपनी प्रारम्भिक कविताओं में पत प्रकृति के लिये मा' शब्द का संबोधन प्रयोग में लाते हैं तथा स्वयं उसकी गोद में बालिका बन कर रोसने में प्रान्त अनुभव करते हैं। गुजन म चांदनी' का उहोने नारी रूप में वर्णन किया है। + चांदनी कभी शशि मुख को करतल पर घरे एकाकिनी बठी है कभी वह सरिता के पुलिन पर सो जाती है। स्तंभ समीरण उसकी साँसें तथा सधू सहरों की गति हृदय का स्पन्दन बन जाती है। अपने ही सौन्दर्य की छाया में छिप कर वह कभी तिसर पर सठी हो जाती है तथा सागर की सहर लहर पर उसकी सुन्दर छवि फिरकने लगती है। वह कभी दुलहन सी प्रतीत होती है मानो दिन की प्रभा दुसहन बन आयी है और आकाश सेज पर सोत हुए लाज से मर मर जाती है। पत ने सध्या' का भी अपनी के रूप में मनोरम चित्रण किया है। सध्याकानीन स्वर्णामा के रूप में उसका स्वर्ण-चललहराता है। सुनहले केशों का फलाये वह मपर गति से ध्योम से घरा की घोर बढती है। खग कुल का रव ही उसकी नूपुर ध्वनि है तथा सीपी से बादलों के पक्षों को पसार कर पथी पर भवतीए होता है।

निराला की जूह की कली प्रकृति के मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण है। 'जूही की कली' में कवि नायिका का भाव आरोपित करता है जिसका हृदय अपने प्रेमी पवन की स्मृतियों में लीन है। सहसा दक्षिण दिशा से नायक पवन प्रेमाघ बना आता है तथा पल्लव पय क पर सोई हुई नायिका कली के कपोलों को चूम कर उसे भकभोरता है एव रस सूटता है। शेफालिका' में भी निराला ने इसी प्रकार प्रकृति के वासनामय सौन्दर्य का चित्रण किया है। सध्या-मुन्नी म परी के सहस्र आकाश से उतरती हुई सध्या को कवि नारी रूप

X जयशंकर प्रसाद "कामायनी" भारती मडार लीडर प्रेस इलाहाबाद
अष्टम संस्करण सवत् २०१० पृष्ठ ३६

* सुमित्रानन्दन पत 'गुजन' भारती मडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद सवत् २००६
पृष्ठ ८७

नीले नम के शतदल पर, वह बठी शारद हासिनी

मृदु करतल पर शशि मुख घर नीरव भनिमिप, एकाकिनी

म देखता है । उसके काले बालों की बेणी में लगा हुआ तारा हसठा प्रनीत होता है तथा वह नीरवता सखी के कंधे पर बाहें डाले गम्भीर बनी अम्बर-पथ से छाया-सी भवतीए होनी है । +

महादेवी ने भी 'वसत रजनी' का सुन्दरी के रूप में वर्णन किया है । वे रजनी को तारका की नवीन बेणी बांधे चन्द्रमा का शीपफूल पहिने घोर चन्द्रिका का घू घट डाले क्षितिज से उतरने को प्रामात्रित करती हैं । उसकी चितवन से तारों के रूप में सुन्दर मोती बिखर पड़ते हैं तथा घरा पुलकित हो उठती है । *

+ सूयकांत त्रिपाठी निराला' पुल 'परिमल', गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ पृष्ठ १३५

दिवसावसान का समय

मधमय भासमान से उतर रही है

वह सध्या सुन्दरी परी-सी

धीरे, धीरे धीरे

तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं प्रामास

मधुर मधुर है दोनों उसके अघर

किंतु गम्भीर-नहीं है जनमे हास विलास

हसता है तो केवल तारा एक

गुंथा हुआ उन घु घराले काले काले बालों से

हृदय राज्य की राती का वह करता है अमियेक

असलता की सी लता

किन्तु, कीमलता की वह कली

सखी नीरवता के कंधे पर बाहें डाल

छाह-सी अम्बर पथ सी चली ।

* महादेवी वर्मा 'प्राधुनिक कवि' १, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुर्थ संस्करण सन् २००६ पृष्ठ ४८

धीरे धीरे उतर क्षितिज से

मा वसत रजनी

तारकमय नव बेणी बांधन

शीशफूल कर शशि का नूतन

रश्मि बलय सित घन अघुण्डन

मुक्ताफल अमिराम विद्यादे

चितवन से अपनी !

'रूपसि तेरा घन केश पाश गीत मे महादेवी प्रकृति को अक्षरा के रूप मे देखती है । लय गीत मंदिर गति ताल अमर गीत मे प्रकृति के विराट् रूप को अक्षरा के रूप मे समीकृत किया गया है । प्रकृति सुंदरी भालोक और अघकार के श्वेत व श्याम वस्त्र पहिने हुए है । समुद्र के गजन मे उसकी मजीर बज उठनी है, भ्रमा के वेग मे झलकों के जाल बिखरे पड़ते हैं, बाजलो की ध्वनि मे किकिणी नाद सुनाई पड़ता है । सूर्य और चंद्र हिलते हुए कुण्डल हैं तारो की माग जड़ी हैं, चपला के रूप मे उसका विभ्रम प्रकट होता है, इन्द्र धनुष के रूप मे मुस्कान तथा हिमकण अम बिंदुषा को प्रकट करते हैं । इस प्रकार वह सुंदर नृत्य मे लीन है । 'पलाश वन' मे नरेन्द्र घापाड़ के आगमन का वणन जामुनी रग की पाग बाधे हुए आनवाले पुष्प के रूप मे करते हैं । X

प्रकृति के साहचर्य मे सरल जीवन

उपरोक्त रूपो मे प्रकृति चित्रण के साथ छायावादी कविता मे प्रकृति के साहचर्य मे रहनेवाले लोगो के सरल जीवन का सौ इय भी व्यक्त किया गया है । बहूसवय ने अपनी अनेक कविताओ मे प्रकृति के वातावरण मे रहनेवाले लोगो के जीवन मे प्रकृति के प्रेम तथा उनके सुख दुःखो का गान किया है । इस प्रकार की बहसवय की एक कविता 'द सोलिटरी रीपर (The Solitary Reaper) है जिममे कवि एकाकी 'कृषक बाला को घास काटने और मधुर गीत गाते हुए देखता है । उस गीत की माया कवि नही समझ पाता पर तु वह कल्पना करता है कि वह कदाचित् किन्ही पुरानी अवसाद पूर्ण घटनाओ की कथा गा रही है । पतञ्जी की

● रूपसि तेरा घन केश पाश
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
सहराता मुरमित केश पाश
सौरभ भीना भीना गीला
लिनटा मृदु अजन सा दुकूल
चल अ चल स भर भर भरते
पप मे जुगनू स स्वण फून
दोपक सा दता बार बार
तरा उज्ज्वल चित्रन विनास (वही पृष्ठ ५५)

X नरेन्द्र पलाश वन भारतीय मन्दार, इलाहाबाद द्वितीय संस्करण
सन् १९४६ पृष्ठ ६२

पकी जामुनी रग की पाग
बाधता माया सो घापाड़

'कृपक बाला' कविता वड्सवथ की '५ सोलिटरी रीपर' से प्रभावित जान पडती है। वड्सवथ रीपर को देख कर कहते हैं।

Behold her single in the field
Yon solitary Highland lass
Reaping and singing by herself *

पत की कृपक-बाला' भी एकाकी सगीत मे लीन श्रम निरत है

उस 'सीधे जीवन का श्रम
हेम हास से शोभित है नव
पके धान की धाली में
कटनी के घुघुर रुन धुन
(बज बज कर गाते मृदु गुन)
केवल श्रोता के साथी हैं
इस ऊषा की लाली में

'रीपर' के सगीत को सुन कर वड्सवथ जिनासापूर्ण प्रश्न करते हैं

Will no one tell me what she sings
Perhaps the plaintive numbers flow
For old unhappy far off things
And battles long ago
Or is it some more humble lay
Familiar matter of today
Some natural sorrow loss or pain
that has been or may be again †

पत कृपक बाला के गान म सुदूर अतीत की स्मृतिया व युद्ध गाथा की परिकल्पना नहीं करते वरद् वतमान भारतीय जीवन की स्वामादिक छाया देखते हैं

सास ननद श्रम भूख श्रजय
शान्ति श्रलस श्रो श्रम श्रतिशय
तथा कास के नव गहनों से

* Wordsworth William An anthology of famous English and American poetry, The Mod Lib., New York 1945 P P 197

Agnes) म मौदन घोर उन्माद के साग ही यह सौन्दर्य की मूर्त ब धाराविध
 बंजना करता है

She knelt so pure a thing so free from mortal taint

नारी के प्रति यह पवित्रता की भावना छायावादी कवियों में भी पायी
 जाती है । निराला नारी के प्राण का स्नेह से निर्मित घोर अमृतमय गुद
 भास्वरूप देता है जो अमृत रूप से मृत्यु को भी मूर्त बना लेती है । X पत्र
 पृष्ठों पर नारी हृदय के भीतर स्वयं के दान करत है । प्राण की बाधिका
 के सौन्दर्य में ये शक्ति पावनता का अनुभव करते हैं

तुम्हारे पूरा मैं था प्राण

सग मैं पावन गया स्नान

तुम्हारी बाणी मैं बतलाणि

त्रिवेणी की सहरो का गान ।=

नारी के घाला सौन्दर्य के रूप में उगल घात सौन्दर्य का ही व्यक्तिकरण
 हुआ है । प्रसाद की 'वामावती' में श्रद्धा 'हृदय की अनुवृत्ति बाह्य उचार' है अथवा
 पत की ज्योत्सना का सौन्दर्य 'मन की प्रति कन पर कन छान' के रूप में
 व्यक्त हुआ है । छायावादी कविता की नारी हृदय सत्ता के तो घ में मण्डित होने
 के कारण रीतिवादी नारी की तरह वातना की छवना मात्र नहीं है ।

नारी सौन्दर्य वर्णन में प्रकृति से उपमानों का प्रयोग

रीतिक ल एष द्विषेनी-युग में नारी के बाह्य-सौन्दर्य का अलग निश्चय
 उपमानों की गणना से कर दिया जाता था । नन् से गिरत तक नारी के अर्गों के
 लिए निश्चित उपमान थे तथा नागी-सौन्दर्य वर्णन के लिए कवि की भौतिक
 उद्भावना का कोई अवसर नहीं था । छायावादी कविता में नारी-सौन्दर्य वर्णन

सूचकात्त त्रिपाठी 'निराला' गीतिका' भारतीय मण्डार, इलाहाबाद पृतीय
 संस्करण सवत् २००५ पृष्ठ ७१

तुम्हारे सुन्दरी कर सुन्दर

मिलाये हुए कर अमर

अनावत मुकृत स्नेह के प्राण

अमृत ही अमृत ज्ञान ही ज्ञान

मृत्यु को अपने ही कर स्नान

कर दिया तुमने प्रिया सुघर

= सुमित्रानन्दन पत प्राधुनिक कवि २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
 चतुर्थ संस्करण सवत् २००६ पृष्ठ ११

म प्रकृति से उपमान ग्रहण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। प्राग्ल रोमांटिक कवियों में नारी सौंदर्य का बणुन प्रकृति से उपमान लेकर करने की प्रवृत्ति व्यापक रूप में थी। संस्कृत में कालिदास ने भी प्रकृति में उपमाएं चुन कर नारी सौंदर्य का बणुन किया है। अतः छायावादी कविता में यह प्रवृत्ति सबथा नवीन नहीं है तथापि प्राग्ल रोमांटिक कविता के प्रभाव से छायावादी कविता में यह प्रवृत्ति और भी विवसित हुई।

प्रमाणी की 'कामायनी' में विनित श्रद्धा फूलों से भरी हुई लता अथवा चादनी से लिपटे हुए श्याम बादल के सदृश प्रतीत होती है। प्रीति सौंदर्य के अनुरूप उसकी लम्बी काया दर्शायी गई है। वह गांधार देश के नीले रामबाल चमकाने का आवरण पहने है जिसमें से उसके अश्रुधुले अंगों का सौन्दर्य छिपाई जाता है। कवि इसकी मधुर रूपी वन में गुलाबी रंग के बिजली के प्रस्फुटित पुष्प से उपमा देता है। + निश्चय ही सौंदर्य चित्रण के लिए यह उपमान रीतिकालीन कवियों की दृष्टि में कल्पनातीत प्रतीत होते हैं। कमी कमी प्रसादजी की उपमाओं मिल्टन की उपमाओं (Miltonic Similes) का स्मरण दिलाती हैं जिसमें वण्य विषय से कवि की कल्पना बहुत दूर चली जाती है। श्रद्धा के मुख पर आई हुई मुस्कान का प्रसादजी ने सूक्ष्म चित्रण किया है किसी फूलों के वन में मद हवा के चलने से सौरभ साकार रूप धारण करले-उसका शरीर मकरन्द के परमाणुओं से बना हो एव मधु के आधार पर स्थित हो सौरभ के उस साकार रूप पर मन की साध से युक्त चन्द्रिका टिटर रहो हो वसी उसकी मुस्कान प्रतीत हो रही थी मानो हसी की विवकल उमत्त प्रतिच्छाया अबाध क्रीडा में लीन स्वयं प्रेम। = स्पष्ट ही मुस्कान के चित्रण में उमका बाह्य रूप रंग ती गीण हो गया है-प्रधान हो उठी है कवि-कल्पना और कोमल भावना।

= जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' भारतीय मठार लीडर प्रेस

इलाहाबाद, अष्टम संस्करण सवत २०१० पृष्ठ ४०

नील परिधान बीच सुकुमार

खुल रहा मृदुल अश्रुधुला अंग

खिला हो ज्यो बिजली के फूल

मधुर-वन बीच गुलाबी रंग

+ वही पृष्ठ ४५

कुसुम कानन अचल में मद पवन प्रेरित सौरभ साकार

रचित परमाणु पराग शरीर, लडा हो ले मधु का आधार

और पडती हो उस पर शुभ्र नवल मधु राका मन की साध

हसी का मद विह्वल प्रतिबिम्ब मधुरिमा खेला सदृश अबाध

एक भिन्न मानसिक अवस्था में वट्सवय ने 'मेरी वनीन आव स्काटस'

अप्रेजी रोमांटिक कविता में वर्णन के माध्यम से नारी-गौरव चित्रण में प्रकृति के उपमानों और अन्तर्भावों को नारी के रूप में मूल रूप प्रदान किया है। नारी-गौरव चित्रण में अनेक ही कविताएँ प्रमाणित रूप से जानी जाती हैं। यह संभव है कि 'The Virgin' कविता में नारी-गौरव की प्रकृति का वर्णन से तुलना करती है।

Purer than foam on central ocean lost
Brighter than eastern
skies at daybreak strewn

With fancied roses, than the unblemished moon

Before her wane beings on heavens to blue coast

'मावी पत्नी के प्रति' कविता में पतनी नारी-गौरव के चित्रण के लिए

प्रकृति से उपमान चुने हैं

अदृश्य अक्षरों की पल्लव प्रातः

मातिया सा दितता हिम हाम

इन्द्रमनुषी-पत्र से ढक गत

बाल-विद्युत् का पावम सास

हृदय में गिल उठता सत्काल

अपतिल अक्षरों का मधुमास

तुम्हारी-छवि का वर अनुमान +

वहसवय की प्री ईयस शो ग्रू' (Three years she grew) कविता में

जिस प्रकार प्रकृति 'लूसी' के अक्षरों को सौन्दर्य प्रदान करती है उसी प्रकार पतनी की

'मावी पत्नी' का अक्षर स्वयं प्रकृति करती है। वहसवय लिखते हैं

The floating clouds their state shall lend,

To her , for her the willow bend,

(Marry queen of cotts) की मुस्कान का चित्रण किया है। प्रकृति के व्यापारों को उपमान रूप में चित्रित करने की प्रकृति समान रूप से पायी जाती है

And like a star (that from a heavy cloud of pine tree foliage poised in air forth darts when a soft summer gate at evening parts

The gloom that did its loveliness enshroud)

She smiled

The world's classics : Selected poems of Wordsworth Press university 1950 Pp 348

+ सुमित्रानन्दन पन्त गुजरात लीडर प्रेस, इलाहाबाद सन् २००६ पृ ४१

Nor shall she fail to see,
 Even in the motions of the storm
 Grace that shall mould the maiden's form
 By silent sympathy
 The stars of midnight shall be dear,
 To her and she shall lean her ear,
 In many a secret place
 Where rivulets dance their wayward round
 And beauty born of murmuring sound
 Shall pass into her face

इसी प्रकार पत की 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में प्रकृति नारी अर्गों को सौंदर्य प्रदान करती है। अर्गों की सुंदरता का वर्णन करते हुए पत लिखते हैं

प्रथम स्वर्ण किरणों ने प्रातः
 प्रथम खिलाए वे जलजात
 नील व्योम ने ढल अनात
 उन्हें नीलिमा ही अवदात

आकुल सहरो ने तत्काल
 उनमें चंचलता दी डाल
 नील नलिन सी हैं वे आव्य । =

इस प्रकार पत की कविता में प्रकृति नारी को सौंदर्य प्रदान करती है। किंतु इसके विपरीत कभी प्रकृति ही नारी अर्गों से सौंदर्य ग्रहण करती है। + पत कभी नारी सौंदर्य चित्रण के लिए अमूर्त भावों को ही नारी अर्गों में मूर्त

= वही पृष्ठ ४१

+ स्वर्ण कलियों की रश्मि मुकुमार
 चुरा चम्पक तुम से मधुमास
 तुम्हारी शुचि स्मिति से सामार
 भ्रमर को भ्रान्त द बयों पास

सालिमा भर पूजा में प्राण
 सीखती लाजवती मृदु साज
 मायवी करती ध्रुव सम्मान

देख तुम मे मधु के सब साज (वही, पृष्ठ ५७)

रूप दे देते हैं। 'उच्छ्वास की बालिका' के मीठे चित्रण में भ्रमूर्त्त भावों के मूल रूप, सूक्ष्म चित्रण तथा चित्रोपमता का सुन्दर सम्बन्ध हुआ है। 'सरलपन' का मन तथा 'निरालापन' को आभूषण कहने में भ्रमूर्त्त भाव की मूलता प्रकट होती है। 'अधरो के लचीले गान' को प्रस्फटित शब्दों के मन की शिथिलता को दूर करने कीचा गया तनाव एवं मुस्कान का छिपी मीठी सी चित्रित करने में सूक्ष्म भाव की व्यञ्जना हुई है। अंतिम पंक्तियों में मुस्कान का अपने सजीली सखी बाणी का हाथ पकड़े प्रकट होने में चित्रण विचित्र जाता है। X

एन्द्रिय सौन्दर्य का चित्रण

छायावादी का यम नारी के एन्द्रिय सौन्दर्य चित्रण में मिलते हैं। इन एन्द्रिय चित्रण में नारी के बाह्य-सौन्दर्य का स्थूल वर्णन मात्र नहीं बरन् इनमें सूक्ष्म भावों की भी अभिव्यञ्जना हुई है। अग्रणी रोमांटिक कवियों में सम्भवतः कीट्स के एन्द्रिय चित्रण का छायावादी काव्य के एन्द्रिय चित्रण पर प्रभाव पड़ा है। कीट्स की 'द इव आब सेंट एगनीज' कविता में एक लावण्यमयी युवती की कथा है जो सेंट एगनीज की रात्रि में एक किले में बन्नी बना दी गयी थी। जिस रात्रि का नव-प्रेमिकाएँ अपने प्रेमियों के मन के स्वप्न चित्र सजीली उस रात्रि को मेडलेना का प्रेमी श्री मेडलेना के कमरे में पहुँच जाता है जहाँ वह निद्रा में मगन थी। जब वह निद्रा से जगती है तो अपने प्रेमी का पाकर उल्लास से भर उठती है

Full on this casement shone the wintry moon
And threw warm glues on Madeline's fair breast

X सुमित्रानन्दन पन् 'आधुनिक कवि' २ हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग चतुर्थ सस्करण मगत २००६ पृष्ठ ६

सरलपन ही था उसका मन
निरालापन ही था आभूषण
कान से मिले अज्ञान नयन
सहज था सजा सजीला तन
सुरीत डोलें अधरो बीच
अधुरा उसके लचका गान
बचक बचपन को मन को बीच
उचित बन जाता था उपमान
छिपी-सी पी-सी मृदु मुस्कान
छिपा-मी बिबी सखी-मी साथ
उसा का उपमा ही बन गिरा का धार थी घर हाथ

As down she knelt for heaven's grace and boon
Roses bloom fell on her hands together prest

पत 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में अपनी प्रेयसी से प्रथम मिलन की कल्पना करत हुए लिखते हैं

अरे वह प्रथम मिलन अनात
विकम्पित मृदु उर पुलकित गान
सशक्ति ज्योत्सना सी चुपचाप
जडित-पद नमित पलक दगपात
जब पास आ न सकोगी प्राण
मधुरता में सी भरी अज्ञान
लाज की छुई मुई सी म्लान +

प्रकृति के आगम में युगल प्रेमियों का मिलन देख कर कवि अपनी प्रेयसी से मिलन कामना करने हुए उससे एक रूप हो जाना चाहता है। × इसी तरह निराला की कविता में भी नारी सौंदर्य के एड्रिय चित्र पाये जाते हैं। यथा

नयनों का नयनों से बधन
बापे घर घर युग तन •

प्रेम-देवता व अप्सरा के विस्मय रूप का चित्रण

आंग्ल रोमांटिक कविता की एक अन्य प्रवृत्ति देवता और परियों के आश्चर्य-लोक का चित्रण करना है। छायावादी कवि आंग्ल रोमांटिक काव्य की इस प्रवृत्ति से भी प्रभावित हुए हैं।

पत की 'अनग कविता कीटस की 'मोड टु साइके' (Ode to Psyche) कविता से प्रभावित प्रतीत होती है। 'मोड टु साइके' में पश्चिम के प्रेम देवता 'क्यूपिड' (Cupid) और 'अनग में भारतीय प्रेम देवता कामदेव का वर्णन है। कीटस सहसा पल युक्त साइके का दर्शन कर आश्चर्य चकित हो जाते हैं, कवि को लगता है उस वह स्वप्न देख रहा है

Surely I dreamt today or did I see thee
winged Psyche with awakened eyes ?

+ सुमित्रानन्दन पत गुजरात भारती मंडार, इलाहाबाद
संवत् २००६ पृष्ठ ४३

× वही पृष्ठ २१

• मूलकांत त्रिपाठी 'निराला' गीतिका, भारती मंडार,
इलाहाबाद तृतीय संस्करण संवत् २००५ पृष्ठ ६६

पत का 'धनग' भी स्वप्नवत सहसा व्यसन हो उठना है
स्मृति से विस्मय से क्षुभ सहसा
विश्व स्वप्न से तिल भ्रमान

दोनों कविताओं में प्रेम के प्रभाव से युग्म प्रभियों के प्रेमालिगन का चित्रण किया गया है। 'साइने' में पत्न युवन वसुविष्ट प्रेमी रूप में चित्रित किया गया है तथा उसकी प्रियसी स्वयं उसकी मानस रूप ह

They lay calm breathing in the bedded grass
Their arms embraced and their pignions too
Their lips touched not but had not bade adieu
As if disjoined by soft handed slumber and
Ready still past kisses to out number
At tender eye down of aurorean love
The winged boy I knew
But who wast thou
O happy happy dove ?
His psyche true

इसी प्रकार पत भी मृष्टि में प्रेम व्यापार के दशन करते हैं एवं यह प्रेम लोक अपनी ही छवि पर स्वयं विस्मय विमुग्ध है

अगणित बाहें बढ़ा उदधि ने
इन्दु करों से भालिगन
बदले विपुल चटुल लहरो ने
तारो से फेनिल चुम्बन
अपनी ही छवि से विस्मित हो
जगती के अपलक लोचन
सुमनो के पलकों पर सुख से
करने लगे सलिल लोचन

कीटस प्रेम के आगमन के लिये अपने हृदय के वातायन खुले रखते हैं
And there shall be for thee all soft delight
That shadowy thought can win
A bright torch and a casement ope at night
To let the warm love in

पत 'धनग' से विश्वकामिनी की छवि का दशन करान के निय प्रायना करते हैं

ए असीम सौम्य राशि मे
हृत्कम्पन से अतर्धान
विश्व कामिनी की पावन छवि
मुझे दिखाओ करुणावान !

कीटस की 'ग्रेड टू साइके' कविता से भाव साम्य मिलने पर भी अलग की मूर्ति-कल्पना भारतीय प्रेम-देवता कामदेव के अनुरूप चित्रित की गई है जिससे 'अलग' कविता भावानुवाद न प्रतीत होकर मौलिक सौंदर्य चित्रण का उदाहरण प्रस्तुत करती है ।

इलाचंद जोशी की 'विजनवती' कविता कीटस की 'ला बेल डेम सा मर्सी' (La belle dame sans merci) कविता से प्रभावित हुई है जिसमें कवि सी दयमयी नारी की खोज में भटकता है । 'ला बेल डेम मर्सी' के नायक नाइट की विकलता का कारण यह है कि उसने एक सौंदर्यमयी नारी के दशन किये थे वह अब उसे नहीं दिखलाई देती । नाइट अपनी प्रेयसी के प्रथम सौंदर्य दशन का वरण करता है

I met a lady in the medas,
Full beautiful—a fairy's child,
Her hair was long her foot was light
and her eyes were wild ×

'विजनवती' का कवि भी अपनी प्रेयसी के एकाकीपन सघन वाला व उत्सुक भावों का चित्रण करता है

बठी थी वह स्तब्ध विपिन में
एकाकी, चिंतित, अनजान
किस चिर परदेशी का मन में
करती हुई न जाने ध्यान !
उछल उछल पड़ता था उसके
अग अग से नव-यौवन
बिखरे पड़ते थे पीछे से
उसके कु चित केश-सघन
भूम भूम पड़ती थी भावों
पर उत्सुकता से थी पूरा

उसकी वह विह्वल उत्सुकता
करती थी मम हृदय-विचूण

‘ला बेल डेम मर्सी’ में नाइट की प्रिया उसे क्लिफिंग्रोत (Clifingrot) ले जाती है जहाँ वह प्रेमलाप में मग्न हो जाते हैं। ला बेल डेम मर्सी नाइट की सहला कर मुला देती है। स्वप्न में नाइट अनेक नृत्य राजकुमार और योद्धाओं को सुधित व विवश देखता है जो उससे कहते हैं कि ‘ला बेल डेम मर्सी’ ने उन पर जादू कर लिया है। स्वप्न से जग कर नाइट स्वयं की एककी पाता है और प्रिया की खोज में व्यथित भटकने लगता है

I saw their starved lips in the gloom
with horrid warning gaped wide
And I awoke and found me here
On the cold hill side
and this is why I sojourn here
Alone and palely loitering
Though the sedge is withered from the lake
And no birds sing (+)

इसी प्रकार, विजनवती से मिलने पर कवि उसे अपने घर साथ ले जाता है पर उसका मन न लगने पर वह उसके साथ सागर तट पर जाता है और फिर विजनवती के साथ उसके आरम्भिक ‘गिरि निकुञ्ज के निभृत नीड’ में पहुँच जाता है। वहाँ कवि को अपने घर के दीपक की याद भाने लगती है इससे विजनवती उदास सी हो जाती है और एक दिन सहसा अतर्धान हो जाती है। विजनवती के अतर्धान होने पर कवि नाइट की तरह व्यथित ही रहता है

वह अदृश्य हा गई अचानक छोड़ गई अपना भवसाव
भ्रान्त चकित-सा रहा ताकता मैं वन में होकर उन्माद
अपनी इच्छा की बलि देकर किया प्रकृतिमय अपना प्राण
मलसित अकमण्य हो बैठा उस पवत वन में प्रियाण
तब से प्रकृति खिलती है नित मेरे मन में नव नव रंग
करता हूँ मैं उन्हें प्रहृण जब मोन भाव से ही नि सण !

पत की अप्सरा कविता रवीन्द्रनाथ की ‘उवशी कविता से प्रभावित हुई है जो स्वयं स्विनबर्न (Swinburn) की ‘एटलेण्टा इन केलिडोन (Atlanta in

Calydon) से प्रभावित है। उवशी 'स्विनबर्न' की 'एटलेष्टा इन केलिडोन' में चित्रित योद्धीय कामना की देवी "एफ्रोडाइट" के सदृश सौन्दर्य व वेदना की देवी है। यदि एफ्रोडाइट का जन्म 'हृषी और घ्रांसू के बीज से होता है तो उवशी' दाहिने हाथ में अमृत पात्र व धाये में विष-भांड लिये सागर को मथित कर उदित होती है। X इसके विपरीत पत की अक्सरा वेदना रहित शुद्ध सौन्दर्य की मूर्त रूप है। स्विनबर्न की एफ्रोडाइट 'वसत के पुष्प सी मूलहीन उदित होती है उसी प्रकार रवीन्द्र की 'उवशी भी। + पत भी 'अक्सरा' का जन्म पथ के समान बत साते हैं जो जल में विकसित होता है :

खिली प्रथम सौन्दर्य पथ सी
तुम जग में नवजात ++

पत की अक्सरा' रवीन्द्रनाथ की 'उवशी' की तरह अपनी ही इच्छा में स्वाधीन है। (आपनाते आपनि विकशि) एव प्रत्येक युग में नवीन रूप धारण कर प्रवृत्त होती है। जिस प्रकार 'उवशी न माता है न कन्या, न वधू (नहो माता, नहो कन्या) नहो वधू, वरन् कवि की' मानस कल्पना है उसी प्रकार 'अक्सरा' भी 'नखिल कल्पनामयी' है। वह शशब मे शिशु के मुख में अमृत डाल कर उसे स्तन दान देती है और यौवन में प्रेयसी के अमिराम अगा से लिपटी दिखलाई देती है। 'एफ्रोडाइट की नृत्य मुद्रा का आभास सूय क चक्र के प्रकाश में उसके सौन्दर्य की प्रतिच्छाया तथा हवा में विकीर्ण सौन्दर्य की लपटा के वणन में मिलता है

But thee
Who shall discern and declare
In the uttermost ends of the seas

X भादिम वसत प्राते उडेछिनी मथिते सागरे
डान हाथ मुधापात्र विषभांड लिये काम करे—रवीन्द्रनाथ

+ What hast thou to do being born
Mother when winds were at ease
As a flower of the spring time of corn
A flower of the foam of the seas—Swinburn
मूलहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि
कव तुमि उठिले उवशी ? —रवीन्द्रनाथ

++ सुमित्रानन्दन पत "भुजन" भारती मठार, इलाहाबाद सन्त २००६
पृष्ठ ६८

The light of thine eyelids and hair
The light of the bosom as fire
Betw en the wheel of the sun
And the flying flames of the air

इसी प्रकार रवीन्द्रनाथ की 'उवशी' का समुद्र की लहरों के मध्य नृत्य चित्रित किया गया है। छंद में समुद्र की लहरें नाच उठती हैं तथा जमल क सिर पर पृथ्वी का अचल कांप उठता है स्तनहार से तारे छिटक पड़ते हैं। X पद की 'अप्सरा' समुद्र के बदले इन्द्र सभा में नृत्यलीन है

इन्द्रलोक में पुलक नृत्य तुम
करती लघुपद मार !
तखिल चकित चितवन से चचल
कर सुर-सभा अपार
नग्न देह में सतरंग सुर धनु
छायापट मुकुमार
खोस नील नभ की वेशी में
इंद्र कुंद धृति स्फार ! *

'एप्रोडेटा' के सौ दय का तेज असह्य है। रवीन्द्र की 'उवशी' के सौंदर्य का प्रभाव से मुनियों का ध्यान टूट जाता है

मुनिगण ध्यान भाङि देव पदे तपस्यार फल
तोमार कटकघाले त्रिभुवन यौवन चचल
अकस्मात् पुरुषेर बक्षीभजे चित्र आत्महारा
नाचे रत्तघारा

(मुनियों का ध्यान टूट जाता है और वे अपनी तपस्या का फल तुम्हारे बरणों में सौंपते हैं तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन चचल हो जाता है, सहसा पुरुष के हृदय में चित्त अपना को छो देता है उसके शरीर में रक्त की धारा नाच उठती है ।)

पद की अप्सरा भी सुर नर मुनिया की प्रभावित करती है
तुम सुर नर मुनि ईप्सित अप्सरि

X छंदे छंद नाचि उठे सिंधुमाझे तरगर दल
भस्यशीप शिहरिया काहि उठे भरार अचल

तव स्तनहार हत दिगन्तर खसि पड़े तारा—रवीन्द्रनाथ

* मुनिमानदन पद "गुजन, भारती मण्डार सीडर प्रेस इलाहाबाद
संवत् २००६ पृष्ठ ६४

त्रिभुवन भर मे लीन । +

वेदना की देवी के रूप में एफ्रोडेटा मनुष्यों के बीच संघर्ष, निराशा और
मसनाप की जननी है । स्विनबन उस की कृपा दृष्टि रखने के लिये प्रार्थना करते हैं

Wilt thou turn thee not yet nor have pity
But abide with despair and desire,

The dividing of friend against friend
The serving of brother and brother,
Wilt thou utterly bring to an end,
Have mercy mother

रवीन्द्र की 'उवशी' जगत् की अश्रुधारा से स्नात काठिमयी है तथा उसके
पद चिह्न त्रिलोक के हृदय के रक्त से अंकित हैं । * पत की 'अप्सरा' वेदना के
साम्राज्य को नहीं विखेरती वरन् अपने चंचल अचल तथा मुस्कराते ध्यान से
मावी स्वर्ण विहान का संदेश देती है

चंचल अचल में पहरा कर
मावी स्वर्ण विहान
स्मित ध्यान में नव प्रकाश से
दीपित नव दिनमान ! X

पत की 'अप्सरा' में रवीन्द्रनाथ की नारी का अतीन्द्रिय रूप ❖ व्यक्त
हूआ है

तुम अदृश्य अस्पृश्य अप्सरि !
निज सुख म तल्लीन ! + +

+ सुमित्रानन्दन पत 'गु जन' भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद
स० २००६ पृष्ठ ६६

* जगत्तर अश्रुधारेघोत तब तनुर तनिया
त्रिलोकर हृदि रक्ते आका तबो चरण शोणित—रवीन्द्रनाथ

X सुमित्रानन्दन पत 'गु जन भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद संवत्
२००६ पृष्ठ ६८

❖ You are one half woman and one half dream
Rabindranath in Gardiner L IX

+ सुमित्रानन्दन पत "गु जन", भारती भण्डार इलाहाबाद संवत् २००६
पृष्ठ ६०

फ्रांसिसी प्रतीकवाद का प्रभाव

छायावाद की भूमिका में योरूप का एक और साहित्यिक आन्दोलन का फ्रांसिसी प्रतीकवाद । फ्रांसिसी प्रतीकवाद का जन्मवाणी कविता पर प्रभाव बनायी कविता व माध्यम से प्रतिबन्धित हुआ । रवीन्द्रनाथ टगोर धारमिक कवि इन्द्र की योन्त की कविताओं में प्रभावित हुए थे तथा यीटस के व्यक्तित्व गम्भीर में भी प्राप्त थे । यीटस प्रसिद्ध फ्रांसिसी प्रतीकवादी कवि मत्सार्ने से प्रभावित हुए और उन्होंने फ्रांस कविता में फ्रांसिसी प्रतीकवाद में प्रति होकर कविताएँ लिखी थी ।

प्रतीकवाद व्याख्या

फ्रांस में पद्यवि "स्वतन्त्रता, समता व बंधुत्व" के नारे के साथ क्रांति का सूत्रपात हुआ था परन्तु नेपोलियन के उभय के साथ क्रांति का आन्त मुना किया गया तथा फ्रांस में सैनिक राज्य की स्थापना हो गयी । मन् १८७७ में पराक्रम के वातावरण व बीच फ्रांस में तीसरे गणतन्त्र राज्य की स्थापना हुई और वास्तविक प्रजातन्त्रात्मक शासन रूढ़ि का धारम्भ हुआ । किन्तु फ्रांस पर जर्मनी के आक्रमण एवं नेपोलियन तृतीय की बाबरता व कारण पहले से फनी हुई निराशा की भावना का प्रन नगी हुआ था । समाज स्पष्टतः दो विरोधी बलों में बंट गया । एक ओर अभिजात वर्ग धर्म व पुरोहितवाद (Clericalism) को धारण दे रहा था, दूसरी ओर साधारण जनता पुरोहितवाद का विरोध कर रही थी । साहित्य में यह विरोधी प्रवृत्तियाँ प्रकृतवादी व प्रतीकवादी के आन्दोलनों के रूप में प्रकट हुई । प्रकृतवाद धर्म का विरोधी था तथा उसने आगस्त काम्ट (August Comte), लित्रे (Littré) तैन (Taine) रने (Renon) आदि निरीश्वरवादी विचारकों से प्रेरणा ली । प्रकृतवाद के विरुद्ध फ्रांस में प्रतीकवादी आन्दोलन धारम्भ हुआ । जहाँ प्रकृतवादी फ्रांस के मौलिकवादी वाशनिकों से प्रेरित थे वहाँ प्रतीकवादी ने इससे विपरीत बाण्ट फिस्ते, हेगेल शोपेन्हाइर आदि जर्मन आदर्शवादियों से प्रेरणा ली । फ्रांस में प्रतीकवादी आन्दोलन के कुछ प्रमुख कवि बोंदलेयर (Baudelaire) १८२१ ६७वलेन (Verlaine) १८४४ ९६ मत्सार्ने (Mellerme) १८४२-१८९८ रेम्बू (Rimbaud) १८५४-९१ क्लौद रेनिसे वहेरेन (Verhaeren) गुस्ताफ कान (Gustave Kahn), क्लाउद (Claudel), प्रूस्त (Proust), वालेरी (Valery) १८७१ १९४५ आदि थे ।

प्रतीकवादी कवियों ने आन्ध्रीय कविता की बौद्धिकता और रोमांटिक कविता की भावना दोनों का तिरस्कार किया । उनके अनुसार क्लासिकल और रोमांटिक कविता में बुद्धि और कल्पना का अंश प्रधान रहना है । जिस भाषा का यह कवि प्रयोग करते हैं उसमें पाठको अथवा श्रोताओं का शब्दाध्य समझने में बाध स्पष्ट होते हैं और उसी से वे प्रभावित होते हैं । प्रतीकवादियों के अनुसार कविता का उद्देश्य विवेक (ज्ञान के अर्थ) द्वारा भावों को जागत करने के बदल भावना के

माध्यम से भावों को जागृत करना होता है। भावों को जगाने में शब्दों के अर्थ उतन समय नहीं हो सकते जितने संकेत (प्रतीक) या चिह्न। कविता का अर्थ जानने का प्रयत्न करना भी उचित नहीं है। कविता लिखते समय कवि के हृदय में जो अनुभूति जागृत होती है उसे सांगीतिक संकेतों द्वारा पाठकों को स्वयं अनुभव करना चाहिए।

प्रतीकवादियों के अनुसार कविता का सत्य शुद्ध भावों को जगाना है। यह भाव पर्याय-जगत् से निरपेक्ष तथा आध्यात्मिक है। इस भावों को जगाने के लिए मलार्ने न संगीत का आश्रय लिया। जिस प्रकार संगीत की विभिन्न लयों के सम्मेलन में कुछ लौटनेवाले सुर होते हैं जो कभी पहले और कभी बाद में अदा किये जाते हैं और मध्य में विभिन्न सुरों में कभी कोई सुर उठता या बन्द हो जाता है तथा उन सबके योग से संगीत अपना पूर्ण प्रभाव डालता है उसी प्रकार कवि के भावावेश में कुछ लौटनेवाले सुर निरमृत होते हैं एवं सम्पूर्ण कविता उन सुरों के आध्यात्मिक प्रभाव को ध्यस्त करती है व बीच में उठने व गिरनेवाले सुर आध्यात्मिक उठान और लौकिक जगत् के अवरोधों की अनुभूति जगाने हैं। यह संगीत तक पर आधारित न होकर आंतरिक लय का अनुवर्तन करता है। अभ्यासजय कौशल द्वारा यह उत्पन्न नहीं किया जा सकता। जुग व दाव की तरह अनायास ही इसकी उद्भावना होनी है। इस संगीतात्मक विशेषता के कारण प्रतीकवादी कविता में पदों का क्रम बदलने से उसका संगीतात्मक योग ही नष्ट हो जाता है तथा उसका काव्य रूप भी नष्ट हो जाता है। शब्दों की ध्वनि, गूँज व प्रतीकात्मक भावमयता का आधार पर मलार्ने ने विशिष्ट शब्दों में नवीन अर्थ भर दिये। वालरी भी कविता के अर्थ को संगीत पर 'योछावर कर देता है। उसके अनुसार शब्द की ध्वनि ही उसका अर्थ है। कविता में संगीत के महत्व व कारण उसकी अभिव्यञ्जना के रूपों में परिवर्तन आना स्वाभाविक था। बोद्लेयर ने 'पैती पोएम आ प्रोज' लिख कर छन्द व वचन को तोड़ा। गस्ताफ कान ने वॉलन, रम्बू व मलार्ने के पथ पर चल कर काव्य-परम्परा के सभी नियमों का तोड़ दिया। इस प्रकार, 'वेर लित्र' मुक्त छन्द का प्रयोग हान लगा। गस्ताफ कान कविता का नियम केवल आंतरिक संगीत मानता है जो कवि के भावावश पर आधारित है। मलार्ने सभी कलाओं की भाषा में सांगीतिकता की कल्पना करता है। उसके अनुसार भाषा ही नहीं बल्कि स्यापत्य, चित्र व नृत्य मुद्राओं में भी सांगीतिक लय होता है। जमन लेखक वाग्नेर ने गीति-नाट्य की रचना कर नृत्य व संगीत कला का सम्मिलन किया। वाग्नेर का शिष्य फ्रेँच लेखक विजेवा कला में संगीत, चित्र व भाव का सर्वालिप्त रूप आवश्यक मानता है। प्रतीकवादियों द्वारा सांगीतिकता को महत्व देने से कला प्रकार में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। किंतु, उनके प्रतीक केवल आध्यात्मिक अनुभूति को जागृत करने के

साधन थे। सभी प्रतीकवादी कवि उच्च साधनात्मक धरातल पर नहीं थे। अतः प्रतीकवादी कविता में अस्पष्टता व वास्तविक जीवन में घलगाव पाया गया जिसके विरुद्ध प्रतिप्रिया होना स्वाभाविक था। यह प्रतिप्रिया प्रथम महापुरुष के पश्चात् के साहित्यिक आन्दोलनों में प्रकट हुई।

सांगीतिकता एवं चित्रात्मकता

छायावादी कविता का युग गीतिकाव्य का युग है तथा छायावादी कविता में वे सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं जो गीतिकाव्य की विशेषताएँ हैं—कामल काष्ठ पदावली, सांगीतिकता, मानसिक स्थिति विशेष का व्यवतीकरण एवं प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति। छायावादो कविता पर फासिसो प्रतीकवाद का प्रभाव बगला काव्य के माध्यम से प्रतिफलित हुआ। विशेष कर निराला जिनके काव्य की प्रमुख विशेषता लय तथा जिहोने हिन्दी में बेर लिन्न-मुक्त छन्द का प्रवर्तन किया बंगाल में बहुत समय तक रहे और वे नवीन बंगला काव्य व पश्चात्य संगीत से प्रभावित हुए। प्रतीकवादियों की तरह शब्दों से नवीन अर्थ ध्वनित करने की प्रवृत्ति पत में भी पायी जाती है। छन्दों के बंधनों का विरोध करने पर भी निराला उसक लिए प्रवाह को आवश्यक मानते हैं जो उसके संगीत-तत्त्व की रक्षा करता है। पत कविता में सस्वर शब्दों के प्रयोग के पक्षपाती हैं। 'पल्लव और गुजन को कविताओं में उहोने संगीतात्मक सुरों का विशेष ध्यान रखा है। महादेवीजी के गीतों में लोकगीतों के संगीत का प्रभाव मिलता है। 'प्राण प्रिय पिक नाम रे कह !' और प्रिय सुधि भूले री में पय भूली' जैसे गीतों में लोक गीतों को मधुरता स्पष्ट है। X डा० रामकुमार वर्मा कविता में अर्थ की रक्षा आवश्यक

+ सूचनागत त्रिपाठी निराला' परमिल' (भूमिका) गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ।

भुवत छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता

है और उसका नियम साहित्य उसकी मुक्ति।

X महादेवी वर्मा 'यामा' पृष्ठ २०

शशब से ही मैं गीतों के सस्कार में पली हूँ। मा का भाव मरी गीतांजलिया घर में जन्म आदि शुभ भवसरी पर गाई जाने वाली गीत कथाएँ, परिवारको के ऋतु-पव आदि में सबध रखन वाले लोकगीत कलाविदों का ध्वनि संगीत, प्राचीन ज्ञान और सौन्दर्य द्रष्टाओं के वेद छन्द, माधुय मरे सस्कृत और प्राकृत पद और पिछले अनेक वर्षों में सुने सहज ग्रामगीत सभी के प्रति मेरा स्वाभाविक आकर्षण रहा है मेरे गीत आध्यात्म के भ्रमूत आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर पले हैं।

समझते हैं । =

छायावादी कवि चित्र भाषा के प्रयोग के भी पक्षपाती हैं । पत क मना करते हैं कि जिस सौंदर्य का उनकी आँखें दर्शन करती हैं उसे उनके हाथ शब्दों में चित्रित कर सकें । पत जी और महादेवी जी परोक्ष सत्ता के लिये भी चित्रकार का प्रतीक प्रयुक्त करते हैं । * प्रसाद, पत महादेवी आदि की कविता में चित्र भाषा के प्रयोग का बाहुल्य है । शब्द के लाक्षणिक प्रयोग के कारण भाषा में चित्रात्मकता का गुण सहज ही भा गया है ।

पत भावों को सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त करनेवाले और सस्वर शब्दों तथा चित्र भाषा के प्रयोग के पक्षपाती हैं । 'पल्लव की भूमिका में वे पवि पवन आदि शब्दों के सूक्ष्म भेद स्थापित करते हैं । वाप, चित्र और संगीत के सम्बन्ध को स्थापित करने हुए वे लिखते हैं 'कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता होती है । उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, सेव की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें जो झकार में चित्र चित्र में झकार हो, जिनका भाव संगीत विद्युत् धारा की तरह रोम रोम प्रवाहित कर सके, जिसका सौरभ सूघते ही साँसों द्वारा अन्दर पठ कर हृदयाकाश में समा जाय, जिनका रस मदिरा की फेन राशि की तरह अपने प्याले से बाहर छलक उसके चारों ओर

== रामकुमार वर्मा 'आधुनिक कवि' ३ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वितीय संस्करण सन् १९३६ पृष्ठ १५ ।

आधुनिक समय में कवि छन्द की कविता का वर्णन मानते हैं । मुक्तवृत्ति में अपनी भावनाओं को उड़ेल कर निरुद्धन्द रूप से कविता लिखे चले जाते हैं । यह स्वतंत्रता उन्हें भावों के प्रकाशन में स्वच्छन्दता भले ही प्रदान करे किन्तु, वह कविता के नादात्मक रूप की उसके नैसर्गिक सौंदर्य की उपेक्षा करती है । कविता की विशेषता तो इसी में है कि वह नियमों के अंतर्गत रहती हुई भी उनसे परे हो जाती है—यदि कविता नियम रहित हो जाय तो वह अपनी उच्छलता में सौंदर्य का ही विनाश करती है और बिना सौंदर्य के स्वतंत्रता के लक्ष्य विनाश में परिवर्तित होगी ।

* सुमित्रानन्दन पत "पल्लविना" (बालापन) पृष्ठ २५
महादेवी वर्मा 'आधुनिक कवि' १, हिन्दी साहित्य सम्मेलन चतुर्थ संस्करण सन् २००६ पृष्ठ ६४ ।

कमल दल पर किरण अद्भुत,
चित्र क्या हूँ मैं चितरे

भातियो की झलक की तरह झूलने लगे अपने छत्ते में न समा कर मधु की तरह टपकने लगे, अर्द्ध निशीथ की तारावली की तरह जिनकी दीपावली अपनी मौन जडता के अघकार को भेज कर अपने ही भावों की ज्योति में दमक उठे, जिनका प्रत्येक चरण प्रियगु की डाल की तरह अपने ही सौन्दर्य के स्पर्श से रोमांचित रहे, आपान की द्वीपमालिका की तरह जिनकी छोटी छोटी पत्तियाँ अपने अतस्तल में सुलगी ज्वालामुखी को न दबा सकने के कारण अन्त प्रवातोच्छ्वासों के भूकम्प में कापती रहे।” य० उद्धरण स्वयं ही गद्य में भी नवीन उपमाओं चित्र एवं लय के द्वारा संगीत की सीमाओं को छूने के लिये उन्मुख प्रतीत होता है। पतञ्जलि हिन्दी के संगीत को संस्कृत के संगीत से भिन्न मानने हैं ‘संस्कृत का संगीत जिस तरह हिल्लोलाकार मालोपमा से प्रवाहित होता है उस तरह हिन्दी का नहीं। वह लोल लहरों का चंचल कलरव वाला झंकारों का छेकानुप्रास है।’ “गुंजन” की भूमिका में भी उन्होंने अपने काव्य की सांगीतिकता की ओर इंगित किया है ‘मैंहूँदी में दूमरे वण पर स्वरपात मधुर लगता है प्रिय प्रियाह्लाद से ‘प्रिय प्रिय आह्लाद’ अच्छा लगता है। पल्लव की कविताओं में मुझे ‘सा’ के बाहुल्य ने लुभाया था, यथा—अध निद्रित सा वस्मृत सा न जाग्रत सा न चिमुद्धित सा’ इत्यादि। गुंजन में रे’ हो गया, यह उन्नति का क्रम संगीत प्रेमी पाठकों को खटकेंगा नहीं ऐसा मुझे विश्वास है। X निराला जी बत्तीस वर्ष तक बंगाल में रहे तथा बंगाल उत्तर भारत में सब प्रथम पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क में आया था और उसने सर्वाधिक पश्चात्य प्रभाव ग्रहण किया। निरालाजी के व्यक्तित्व पर भी बंगाल के वातावरण का प्रभाव पड़ा। आधुनिक संस्कारों के कारण उन्हें हिन्दी संगीत की शब्दावली और गाने का ढंग दोनों खटकने लगे। पर पश्चात्य संगीत से प्रभावित होते हुए भी निराला भारतीय संगीत की मौलिकता के पक्षपाती हैं क्योंकि उनके अनुसार अंग्रेजी संगीत अंग्रेजी हृदय में ही भाव जगा सकता है। डी० एल० राय व रवीन्द्रनाथ की तरह वे स्वर मैत्री भारतीय ही रखना चाहते हैं। अंग्रेजी संगीत से प्रभावित होने के ये मानी नहीं कि उसकी हूबहू नकल की गयी। अंग्रेजी संगीत की पूरी नकल करने पर उससे भारत के फानों की कमी तृप्ति होगी, यह सदिग्ध है। कारण भारतीय संगीत की स्वर मंत्री में जो स्वर प्रतिकूल समझे जाते हैं वे अंग्रेजी संगीत में सगते हैं। उनमें अंग्रेजी (मरा अंग्रेजी शब्द से मतलब पश्चिमी से है) हृदय में ही भाव पैदा होता है अस्तु अंग्रेजी संगीत के नाम से जो कुछ किया गया उसे हम अंग्रेजी संगीत का ढंग कह सकते हैं। स्वर मैत्री हि दुस्तानी ही रही।”+ महादेवी

X सुमित्रानन्दन पंत ‘गुंजन’, भारती मण्डार, इलाहाबाद, पाचवा संस्करण सन् २००६ भूमिका।

+ सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला गीतिका’, भारती मण्डार इलाहाबाद तृतीय संस्करण सन् २००५ पृष्ठ ४

जी प्रासिद्धी प्रतीकवादी मलार्म की तरह सगीत को तकबुद्धि के परे इन्द्रियातीत सत्य की अमोपलब्धि का साधन मानती हैं। वे कहती हैं—'गयता म नान का क्या स्थान है यह भी प्रश्न है। बुद्धि के तकत्रम से जिस नान की उपलब्धि हो सकती है उसका भार गीत नहीं सभाल सकता, पर तक से परे इन्द्रियों की सहायता के बिना भी हमारी आत्मा अनायास ही जिस सत्य का नान प्राप्त कर लेती है उसकी अभिव्यक्ति म गद्य स्वर साम-जस्य का विशेष महत्व रहा है।' अंग्रेजी कवि व्यंक की तरह महादेवी जी स्वयं एक चित्रकार हैं। यामा और दीपशिखा के चित्र उनके गीतों का एक मूल पीठिका प्रदान करते हैं। महादेवी के अनुसार हृदय म उठनेवाली अनुभूतिया छायारूपिणी हैं तथा कवि-वम उन पर मानव-सवेदना का रग चढा कर उन्हें शब्दो म चित्रित करने में है। 'इन छायाचित्रो को बनान के लिये और भी कुशल चित्तरो की प्रावश्यकता होनी है कारण यह चित्र छूने या चम चढु से देखने की वस्तु नहीं। यदि व मानव-हृदय मे द्विपी हुई एकता के आघार पर इसकी सवेदना का रग चढा कर न बनाय जाय तो वे प्रोतात्मा के समान लग या नहीं इसमे मुझे कुछ ही सदेह है।' + प्रतीकवादियों की तरह वे समी कलाप्रा की एकता मे विश्वास करती हैं तथा कलाओं के सम्मिश्रण की पक्षपातिनी हैं। नृत्य को एक प्रकार का अभिनीत भीत मानती हैं तथा गीत को शब्द चित्र।

अस्तु, छायावादी कविता की अभिव्यजना प्रणाली पर बगला के माध्यम से प्रासिद्धी प्रतीकवादी का प्रभाव प्रतिकलित हुआ। प्राचीन काव्य रूढियों के प्रति छायावादी कविता म जा प्रतिश्रिया पाई जाती है उमम मुक्त छन्द, सगीतात्मकता शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग एवं चित्रोपमता की प्रवृत्ति प्रधान हैं तथा इस प्रवृत्ति के मूल मे प्रतीकवाद का परोक्ष प्रभाव पाया जाता है।

मद अवसाद और निराशावाद

रोमांटिक कविता मे स्वभावत मद अवसाद की भावना पायी जाती है क्योंकि रोमांटिक कवि मूलत स्वप्नद्रष्टा होना है और जब वह स्थूल यथाय की और दृष्टि डालता है तो उमके सामने वास्तविकता का चित्र स्वप्न के सद्गुण कोमल और मधुर न होकर कठोर व कटु जान पन्ता है। मानव स्वभाव की प्रवृत्ति है कि किसे अपने स्वप्न के टूटने पर दुःख न होगा। इसी कारण छायावादी कविता म भी अवसाद की भावना पायी जाती है। छायावादी कविता म दुःख का रग गहरा होने का कारण भाष्यात्मिक दृष्टिकोण वयविक निराश भावना और राष्ट्रीय आन्दोलनों के पराजय की अनुभूति है। इनमें स परोक्ष रूप म अन्तिम कारण ही प्रथम दोनों कारणों को प्रथम देने वाला है। छायावादी कविता म आरम्भ मे मद अवसाद के कारण पलायन और वेदना-प्रेम की भावना पायी जाती है परन्तु

ग्रामे चलकर दुःख की अनुभूति गहरी और तिव्र होने लगती है और निराशा का भाव अधिक व्यापक रूप में फैल जाता है।

डा० शंभुनाथ पाण्डेय के अनुसार 'आधुनिक हिंदी-काव्य में भी पश्चात्य निराशावाद की क्षीण अभिव्यक्ति केवल उन कवियों की रचनाओं में मिलती है जो पश्चात्य विचारों से प्रभावित हैं अथवा आधुनिक हिंदी काव्य का निराशावाद आधुनिक काल की सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है।' + पश्चात्य निराशावाद के प्रभाव की दृष्टि से जर्मन दार्शनिक शोपेन्हायर के निराशावाद आत्म-रोमांटिक काव्य के मद-अवसाद एवं अंग्रेजी के माध्यम से फारस के कवि उमर खय्याम के निराशावाद की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

शोपेन्हायर (Schopenhauer) (१७७०—१८३१) का दर्शन दुःखवादी है। इसका कारणजसके द्वारा इच्छा शक्ति या तृष्णा (will) की कल्पना है। वह सृष्टि के नियंत्रण में तृष्णा का महत्वपूर्ण स्थान मानता है। उसके अनुसार शरीर के रूप में जो दृश्यमान है वह वस्तुतः 'व्यक्ति की तृष्णा है। यह तृष्णा सभी दुःखों का कारण है और पान के प्रसरणशीलता के साथ दुःखों की मात्रा बढ़ जाती है। तृष्णा' का कोई लक्ष्य नहीं होता जिसे प्राप्त करने पर सन्तुष्टि मिल सके। जिस प्रकार साबुन के पानी का बुदबुदे को पूरातया यह जानते हुए भी कि वह फूट जायेगा वह जब तक और जितना बड़ा हा सके हम फेंकते जाते हैं उसी प्रकार यद्यपि अन्त में मृत्यु विजयिनी हाती है फिर भी हम निरर्थक कामों में उलझ रहते हैं। आनन्द नामक कोई वस्तु नहीं है क्योंकि इच्छा के अतृप्त रहने पर पीडा होती है और उसके पूरा हो जाने पर दुःख मात्र। X शोपेन्हायर दुःख के विमोचन का उपाय इच्छा शक्ति के पूरा वितर्जन में देखता है। इससे दृश्यमान वस्तुओं का, जो केवल इच्छा शक्ति के बाह्य-रूप हैं, अस्तित्व लोप हो जाता है तथा शून्य मात्र शेष रह जाता है। जिस प्रकार बालक

+ डा शंभुनाथ पाण्डेय आधुनिक हिन्दी कविता में निराशावाद पृ ४१'

X Bertrand Russel History of Western Philosophy

P p 784

Will has no fixed end which if achieved would bring contentment Although death must conquer in the end we pursue our futile purposes as we blow out a soap-bubble as long and as large as possible although we know perfectly well that it will burst There is no such thing as happiness for an unfulfilled wish causes pain and attainment brings only satiety

अंधेरे में डरते हैं शून्य के प्रति इस प्रकार की भय की भावना का परिप्याग कर देना चाहिये। छायावादी कवियों में महादेवी वर्मा की कविता में बुद्ध की कठणा की छाया है परन्तु, विसर्जन ही है कर्णाधार वही पहुँचा देगा उस पार' जसी पवित्रता शोपेन्हार के विचार-दशन के अधिक निकट हैं। शोपेन्हार के मत में मनुष्य मनुष्य में भेद दृश्यमान जगत् के कारण दिखाई देता है। इच्छा शक्ति के विसर्जन करने पर आत्मा के सामने से भ्रम का पर्दा हट जाता है और यवित सम्पूर्ण विश्व की वेदना को मगीकार कर लेता है। उसकी यह अतृट प्रेम के द्वारा मिलती है जिसकी वरणा भावना के रूप में अग्नि यवित होती है। महादेवी वर्मा भी कहती हैं 'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे ससार को एकसूत्र में बाध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असह्य सुख चाहे हमें मनुष्यता की पहली सीढ़ी पर भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूद आसू जीवन को अधिक मधुर, अधिक उबर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख को सबको वाट कर। विश्व जीवन में अपने जीवन को विश्व वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-विदु समुद्र में मिल जाता है कवि का मोक्ष है।' ❀ अस्तु, चाहे छायावादी कवियों ने शोपेन्हार के दशन का प्रत्यक्षत अध्ययन न किया हो परन्तु सम्भवत वातावरण के प्रभाव से उन्होंने इन विचारों का अपनाया हो जिह बनान में अथ पाश्चात्य विचारधाराओं के साथ शोपेन्हार के दशन का भी कुछ योगदान अवश्य था।

शोपेन्हार के विचारों का आग्ल कवियों पर भी प्रभाव पाया जाता है। वादरन (१७८८-१८२४) 'यूथनसिया' (Yuthanasia) शीपक कविता में ससार को दुःख पूर्ण मानता है एवं कल्पना करता है कि क्या ही अद्वा होता उस दुःखमय ससार का अस्तित्व ही न होता। इसी प्रकार 'चाइल्ड हैरल्डस पिलग्रिमेज' शीपक कविता में वह जीवन को पाप का अमित घावा कहकर उसके नित्य प्रति के भौतिक दुःखों एवं जन मानसिक कष्टों के प्रति जिनसे आत्मा छटपटाती है क्षोभ प्रकट करता है। उन्नीसवीं शती में विज्ञान की उन्नति ने सदियों के बद्धमूल धार्मिक विश्वासों को हिला दिया जिससे कवियों के मन में एक सदेहाकुलता पाई जाती है। मैथ्यू आरनोल्ड ने अपनी 'डोवर बीच' (Dover Beach) शीपक कविता में धार्मिक विश्वासों के टूटने पर दुःख प्रकट किया है। इसी तरह टेनीसन ने इन मेमोरियम' (In Memoriam) में ईश्वर के प्रति हिलते हुए विश्वास को दुःख के साथ यक्त किया है। 'ई हाउसमन टामस हार्डी जेम्स टामस आर एल स्टीवसन प्रभृति कवियों और उपयासकारों ने भाग्य की विडम्बना को अपनी रचनाओं में दर्शाया है—तथा उनके पात्र दुःखी रहने में ही एक प्रकार के गौरव का अनुभव करते हैं।

मं भौतिक जीवन की सीमाओं और कमजोरियों के लिए स्थान नहीं है। वहाँ के पक्षी घृष्टु का नाम सुन हसते हैं और वहाँ सबत्र कमनीय प्रकाश छाया रहता है। × वहना १ होगा, इस पार स परे उम अनिच्य सौच्य से भरे कल्पना लोक का निर्माण भौतिक जीवन की परिस्थितियों के प्रति असंतोष एवं निराशा के कारण ही हुआ है।

छायावादी कविता का एक मय प्रवृत्ति दुःख को महिमाविधत करना है। यह एक मनोवज्ञानिक सत्य है कि भौतिक जीवन की परिस्थितियों में जब व्यक्ति अपने मनोनुकूल परिवर्तन नहीं ला पाता तब अपनी वर्तमान परिस्थितियों को ही वह सुख पूर्ण मानन लगता है। इस प्रकार की आत्म प्रवचनता द्वारा व्यक्ति को दुःख को प्रदुर्भूति से छुटकारा मिल जाता है। छायावादी कविता ने दुःख को जीवन के सत्य के रूप में मननाने के साथ ही उसे सृष्टिीय मानकर महिमाविधत किया है।

दुःख को महिमाविधत कर प्रसाद और पन ने जीवन में सुख और दुःख के समान अनुपात की कामना की है। प्रसाद दुःख को ईश्वरीय वरदान मानते हैं। उनका कथन है कि यदि मनुष्य को केवल सुख भाग का ही अधिकार मिले तो वह इस कारण से उबना जाएगा और जिस प्रकार शात समुद्र अचानक ज्वार के रूप में उमड़ आता है और उसकी नीली लहरों की मणियों पाकुन भटकने लगती हैं उसी प्रकार जीवन व्यथित हो उठेगा और समुद्र की विद्युत् मणियों की तरह सुख का कहीं पता भी नहीं लगगा। महादेवी की दृष्टि में दुःख सारे ससार को एक सूत्र में बांधने वाला है। वे उस पीड़ा की सीमा को धा लती हैं जहाँ दुःख चिर सुख बन जाता है। † पत के काव्य में विफल प्रेम की निराशा का स्वर स्पष्ट है। "प्रिय

— महादेवी वर्मा, 'साधुनिक कवि' ? हि २ साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुर्थ संस्करण सन् २००६ पृष्ठ १३

सुना था मैंने इसक पार
बसा है सान का समार
जहाँ के हसते विहंग ललाम
मृत्यु छाया का मुनकर नाम
पुत्र म है अनन मुस्वान
त्याग का है मादन में गान
सभी म है स्वर्गीय विलास
वगी कामल कमनाय प्रकार
है पीडा की सीमा यह
दुःख का चिर सुख हो जाता ।

(महादेवी)

में प्रेम का अतः प्रसफनता में होता है पर कवि उस वेदना को विकल सगीत में बदल कर उस पर भुग्ध हो जाता है और वेदना के लोह में ही मुख मानने लगता है । * 'परिवर्तन कविता में भी दुःख के प्रभाव में मुख को निस्सार बनाया गया है । X पत दुःख को "मानव आत्मा का मनुष्य मोजन" बनाने हैं । % दुःख को महिमावित करने के मूल में छायावादी कवियों की दुःखात्मक अनुभूति एवं निराशा ही है जिसे भुलाने का वे निष्फल प्रयास करते हैं । इस प्रयास की निष्फलता इसी से प्रकट है कि सभी छायावादी कवियों ने अपने मन की बदना को प्रकट किया है।

परवर्ती छायावादी कविता में निराशा की भावना अधिक गहरी दिखाई देती है । जब कवि न तो 'उस पार' के कलना लोक को बना कर आत्म भुनावा देता है और न वेदना को महिमावित ही कर पाना है । कठोर सत्य को भुलाने वह कभी मधु' का प्रतीक अपनाता है, कभी निराशा व अवसाद के गहरे रंग में डूब कर मधु कामना करने लगता है अथवा कभी पराजय भावना से क्षुब्ध हों सम्पूर्ण सृष्टि के स्वस की कामना करता है ।

उन्नीसवीं शती उत्तरार्ध में फारस के कवि उमर खयाम की कुछ चुनी हुई रूबाइयो का फिटजराल्ड ने अंग्रेजी में अनुवाद किया । 71 में भी खयाम की रूबाइयों के फिटजराल्ड के अनुवाद से कुछ कवियों ने अनुवाद किये जिनमें बच्चन का अनुवाद सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ । बच्चन खयाम की विचारधारा से प्रभावित भी हुए । बच्चन की कविता में यह प्रभाव अंग्रेजी के माध्यम से आया है ।

- * सुमित्रान दन पत "पल्लविनी" पृष्ठ १३७
 वेदना के ही सुरीले हाथ से
 है बना यह विश्व, इसका परस पद
 वेदना का ही मनोहर रूप है
 वेदना का ही स्वतंत्र विनोद है
 भाज में सब भाति सुख सम्पन्न हू
 वेदना के इस मनोरम विपिन में

- X बिना दुःख के सब सुख निस्सार
 बिना घामू के जीवन भार
 दीन दुबल है रे सप्पार
 इसी से दया, क्षमा और प्यार (पत)

- % दुःख इस मानव आत्मा का रे नित का मधुमय मोजन
 दुःख के तम को ग्ला-खाकर भरती प्रकाश से वह मन
 घामू की भावो से मिल भर ही घाते हैं लोचन (पत)

घोर निराशा के क्षणों में निराशा को भुलाने के लिए मनुष्य प्रायः मागवान् की ओर झुक जाता है या अपने भाग्य को भाग्य के समर्पित कर देता है। खयाम की रूबाइयों में मागवान् एवं भाग्यवान् सेना की प्रवृत्ति पाई जाती है।

निकोलस का कथन है कि खयाम ने निराशा की मन स्थिति को हसी में भुलाने का प्रयत्न किया है परन्तु परिणाम सदैव उसकी निराशा का उपाह देने वाला हुआ है। अत्यधिक सुख की प्रतीति में घोर निराशा व्यक्त हो ही जाती है। भाग्य के विरुद्ध विद्रोह करने के बदले वह उसका प्रतिभ्रम समर्पण कर देता है। सुन्दर मविष्य की झलक को पकड़ने में असमर्थ होकर वह आज क्षण के सुख को जी लेना चाहता है चाहे यह सुख कितना ही क्षणिक और महत्वहीन हो।

अस्तु बच्चन की कविता में निराशा का स्वर गहरा है। उनके काव्य में मदिरा एक प्रतीक है जिसके द्वारा कवि-जीवन के दुःखों को भुला देना चाहता है। जीवन की कठिनाइयों ने ही कवि को मधु का प्रतीक बनाने के लिए प्रेरित किया है। +

* Edward Fitzgerald Rubaiyat of Omar Khayyam of Naishepuri
Preface by Nicolas pub Shushil Gupta 1943 Pp 17

He crossed that darker mood with much of Olivierle Basselin
Homour Anyway the result is sad enough Saddest perhaps when
most ostentatiously merry, anyway fitter to more sorrow than
anger towards the old Tentmaker, who after vainly endeavouring to
unshake his steps from Destiny and to catch some authentic Glimpse
of To morrow fell back upon to day (Which has out lasted
so many to morrows) as the only ground got to stand upon
however momentarily slipping from under his feet

+ बच्चन मधुक्लश'

किंतु जब पवत पड़ा आ
शीश पर मैं सह न पाया
जब उठा हो मार जीवन
तब लगाया होठ प्याला
देख भीगे होंठ मेरे
और कुछ सन्देह मत कर
रक्त मेरे ही हृदय का
है लगा मेरे घर में।

बच्चन को 'मधुशाला', 'मधुवाला' आदि कृतियों में ऊपर से दिखलाई देनेवाले उल्लास की बलई उनकी पीछे की 'निशा निमंत्रण', 'एकांत मगीत' आदि रचनाओं में खुल गयी है और निराशा व भ्रवसाद का भाव घनावत हो गया है। इस निराशा के भाव को कवि की 'यक्तिगत जीवन की निराशाओं' ने ही अत्यधिक उद्दीप्त किया है। यहां तक कि सिगमण्ड फ्रायड के कथन 'This meaningless rattling of Clay' की तरह कवि स्वयं सृष्टि की असफलता की ओर व्यंग्य करता है एवं स्वयं मृत्यु-कामना करने लगता है। X

नरेन्द्र की कविता में भी 'यक्तिगत जीवन की असफलताओं' और विरह की अनुभूति से मिथिल निराशा भावना पायी जाती है। + अचल के काव्य में वासना और चिर नृणा की ज्वाला सुलगती है तथापि उनकी कविता में निराशा के स्वर भी उभर आते हैं। # नवीन अपनी कविता के राष्ट्रीय आन्दोलन के पराजय की घोर वास्तविकता स्वीकार करते हैं। *

X बच्चन


भ्रम मत मेरा निर्माण करो'
मिट्टी दीन कितनी हाय'
दुदशा मिट्टी की हाठी
'आओ सो जाए मर जाए


+ नरेन्द्र 'प्रवासी के गीत' भरती भदर इलाहाबाद, तृतीय संस्करण सन् २००२ पृष्ठ २३

नादान विश्व नासमझ हृदय
में मान करू भी तो किस पर
मेरी वह मायाविन न रही
अभिमान करू भी तो किस पर

रामेश्वर गुप्त 'अचल' 'अपराजिता'
में एकाकी विरही उदास
खेता जीवन नया निराश

* बालकृष्ण शर्मा नवीन 'पराजय गीत'
विजय नहीं, रण की प्राण की
धूल बटोरे भाया हूँ
हिय के धारों में वर्णों के
चिण्डो को ले भाया हूँ
हूटे अस्त्र धूल माये पर
हा कसा मैं धीर हुआ
आज सड़ग की धार बुझिना
है खाली मूलीर हुआ !

इस निराशा व परिणामस्वरूप परवर्ती छायावादी कविता में प्रचलित नटिव मायताभा का विरोध पाया जाता है— एव नवीन मगवतीचरण वर्मा, हरि कृष्ण प्रेमी' आदि की कविताभा में सृष्टि की ध्वस-कामना की मयी है। X युग की परिस्थितियों एव वैयक्तिक जीवन की निराशाओं की यह अंतिम परिणति मयकर दिखाई देती है। यद्वा पर यह सकेत करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् योरोप के साहित्यिक क्षेत्र में फ्रांसिसी प्रतीकवाद की प्रतिप्रिया में डाडावाद (डाडा सम्प्रदाय स्थापना जूरिख में १९१६, फ्रांस में १९१९-१९२३) का जन्म हुआ जिसमें प्रचलित मायताओं के प्रति अविश्वास प्रकट किया गया एव वह पूर्ण अन्ततमक था। हिन्दी की परवर्ती छायावादी कविता में भी वही नकारात्मक दृष्टिकोण मिलता है यद्यपि दुस्माहसी बना प्रयोग इसमें नहीं हुए जो परवर्ती नयी कविता में अब कभी कभी दिखाई देते हैं। डाडावाद का तरह हिन्दी कविता में भी इस नकारात्मक दृष्टिकोण का प्रभाव बहुत कम समय रहा।

 वचन 'मधुकलश

र त से सीधी गई है

राह मन्दिर मस्जिद की

किन्तु रखना चाहता मैं

पाव मधु-सिंचित डगर में ?

X कवि बुद्ध ऐसी तान सुनाओ
जिससे लथल पुथल जाए (नवीन)

गगन पर घिरो मण्डलाकार

ध्वनि पर गिरो वज्र सम घाज

गरज कर भरो रुद्र हूँ कार

महाँ पर करो नाश का साज

मत्ते नाण्डव नृत्य फिर घाज

चुवाले महाकाल निज व्याज

नष्ट भ्रष्ट असाद पडे हो जल प्लावित ससार

शून्य कर रहा हो पागल सी लहरों का अभिसार

नीचे जल हो ऊपर जल हो ए जल के उद्गार !

बरसो बरसो अरे मघन घन महाप्रलय की धार !

(मगवतीचरण वर्मा)

तुम लपटों की पहने साडी

मैं भी भोड़ू लात्र दुशाला (प्रेमी)

रहस्यवाद

छायावादी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति रहस्यवादी भावना है। महादेवी लिखती हैं 'यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बगला की मवोन काव्य धारा से परिचित तो था ही साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय परम्परा भी रही।'† श्री रबिन्द्रनाथ सिंह ने अपनी छायावाद-युग' पुस्तक में इस युग की रहस्यवादी कविता का रहस्यवाद की भारतीय परम्परा से सम्बन्ध स्थापित किया है। यह तो स्पष्ट है कि निराला की कविता में वेदा त का प्रसाद पर शैव-मत और बौद्ध दशन का तथा महादेवी के रहस्यवाद पर उपनिषदों और बुद्ध के दु खवाद का प्रभाव पडा है। परन्तु आधुनिक रहस्यवाद और प्राचीन रहस्यवाद में वस्तुतः गहरा भेद पाया जाता है। यह भेद जीवन के प्रति दृष्टिकोण का है। प्राचीन रहस्यवादी सासारिकता की ईश्वर प्राप्ति के माग म बाधक समझता था अतः उसके लिए यह ससार त्याज्य था तथा वह अपनी एकांत साधा में लीन रहता था परन्तु आधुनिक रहस्यवादी सृष्टि में व्यक्त सौन्दर्य के दशन करता है। दूसरे, छायावादी कविता वैयक्तिकता प्रधान काव्य है अतः युग की रहस्य भावना में आत्मा और परमात्मा के मिलन में भी आत्मा के व्यक्तित्व का लोप नहीं होता वरन् आत्मा मिलन की अनुभूति के आनन्द को सचेतन रूप के व्यक्त करती है। हिंदी का प्राचीन रहस्यवाद साम्प्रदायिक है आधुनिक रहस्यवादी कविता में साम्प्रदायिकता के लिए स्थान नहीं है। प्राचीन कवियों के रहस्यवादी भावों की अभिव्यक्ति की भूमिका में आध्यात्मिक साधना थी परन्तु हिन्दी के आधुनिक रहस्यवादी कविता में कोई भी आध्यात्मिक साधना के लिए प्रसिद्ध नहीं है। कवियों ने लौकिक रति भावना का आरोप भी रहस्यवादी पक्ष में किया है।

हिन्दी की रहस्यवादी कविता पर सर्वाधिक प्रभाव ठाकुर रवी द्रनाथ टगोर की कविताओं का पडा। रवी-द्रनाथ की कविता विविध पाश्चात्य प्रभावों को लिये हुए थी तथा उनकी भाव धारा उनके समकालीन पाश्चात्य साहित्यकारों के अनुरूप थी * परन्तु, रवी द्रनाथ एक महान् प्रतिभा थे जिनमें पूव व पश्चिम का अपूर्व सम्बन्ध हुआ। उन्होंने अपनी कविता में बृष्णव कवियों, कालिदास,

† महादेवी वर्मा 'आधुनिक कवि' १ हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतुर्थ सत्र, सत्र २००६ पृष्ठ ५०

* Alex Aronson 'Rabindra nath through Western Eyes', Kitabistan, Allahabad Pp 92

Certain it is however, that Rabindranath's poetry could have been expected to fit in extra-ordinarily well not only with

कबीर तथा ज्ञानियों की परम्परा को नवीन रूप में पुनर्जीवित किया। रवीन्द्रनाथ के अनुकरण पर ही परवर्ती छायावादी कविता पर उपनिषदों आदि का प्रभाव अधिक गहरा होने लगा तथा बाद में उसका सम्बन्ध भारतीय परम्परा से जोड़ दिया गया। सन् १९१४ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर को 'गीताञ्जलि' पर 'नोबल पुरस्कार' मिला जिससे रवीन्द्रनाथ की रहस्यवादी कविताओं की ओर नई कवियों का भी आकर्षण बना। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व जब रवीन्द्रनाथ 'गीताञ्जलि' के गीतों की रचना कर रहे थे पश्चिम में हेगेल का आध्यात्म दर्शन अत्यधिक लोकप्रिय हो रहा था। रवीन्द्रनाथ ने स्वयं हेगेलीय दर्शन का अध्ययन किया था तथा उनकी रहस्यवादी रचनाओं पर उसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से हिन्दी कविता में आध्यात्मिकता के 'आधुनिक रूप' की स्थापना हुई। रवीन्द्र ईसाई सतों के नीरववाद से भी प्रभावित हुए तथा उनकी कविता में बाइबल के स्वर्गिक दृष्टिब दुलहन का भाव पाया जाता है। × यद्यपि आत्मा और परमात्मा के पति-पत्नी भाव का भारतीय साहित्य एवं हिन्दी में यह सवशा नवीन प्रयोग नहीं है तथापि

the Jewelled raptures' of Francis Thomp on but also with the dreaming fairy land of W B Yeats with the Irish folk lore of A E George Russell even with the intricate and eccentric symbolism of Ezra Pound and T S Eliot's detached poetry of unrest and doubt In Germany Werfel Hugo V Hoffmannstal, Rainer Maria, Rilke and Stefan George in an idiom singularly like his own In France Verlain Baudelaire, Rimband and in more recent times Paul Valery Materlinck and a host of others had opened the eyes of the French reading public to the impenetrable darkness of the human soul the mysteries of birth growth and decay, the inimitable characteristic of individual existence Rabindarnath should have been one of them a contemporary in the best sense of the term part of the great European Literature which he too as going to shape for the better or for the worse

- × Priyaranjan Sen Western Influence in Bengali Literature, Saraswati Library, Calcutta, Second Edition 1947 Pp 257 The image of the bridegroom and the parable of talents are sometimes to be found in Rabinda Nath's poems

दाम्पत्य प्रेम के प्रतीक रूप में स्मृति, विरह, मिलन-सुख आदि की व्यापक अभिव्यक्ति के द्वारा ईसाई सत्ता के रहस्यवाद का प्रभाव नक्षित होता है। रवीन्द्र के रहस्यवाद पर आन्त रोमांटिक कविता का प्रभाव भी प्रतिफलित हुआ। बालक में स्वर्गिक भावना एवं सत्त्ववाद के रूप में आन्त रोमांटिक कविता का हिन्दी में छायावादी कवियों ने भी अध्ययन किया था अतः उन पर यह प्रभाव रवीन्द्र के माध्यम से प्रतिफलित न होकर सीधा पड़ा है। वस्तुतः आधुनिक हिन्दी कविता की रहस्यवादी धारा आरम्भ में रवीन्द्रनाथ से प्रभावित हुई किन्तु आगे चल कर स्वतंत्र रूप में पश्चात्त्य प्रभाव ग्रहण करने लगी।

हैगलीय अध्यात्मवाद

हेगल (Hegel) ने स्वयं की नियमबद्ध धार्मिकता के बदले सूक्ष्म आध्यात्मिक चिन्तन को प्रथम दिया। हेगल के अनुसार 'परमभाव' (Absolute) लोकोत्तर न होकर स्वयं विश्व की प्राणभूत सत्ता है। हेगल परिवर्तनशील विश्व को शकरी चाय की तरह विवर्ति नहीं मानता बल्कि परमभाव के व्यक्तिकरण का आवश्यक माध्यम मानता है।

परम भाव (Absolute) विश्व को प्राणभूत सत्ता

आधुनिक रहस्यवादी काव्यधारा पर हेगलियन अध्यात्मवाद का प्रभाव दिखाई देता है। कबीर व जायसी के रहस्यवाद में हम सासारिकता को ईश्वर प्राप्ति में बाधा स्वरूप पाते हैं। उनका ईश्वर निगूण रहता है। सत्ता केवल विवर्ति है अतः वह ब्रह्म के स्वरूप को पहचानने में बाधा पहुँचाता है। परिवर्तनशील और नामरूपात्मक दृश्य जिसका चिद्रूपों द्वारा प्रत्यक्षीकरण होता है सत्य नहीं है। इसके विपरीत हेगलियन अध्यात्मवाद में परिवर्तन को ही नित्य सत्य माना गया है। हेगल की दृष्टि में 'परमभाव' (absolute) विश्व की प्राणभूत सत्ता है, लोकोत्तर नहीं।

हेगल के अनुसार अपने पूर्ण रूप में जान तीन रूपों में व्यवहृत होता है। उसका आरम्भ चतुर्द्वियों द्वारा होता है जिसमें बल वस्तु की प्रतीति होती है। चिद्रूपों की मशय्यात्मक प्रतिबिम्बा से वह पूरगतया आंतरिक बन जाता है। अन्त में वह उस विवर्ति में पहुँच जाता है जिसे हम आत्मज्ञान कह सकते हैं, जिसमें वस्तु व विषयों का भेद नहीं रहता। इस प्रकार आत्मज्ञान की अवस्था ज्ञान की सर्वोच्च स्थिति है। हेगल के अध्यात्मवादी दशन में यही सर्वोच्च ज्ञान दशा कही जायेगी क्योंकि सर्वोच्च ज्ञान परम (Absolute) में ही तीन होता

है और परम सृष्टि पूर्ण है मत्र उसके सिद्ध करने से बाहर जानने को कुछ शेष नहीं रहता । =

पक्ष की 'परिवर्तन' कविता हेगेलियन अध्यात्मवादी भावना से प्रभावित प्रतीत होती है । इस कविता में 'परिवर्तन' जिसकी हम हेगल के परम भाव से समा नता बतला सगने हैं, अखिल सृष्टि में व्याप्त तथा विरतन है । X 'परिवर्तन' में 'प्रज्ञा' की व्याख्या भी हेगल के 'सच्चे ज्ञान' के रूप में हुई है । 'ज्ञान का सच्चा स्वरूप हृदय में प्रगम बन कर प्रेमोद्गार के रूप में व्यक्त होता है—बाह्य सत्य

= Bertrand Russell History of Western Philosophical Thought P p 760

Knowledge as a whole has its triadic movement It begins with sense perception in which there is only awareness of the object Then through sceptical criticism of the sense it becomes purely subjective At least it reaches the stages of self knowledge in which subject and object are no more distinct Thus self-consciousness is the highest form of knowledge This of course must be the case in Hegel's system for the highest kind of knowledge must be possessed by the Absolute and as the Absolute is the whole there is nothing outside itself for it to know

X पक्ष 'परिवर्तन

शिक्षास्थल यह विश्वगच तुम नायक नटवर

प्रकृति नर्तकी सुधर

अखिल मे व्याप्त सूत्रधर ।

यत सहस्र रवि ऋषि अक्षय यह उपग्रह उदयण

जलते बुझते हैं स्फुलिंग से तुमसे तत्क्षण

अचिर विश्व में अखिल दिशावधि

कम, बचन, यन

तुम्हीं चिरन्तन

अरे विवर्तन होन विवर्तन ।

आंतरिक भाव स रंग कर भावनामय हो उठता है वही सच्चा ज्ञान है । आत्म ज्ञान की पूरा स्थिति । इसी अनुभूति से सष्टि आनन्दमयी प्रतीत होती है । X

'कामायनी' में प्रसादजी जगत् को अद्वैतवाद के अनुसार मिथ्या नहीं मानने परन्तु नाना परिवर्तनों से पूरा जगत् को सत्य मानने की अपनी भावना हेगेलियन अद्वैतवाद के अनुरूप है यद्यपि यह सत्य है कि शैवागमों के अनुसार विश्व में चतुर्थ के अतिरिक्त किसी की सत्ता नहीं है किन्तु परिवर्तन की सत्यता में स्पष्ट विश्वास व्यक्त करना तथा वैयक्तिक साधना के बदले सामाजिक दशन के रूप में उसे अंगीकार करना आधुनिक विचारधारा के प्रभाव को प्रकट करता है । 'महाचिति' सजग सो होकर आनन्दमयी त्रीटाए करती सृष्टि के रूप में व्यक्त होती है । * परिवर्तनमय जगत् की नित्यता हेगेलीय दशन के अनुरूप प्रतीत होती है । -

प्रसाद जी के आनन्दवाद के अनुसार जड़ व चेतन में एक ही चेतना विलसती है । इसी प्रकार रामकुमार वर्मा के 'मेरी गति है वही जहाँ गीत में विरह चेतन जगत् के रूप में जगता है तथा अचित प्रकृति के रूप में सोता है । †

X सुमिनान शन पन्थ आधुनिक कवि २, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुर्थ संस्करण, सवत २००६ पृष्ठ ४१

वही प्रना का सत्य स्वरूप
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक सेवा में शिव अविचार
स्वरों में ध्वनित मधुर सङ्गुमार
सत्य ही प्रेमोद्गार
दिय सौन्दर्य, स्नेह साकार
भावनामय ससार

* अयशकर प्रसाद 'कामायनी' भारतीय नगर, लीडर प्रेस, इलाहाबाद अष्टम संस्करण सवत २०१० पृष्ठ ५३

- वही, पृष्ठ २४२

चिति का स्वरूप यह नित्य जगत्
जड़ रूप बदलता है अनन्त
कर विरह मिलन मय नृत्य निरत
उत्सास पूरा आनन्द सतत

† रामकुमार वर्मा, आधुनिक कवि ३, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वितीय संस्करण सवत २००३ पृष्ठ १०४
जाग रहा चित्त साता है
अचित प्रकृति बारम्बार

हैगलीय धर्मशास्त्रियों के अनुसार परिवर्तनमय जगत् की निरन्तरता सत्य उद्भाषित होने से प्राधुनिक रटस्यवाद में भारतीय विचार के पुनर्जन्म सिद्धांत की नवीन रूप में अभिव्यक्ति हुई है। गीता में भी धारमा के अजर व अमर रूप की प्रतिष्ठा हुई है तथा मृत्यु के रूप वह केवल पुराने वस्त्रों को छोड़ कर नये वस्त्र धारण करती है परन्तु हैगलीय दशन में काल (Time) की अनन्तता का भाव जीवन की क्षणिकता और मृत्यु को नवीन सम्बन्ध में प्रस्तुत करता है। जीवन और मृत्यु एक अनन्त काल जलधि की तरह हैं। परिवर्तन में पत मृत्यु और जीवन को बालक के सोने और जागने के रूप में देखते हैं उसके बीच में काल का अधान नहीं, काल निरन्तर है। X

इसी प्रकार प्रसादजी की 'कामायनी' से अघोर मनु मृत्यु के अर्थ का हिमानी सा शीतल अनुभव करता है। उस मृत्यु अनन्त में लहर सी प्रतीत हाती है तथा काल जलधि की हलचल को व्यक्त करती है। आकाश के नीले वाता में जिस प्रकार क्षण भर के लिए बिजली प्रकट होकर उसी में समा जाती है उसी प्रकार जीवन काल का शुद्ध अंश है जो मृत्यु के रूप में अनन्त में लीन हो जाता है। + महादेवी जी के एक गीत तू धूल भरा ही आया ' में मानव को मृत्यु की गोद में बालक के रूप में चित्रित किया गया है। ससार में जब मनुष्य रूपी बालक के अंग विषाद से विकृत हो जाते हैं, 'पया के शूलों से उसके पर साथ छोड़ जाते हैं, हृदय का स्वर्ण धार बन कर सामों में उड़ जाता है स्वप्न भी साथ छोड़ देते हैं केवल पुराने आभूषण ही शेष रह जाते हैं तब मृत्यु मा के रूप में अचल स संकेत देकर उसे अपने पास बुला लेती है। वह उसके तन की धूल का भांड पोंछ कर नवीन वस्था से उसे सज्जित करके ससार में खेलने के लिए पुन भेज देती है। =

X पत परिवर्तन

एक बचपन ही में अनजान जागते सोते हम दिन रात
बढ़ बालक फिर एक प्रमात देवता नव्य स्वप्न अज्ञात
मूढ़ प्राचीन मरन खोल नूतन जीवन

+ जयशंकर प्रसाद 'कामायनी', भारतीय भण्डार लीडर प्रेस

इलाहाबाद अष्टम संस्करण सन् २०१० पृष्ठ ११८

= महादेवी

जिस दिन लौटा तू चकित विकृत सा उमन
करणा से उसके भर भर आये लोचन
नूतन प्रभात में अक्षय गति का दर दे
तन सजल घटा-सा तडित छटा-सा उर दे
हस तुझे खेलने फिर जग में पहुँचाया

तू धूल भरा जब आया

मो अचल जीवन बाल ! मृत्यु जननी ने अंक लगाया ।

मृत्यु का ऐसा मोहक चित्र प्राचीन रहस्यवादी काव्य में नहीं मिलता । प्राचीन रहस्यवादी काव्य में मृत्यु का चित्रण जीवन की निस्तारता सिद्ध करने के लिए किया गया है किन्तु प्राधुनिक रहस्यवादी काव्यधारा में वह क्षणिक जीवन व अनन्त काल की एकता को सिद्ध करती है । महादेवी मृत्यु को प्राणों के अन्तिम पाहुन' के मोहक रूप में प्रस्तुत करती हैं । निराला भी मृत्यु की मुक्ति के रूप में चित्रित करते हैं । †

अतः प्राधुनिक रहस्यवादी काव्यधारा में परम सत्य परिवर्तनमय जगत् की प्राणभूत सत्ता है जिससे जगत् अानन्दमय प्रतीत होता है । मृत्यु या विघटन अनन्त काल जलधि की लहरों के सदृश है जो उसकी हलचल या सौम्य व्यक्त करती हैं । प्राधुनिक रहस्यवाद साम्प्रदायिक नहीं है । वह एक सामान्य माध्यात्मिक अनुभूति का रूप है ।

आंग्ल रोमांटिक काव्य का प्रभाव

बालक में स्वागत भावना

प्राधुनिक रहस्यवादी हिन्दी काव्य में अग्रजों रोमांटिक कवियों के प्रभाव से बालक के सरल जीवन में पवित्रता और स्वर्गिक ज्ञान की भावना का विकास हुआ है । अग्रजों रोमांटिक कवियों के प्रभाव से रवीन्द्रनाथ ने भी अपनी रहस्यवादी कविताओं में बालक की भावना को चित्रित किया । 'वेन आई दिग् टायज टु यू माई बर्द्य' गीत में उन्होंने लिखा है कि जब कवि बालक के लिये खिलौने लेकर आता है तो उसे प्रतीत होता है आकाश में इंद्र धनुष व प्रकृति के अमृत दृश्यों के रूप में इश्वर ने मनुष्य बालक के लिये खिलौने रखे हैं । अतएव 'ग्रीड टु द इटीमशस आंव इनमोर्टैलटी (Ode to the intimations of Immortality) कविता में बालक को गम्भीर दार्शनिक के रूप में चित्रित करते हैं । बालक का बाह्य स्वरूप उनके गम्भीर मन का परिचय नहीं देता तथापि वह अघो के बीच सच्चा पण्डित है जो किसी की न सुन कर मोन अनन्त गहराई में देखता है तथा उन सत्ता की पहचानता है जिन्हें जीवन पथ त खोज कर भी प्रौढ नहीं जान पाते

Thou whose exterior semblance doth belie

Thy soul's immensity

Thou best philosopher who yet dost keep,

Thy heritage, thou eye among the blind

† निराला

मुक्ति हूँ मैं मृत्यु में

आई हुई न डरो ।

That deaf and silent world'st the eternal deep
 Haunted for ever by the eternal mind,
 Mighty prophet seer blest
 On whom those truths do rest

which we are toiling all our lives to find
 In darkness lost the darkness of the grave

पत जी भी बालक को गूढ़ गहन, अज्ञात, निरूपम बतलान है
 कीन तुम गूढ़ गहन अज्ञात
 अहं निरूपम भवजात

बडसबध के अनुसार बालक स्वर्गिक वातावरण में रहता है (Heaven lies before us in our infancy), हमारा ब्रह्मलोक का जन्म एक निद्रा और भुलावा है। बालक स्वर्ग के समीप होता है परन्तु उस पर सांसारिक जीवन की छाया पड़ने पर वह स्वर्गिकता को भूल जाता है

Our birth is but a sleep and forgetting
 Our soul rises with us our life's star
 Hath had elsewhere its setting
 And cometh from afar
 Not in entire forgetfulness

And by the vision splendid
 Is on his way attended

At length the Man perceives it lie away
 And fade into the light of common day

पतजी की 'बालापन' कविता भी इसी प्रकार शशव की स्वर्गिक भावना को प्रकट करती है। कवि ब्रह्म रूपी चित्रकार से जीवन के अचल में पवित्र बचपन को पुनः चित्रित करने की प्रार्थना करता है। वह बालक के अन्दर में सृष्टि की बीणा की झंकार की ध्वनि सुनता है

जब कि कल्पना की तथी में
 खेल रहे थे तुम करतार

तुम्हें याद होगी उससे जो
निकली थी स्फुट भक्ताङ्ग
एक बालिका के अन्दन में
ध्वनित हुई थी बन साकार ।+

जीवन के प्रथम क्षण के दृश रदन का भाव ही शशव मे भूजता रहता है किन्तु यौवन का आगमन, फूल मे भोस बिंदु की तरह शशव के पवित्र भाव को छीन लेता है। पत बालक के अघरी पर अतीत का मृदु हास देखते हैं जो ससार की अनवरत निद्रा का उपहास करता है। यह अतीत स्मृति स्वर्गिक है और ससार की अनवरत निद्रा स्वर्गिक भावना को भुला कर प्रकृति से उदासीन कृत्रिम जीवन व्यतीत करना है। जिस प्रकार ठंडा पथवी के षण कण को स्वर्णम बना देती है तथा चंद्र किरणों से जल शुभ्र दिखाई देता है उसी प्रकार बाल हृदय की उमंगों में स्वर्गीय दीप्ति दिखाई देती है।

बडसवय की तरह ब्लेक ने भी अपने काव्य में बालक में पवित्र व स्वर्गिक भावना का आरोप किया है। ब्लेक बालक की बौद्धल पूरा दृष्टि से सौंदर्यपूरा सृष्टि को देखते हैं। वे बालक के रूप में एक क्षण में अनंतता का अनुभव करते हैं। बाल स्वभाव का चित्रण करते हुए वे स्वयं बालक बन जाते हैं और उसके आँसुओं का पालन करते हुए आनंद अनुभव करते हैं। 'पत की वीणा' में

+ सुमित्रानन्दन पत्र 'पल्लविना' पृष्ठ २५।

× ब्लेक (Blake) की निम्नलिखित कविता बाल हृदय के साथ उनका तादात्म्य की दर्शाती है। सुमित्रानन्दन पत्र की कविता में भी इस प्रकार के बाल सुलभ भाव पाये जाते हैं। पत स्वयं 'बालिका की दृष्टि से जगत् को देखते हैं।

Piping down the Valleys wild
Piping songs of pleasure glee
On a cloud I saw a child
And he laughing said to me
'Pipe a song about a lamb?'
So I piped with merry cheer
'Piper pipe that song again'
So I piped he wept to hear
'Piper sit thee down and write'
In a book that all may read
So he vanished from my sight
And I plucked a hollow reed
And I made a rural pen
And I stained the water clear
And I wrote my happy songs
Every child may joy to hear

सकलित घनेरु कविनाम्रा मे बाल सुनम जिनासा की अभिव्यक्ति हुई है। अतएव 'निवेदन, 'काजा बादन, कृष्णा, म मोडा म विवेकानन्द' प्रभृति कविताएँ बाल्य जीवन की प्रकृति व शारदय भाव से समीरता तथा जिज्ञासा को प्रकट करती हैं। बालक प्रकृति म ब्रह्म की ही छाया देखता है। X

सतार के सुख दुखों से बाहर का जीवन परे है। वह अपनी स्वगिफता मे ही लीन रहता है। +

अस्तु, म प्रेजी रोमांटिक काव्य के प्रभाव से प्रायुनिह हि ती रहस्यवादी काव्य म पतनी की कविता म बालक की प्रवृत्ता व स्वगिफता की भावना का आरोप मिलता है।

सर्वात्मवाद दर्शन

छायावादी कविता म प्रकृति वलन के प्रायुय का हम पीछे चलन कर चुक है। पालोच्य काल के कवियों ने रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को साधन रूप म धरनाया है। इसी दृष्टि से छायावाद का दार्शनिक आधार 'सर्वात्मवाद' माना जाता है। कवि प्रकृति की केवल सजीव सत्ता के रूप म ही नहीं देखता बरन् वह प्रकृति क कण कण म पराग सत्ता का संकेत पाता है। 'सर्वात्मवाद' यह दृष्टिकोण है जिससे हम सभी पदार्थों को ईश्वर स्वरूप देखते हैं। अथवा ईश्वर को सभी पदार्थों म व्याप्त पाते हैं। किन्तु, यह विचारधारा ईश्वर से पारिविद अलग की धार अथवा पारिविद अलग से ईश्वर की धार प्रवहमान हो सकती है। अतः सर्वात्मवाद दो रूप धारण कर लेता है। यदि वह धार्मिक विश्वास अथवा दार्शनिक विज्ञान मे धारणम होता है तथा ईश्वर का प्रतीक व शारदय

X सुमित्रान न पउ 'पन्नविनी
मा, वह न्ति कब धारणा
मैं सरी छवि म्मू गी
त्रिगका यह प्रतिबिम्ब पडा है

सत्य के रूप में प्रहण करता है तब सीमाबद्ध व नश्वर जगत् ईश्वरीय सत्ता में ली जाता है तथा शाश्वत सत्ता के सम्मुख जगत् भ्रम रूप में भासित होने लगता है । सर्वात्मवाद जब वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाता है अथवा वाय दृष्टि से सृष्टि के नियमों में एकसूत्रता का भान कराता है तब अवाधिव सत्ता पाथिव जगत् के सत्य में लीन हो जाती है । सर्वात्मवाद का पहला रूप कवि के प्राथमिक विश्वास को प्रकट करता है जब कि उसका दूसरा रूप सृष्टि के नियमों की एकसूत्रता के लिए नाम मात्र है जिसकी अनेक रूपात्मक सत्ता ही यथाथ निरीक्षण व वक्षना की दृष्टि से सत्य दिखाई देती है ।¹ X इस प्रकार, अंग्रेजी रोमांटिक कवियों में इस पथ व ब्लेक प्राथमिक सत्ता पर विश्वास करने पर तथा गेली अनीश्वरवादी होने पर दोनों ही सर्वात्मवादी हैं । छायावादी कवियों में यद्यपि पत ईश्वरवादी हैं किन्तु उनकी रहस्य दृष्टि प्रकृति के व्यापारों में व्यक्त होनेवाली आत्मा की ओर ही प्रसारित होती है । प्रकृति में यद्यपि पत परोक्ष सत्ता का संकेत पाते हैं और परमाथिव जानोदय को प्रकृति की सभी विभूतिया से श्रेष्ठ मानते हैं किन्तु प्रकृति के व्यक्त प्रसार में ही वे आनन्दमग्न प्रतीत होते हैं । अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा भी है, 'पतजी की स्वामाथिक रहस्य भावना को प्रसाद और महत्त्वी वर्मा की साम्प्रदायिक रहस्य भावना से भिन्न समझना चाहिए । रहस्यात्मकता की अपेक्षा कवि में दार्शनिक प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है । + इस दृष्टि से पत में

X Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol 9 & 10 P p 609

Pantheism is the view that all is God, and that God is all but, since thought may move either from God to all or from all to God, it can assume two forms. If it begins with religious belief or the Philosophical faith in God as *infinite and eternal* reality, then the finite and temporal world is swallowed up in God and the world is (looked upon as) an illusion in comparison with God as reality. If it begins with the scientific conceptions or the poetic vision of the world as unity then the God is lost in the world. The first is theistic and the second atheistic for in the first, if inconsistently, there still survives as a rule a vague apprehension of God as theism conceives Him and in the Second (it is) but a name for the unity of the world, the multiplicity of which alone is real for observation and imagination.

+ रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृष्ठ ७०६

सत्त्ववाद का दूसरा ही प्रमुख है। वे व्यापारिक मुक्ति के कठिन साधनात्मक बचन की अपेक्षा सहज मुक्ति के मजुर क्षण में ही आनन्द अनुभव करते हैं। यह सहज मुक्ति का आनन्द जगत् के व्यक्त प्रचार के नीचे परोक्ष सत्ता का आभास पाकर अनुभव होता है। वे अन्तमुखी होकर रहस्यानुभूति की गहराइयों में लीन होने के बदले परम सत्ता के व्यक्त प्रामाण्य में ही तीव्र स्थान करते हैं। अतः कवि पुलिन पर बैठ कर ही निस्सल जन में लीन मातीशायी मछली की जी भर छवि देखना चाहता है। X

पूणत रहस्यवादी कवि प्रकृति को ब्रह्म प्राप्ति में बाधक मानता है। ब्रह्म प्रकृति की प्राणमूत्र सत्ता है अथवा पर प्रकृति की समी शक्तियाँ उस सत्ता की खोज में लीन रहती हैं तथा सिर नीचा किये उसकी शक्ति स्वीकार करती हैं। = महादेवीजी के रहस्यवाद में अशांती भाव तो है पर आत्मा ब्रह्म की खोज में लीन रहना प्रायः आने को ही खोजने का प्रयत्न है। ॐ "कामायनी" में मनु चाँनी सत्ता प्रकृति के अवनुठन को हटा कर उसके परे आनन्द भरे असीम का स्थान करना चाहता है। * महादेवीजी प्रकृति के बचनों को तोड़ने के लिये उत्सुक हैं।— निरालाजी भी पारिवर्त जगत् के अधकार से परे सत्य को जानने के लिये उत्सुक हैं— "कौन तम के पार दे कह।" अस्तु इन उदाहरणों

X सुनता हूँ इस निस्सल जल में रहती मछली मोतीवाली
पर मुझे हूबने का मय है माती तट की चल जल माली
आएगी मेरे पुलिनो पर वह माती की मछली सुन्दर
सहरों को तट पर बड़ा देखू या उसकी छवि जी भर " (पत)

= अयनाकर प्रसाद "कामायनी" भारतीय भण्डार, इलाहाबाद, अष्टम
संस्करण सन् २०११ पृष्ठ २६

ॐ महादेवी वर्मा

निद्रुर क्या फला दिया यह उलझना का जाल

आप धपन को जहाँ सब डूबते बेहाल

• अयनाकर प्रसाद "कामायनी" पृष्ठ ६८

चाँनी सत्ता खुल जाय कही, अवनुठन धात्र सवरता सा

त्रिवन्ध्र अन्त कल्लाल मया सहरों में मस्त विचरता सा

— महादेवी वर्मा

तोड़ दा यह मित्रिज में भी देखू उस घोर क्या है

जा रहे त्रिस पंच स पुग कल्प उमका छोर क्या है।

क्यों मुझे प्राचीर बन कर धात्र मेरे श्वाश धरे।

से प्रनीत होता है कि प्रकृति ब्रह्म से मिलन में बाधक है। किन्तु, आधुनिक रहस्यवादी कविया ने प्रकृति को अत्यन्त सहानुभूति की दृष्टि से देखा है। इसका कारण यह है कि प्रकृति प्रायः उनकी साधना का अंग बन कर प्रस्तुत होती है। इस दृष्टि से आधुनिक रहस्यवादी काव्य धारा में प्रकृति चित्रण के रूप में रहस्यवाद का नवीन विकास हुआ है। इसे हम पश्चिम के स्वात्मवाद दर्शन व उपनिषदों के रहस्यवाद का सम्मिलित प्रभाव ही कह सकते हैं जो हिन्दी में रवीन्द्रनाथ की कविताओं के प्रभाव स्वरूप प्रतिफलित हुआ किन्तु उसका विकास स्वतंत्र रूप से ही हुआ।

प्रकृति आधुनिक रहस्यवादी कवि की साधना का अंग बन कर उस परोक्ष सत्ता का संकेत देती है। प्रकृति की व्यष्टिगत सत्ता में समष्टिगत चेतना का अनुभव कर कवि सहज मुग्ध हो जाता है तथा यह मौगध्य भाव जिनासा में परिणत हो जाता है।

आधुनिक रहस्यवादी काव्य में प्रकृति केवल परोक्ष सत्ता का संकेत ही नहीं देती बल्कि वह स्वयं भी साधिका बन जाती है और परोक्ष सत्ता से अद्वैतता प्राप्त करने के लिये साधना रत खिाई देती है। प्रसाद समस्त प्रकृति को ब्रह्म की खोज में मग्न देखते हैं। * महादेवीजी 'शेकाली' को सकुचाते, लज्जाते और खिलते हुए देखती हैं तथा उसके तप पर सार्विको' को लक्ष्म कर कहती हैं मानो वह अपन प्रियतम से मिलने की भातुर है। † इसी प्रकार निरालाजी 'रूखी डाल' कविता में 'डाल' को पावती का प्रतीक मानते हैं जो शिव को प्राप्त करने के लिए तपस्या में लीन है। × अद्वैतता प्राप्त करने की साधना में लीन प्रकृति से, आधुनिक रहस्यवादी

☐ सुमित्रानन्दन पंत

में चिर उत्कण्ठानुर
जगती के अखिल चराचर
यों भीन मुग्ध किसक बल

* जयशंकर प्रसाद 'वामाधनी' पृ० २६
महनील इस परम व्योम में
अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान
प्रह नक्षत्र और विद्युत्कण
किसका करत हैं संचान

† महादेवी वर्मा 'आधुनिक कवि' १ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुर्थ संस्करण सवत २००६ प० १६

पुलक पुलक कर मिहुर सिहुर तन
भाज नयन घाते क्यों भर भर

× सूयकांत त्रिपाठी 'निराला' गीतिका भारतीय मण्डार इलाहाबाद, तृतीय संस्करण सवत २००५ प० १६

कवि सद्म ही साक्षात् घनुमय करो सगता है । साक्षात् घनुमय करने के साथ ही रहस्यवादी कवि प्रकृति को भावों की रंग पाता है । प्रसाद जी महात्रों का अपनी ज्वालामयी जलन के स्फुलिंग के रूप में देखते हैं जो 'महा-मिस्र' के चिह्न रूप धरणिष्ठ हैं । महादेवी साध्य गगन में धपन ही भावों को बितरा पाती है । X

ईसाई सतों का रहस्यवाद

भाषुनिक कविता में साध्यात्मिकता के आरोप का एक घय स्रोत ईसाई सतों की रहस्यवादी भावना है । योरूपीय रोमांटिक प्रतिवतन की पच्छूमि में ईसाई सतों की रहस्यवादी साधना थी । रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार 'ईसाई सतों के छायाभास तथा योरूपीय नाट्य क्षेत्र में प्रवृत्त साध्यात्मिक प्रतीरवा' के अनुकरण पर रवी आन के कारण बंगाल में ऐसी कविताएँ छायावाद कही जाने लगीं ।' + डा० हजारिप्रसाद द्विवेदी का कथन है 'यह कहना तो ठीक नहीं कि छायावादी कवि ईसाई सतों के नीरवतावाद से प्रत्यक्षत प्रभावित थे परन्तु यह सत्य है कि योरूपीय पुनर्जागरण के समय मध्य-युग के ईसाई सतों की रहस्यवादी साधना ने उसी श्रेणी के एक भद्र साध्यात्मिक नीरवतावाद को जन्म दिया था जो भारतीय पुनर्जागरण के समय दिखाई पडा । उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पडा था और उस काल के साहित्य से छन-कर वह प्रभाव बंगला व हिन्दी के भाषुनिक साहित्य में भाया था । बंगला में भी उसका विरोध हुआ और हिन्दी में तो हुआ ही ।' •

☐ जयशंकर प्रसाद 'भाषु भारतीय भण्डार इलाहाबाद नवम संस्करण सवत २००६ पृष्ठ ६

ये सब स्फुलिंग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिह्न हैं केवल
मेरे उस महा मिस्र के

X महादेवी वर्मा 'भाषुनिक कवि १ हि सा स प्रयाग स च २००६ पृष्ठ ८७

फलते हैं साध्य नम म भाव ही मेरे रगीले
तिमिर की धीपावली है रोम मेरे पुलक गीले

+ रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नागरी प्रचारिणी समा, काशी तेरहवा संस्करण स २०१८ पृष्ठ ६३७

• डा हजारि प्रसाद "छायावाद की प्रेरणा-भूमि" लेख 'भवतिका,' छायावाद-स क पृष्ठ २११

रहस्यवाद की भावना मूलतः सामी मजहबा की देन है। यहूती, ईसाई आदि मजहबों के अनुसार हाल, मूर्छा या उमाद की अवस्था से इलहाम के रूप में ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति होती है। सेंट बर्नार्ड (St Bernard) ने उमाद की अवस्था में होनेवाली ज्ञान की उपलब्धि के विषय में कहा है कि आत्मा के हर्षोमाद की अवस्था में क्षण मात्र के लिए विद्युत् प्रकाश के सदृश परम तेज ईश्वर से प्राविभूत होकर ज्योतिर्वितरण सा उसमें प्रविष्ट होता है। उस समय उसकी चकाचौंध को मद करने के लिए भयवा उसे दूसरों के लिए प्रेषणीय बनाने के लिए वह दिव्य, पारिव जगत् के रूपों के समान, जो उससे भिन्न होते हैं, भासित होने लगता है। वह परम शुद्ध व ज्योतिर्मान् किरण अपने म द-से रूप में सह्य बन जाती है तथा उसे दूसरों के प्रति निवेदित करना अधिक सरल हो जाता है।* तुरीयावस्था में प्रतीकों के रूप में होने वाला यह छायाभास (Phan-
tasma) ही ईसाई रहस्यवादियों द्वारा उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान है इस आध्यात्मिक ज्ञान को ईसाई रहस्यवादियों ने बाइबल के प्रतीकों से व्यक्त किया है जिसमें परमात्मा और आत्मा के सम्बन्ध को व्यक्त करने पति और पत्नी का प्रतीक मुख्यतया अपनाया गया है। सेंट जॉन (St John) आध्यात्मिक जागृति के लिए आत्मा की 'घोर अंधेरी रात' को आवश्यक बतलाते हैं। जिस प्रकार भौतिक प्रयोग में प्रकाश की अधिकता अंधकार में परिणत हो जाती है उसी प्रकार रहस्यानुभूति के क्षणों में आत्मा अंधकार का अनुभव करती है। इसका कारण ईश्वर का जिनासु आत्मा में अपने को विलय करना नहीं है वरन् आत्मा उसके ज्योतिमय स्वरूप के दिव्य दशन का भार वहन करने में अपने को असमर्थ पाती है। यह घनीभूत अंधकार की रात्रि वह वेदना है जो आत्मा और विश्वात्मा के प्रेम मिलन के लिये उद्दीपन का संचार करती है। जब सभी सम्भव प्रयत्नों से बहिर्मानव घतमुखी बन जाता है तब ईश्वर नग्न रूप में शुद्ध आत्मा की गहराइयों में उतरता है और उससे तादात्म्य करता है। सेंट बर्नार्ड (St Bernard) ने ईश्वर को स्वर्गीय दुल्हा और आत्मा की दुल्हन के रूप में चित्रित किया है। सेंट टेरेसा और सेंट जुआन डे ला क्रूज

* St Bernard quoted in Encyclopaedia of Religion and ethics 'Mysticism'

When something from God has momentarily and as it were with the swiftness of a flash of light shades its rays upon the mind in the ecstacy of Spirit, immediately whether for the tampering of this great radiance or for the sake of imparting it to others they present themselves certain imaginary likeness of lowerings suited to the meanings which have been infused from

ने ईश्वर समागम की दृग् घटत्या का निरोधन करी दृग् बताया है कि स्मृति प्राप्ति गवर्गा व शक्तिशाली घाघर्णों से घात्मा की शक्ति नीरव बन जाती है । तब उत पर घटराति की घनीभूत कासी टाया गटा लगती है और येना की घनीभूत शक्ति घ ईश्वर घात्रगण करता है तथा घात्मा का उद्धार करता है । घात्मा घपने प्रेमी ईश्वर के लिए भाव विह्वल रहती है तथा प्रिया कविणी घात्मा को प्राप्त करने के लिये ईश्वर भी उद्वत हो जाता है । परंतु, हिन्दी की घाधुनिक कविता की रहस्यवाणी घारा पर रवीन्द्रनाथ टगोर की रहस्यवाणी कविताओं के माध्यम से ईगाई रहस्यवाणियों के दाम्पत्य प्रेम प्रतीकों के रूप में प्रभाव प्रतिफलित हुआ ।

ईगाई रहस्यवादिया की तरह घाधुनिक रहस्यवाणी काव्यघारा में दाम्पत्य प्रेम के प्रतीक का विशेष रूप से प्रयोग मिलता है । छायावादी कवियों ने घात्मा और परमात्मा के मधुर सम्बन्ध को धर्यत रमणीय कल्पनाओं के द्वारा व्यक्त किया है । जीव और ब्रह्म का मग घगी सन्ध निराला की तुम और मैं' कविता में व्यजित हुआ है । = महादेवी जी भी इस प्रणय सम्बन्ध को चन्द्रबिम्ब रश्मि, समुद्र और सहर ऋतुरात्र-मधुश्री, चित्र रेखा, राग-स्वर, काया-छाया प्राप्ति के रूप में अभिन्न बतलाती हैं तथा प्रियतम प्रेयसी के प्रणय सम्बन्ध को एक अभिनय मानती हैं । = पतञ्जी की छाया' कविता में दाम्पत्य प्रेम की भावना मिलती है । वे तरु और छाया के सम्बन्ध के रूप में ब्रह्म व घात्मा के सन्ध की समानता देखते हैं तथा विरह दुःख से समान रूप से व्यथित परस्पर गले में बाहें डाल कर प्रिय मिलन की घाकांक्षा व्यक्त करते हैं । प्रसाद जी के 'घासू' काव्य व निज

above by means of which that most and brilliant ray is in a manner shaded and both become bearable to the soul itself and more capable to be communicated

= सूयका त त्रिपाठी 'निराला

तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरजिनी भाषा
तुम नन्दन वन घन विटप और मैं सुल शीतल तल शाखा
तुम प्राण और मैं काया तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी भाषा

= महादेवी वर्मा घाधुनिक कवि १ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग चतुर्थ सस्करण सवत २००६ पृष्ठ ५७

चित्रित तू मैं हू रेखाक्रम, मधुर राग तू मैं स्वर सगम

काया छाया में रहस्यमय, प्रियतम प्रेयसी का अभिनय क्या ?

अलकों के अघकार में तुम कैसे छुप धामोने' गीत में दाम्पत्य प्रेम प्रतीक की व्यञ्जना हुई है ।

रहस्यवादी कवि की भावना अनात प्रियतम की आराधना में अनवरत लीन रहती है । उसका जन्म ही प्रियतम से बिछोने का कारण बन जाता है और इस विरह दुःख का अनुभव करते हुए उसकी आत्मा प्रणय पात्र की खोज में भटकती रहती है । उसकी इस खोज में प्रेम की नाना अनुभूतियाँ सजग हो उठती हैं । जन्म जन्मान्तर में यह खोज चलती रहती है । † अनन्त के पथ पर चलती हुई विरहिणी आत्मा अतः अपनी सांसारिक सीमाओं को तोड़कर स्वयं ही असीम, जिसकी खोज उसका लक्ष्य था का रूप बन जाती है । एक सच्चे रहस्यवादी की आत्मा सांसारिक परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर असीम का स्पर्श करती प्रतीत होती है । महादेवी जी की कविता में यह सत्य हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी काव्यधारा के कवियों की अपेक्षा सर्वाधिक स्पष्ट रूप में प्रकट होता है । श्री रायकृष्णदास लिखते हैं 'कवि की (महादेवी की) आत्मा मानो इस विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेमसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है । उसकी दृष्टि में विश्व की सम्पूर्ण प्राकृतिक शोभा मुपमा एक अनन्त अलौकिक चिर सुन्दर की छाया मात्र है । इस प्रतिबिम्ब जगत् को देख कर कवि का हृदय उसके सलीले बिम्ब के लिए ललक उठा है । उसी एक का स्मरण, चिन्तन एव उससे तादात्म्य होने की उत्कण्ठा महादेवी जी की कविता का प्राण है' ‡ जिस प्रकार अश्रोजी रोमांटिक कवि षडसवर्ष सांसारिक जीवन को निद्रा या मूल मानता है उसी प्रकार महादेवी इस जीवन को 'चिर सुन्दर' से वियोग का कारण मानती है

जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छवास । †

इसी से वे मिलन सुख के गीत गाने में अपने को असमय पाती हैं • अतः जीवन उनके लिए वदना, कसूर और आसुओं की गाथा बन जाता है ।

† महादेवी आधुनिक कवि १ साहित्य सम्मेलन, प्रयाग चतुर्थ संस्करण
संवत् २००६ पृष्ठ ३६

दूर है अपना लक्ष्य महान्

एक जीवन पग एक समान

‡ रायकृष्णदास 'नीरजा' की भूमिका

† महादेवी 'आधुनिक कवि' १ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, चतुर्थ संस्करण
संवत् २००६ पृष्ठ ३३

• वही पृष्ठ ३२,

जन्म ही उसे विरह की रात
सुनावे क्या वह मिलन प्रमात ?

विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात
वेदना मे जम कहणा म मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात 卐

कवियत्री की चिर विरहिणी आत्मा आसुभो के मिस किसी का प्यार उठेलती हुई तथा पलकी मे किसी का सुकुमार सपना लिए प्रणय की अनवरत आराधना मे लीन है। स्मृति ही उसका सम्बल है। प्रिय मिलन की स्मृति अभी वह भूलो नहीं है। प्रकृति मे वह उन मिलन के श्रेय चिह्नों का दख रही है। अत उस मिलन को असत्य या स्वप्न समझनेवालो से वह कहती है कि वह स्वप्न नहीं था अभी तक फूलो मे उसके भासू और उसका हास भरा है। + महादेवी जी विरहिणी आत्मा अपने चिर सुन्दर की मिलन बेला में अनस बर सो जाती है और कीस्वप्न मे प्रियतम अपनी मुस्कान (भोठो पर) आक बर चला जाता है। रहस्यवादी कवि की अनुभूति असल यामिनी मे सोयी उस प्रणयिनी के सदृश होती है जिसे उसका प्रेमी स्वप्न में आकर जगा दे पर जगने पर कोई दिखाई न दे तथा प्रेमी के स्पश सुख की स्मृति में वह युगों-युगो तक लीन रहे। X महादेवी जी की कविता म अज्ञात प्रियतम से मिलन के लिए आतुर विरहिणी का स्वर शत शत गीतों में फूट पडता है। कभी वे उस अज्ञात प्रियतम का पय देखती रात बिता देनी हैं और कभी सोचती हैं प्रिय सुधि मूल गये और पय से अपरिचित वह स्वय जाये भी तो कहा, व कभी विरहातुर होकर पपीहे से 'पी' का पता पूछने लगती है। = और कभी प्राण पिक से 'पी' का नाम सुनाने के लिए अनुराध करती हैं। * कभी नम

卐 वही, पृष्ठ ५३

+ वही पृष्ठ २

कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात
भरे हुए सब तक फूलों म
मेरे भासू उनके हास

X वही, पृष्ठ ८८

कौन धाया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने
याद में उन उ गलिषों की
हैं मुझे अब युग बिताने

= महादेवी, 'यामा' पृष्ठ २१६

रे पपीहा पी कहाँ !

● महादेवी आपुनिव कवि १ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग चतुप
संस्करण सवत २००६ पृष्ठ ६८
आए निर प्रिय नाम रे कहूँ !

की मुस्कान में उन्हें प्रियतम का प्रागमन सुनेत दिखाई देता है ± और भूष नम की मुस्कान में उन्हें प्रियतम के आह्वान का स्वर गूजता सुनाई देता है । कमी वे प्रियतम से अभिसार के लिए दूर देश को जाने के लिए तत्पर होती हैं । और कमी अचकारमय रात्रि में स्वयं प्रियतम ही अभिसार के लिए आतुर हो उठता है । तब वे नम के तारा-दीपों को बुझ जाने का सुनेत करती हैं । ≠ रहस्यवादी कवि के लिए आध्यात्मिक विरह की अनुभूति अत्यधिक प्रिय होती है क्योंकि इससे उसके हृदय में प्रियतम की सुधि प्रतिक्षण बनी रहती है । कबीर उस हृदय को मसान के समान बतलाते हैं जिसमें आध्यात्मिक विरह की धाग न सुलगती हो । महादेवी जी की कविता में विरह साधना साधन न रह कर साध्य भी बन गयी है । जिस प्रकार कृष्ण के वियोग में चिर विरहिणी राधा राधा न रह कर विरहो माद में स्वयं कृष्ण ही बन जाती है उसी प्रकार महादेवी जी को विरह की धाराधना स्वयं धाराध्यमय बना देती है । ≠ फिर भी उनकी कविता में मिलन की अभित आकांक्षा का आभास अवश्य मिलता है और मिलन बेला में वे प्रियतम की भारती उतारने के लिए उत्कण्ठित हो उठती हैं । ≡ इस प्रकार महादेवी जी की कविता में स्मृति, स्वप्न, सकेत, अभिसार, विरह आकुलता मिलन उत्कण्ठा आदि प्रेम की नाना अनुभूतियों का परिचय मिलता है ।

परन्तु महादेवीजी रहस्यानुभूति की विशिष्टता है वेदना प्रेम तथा व्यक्तित्व चेतना । महादेवी जी को पीडा अत्यधिक प्रिय है इसका कारण यही नहीं है कि वह प्रिय को दी हुई है + वरन् इसलिए कि दुःख उनके निकट सम्पूर्ण सृष्टि को

- ± मुस्काता सकेत भरा नम
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ? (वही, पृष्ठ ६५)
- ≠ करुणामय को माता है
तम के परदे में आना
हे नम की दीपावतियों
तुम पल भर को बुझ जाना (वही, पृष्ठ १६)
- ≠ आकुलता ही आज हो गई तमय राधा
विरह बना धाराध्य इत क्या कसी बाधा (वही, पृष्ठ ८३)
- ≡ प्रणत ली की भारती ले
धूम लेखा स्वण अक्षत नील कुमकुम वारती ले
मूक प्राणो में व्यथा की स्नेह उज्ज्वल भारती ले
मिल अरे बड़ आ रहे यदि प्रलय भभावात (वही पृ० १०४)
- + इन ललचाई पलकों पर
पहरा था जब पीडा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीडा का (वही, पृष्ठ ७)

एकसूत्र में बोधनवाला तथा प्रिय की स्मृति को निरन्तर जगाये रखनेवाला है। ज्ञानमार्गियों की तरह महादेवी जी ब्रह्म का निवास अन्तर में मानती हैं पर जिस प्रकार ज्ञानमार्गी इन पर माया का आवरण मानते हैं महादेवीजी प्रियतम को दुःख के भवगुण्ठन से छुप कर मानस में बसने का आह्वान करती हैं। वे प्रियतम को हृदय के मिस कण कण की पीड़ा से परिचित होना चाहती हैं। वे उस 'अमरों के लोक' को भी ठुकरा देती हैं जिसमें वेदना और प्रवसाद नहीं है। प्रेम की पीड़ा से भरी हुई साधना में ही कवियत्री रहती हैं। अज्ञात प्रेमी के लिए यह पीड़ा ही तो उस प्रेमी को महत्व प्रदान करती है। इसके सम्मुख मिलन सुख महत्वहीन है। इस प्रकार, महादेवीजी की कविता में पीड़ा एक यापक भाव है जो सम्पूर्ण सृष्टि को एकसूत्र में बाधती है तथा इसी के सहारे कवियत्री की विरहिणी आत्मा आध्यात्मिक प्रेम के मार्ग पर अग्रसर होती है। महादेवीजी ने कहा भी है, 'मुझे दुःख के दोती रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य के सवेदनाशील हृदय को सारे ससार से अविच्छिन्न सबंध में बांध देता है और दूसरा वह जो कान्त और सीमा के बदन में पड़े हुए अमीम चेतन का अदान है।'

महादेवीजी की रहस्यानुभूति की दूसरी विशेषता है 'यत्कित्व चेतना'। छायावादी वाक्य अन्तर्मुखी व आत्म केन्द्रित है अतः उसमें व्यक्तिक भावना की प्रधानता है। महादेवी जी की कविता में यह वैयक्तिक भावना यत्कित्व चेतना के रूप में व्यक्त हुई है। वे अपने यत्कित्व को छोड़कर प्रियतम से मिलन नहीं

% तुम मानस में बस जाओ
छुप दुःख के भवगुण्ठन से
मैं तुम्हें हृदय के मिस
परिचित हो लू कण कण से (वही, पृष्ठ २८)

≡ क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी बरुणा का उपहार
रहने दो हे देव ! धरे
यह मेरा मिटने का अधिकार (वही, पृष्ठ २३)

● चिन्ता क्या है हे निमम
बुझ जाये दीपक मरा
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य मैं घेरा (वही, पृष्ठ ७)

चाहतीं । + यही कारण है कि वे मिलन से भी विरह वेदना को अधिक प्रेम करती हैं । X मुक्ति या मिलन की कामना महादेवीजी के काव्य में अलभ्य है वे ब्रह्म की कलि और जीव को उसकी सौरभ के सदृश मानती हैं जो लौट कर कलि में नहीं जाती फिर भी कलि से उसका सम्बन्ध अटूट है । = पतंग जल कर दीपकमय हो जाता है विरहाकुल राधा तन्मय होकर स्वयं कृष्ण बन जाती है उसी प्रकार महादेवी विरह वेदना में स्वयं छोकर प्रिय को पा जाती हैं । C विरह की रात उनके लिए मिलन का प्रात बन जाती है ।— भक्त चाकी कविता में मिलन की आकांक्षा प्रायः व्यक्त नहीं हुई है । यही नहीं जहाँ मिलन स्थल के जाने का अदेशा होता है वे चीक चठती हैं और चाहती हैं कि क्षितिज की तरह वह स्थल धीरे धीरे चला जाय । वे वियोग के पल रोते हुए बिता देना चाहती हैं पर संयोग

- + मिलन मन्दिर में उठा दू
जो सुमुख से सजल गुण्डन
में मिट्टू प्रिय म मिटा ज्यो तप्त सिकता में सलिल करण
सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अमिमानी में (वही, पृष्ठ ६२)
- X मिलन का मत नाम ले रे
में विरह मे चिर हूँ (वही, पृष्ठ ८८)
- = वह सौरभ हूँ मैं जो उठ कर
कलिका में लौट नहीं पाता
पर कलिका के ही नाते प्रिय जिसको जग न सौरभ जाना
(वही, पृष्ठ ७१)
- C पा लिखा मैंने किसे इस
वेदना के मधुर त्रय में
कौन तुम मेरे हृदय में ? (वही पृष्ठ ११)
- गूजता उर में न जाने
दूर का सगीत सा गया
भाज निज को लो मुझे
सोया मिला विपरीत सा क्या ।
क्या नहा घाई विरह निशि
मिलन मधु दिन के उदय में (वही पृष्ठ ५२)

के समय पुन जाना चाहती है जिससे मिलन का अवसर पता जाय । ✕ मद्यनि प्रियतम से दूरी उन्हें रगमय प्रतीत होती है क्योंकि जब तक यह दूरी है तभी तक यह सृष्टि की विषमय त्रीडा चलती रहेगी । फिर भी दूर रह कर भवने से उनका मन नहीं मानता इसे स्वय महादेवी जी ने स्वीकार किया है • अत यह अग्निमा निनी प्रेमिका अगना निजय्य देकर प्रियतम से मिलना तो नहीं चाहती पर यह अग्रय चाहती है कि वे निरन्तर उसकी आराधना में दीपक की तरह जलनी रह और एक दिन प्रियतम आकर अपनी पू क से उग दीपक को सुभा देखो उसकी रात हो प्रियतम को पता दे = प्रपवा जैसी कि आपसी की मागमती की आकांक्षा है यह अपने शरीर को जला कर राग कर देना चाहती है और पवन से कहती है कि उग रात को उठा कर प्रियतम के पय पर गिरा दे जिससे आपद वह प्रियतम के पावों का स्पर्श पा सके उसी प्रकार महादेवी अपने हृ य को तिल तिल जलाकर राग बना देना चाहती हैं और उस विभूति में पद चिह्न बनाने के लिए प्रियतम का आह्वान करती है । + इतना होने पर भी यदि प्रियतम स्वय ही आकर पय में मिल जायें सब विश्वात्मा की प्रिया को अपने प्रिय से मिलना ही होगा । प्रलय क्लमावात का रूप धर कर आनेवाले प्रियतम में आत्मा रूपी दीपक को पुन जाना होगा । महादेवी जी की कविता में इस मिलन का भी आभास मिलता है ।

✕ इस अचल क्षितिज रेखा से
तुम रहो निश्चल जीवन के
पर तुम्हें पकड़ पाने क
सारे प्रयत्न हो फीके (वही, पृष्ठ २६)

काहू वियोग पल रोते
सयोग समय छिप जाऊ (वही पृष्ठ २६)

• रगमय है व दूरी
छू तुम्ह रह जायगा यह
विषमय त्रीडा अघूरी
दूर रह कर चलना पर मन न मेरा मानता है
(वही, पृष्ठ ६४)

= दीप ही युग युग जलू वह सुभय इतना बता द ।
फू क से उसकी बुझू तब क्षार ही मेरा पता दे
(वही, पृष्ठ ६२)

+ निरत जलता रहने दो तिल तिल
उसकी विभूति में फिर आकर
अपने पद चिह्न बना जाना (वही, पृष्ठ ७१)

निरालाजी के बहुत से गीत दाम्पत्य प्रेम-प्रतीक रूप में रहस्यपूर्ण अनुभूति से सज्जित हैं। 'रुली डाल' में पावती का आरोप कर वे उसे वसत शिव की साधना में रत देखते हैं। यहाँ शिव ब्रह्म के व पावती आत्मा की प्रतीक बन जाती है। 'बादल में भाय जीवन घन' गीत में आत्मा की प्रोप-पतिता का रूप में चित्रित किया गया है। बादल की वर्षा हृदय में प्रभावुर जगाती है। शबलिनी जाकर उन्धि से मिल जाती है। तब आत्मा का विरह उद्दीप्त हो जाता है और वह विश्वात्मा से जिससे उसने रूप-स्पर्श रस गंध शब्द प्राप्त किये हैं मित्रने के लिए आतु- हो जाती है। (A) 'अस्ताचल रवि, जल छलछल छवि' गीत में रहस्यपूर्ण वातावरण की सृष्टि मिलती है। सध्या समय बहनेवाली पवन पुरानी सुधियों की कहानी कहती है। उस भ्रमर पर दूर नदी में एक नौका बहती जा रही है जिसमें आत्मा रूपी अभिचारिका बठी है। उसी आर्वाँ में प्रियतम का ध्यान और मन में प्राणघन का चिन्तन है। + 'हुआ प्रात प्रियतम तुम जावगे चले' गीत में रात्रि के अंधेरे में विश्वात्मा और आत्मा के प्रगाढ मिलन का सवेत मिलता है। माया रूपी प्रात भालोक के फलने पर आत्मा और ब्रह्म का अलग जान होता है और उनमें भेद दिखाई देने लगता है। माया का भालोक भेद बुद्धि उपजानेवाला है। इस ससार में सभी एक दूसरे द्वारा छले हुए चलते हैं। आत्मा अपने प्रणयी विश्वात्मा को रोक रखना चाहती है। अत ईसाई रहस्यवादियों की तरह कवि मिलन की अंधेरी रात का आह्वान करता है। X 'गीतिका' के अनेक धीतों में निरालाजी के काव्य की यह रहस्यात्मक प्रवृत्ति स्पष्ट है। विरहिणी आत्मा विश्वात्मा के विरह में आसू

(A) सूयरात त्रिपाठी निराला 'गीतिका', भारती मडार
इलाहाबाद, तृतीय संस्करण सवत २००५ पृष्ठ १५

बरम गई जनघार विश्व सब
शैबलिनी पा गई उन्धि निज
मुवत हुए आ स्नेह के क्षितिज
रूप स्पर्श रस गंध शब्द घन

+ ऊपर शोभित मेघ छना सित
भीचे अमित नील जल नीलित
ध्यान नयन मन चिन्तय प्राणघन
किया शेष कर रवि ने अणु (वही, पृष्ठ ६८)

X हुआ प्रात, प्रियतम, तुम जावगे चले
कसी थी रात बंधु ये गले गले
फूटा भालोक
परिचय परिचय पर जग गया भेद, शोक (वही पृ ६६)

बहाती है । = कभी यह यह अनुभव करती है कि वह मायावर तो सभी धारमाओं को प्रेम करता है । % कभी काँच जीवन व प्रकृति व संवेतों से आध्यात्मिक मिलन का स्वर देरता है । +

पतञ्जी की कविताओं में दृश्य प्रेम के प्रतीक की ईसाई रहस्यवादी भावना अधिष्ठ नहीं पायी जाती । पतञ्जी का मन विषय रूप से प्रकृति व दृश्य रूपों के चित्रण में ही रमता है । तथापि कुछ अंशों में उन्होंने आध्यात्मिक प्रेम की भावना को भी व्यक्त किया है । उनकी 'छाया कविता का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं जिसमें छाया को अपने प्रियतम अचकार से मिलने के लिए भातुर दर्शाया गया है और इसी प्रकार कवि की विरहिणी आत्मा चिर तन प्रियतम से अतर्धन होने के लिए व्याकुल है । पतञ्जी की अनेक संक्षिप्त आध्यात्मिक भावना का विश्लेषण करते हुए हम देख चुके हैं कि वे जीवन को स्वर्गिक ज्योति से विभोग मानते हैं । कभी कभी उनकी कविता में आत्मा विरहिणी प्रेमसी का रूप धारण कर लेती है और अनन्त प्रियतम के विरह में भ्रमू बहाने लगती है ।

रामकुमार वर्मा की अनेक कविताओं में भी आध्यात्मिक प्रेम की भावना पायी जाती है । विभोगिनी यह विरह की रात गीत में विभोगिनी आत्मा के लिए जीवा ही विरह बना है और अज्ञात प्रियतम से मिलन के क्षणों की कोई स्पष्ट याद

- = वे गये दुःख भर
वारिद ऋर ऋर ऋर ऋर (वही प ६२)
प्राण धन को स्मरण करते
नयन ऋरते नयन ऋरते (वही पृ ५२)
- % चाहते हो किसको सुन्दर
तुम्हारी अपनी, कौन अपर (पृष्ठ ६०)
- + सुवासना उठी प्रिया
मानत नयना
भवन दीप जला रही
भारती उतार (वही प १०२)
कँसी बजी बीन
सजी मैं दिन दीन ?
मलिन मन दिवस-निशि तू क्यों रही क्षीण (वही पृ १०४)
खुलती मेरी शंफाली हसती री डाली डाली
मुदी जब जग ने भासों खोली री इसने पानों
उड़ने को नभ को तारे, उपवन की परिया भाली (वही पृ १०६)

भी नहीं आ पाती । + फिर भी प्रियतम की स्मृति को लिए वह अभिलाषा जगाये है । × प्रिय विरह का दश उक्त रह रहे कर चुम्बता है । प्रियतम उसे भूल गया है तो वह क्या गीत गाय । = प्रम-मिलन की बात उसे स्वप्न सी प्रतीत हाती है । (A) परन्तु, इस विरह की घोर अंधेरी रात्रि में भी उसे प्रियतम का सकत दिखाई दे जाता है । (B) कभी कवि व दावन के रास-रग के रूप में आत्मा व अनात प्रियतम के साथ अभिसार का स्मरण करता है । — कभी वह परोक्ष सता क ज्यादा चित्र प्रस्तुत करता है जिसका श्रीडा-स्यल छोटा-सा ससार न होकर महाविश्व है । ✓ रामकुमार वर्मा की कविता में आत्मा अनात के पथ की यात्रा में लीन है । अनात प्रियतम से मिलन ही इस यात्रा का अंत सूचित करना है । इस अनात प्रियतम को उहोंने प्रिय व प्रिया दोनों नामों से सम्बोधित किया है । वर्मा जी ने अपनी कविता में आध्यात्मिक मिलन के आह्लाद को व्यक्त किया है । % उनकी रहस्यवादी

+ रामकुमार वर्मा 'आधुनिक कवि ३, हिंदी साहित्य सम्मेलन,

प्रयाग द्वितीय संस्करण सवत २००३ पृष्ठ १८

कब मिले थे वे-तुम्हें क्या है न कुछ भी याद

× दूर बसे हो, केवल स्मृति ही आकर यहा बसी है

प्राणों के कारण मे तुमने पीडा यहा कसी है

अभिलाषा तर में विकसित हो

दो दिन में मुझको ? (वही पृष्ठ ७)

भूल कर भी तुम न आये (वही, पृष्ठ १३)

= प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊ (वही, पृष्ठ ११)

(A) देव मैं अब भी हूँ अनात

एक स्वप्न बन गयी तुम्हारे प्रेम मिलन की बात (वही पृष्ठ ३३)

(B) रजनी के विस्तृत नम को मैं हृग में भर लेता

एक एक तारे को कितने भाव युक्त कर देता

उसी समय अर्धोत्त एक आता आतापन द्वारा

मैं क्या समझू मुझे मिला सकेत तुम्हारा (वही, पृ १२)

— वही, पृष्ठ ६०

✓ वही पृष्ठ १०४

% जब तुम आय हो एक बार

तब मैंने जाना है जीवन बन गया मिलन का एक द्वार (वही, पृ १२)

मैं तुमसे मिल गया प्रिय

यह है जीवन का अंत

इसी मिलन का गीत कोकिले

गा जीवन पयंत

(वही, पृष्ठ ५७)

बहाती है। = कभी वह यह अनुभव करती है कि वह मायावर तो सभी धारमात्रो को प्रम करता है। % कभी कवि जीवन व प्रकृति व सनेतों से धार्म्यात्मिक मिलन का स्वर छेदता है। +

पतञ्जी की कविताओ म दग्गत्य प्रेम के प्रतीक की ईताई रहस्यवानी भावना अधिक नहीं प यो जाती। पतञ्जी का मन विशेष रूप से प्रकृति व दृश्य रूपों के चित्रण मे ही रमता है। तथापि कुछ श्रयो म उहोंने धार्म्यात्मिक प्रेम की भावना को भी व्यजित किया है। उनकी 'दाया कविता का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं जिसमें दाया को अपने प्रियतम अघकार से मिलने के लिए भातुर दर्शाया गया है और इसी प्रकार कवि की विरहिणी भात्मा विर तन प्रियतम म अन्तध न होने के लिए व्याकुल है। पतञ्जी की बालक राबधी धार्म्यात्मिक भावना का विवेचन करते हुए हम देख चुके हैं कि वे जीवन को स्वर्गिक ज्योति से वियोग मानते हैं। कभी कभी उनकी कविता मे भात्मा विरहिणी प्रियसी का रूप धारण कर लेती है और अनन्त प्रियतम के विरह म धामू बहाने लगती है।

रामकुमार वर्मा की अनेक कविताओ म भी धार्म्यात्मिक प्रेम की भावना पायी जाती है। वियोगिनी यह विरह की रात गीत मे वियोगिनी भात्मा के लिए जीवन ही विरह बना है और अज्ञात प्रियतम से मिलन के क्षणो को कोई स्पष्ट याद

= वे गये दु ख भर
वारिद भर भर भर भर
प्राण धन को स्मरण करते
नयन भरते नयन भरते
(वही प ६२)

% चाहते हो किसको सुन्दर
मुम्हारी अपनी, कौन अपर
सुवासना उठी प्रिया
(वही प ५२)

+ सुवासना उठी प्रिया
धानत नयना
भवन दीप जला रही
भारती उतार
(पृष्ठ ६०)

कसी बजी बीन
सजी में दिन दीन ?
मलिन मन दिवस-निशि तू क्यों रही क्षीण
खुलती मेरी शफाली हसती री ड ली डाली
(वही प १०४)

मुदी जब जग ने भापें खोली री इसने पापें
उठने को नम को तारे उपवन की परिया झाली
(वही प १०६)

भी नहीं आ पाती । + फिर भी प्रियतम की स्मृति को लिए वह भूमिलापा जगाये है । × प्रिय विरह का देश उसे रह रह कर चुभता है । प्रियतम उसे भूल गया है तो वह क्या गीत गाय । = प्रम-मिलन की बात उसे स्वप्न सी प्रतीत होती है । ☹ परन्तु, इस विरह की घोर अंधेरी रात्रि में भी उसे प्रियतम का सकेत दिग्वार्द दे जाता है । ☒ कभी कवि वृंदावन के रास-रग के रूप में आत्मा का अनात प्रियतम के साथ अभिसार का स्मरण करता है । — कभी वह परोक्ष सता के ज्याति चित्र प्रस्तुत करता है जिसका श्रीडा-स्थल छोटा सा ससार न होकर महाविश्व है । ✓ रामकुमार वर्मा की कविता में आत्मा अनात के पथ की यात्रा में लीन है । अनात प्रियतम से मिलन ही इस यात्रा का अन्त सूचित करता है । इस अनात प्रियतम को उन्होंने प्रिय व प्रिया दोनों नामों से सम्बोधित किया है । वर्मा जी ने अपनी कविता में आध्यात्मिक मिलन के आह्लाद को व्यक्त किया है । % उनकी रहस्यवादी

+ रामकुमार वर्मा आधुनिक कवि ३, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
प्रयाग द्वितीय संस्करण सन् २००३ पृष्ठ १८

कब मिले थे वे-तुम्हें क्या है न कुछ भी याद

× दूर बसे हो, केवल स्मृति ही आकर यहाँ बसी है
प्राणों के कण कण में तुमने पीड़ा यहाँ कसी है
भूमिलापा तरु में विकसित हो

दो दिन में मुझका ? (वही पृष्ठ ७)

भूल कर भी तुम न आये (वही, पृष्ठ १३)

= प्रिय तुम भूले में क्या गाऊ (वही, पृष्ठ ११)

☹ देव मैं अब भी हूँ अनात

एक स्वप्न बन गयी तुम्हारे प्रेम मिलन की बात (वही, पृष्ठ ३३)

☐ रजनी के विस्तृत नभ को मैं दृग में भर लेता

एक एक तारे को कितन भाव युक्त कर देता

उसी समय खद्योत एक आता वातायन द्वारा

मैं क्या समझू मुझे मिला सकेत तुम्हारा (वही, पृष्ठ १२)

— वही, पृष्ठ ६०

✓ वही पृष्ठ १०४

% जब तुम आये हो एक बार

तब मैंने जाना है जीवन बन गया मिलन का एक द्वार (वही, पृष्ठ १२)

मैं तुमसे मिल गया प्रिये

यह है जीवन का अन्त

इसी मिलन का गीत कोकिले

या जीवन पयंत

(वही, पृष्ठ ५७)

कविताओं में प्राधुनिक रहस्यवाद की व्यक्तित्व चेतना की प्रवृत्ति भी पायी जाती है। व्यक्तित्व का अभिज्ञान रहते हुए प्राध्यात्मिक मिलन की मानन्दानुभूति ही उनके अनुसार रहस्यवाद की अभिव्यक्ति है। अतः उनके एक गीत एक दीपक कण हूँ में आत्मा और परमात्मा के मिलन का दीपक और सूर्य की ज्योति के मिलन के सदृश बताया गया है, दीपक का प्रकाश सूर्य की ज्योति में लीन हो जाता है तथापि दीपक का अस्तित्व नष्ट नहीं होता। —

अस्तु प्राधुनिक युग की रहस्यवादी कविता में हेगेलीय अध्यात्मवाद के अनुसार ब्रह्म (Absolute) को विश्व की प्राणभूत सत्ता माना गया है तथा काल (Time) की अनन्तता के दर्शन कर मृत्यु को कमनीय रूप में चित्रित किया गया

— कबीर के रहस्यवाद की व्याख्या करते हुए इवेनिन अंडर हिल (Evelyn Under Hill) लिखती हैं The soul's union with him (Kabir) is a love union, mutual inhabitation that essentially dualistic relation which all mystical religions express, not a self-mergence which leaves no place for personality. This external distinction, the mysterious union in separateness of God and soul is a necessary doctrine of all sane mysticism, for no scheme which fails to find a place for it can represent more than a fragment of that soul's intercourse with the spiritual world.

Rabindra nath Tagore 'Poems of Kabir' भूमिका लेखिका—
(Evelyn Under Hill २९)

डा. रामकुमार वर्मा भी रहस्य साधना में अनन्त मिलन के अवसर पर प्रिया रूपिणी आत्मा के व्यक्तित्व की अलग सत्ता में विश्वास करते हैं। उन्होंने 'कबीर का रहस्यवाद' पुस्तक में लिखा है : "अद्वैतवाद व रहस्यवाद में कुछ भिन्नता है। अद्वैतवाद में मिलाप की भावना का ज्ञान भी नहीं रहता रहस्यवाद में यह मिलाप एक उल्लास की तरंगबन कर आत्मा में जागृत रहता है।—व्यक्तित्व का अभिज्ञान रहते हुए इस मिलाप की अनुभूति ही रहस्यवाद की अभिव्यक्ति है।" सूर्य व दीपक के रूपक में स्वयं उनके काव्य में आत्मा रूपी किरण के व्यक्तित्व की रक्षा का भाव स्पष्ट है,

नव प्रभा लेकर चला हूँ
पर जलन के साथ हूँ मैं
मिद्धि पाकर भी तुम्हारी
साधना का ज्वलित क्षण हूँ

है। काल की अनन्तता की अभिव्यक्ति में भारतीय दशन क पुनजन्म सिद्धांत का भी समावेश हुआ है। घासल रोमांटिक का य के प्रभाव स्वरूप आधुनिक रहस्यवादी कविता में बालक के प्रति स्वर्गिक भावना का विकास हुआ है। सर्वात्मवादी दशन के प्रभाव-स्वरूप प्रकृति परोक्ष सत्ता की ओर सवेत करती है एवं स्वयं भी परोक्ष सत्ता से मिलने की साधना में लीन है। ईसाई मतों के रहस्यवाद के प्रभाव स्वरूप प्रियतम और प्रेयसी क प्रतीक रूप में प्रेम की अनेक अनुभूतियों का चित्रण किया गया है—किंतु, आध्यात्मिक अनुभूति के बदले प्रायः लौकिक प्रेम भावना का आरोपण भी हुआ है। इस युग की कविता मूलतः व्यक्तिक कविता है अतः आत्मा के परोक्ष सत्ता से मिलन में भी कवि की व्यक्तित्व चेतना बनी रहती है।

अभिव्यजनावाद

हिन्दी साहित्य में आलोच्य-काल में कला शब्धी अनेक वादा में 'अभिव्यजनावाद' की अत्यधिक चर्चा रही। क्योंकि अभिव्यजनावाद कल्पना को प्रधानता देता है जो छायावादी कविता की प्रमुख विशेषता है। 'अभिव्यजनावाद' क प्रवक्त क इटली के दार्शनिक बेन्डेटी क्रोचे थे।

क्रोचे ने अपनी पुस्तक 'मानस दशन' (Philosophy of the spirit or mind) में अपने दार्शनिक विचारों को प्रकट किया है। यह पुस्तक सौंदर्य शास्त्र (Aesthetic as the science of expression) तर्कशास्त्र (Logic as the science of pure concept), व्यवहार दशन (History, its theory and practice) प्रभृति जिलों में प्रकाशित हुई है। क्रोचे के मत में मन से अलग सत्य का कोई अस्तित्व नहीं है। उनका कला सिद्धांत जिस 'अभिव्यजनावाद' को राजा दी जाती है वस्तु और रूप में कोई अंतर स्वीकार नहीं करता।

क्रोचे सत्ता को मानस व्यापार रूप मानते हैं। द्रव्य (matter स्वरूपहीन होता है। मन एक साचे की तरह है जो कि द्रव्य को आकार प्रदान करता है। रूपहीन द्रव्य के मानव मन के समर्थ उपस्थित होने पर मानस व्यापार आरम्भ होता है। अरूप द्रव्य साचेवाने मन से तादात्म्य ग्रहण कर साकार रूप धारण करता है। मानस-व्यापार द्वारा द्रव्य को जो मुसम्पूर्ण रूप मिलता है क्रोचे उसे ही सत्ता के नाम से अभिहित करने हैं। अतः क्रोचे के मन में दृश्य जगत् की कोई सत्ता नहीं है। मन की प्रक्रिया ही दृश्य जगत् को स्वरूप प्रदान करती है। यह मानस व्यापार एक आध्यात्मिक प्रक्रिया (spiritual activity) है परंतु, इस मानस व्यापार के लिए द्रव्य की सदैव आवश्यकता बनी रहती है। क्रोचे का कथन है 'तथापि विना द्रव्य के हमारी आध्यात्मिक प्रक्रिया अपने भाव रूप को सुसम्पूर्ण आकार प्रदान करने में असमर्थ रहती है।' * इस तरह क्रोचे आदर्शवादी होते हुए भी जगत् और पदार्थ का मिथ्या या माया नहीं मानते।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार ज्ञान, इच्छा और सत्य मानस व्यापार हैं। जोड़े मन के दो व्यापार मानते हैं—ज्ञान और क्रिया। क्रिया के अन्तर्गत इच्छा और सत्य दोनों हैं। जोड़े के मत में ज्ञान मन का प्रथम मुख्य व्यापार है। मन की जीवनी शक्ति क्रिया के रूप में प्रकट होती है। क्रिया का आधार ज्ञान है। इस ज्ञान के दो स्वरूप हैं—स्वयं प्रकाश और प्रमा। स्वयं प्रकाश ज्ञान कल्पना अन्य तथा व्यक्ति का होता है और मूर्ति विधान करता है, प्रमा या साक्षिक ज्ञान बुद्धि द्वारा परिवर्तित होता है। कला का सबंध स्वयं प्रकाश से है। मन पर प्रतिक्रिया होनेवाली वस्तुओं की अनुभूति धनेरूप रूपों में हो सकती है। कभी यह ज्ञान संवेदन (Sensation) बन कर रह जाते हैं। दृश्य वस्तुओं का दृश्य संवेदन के रूप में प्रतिबिम्बित होना मन की निष्क्रियता प्रकट करता है। कलाकार का मन निष्क्रिय मन नहीं है। मन की सक्रियता की अवस्था में दृश्य जगत् का जो प्रभाव उस पर प्रतिबिम्ब रूप में पड़ता है उसी की अभिव्यञ्जना कला है। मन स्वामाविष्ट है कि जोड़े के कला सिद्धांत में कल्पना उद्वेग की प्रधानता है। कलाकार कहता है कि द्वारा मन वस्तुओं का स्वरूप गढ़ता है। कल्पना वह शक्ति है जिसके

“कला क्या है ?” जोड़े के शब्दों में, “वे अत्यन्त सचेत मन और सरल शक्तियों में फूट तो कला दशन या स्वयं प्रकाश है। कलाकार एक बिम्ब या स्वप्न को गढ़ता है और वे जो उसकी कला का आस्वादन करते हैं अपनी दृष्टि को उस और

केन्द्रित करते हैं जिधर कलाकार इंगित करता है। उस बिम्ब के माध्यम से देखते हैं जिस उतने लोल क्रिया है और स्वयं प्रकाश में उस मूर्ति को पुनः गढ़ते हैं।* प्रत्येक जोड़े स्वयंप्रकाश और कलात्मक तथ्य की अभिव्यञ्जना है।

स्वयं प्रकाश प्रतिवापन अभिव्यञ्जित होना है। कला अनुभूति की अभिव्यञ्जना है और स्वयंप्रकाश भी वही है। अतः दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। कलाकार और साधारण प्राणी के स्वयंप्रकाश में विशेष अंतर नहीं होता। बात यह है कि कुछ लोगों में आत्मा की विशेष परिणित दशाओं में अभिव्यञ्जना करने की अधिक योग्यता और अधिक प्रवृत्ति होती है।” + इन्हें हम कलाकार के नाम से पुकारते

* E F Carrit Philo. op'ns of Beauty' Croce quoted Pp 22
What is art / I shall reply in the brief est and simplest terms,
that art is vision or intuition The artist produces an image or
dream and those who appreciate this art turn their eyes in the
direction he has indicated look through the loop holes which he
has opened and reproduce in themselves that image

+ B Croce : Aesthetics Pp 22
Certain men have a greater aptitude and more frequent
inclination to express fully certain complex states of the soul

है। श्रोत्र के अनुसार हममें से प्रत्येक व्यक्ति कुछ भ्रमों में कवि, चित्रकार आदि है। प्रायः कहा जाता है कवि बनने नहीं पना होता है परन्तु, वस्तुतः सत्य यह है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति जन्म से कवि होता है। हा, कुछ जन्म से ही महान् कवि होते हैं, कुछ साधारण परन्तु हमारी जाति का प्रत्येक प्राणी जन्मजात कवि भवण्य होना है और इसी कारण हम कलाकार के मानसिक जगत् से तात्काल्य स्थापित करने में समय हो पाते हैं।

किसी रचना के कविता कहलाने के लिए उसमें दो बातें आवश्यक हैं—प्रथमतः वह भावना जो उसमें व्याप्त है और द्वितीय बिम्बों का सश्लिष्ट रूप जो उस कविता के द्वारा हमारे सामने प्रकट होता है। श्रोत्र का कथन है कि यह दोनों तत्त्व अतन्त अलग अलग नहीं हैं। भाव कविता में स्वयं मूल रूप में प्रकट होते हैं। अतः कविता न भावना है, न मूल रूप, न दोनों का संयोग ही वरन् वह भावों का चिंतित स्वरूप (contemplation of feelings) अथवा शुद्ध स्वयं प्रकाश (pure intuition) है—शुद्ध अर्थात् सत्यासत्य और इतिहास के मापदण्ड से परे। श्रोत्र के मत में कवि के लिए विषय चुनने की बात हास्यास्पद है। यदि वह चुन सकता है तो उन्हीं विषयों से जो अभ्यन्तर में पहले ही अभिव्यजित हो चुके हैं। अतः श्रोत्र के अनुसार कला रूप केवल रूप मात्र है—'Form and nothing but form' कला के मूल्यांकन के समय हमें यह देखना चाहिए कि प्रत्येक रचना शुद्ध स्वयं प्रकाश है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त जो तत्त्व उस रचना में पाये जायेंगे वे चाहे अथ दृष्टिकोण से कितने ही महत्वपूर्ण हों पर कला की दृष्टि से रसायनिक यौगिक (compound) में मिले हुए बाह्य पदार्थों के समान होंगे जो अनिवाद्य न होकर अप्रासंगिक हैं।

श्रोत्र का मत है कि स्वयं प्रकाश की स्थिति अनिवाद्यत अभिव्यजना के रूप में ही होती है। 'आत्मा इसी रूप में आत्मा है कि वह शरीर भी है इच्छा इसी रूप में इच्छा है कि उसमें हाथ-पद त्रिलत हैं या बार्म होता है। इसी तरह, स्वयं प्रकाश भी इसी रूप में स्वयं प्रकाश है कि इसी काय में वह अभिव्यजना भी होता है। एक मूर्ति जो अभिव्यजित नहीं होती अर्थात् जो वाणी सगीत, रेखा चित्र, मूर्ति या शिल्प नहीं है—वाणी जो कम से कम स्वयं को कही गयी है गीत जो कम से कम अपने ही सीने में गूँज उठा है, रेखा और रंग जो कल्पना में देखे गए हैं और जिसमें सम्पूर्ण आत्मा और जीव रंग गए हैं, ऐसी मूर्ति है जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं।" +

+ Encyclopaedia Britannica B Croce Aesthetic Pp 226

The soul is a soul in so far as it is a body, the will is only a will in so far as it moves arms and legs, or is action intuition is only intuition in so far as it is in that very act express

कला विज्ञान के क्षेत्र में स्वयं प्रकाश्य और अभिव्यजना की अभिव्यक्ति स्पष्ट है। श्रोत्रे का मत है कि अपने मूल रूप में यह समस्या वहीं है जो 'ज्ञान के क्षेत्र व अर्थ विभागों में प्रकट होती है—आभ्यन्तर और बाह्यतः की' पदार्थ और मन की आत्मा और शरीर की इच्छा और काय की और इस समस्या को इस तरह रखने में दार्शनिकों को एक तीसरी शक्ति ईश्वर' की स्थापना करनी पड़ी है। कला विज्ञान इस प्रकार द्वैत भावना को दूर करके आध्यात्मिक जीवन की एकता को स्थापित करता है तथा परमवाद (Absolute spiritualism) की ओर उन्मुख करता है।

स्पष्ट है श्रोत्रे अभिव्यजनाविज्ञान को आभ्यन्तर मानते हैं। उनका कथन है कि जहाँ कवि ने कविता का शब्दों में अभिव्यक्ति कर अपने प्रति निवेदन कर दिया वहाँ कविता पूर्ण हो गई। जब वह लिखने बैठता है या दूसरों को सुनाने लगता है तो वह कला के क्षेत्र से बाहर व्यवहार के क्षेत्र में चला जाता है। वास्तव में टेक्नीक कला का अंतर नहीं है। कला और टेक्नीक के विभेद की बुलाना विशेषतः उन नपुंसक कलाकारों को प्रिय लगता है जो बाह्य पदार्थों और उपायों तथा नए आविष्कारों के द्वारा उस शक्ति को पाने की भाषा करते हैं जो उनकी सामर्थ्य के बाहर होती है।" +

अभिव्यक्त तथ्य सदा व्यक्तिगत होते हैं अतः उनकी तुलना नहीं की जा सकती। अथवा अभिव्यजना कम या अधिक सकल होती है परंतु स्थापित आधुनिक आलोचना के मान इस सम्बन्ध में लागू नहीं किए जा सकते। श्रोत्रे के मतानुसार कला एक और अभिव्यक्ति है। कविता की एक भी पंक्ति में संगीत चित्र मूर्ति और शिल्प कला के सभी गुण मिल सकते हैं। यदि शब्दों रेतानों

ion An image that does not express that is not speech song drawing, painting sculpture, architecture, speech at least murmured to oneself song at least echoing within one's own breast line and colour seen in imagination and colouring with its own tint the whole soul and organism is an image that does not exist

+ Ibid Pp 266

The confusion between art and technique is especially beloved by those impotent artists who hope to obtain from Political things and practical devices and inventions the help which their strength does not enable them to give themselves

रगा आदि के मिलन को ही कला कहा जाय तो सम्पूर्ण अनुपातों में उनके सम्मिलन के पश्चात् एक दिन कला का अर्थ सुनिश्चित है। अतः वास्तव्य अभिधानों में आधार पर कला का विभाजन अनुचित है। इसी तरह भावनाओं के आधार पर कला का आस, कामद, स्वच्छन्दवादी शास्त्रीय आदि के रूप में किया गया विभाजन भी ठीक नहीं है। कला अनुभूति मात्र नहीं है। दृश्य वस्तुओं के प्रति कलाकार के मन की प्रतिक्रिया इन्द्रिय संवेदन के रूप में नहीं होती।

त्रोचे का अस्तु के रेचन सिद्धान्त (Catharsis) में विश्वास है। कविता के द्वारा कवि अपने भावा का अभिव्यक्त करके एक प्रकार की शान्ति का अनुभव करता है। भावों का चितित स्वरूप आत्मा के व्यापकतर क्षेत्र को आच्छादित कर लेता है। भावना की क्षणिकता के बदले उसमें एक प्रकार की अनन्तता आ जाती है।

त्रोचे के मत में कला का कोई इतिहास नहीं हो सकता। विज्ञान का इतिहास सम्भव है क्योंकि उसमें वस्तुओं के संघर्ष का पान सच्य होता है परन्तु कला वृत्ति स्वयं अपने आप में एक सृष्टि है। अतः यह कहना निरर्थक है कि आदिम काल की रचनाओं में कला उन्नत नहीं है। अन्तर केवल यही है कि द्वैत भाव का स्वयं प्रकाश गत युग के स्वयं प्रकाश से भिन्न है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उन्नत भी हो। कलाकृतियों का सामाजिक पृष्ठभूमि में रखे कर उनका मूल्यांकन करना उचित नहीं। कला के इतिहास में जहाँ तक हो सके वैयक्तिकता को प्रधानता देना आवश्यक है। कलाकृति एक सृष्टि है व्याख्या नहीं प्रतीक है विवरण नहीं। अतः मूल्यांकन का एक ही उपाय है। हमें स्वयं कलाकार के दृष्टिकोण को अपना कर पुनः उस क्रिया को घटित करना चाहिए। त्रोचे का कथन है कि निष्कारण क्रिया और सञ्जन क्रिया में कोई भेद नहीं है। भोक्त और दर्शक अन्तः एक हैं। जाने पर निष्कारण देने के पढ़ने हमें अपने अपने भाव को दाते के स्तर पर उठाना होगा।” ()

सौन्दर्यानुभूति के सम्बन्ध में त्रोचे का कथन है कि सौन्दर्य का बुद्धि या नतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं। अभिव्यजना ही सौन्दर्य है असकन अभिव्यजना अभिव्यजना ही नहीं है। अभिव्यजना या तो होनी है या नहीं। अतः अभिव्यजना ही सौन्दर्य है। सौन्दर्य परिवर्तन में न होकर मानसिक कल्पना का प्रत्यक्षीकरण है। “आँखें जा भिन्न रूप देखती हैं वास्तव में वह मन है जो विभिन्न रूपों में अनुभव, कल्पना और इच्छा करता है प्रकृति उस व्यक्ति के लिए

() B Croce Aesthetics' Pp 119

To judge Dante we must raise ourselves to his level

ही सुन्दर है जो बसाकर की दृष्टि से तुम्हें देखता है। जीव विज्ञान और मनशास्त्र शास्त्र के छात्राधी सुन्दर जीवों और प्रभुता व सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते तथा प्रकृति का जो स्वभाव बसाकर की महत्त्व के बिना हमारे सामने आता है उसमें कुछ भी मोहार्थ नहीं होता ... प्राकृतिक मोहार्थ के सामने सुन्दर जगत्पथ के पास ही मोहार्थ के चरित्र के सामने के सामने है। +

शोध के मत में क्या मन की शक्ति व्याख्यात्मक प्रेरणा है। इस कहे जाते हैं कि ज्ञान का व विज्ञान का अर्थ-विषय व प्रति उसे समीप होकर क्या क्या के लिए विज्ञान को मायता देता है। परन्तु क्या यह कथन सत्य है। इसका, शोध व अनुसार जगत् की सत्ता मानव-व्यापार का ही है। स्वयंप्रकाशय मत का प्रथम तथा मुख्य व्यापार है उक्त बिना प्रमा या साक्षिक ज्ञान सम्भव नहीं है। परन्तु विभिन्न सांख्यिक नियमों को हम एक दूसरे से सम्बन्ध करके क्या नहीं कर सकते। यही मने के लिए जाता है परन्तु उक्त इस समीप में उक्तका सम्पूर्ण जीवन और निजाव प्रत्यक्ष प्रकृति और व्यापकता सम्पूर्ण स्वभाव प्रकट होता है। इसी तरह मनुष्य को यदि माना है तो उसे बसाकर होना व साथ सम्पूर्ण मनुष्य भी होता रहेगा। दशन नीति बसाकर यद्यपि अनुभव एक दूसरे से पृथक् नहीं किए जा सकते। इतिहास उन छोटे मन छोटे विभाग और सुन्दर आत्माओं को नहीं जानता जो महान् कवि हुए ही और न किसी विप्रेयी ही नहीं बरन् बरन् मानवमण्डली की तरह ऐसे साथ इस क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं जिसका कि अतिस मानवीय परम्परा के

+ E F Carrit 'Philosophies of Beauty' Pp 244

Eyes which see differently are in fact the mind which feels and dreams and desires differently Nature is only beautiful for the man who sees it with the eyes of an artist, that zoologists and botanists know nothing of animals and flowers and that natural beauty is revealed to us without the aid of imagination nothing in nature is beautiful man faced with natural beauty is exactly the mythical Narcissus at the pool

(नार्सीसस एक सुन्दर बालक था जो झरने के पास बैठते हुए पानी में अपनी परछाई देख कर उस पर मोहित हो गया। उसने समझा कि पानी में एक सुन्दर बालक है। नार्सीसस ने उसे बुलाने की बहुत चेष्टा की किन्तु जब वह न आया तो झरने के पास ही उसकी चिन्ता करते हुए उसने अपने प्राण त्याग दिए।)

साथ सबध न रहा हो।"† अतः आर्चे के अनुसार 'शुद्ध कला या कला कला के
के लिए' मानतवाले जो व्यक्ति जीवन की कठिनाइयों के प्रति अपनी भावों में
लेते हैं कभी महान् स्रष्टा नहीं हो सकते।

पुनः आर्चे के कला सिद्धांत पर नतिवृत्ता के प्रति उपेक्षाशील होने का आरोप
लगाया जाता है तथा यह भी कहा जाता है कि उसमें हृदय के भावों के लिए समुचित
स्थान नहीं आर्चे के मत में कला अनुभूति की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि अनुभूति के
चितित स्वरूप की अभिव्यक्ति है। अतः आर्चे के अनुसार कला में भावों का स्थान है
पर एक विशिष्ट रूप में, कला और नीति के सबध में यही कहा जा सकता है कि कला
के द्वारा उपदेश दिए जाने की बात तो क्या पूर्व और क्या पश्चिम दोनों जगह सभ्यो
पुरानी पढ़ गई है। आर्चे के मत में शकसविषय के नाटकों के सबध में नतिवृत्ता-
अनतिवृत्ता का प्रश्न उठाना बस ही है जैसे रेखागणित के त्रिभुज को नीति या
अनीतिपूर्ण कहना। फिर भी कला और नीति में सबध स्थापित करनेवाले सिद्धांत
में वे कुछ तथ्य पाते हैं। उनका कथन है कि कला चाहे नीति के मापदण्ड से मुक्त हो
किंतु कलाकार मनुष्य होने के नाते उससे मुक्त नहीं है। स्वयं कलाकार का काम जो
कथमपि नतिवृत्ता का वर्णन स्वीकार नहीं कर सकता एक पवित्र काम है। इसके
प्रति धार्मिक कृत्यों की तरह उसे सच्चा बने रहना चाहिए। मनुष्य का अस्तित्व
नतिवृत्ता के बिना अपना पूरा नहीं पाता। इसी तरह, कलाकार के मन में भी सूक्ष्म
नतिक चेतना व्याप्त होती है। इसका अर्थ यह नहीं कि कलाकार मात्र बौद्धिक
प्राणी होता है या बहुत पवित्र आचरण रखनेवाला व्यक्ति। परंतु अवश्य उसके
मन में व्यापक नीति की सूक्ष्म चेतना होती है। अपने अस्तित्वगत जीवन में कलाकार
चाह साहस न दिखला सक बल्कि कायरता भी प्रकट कर दे परंतु अवश्य उसका
मन साहस की महत्ता को जानता है। प्रायः कला की प्रेरणा उन तत्वों से नहीं मिलती
जो कलाकार के अस्तित्वगत जीवन में निहित होते हैं बल्कि उनसे मिलती है जिनकी
कभी वह स्वयं अनुभव करता है। अस्तु हम देखते हैं कि अभिव्यक्तिवाद वास्तविक
मात्र नहीं है, जीवन के उच्च आदर्श उसमें निहित हैं और वह कलात्मक अनुभूति
की निरपेक्ष स्वतंत्र सत्ता स्थापित करता है।

† B. Croce 'My Philosophy' Pp 134

Small hearts, small brains, small souls, who have been great
poets, are to be not found in history and will not make
their way by violence like the invader not only foreign
but barbarous who has no link of common humanity with
the past

योरूप में अभिव्यजनावाद ने कलात्मक अनुभूति के महत्व को पुनः स्थापित किया जो पूर्वयुगीन महान् दार्शनिक ह्येगेल के द्वारा निम्न कोटि के ज्ञान के रूप में विस्थापित हो चुका था ।

अभिव्यजनावाद के उपरोक्त विवेचन के पश्चात् यह ममभना कठिन नहीं है कि छायावादी कविमो अथवा छायावाद के पक्षधर समीक्षकों द्वारा इस काव्य-दशान की प्रशंसा क्यों स्वाभाविक है । सौन्दर्य बोध के लिए अभिव्यजनावाद कल्पना शक्ति को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानता है । मन एक साथ के समान है जिसमें द्रव्य ढलता है और कल्पना मन की वह शक्ति है जो द्रव्य को रूप प्रदान करती । कल्पना की प्रतिजना के कारण जब शैली की विप्रतता काव्य का प्रधान गुण मानी जाने लगी हम मिथ्यात का विरोध भी हुआ । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अभिव्यजनावाद का विरोध किया । जसा कि बाबू गुलाबराय ने लिखा है “आचार्य शुक्ल जी ने अपनी दो पुस्तकों द्वारा (काव्य में रहस्यवाद और इन्द्रार सम्मेलन का मापण) अभिव्यजनावाद के विरुद्ध चाल-बर्षा की है किन्तु उनके तीक्ष्ण शर श्रोत्रे वा तो स्पष्ट ही कर पाय हैं शायद उसके घोड़ीचाट खराट में आ गयी हो किन्तु उससे वास्तव में ममभेद तो श्रोत्रे के अशक्त अनुयायियों का ही हुआ है ।”

शुक्लजी ने अभिव्यजनावाद को वाग्विचित्र्य ही ठहराया है । वे लिखते हैं : अभिव्यजनावादियों ने अनुसार जिस रूप में अभिव्यजना होती है उससे भिन्न अथ अर्थ का विचार कला में अनावश्यक है अभिव्यजनावाद अनुभूति या प्रभाव का विचार छोड़ वाग्विचित्र्य को पकड़ कर चला है, पर वाग्विचित्र्य का हृदय की गम्भीर वृत्तियों से कोई संबंध नहीं । वह केवल कौतूहल उत्पन्न करता है । हिंदी साहित्य का इतिहास में भी उन्होंने लिखा है “अभिव्यजनावाद भी कलावादकी तरह काव्य का लक्ष्य बेलबूटे की नकलवाली वाला सौन्दर्य मान कर चला है, जिसका मार्मिकता या भावुकता से कोई संबंध नहीं । और कतामो को छोड़ यन्त्रि हम काव्य ही को लें तो इस अभिव्यजनावाद को वाग्विचित्र्य ही कह सकते हैं और इसे अपने यहाँ के पुराने अत्राकिनवाद का विलापती उत्थान मान सकते हैं ।”

शुक्लजी ने यद्यपि छायावादी कविता में काव्य-शैली का विकास को स्वीकार किया है- इसमें भावावेग की आकृत व्यजना लाक्षणिक विचित्र्य, सूक्ष्म प्रत्यक्षीकरण भाषा की वक्रता विरोध अमत्कार कोमल पद-विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप करने वाली प्रचुर सामग्री लिखाई पड़ी तथापि उनका मत में “अभिव्यजनावाद के

- रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पाठको मन्तरण सं० २००६ पृ ५७२

प्रभावस्वरूप काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा जाने लगा व अप्रस्तुत योजना को प्रधानता हुई द्वितीयत शली की विचित्रता की ओर कवियों का ध्यान केन्द्रित होने के कारण नाना अर्थ-भूमियों में काव्य का प्रसार न हो सका एवं तृतीयत 'कला-कला के लिए उद्घोष करनेवाले यारूपीय साहित्य में प्रगत काव्य की प्रधानता होने के कारण छायावादी कवि गीति-काव्य लिखने में ही लीन रहे तथा प्रबन्ध-काव्या की रचना से प्रायः विमुख रहे।" जहाँ तक छायावादी कविता पर इन आक्षेपों का प्रश्न है वे उचित जान पड़ते हैं। किन्तु, अभिव्यजनावाद को वाच्यचित्तवादी अथवा वक्रोक्तिवाद ठहराना उसके साथ अयोग्य है। वक्रोक्तिवाद भारतीय साहित्यिक परम्परा का चमत्कारिक सिद्धांत है जिसमें रचना को दृष्टिगत रख कर काव्य के समस्त उपान्तों का विवेचन किया जाता है। उक्ति वाच्य को वह काव्य का प्रधान गुण मानता है। किन्तु अभिव्यजनावाद, जैसा हम देख चुके हैं, यूरोपीय सौंदर्य शास्त्र का महत्वपूर्ण कलात्मक पक्ष है एवं वह कला सिद्धांत को एक नवीन दार्शनिक नींव प्रदान करता है। अभिव्यजनावाद चक्रोक्तिवादी है एवं व्यक्ति के स्वयं प्रकाश अथवा कल्पना-मूर्तियों को ही कला की सत्ता प्रदान करता है। इस प्रकार दोनों का भेद स्पष्ट है। शुक्लजी ने अभिव्यजनावाद को वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान कहा, उसमें स्वयं शुक्लजी व अन्य आलाचकों ने विलायती शब्द की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया और अभिव्यजनावाद को वक्रोक्तिवाद के ही समकक्ष बिठा दिया, यह उचित नहीं हुआ।

त्रोचे वक्रोक्तिवादी नहीं हैं और न वे अलंकारवादी हैं। सौन्दर्य-बोध के समर्थ में शुक्लजी त्रोचे का अभिमत निम्न लिखित शब्दों में प्रकट करते हैं

'सौंदर्य से उसका तात्पर्य केवल अभिव्यजना के सौंदर्य से है, उक्ति के सौंदर्य से किसी प्रस्तुत वस्तु के सौंदर्य से नहीं। किसी वास्तविक या प्रस्तुत वस्तु में सौंदर्य कहाँ? त्रोचे तो कल्पना की सहायता व बिना प्रवृत्ति में वही सौंदर्य नहीं मानते। जो कुछ सौंदर्य होता है वह केवल अभिव्यजना के उक्ति-स्वरूप में। यदि मुँदर कहाँ जा सकती है तो उक्ति ही अमुँदर कहाँ जा सकती है तो उक्ति ही। इस नीके पर अपने पुराने कवि केशवदाम जी याद आ गये, जो कह गये हैं कि "देखे मुख भावे, धनदण्डई कमल चंद ताते मुख मुखे सखी, कमलो न चदरी केशवदासजी को भी कमल इत्यादि दखने में भी अच्छे या मुँदर नहीं लगते थे। हाँ जब वे अपना उत्प्रेक्षापूर्ण किसी वाच्योक्ति में समाहित होकर आते थे तब वे मुँदर दिखाई पड़ने लगते थे।'

शुक्लजी के उपरोक्त कथन से प्रतीत होता है कि अभिव्यजनावाद सौंदर्य की वस्तुगत स्थिति की नितांत उपेक्षा करता है। रामनरेश वर्मा ने भी अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्ति और अभिव्यजना' में लिखा है 'त्रोचे न

कला को यस्तु जगत् से हटा कर जो सबया मानस ध्यापार म पयवसित किया वह कहा तब सगन है इसे विज्ञान ही विचार करें ।”[•]

प्रथम ही, श्रोचे ने यस्तु को गौण तथा कल्पना को अधिक् महत्व दिया है कि तु, श्रोचे को दृष्टि म भी कल्पना नितात् निराधार नहीं हाती । उसने भी कल्पना का आधार यस्तु को ही माना है 'प्राकृतिक सौन्दर्य कलात्मक पुनरचना के लिए उत्तेजना मान है जो पूव रचना की मायता को स्वय सिद्ध करती है । कल्पना द्वारा पूव कलात्मक स्वय प्रकाशयो के अभाव मे प्रकृति किसी प्रकार की उत्तेजना देने मे सवया असमथ रहती है ।' श्रोचे क अनुसार रूप मे ही यस्तु की स्थिति रहती है यदि इन कलात्मक सृष्टियों के विषय को मैं प्रकट करना चाहू तो उनके रूप की पुनरुक्ति किय बिना मैं उनका वणन नहीं कर सकता जिनमे विषय अवस्थित रहता है ।” + फिर भी हम यह नहीं कह सकत कि श्रोचे यस्तु अथवा यस्तुगत सौन्दर्य को नितात् उपेक्षा करता है ।

अभिव्यजनावाद पर काव्य का लक्ष्य बेलबूटेवाली नक्काशी का सौन्दर्य' आरोपित कर उसमे अस्तुत्त विधान व प्रलकारिक प्रश्न का आकषण भी चापित किया गया है किन्तु, जसा कि शुक्नजी स्वीकार करते हैं श्रोचे प्रलकारा की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानते । श्रोचे काव्य का लक्ष्य यथाथ अभिव्यक्ति मानते हैं । अमत्कार नहीं । शुक्नजी तथा 'काव्य म अभिव्यजना के रचयिता सुधाशुजी के मत में प्रलकार व प्रलकार का भेद नहीं मिट सकता । अत अभिव्यजना अविभाज्य नहीं है । कुछ हो, बक्रोक्ति और प्रलकार वणन से अभिव्यजना भिन्न है यह सुधाशुजी के निम्नलिखित कथन से स्पष्ट है

“बक्रोक्तिवाद की प्रकृति प्रलकार की ओर विशेष तत्पर दिखाई देती है, लेकिन अभिव्यजनावाद का बाह्य रूप से प्रलकार के साथ कोई संबध नहीं है । प्रलकार अनुगामी होकर अभिव्यजना के पीछे चल सकता है बक्रोक्तिवाद की भांति सहायमी होकर नहीं । अभिव्यजनावाद म वक्रतापूर्ण उक्तियों का तो मान है ही, साथ ही स्वभावोक्तियों के लिए भी उसमे यथेष्ट स्थान है । जिस उक्ति से किसी दृश्य का मनोरम चित्र प्रहण हो वह वक्रताहीन रहने पर भी अभिव्यजनावाद की चीज है ।’

• रामनिवास वर्मा 'बक्रोक्ति और अभिव्यजना,' ज्ञानमण्डल लिमिटेड बनारस १९५१ पृष्ठ १७७

+ Philosophy of Croce PP 74

Should I wish it to express the matter of these works of art I cannot do so except by repeating forms of them in which alone the matter exists

शुक्लजी द्वारा अभिव्यजनावाद पर एक आरोप यह भी लगाया गया है कि उसका हृदय की गम्भीर वृत्तियों से कोई संबंध नहीं है वह केवल कौतूहल उत्पन्न करता है हम पहले लिखे चुके हैं कि अभिव्यजनावाद भावना या अनुभूति की उपेक्षा नहीं करता। कावे के अनुसार कला अनुभूति की अभिव्यजना नहीं बरन् भावों का चिन्तित स्वरूप है। दार्शनिक भावना की अभिव्यक्ति के बदले घनत चिन्तन को वह अधिक महत्व देता है। उसके अनुसार द्रव्य वह भावात्मकता है जो सोन्दर्यात्मक ढंग से मानस व्यापार से निःसृजित नहीं की गयी हो। यह मानस व्यापार भावना का चिन्तित स्वरूप प्रकट करता है।

यह निर्विवाद है कि अभिव्यजनावाद ने कला के क्षेत्र में कल्पना को अत्यधिक महत्व दिया है। छायावादी कविता में कल्पना विलास को लक्षित करके ही शुक्लजी ने प्रधानतया उसका विरोध किया। रामनरेश वर्मा के अनुसार मानवीकरण विशेषण विषय एव नाद सौन्दर्य जो छायावादी कविता के कलात्मक सी रस को व्यक्त करते हैं वस्तुक्ति में समाहित हो जाते हैं, इसी से अभिव्यजनावाद को वस्तुक्तिवादसे अनुरूपित करने का भ्रम होता है। शुक्लजी ने कल्पना विलास के विरोध में लिखा है

“रहस्य भावना और अभिव्यजना पद्धति पर ही प्रधान लक्ष्य हो जाने और काव्य को केवल कल्पना की सृष्टि कहने का चलन हो जाने से भावानुभूति तक कल्पित होने लगी। जिस प्रकार अनेक प्रकार की रमणीय वस्तुओं की कल्पना की जाती है उस प्रकार अनेक प्रकार की विविध भावानुभूतियों की कल्पना भी बहुत कुछ होने लगी। काव्य की प्रकृति तो यह है कि वस्तु योजना चाहे लोकोत्तर हो पर भावानुभूति का स्वरूप सच्चा अर्थात् स्वाभाविक वासना जय हो। भावानुभूति का स्वरूप भी यदि कल्पित होगा तो हृदय से उसका संबंध क्या रहेगा? भावानुभूति भी यदि ऐसी होगी जसी नहीं हृष्य करती तो सफाई (Sincerity) कहा रहेगी?”+

अभि व्यजनावाद का एकात्मिक प्रभाव छायावादी कवियों में डूटना समुचित नहीं है क्योंकि वह कला के क्षेत्र में दार्शनिक पीठिका प्रस्तुत करने वाला मतवाद मात्र है। किंतु छायावादी कवियों में उसका अशक्त अनुयायियों के कल्पना विलास व भ्रमूतता को रोकने के लिए शुक्लजी द्वारा अभिव्यजनावाद का विरोध लाभ कर ही सिद्ध हुआ। शुक्लजी का यह विरोध काव्य में भ्रमूतता को छोड़ उसे यथाथ की भूमि पर लाने का ही प्रयत्न था।

प्रगतिवाद : साम्यवाद का साहित्यिक प्रतिरूप

छायावाद की अमृत उपासना के विरोध में स्थूल देह की मूल जड़ अपना अधिकार मांगने लगी तब हिन्दी साहित्य में नवीन विचारधारा प्रगतिवाद का जन्म हुआ जिस पर एक ओर देश की परिस्थिति एवं दूसरी ओर अन्तराष्ट्रीय विचारधारा मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा।

सिद्धान्त

एक शताब्दी पहले काल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगल्स ने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र द्वारा पूँजीवादी व्यवस्था की मृत्यु का शव बजा कर संसार के मजदूरों को सवहारा जाति के लिए आमंत्रित किया था। विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियाँ उस जाति को सफल बनाने के लिए आज भी सतत हैं। मार्क्सवाद विश्व की कम्युनिस्ट पार्टियों का वह घोषित सिद्धान्त है जिसके आधार पर वे अपनी राजनीतिक आर्थिक व सांस्कृतिक योजनाओं को निमित्त कर सवहारा जाति की सफलता के उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। मार्क्सवाद केवल एक राजनीतिक अथवा आर्थिक कार्यक्रम नहीं है, वह एक सव्यापी विशिष्ट जीवन दशन है जिसका विकास एवं प्रतिपादन इन सब दिनों मार्क्सवादी विचारकों द्वारा होता रहा है। कला के मार्क्सवादी दृष्टिकोण को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम पहले मार्क्सवाद के आधार पर प्रतिपादित समाजशास्त्र के सिद्धान्त का अवलोकन करें क्योंकि मार्क्सवाद 'शुद्ध कला' का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता वह कला के क्षेत्र में 'प्रगतिशील' अथवा 'प्रतिक्रियावादी' का सामाजिक मापदण्ड स्थापित करता है और उसी आधार पर कला को श्रेष्ठ अथवा हीन उद्घोषित करता है। कला के क्षेत्र में मनुष्य केवल कला सृजन अथवा कला के आस्वादन के कारण ही रहता है। कला का मूल्यांकन करने के लिए कला के क्षेत्र से बाहर अर्थात् सामाजिक जीवन के बीच समाजशास्त्र विभिन्न सामाजिक विचारों, यथा भौतिक विज्ञान, नृत्यशास्त्र, इतिहास, दशन आदि के निष्कर्षों का उचित उपयोग कर समाज की प्रगति के नियमों को निर्धारित करता है। अतः कला समीक्षक के लिए समाजशास्त्र के सुदृढ़ आधार की आवश्यकता रहती है। मार्क्सवाद के अनुसार ऐतिहासिक भौतिकवाद समाजशास्त्रीय सिद्धान्त कला के मूल्यांकन का मही आधार है।

माक्स का कथन है कि अस्तित्व ही हमारी चेतना का आधार है (Being determines consciousness)। चेतना मनुष्य के अस्तित्व का निर्माण नहीं करती बल्कि उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना का नियामक होता है। पशु जगत् का अस्तित्व अपने मस्त्रतंत्र व निषेध है परन्तु हमारी चेतना का मूलाधार वस्तु जगत् है। यह अस्तित्व मूलतः आर्थिक अस्तित्व है। वग-सघष आर्थिक ढांचे की मूल भित्ति है। समाज का भौतिक विकास जब उस सीमा पर पहुंच जाता है जहाँ उत्पादन के तत्कालीन सबंध सामाजिक प्रगति के बाहक नहीं रह पाते तब तत्कालीन उत्पादन सबंध तथा उत्पादन शक्तियों में सघष उत्पन्न होता है जिसके परिणाम स्वरूप उच्चतर हल की उपलब्धि होनी है एवं समाज के विकास का क्रम प्रभाव बना रहता है। समाज का आर्थिक ढांचा बदलने पर विचारों के जगत् में भी परिवर्तन होता है एवं विरोधी तत्वों का सघष ससृति के विभिन्न रूपों में भनकने लगता है। कलाकार का कतव्य है कि वह सामाजिक सघष को समझ कर विकासमान शक्तियों को सहारा दे तथा समाज को विकास के पथ पर अग्रसर करे।

माक्सवाद के अनुसार अब तक के मानव समाज का इतिहास वग सघषों का इतिहास है। आदिम साम्यवाद, दास प्रथा सामतवाद एवं पूंजीवाद क्रमशः विकास की सरणियाँ हैं।

मनुष्या का एक श्रुट जो ऊच-नीच के भेद को नहीं जानता। आखेट ही इस समुदाय के प्राणियों के जीविकोपाजन का साधन है। यह प्राणा-समुदाय मिल कर ही शिकार करता है और मिल कर ही उसका उपभोग। आदिम साम्यवाद के इस युग में मनुष्य और प्रकृति के साथ मनुष्य और मनुष्य का सघष भी आरम्भ हुआ। मनुष्यों का एक घुस दूसरे घुस पर आक्रमण करता है। विजयी वग विजेता को बन्दी बना लेता है तथा दास और प्रभु का नया आर्थिक सम्बन्ध स्थापित होता है। एक सुदीर्घ काल तक यही प्रथा चलती है। इस बीच उत्पादन के साधनों में विकास होता है। प्रभु वग को नासमझ दासों के बढ़ते दक्ष व्यनियों की आवश्यकता होती है जो सुचारु रूप से काम कर सकें। उत्पादन के साधनों में होनेवाले विकास के साथ दास-वग की चेतना में भी विकास होता है। वह अपनी स्थिति में विद्रोह करता है और एक नये सामाजिक सम्बन्ध की स्थापना हाती है। यह व्यवस्था सामतवाद है। सामत युग में उत्पादन के साधना का और अधिक विकास होता है। यहां तक कि सामत और भृत्य का सम्बन्ध सामाजिक विकास के लिए वायक सिद्ध होने लगता है। वनातिक आविष्कारों—बल-नारसनों के परिणाम स्वरूप उत्पादन के साधनों में एक प्रकार स भान्ति होती है। अमेरिका भारत और चीन की लोको से नये बाजार खुलते हैं। फलतः सामत युग के सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन उपस्थित होता है एवं नवीन समाज व्यवस्था पूंजीवाद की स्थापना होती है। पूंजीवाद उन सामन्ती बंधनों को विच्छिन्न कर देता है जिसके कारण मनुष्य-मनुष्य का सबंध

स्वामाविषयता ऊँच नीच का समझा जाता है। व्यापारिक स्वतंत्रता के कारण पूँजीवादी व्यवस्था उस सबहारा वग को जन्म देती है जिसके पास खाने व निए अपने गुलामी के बंधनों के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। अपने अतिविराघ के कारण पूँजीवाद भी वर्तमान युग में सामाजिक विकास का रोड़ा बन गया है। अतः आज का युग धर्म बगहीन समाज की स्थापना है और सबहारा वग उस प्राति का अपद्रुत है।

माक्स सबहारा प्राति की सफलता का पूँव इतिहास को प्राग ऐतिहासिक काल मानता है। एक समाज विशेष को हम किस आधार पर दूसरे समाज से अधिक विकसित मान सकते हैं, सामाजिक प्रगति का मापदण्ड क्या है? विकासवाद के अनुसार जीवन सघष में उसी जीव समूह (Species) को जीने का अवसर मिलता है जो अपने विरोधी परिवेश की बलि पर अपनी अधिकाधिक मस्या जीवित रख सके। मानव समाज में यह सरण जविक (Biological) न होकर आर्थिक धरातल पर होता है। मनुष्य प्राति से सघष कर विकासमान होता है। मानव समाज का विकास मनुष्य के आन्तरिक युगों के विकास पर निर्भर नहीं है बरन् उत्पादन प्रणाली के समुन्नत हान पर है। वह समाज व्यवस्था अधिक विकसित कही जाएगी जिसमें मनुष्य के भौतिक विकास को अधिकधिक सामग्री उपलब्ध हो। सबहारा प्राति मानव सम्पत्ता के विकास को पूँव आवश्यकता है क्योंकि सबहारा प्राति वग विमक्त समाज का अन्त कर देती है। उत्पादन के साधन किसी एक वग के हाथ में नहीं रहते। सम्पूर्ण समाज का उस पर सामूहिक अधिकार होता है। उत्पादन साम के लिए न होकर उपभोग के लिए होता है। अतः पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तगत समाज की भौतिक उन्नति का भवच्छद रहनेवाला भाग सहज ही खुल जाता है।

माक्स न जिस नये समाज की कल्पना की एक रूप व चीन में उसका जो रूप प्रकट हुआ उसमें काफी मिनता है। प्रयोग में आने पर सिद्धांतों का वही रूप क्या बना रह पाया है? किन्तु माक्स के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह निरा विवेक नहीं था समाज को बदलने की उसकी उत्कट सालसा थी। 'दाशनिकों ने जगत् की केवल व्याख्या की है पर बात है उसको बदलने की' (Philosophers have only interpreted the world, the thing however is to change it) माक्स का यह कथन ही उसके जीवन दर्शन का मूल प्रेरक है।

साहित्य में वग-भावना की अभिव्यक्ति

साहित्यिक एवं कलात्मक कृतियों के बानािक अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि हम समाज की भौतिक प्रगति और तत्कालीन समाज में व्याप्त वग सघषों की

पृष्ठभूमि में उसका प्रवलोकन करें। कला के प्रति यह समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण माक्स और एंगल्स के समय से माक्सवादियों द्वारा प्राथमिक प्रपनाया गया 'ह'।

यह स्वभाविक है कि प्राथमिक सम्बंधों में परिवर्तन होना पर भी विचारों के क्षेत्र में परिवर्तन अपेक्षित था कुछ श्रेणी से स्पष्ट होते हैं। ग्रीक सभ्यता के युग में जब कवीलो का समाज धीरे धीरे पतन रहा था और स्वामी ब टास प्रथा का नया सामाजिक सम्बंध स्थापित हो रहा था उस युग के साहित्य में प्राथमिक साम्यवाद के युग की भावना परिलक्षित होती है जिसकी पराधीन स्मृति हमारे मन में घूम घूम जाती है। ग्रीक साहित्य में डडरस के पुत्र प्राइकेरस की कथा का वर्णन है जो अपने मीम के परो से प्राप्तमान में उड़ता चला जाता है और अंत में सूर्य के पास पहुँचने पर उसके पर पिघल जाते हैं और वह गिर कर मर जाता है। स्पष्ट ही यह प्रकृति से मानव के सघप की कहानी है। ग्रीक साहित्य में दुःखान्त नाटका का जन्म युग की परिवर्तनशीलता एवं सन्नति का द्योतक है। समाज में मात-सत्ता का स्थान पित सत्ता ने ले लिया था अतः ऐथेना देवी का 'याय मात हत्यारे पुत्र के पक्ष में होना है। सेफोसलीज के नाटकों में दासों की यातना का चित्रण है तो सामन्ती युग की कविता में योद्धाओं के रोमास का। सामन्तवाद के पतन के समय 'डानकवीजोट' जसी रचना लिखी गई जिसमें सामन्त युग के 'विजयी-वीर' तथा सामन्ती धारणाओं की मिल्ली उड़ाई गयी है। पूजावाद के उदय के साथ बालतेपर व लिस्बन ध्यवित की स्वतन्त्रता का राग प्रसापते हैं। सबहारा की वग चेतना के साथ "प्रगतिशील" कहे जानेवाले साहित्य का उदय होता है। लुई, प्रारागो, प्रण्टन सिकलियर, हावड फास्ट, पाब्लो नरुदा जे बी प्रीस्टले प्रभृति साहित्यकारों की रचनाओं में सबहारा वग की शक्ति और चेतना का आभास मिलता है।

माक्स के अनुसार जो लिखित साहित्य हमारे पास पहुँचा है वह वग विभक्त समाज की उपज है अतः उस पर समाज के वग भेद की छाप है। लनिन समस्त साहित्य को शासक वग की विचारधारा का प्रतिपादक मानता है। माक्सवादियों का कथन है कि प्राथमिक साम्यवाद के युग में साहित्य युग की सामूहिक भावना को अभिव्यक्त करता था किन्तु उत्पादन व साधनों व विकसित होने से अथम विभाजन हुआ एवं समाज वर्गों में बंट गया तब जिन वर्गों के हाथ में राजसत्ता थी उन्हीं पर प्रकृति से सघप कर समाज को विकासमान करने का उत्तरदायित्व पडा। साहित्य जिसकी अलग सत्ता स्थापित हो चली थी अथ सत्ताधारी वग के प्रभाव में आगया और उसी वग की भावनाओं को अभिव्यक्त करने लगा।

माक्सवादी विचारों की निरपेक्ष सत्ता स्वीकार नहीं करता। विचारों का आधार अतः प्राथमिक होता है। माक्स जब कहता है (Being determines consciousness) अस्तित्व हमारी चेतना का विधायक है तब अस्तित्व से उसका

प्राणय समाज के प्राणिक सम्बन्धों से है। ए गत्स पम, दशन, कला आदि सस्कृति के सत्त्वों को "माकाशकारी विचारों की सजा देता है तथा उसके मतानुसार उन पर प्राणिक परिस्थितियों का स्पष्ट और सीधा प्रभाव न पड़ कर "प्रभावदार ढग" से पड़ता है 'मै निविश' रूप से इस बात को मानता हूँ कि प्रायः क्षत्रों की भांति विचारों के क्षेत्र में भी प्राणिक विकास का सब प्रधान हाथ रहता है। हा यह आवश्यक है कि यह प्रभाव विचार जगत् के अपने नियमों और उसकी अपनी मर्यादा के अनुसार ही पड़ता है।"

तब क्या साहित्य का प्रयोजन शापक वग के हितों की रक्षा करना है? शायद माक्स उत्तर देता—जी, अब तक के साहित्य ने यही किया है। परंतु कोई कारण नहीं कि साहित्य इसी लक्ष्य को पूरा करने के काम में लाया जाता रहे। यदि पूजापति वग साहित्य के द्वारा अपने हितों की रक्षा करने के लिए सतक रहता है तो हम सबहारा वग के हितों की रक्षा करने के लिये साहित्य को उपयोग में ला सकते हैं। अतः माक्सवादियों के अनुसार वर्तमान युग में वही साहित्य श्रेष्ठ समझा जायेगा 'जिसमें जनता का सीना उभरता हुआ नजर आये।' साहित्य का आधार अतः प्राणिक है। किंतु प्रत्येक साहित्यकार आज के शासक वग (पूजापति वग) का पोषक हो यह आवश्यक नहीं क्योंकि आज समाज स्पष्टतः सबहारा और पूजापति वर्गों में बँटा है। यह लेखक की वग सहानुभूति पर निर्भर करता है कि वह किस वग के हितों का पोषक है। अतः पूजावादी वग में उत्पन्न होकर भी लेखक सबहारा वग की इच्छा भावाक्षाओं को अपने साहित्य में पुरजोर तरजीह दे सकता है तथा सबहारा वग में उत्पन्न लेखक भी पुरानी सड़ो गली पूजावादी व्यवस्था के प्रति सम्मान रख सकता है।

साहित्य दलगत राजनीति के प्रचार का साधन

साहित्य को वग भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम मानने से राजनीति से उसका अविच्छन्न सम्बन्ध हो जाता है। अतः माक्सवादियों के अनुसार साहित्य सबहारा वग के प्रयोग का साधन बन कर 'पार्टी साहित्य' का रूप धारण कर लेता है। कहा जाता है कि माक्स के विक्षिप्त राजनीतिक वातावरण ने हमें पूर्वग्रही (Prejudiced) बना दिया है। इसके कम्युनिस्ट लेखकों का नारा 'पार्टी साहित्य' रहा है अतः इसी विचार का हमें माक्स पर भी आरोप कर देते हैं। अथवा माक्स पार्टी साहित्य में विश्वास नहीं करता। वह मनुष्य का ही साहित्य का केन्द्र मानता है। किंतु यह कथन सत्य नहीं है। फेयनिग्राथ के साथ माक्स के पत्र व्यवहार से स्पष्ट है कि माक्स 'पार्टी साहित्य' को अत्यधिक महत्त्व देता है। फेयलिग्राथ ने उसे लिखा स्वभावतया प्रत्येक कवि स्वतन्त्रता प्रेमी होता है। और मैं भी स्वतन्त्रता का इच्छुक हूँ। पार्टी भी एक पिजरा है और गीत चाहे वे पार्टी के लिए ही गाय जायें पिजरे में रहने की अपेक्षा उससे बाहर रह कर ही अच्छे गायें

जा सकते हैं। इसके प्रत्युत्तर में माक्स ने यही प्रतिपादित प्रकट किया कि पार्टी से अलग होने का प्रथम विजरे से निकल कर स्वच्छ द गीत गाना नहीं वरन् तथा कथित व्यक्ति स्वातन्त्र्य के भुलावे में पूजावादी व्यवस्था को प्रश्रय देना है। *down with non party writers* पार्टी से विलग लेखकों की क्षय। कहनेवाले लेनिन के लिए पार्टी साहित्य का कितना अधिक महत्व है यह स्पष्ट ही है। 'पार्टी संगठन और पार्टी साहित्य' निबंध में लेनिन ने लिखा

'पार्टी साहित्य के सिद्धांत का क्या आशय है? केवल यही नहीं कि सम्पूर्णतया सबहारा-वग के स्वार्थों से भिन्न वह किसी व्यक्ति अथवा दल की स्वायत्तता का साधन नहीं बन वरन् पार्टी साहित्य की रचना में करनेवाले लेखकों की क्षय हो। अतिमानुषिक साहित्यकारों की क्षय हो। साहित्य सबहारा-वग के सम्पूर्ण रूप में एक लक्ष्य का अन्तर्ग भाग बनना चाहिए—उस सम्पूर्ण सामाजिक संगठन की इकाई का अंग जो सजग नेतृत्व से संचालित सम्पूर्ण मजदूर-वग की प्रगति का प्रतीक है। साहित्य संगठित, नियोजित एक रूप, सामाजिक प्रजातांत्रिक दल के कार्यक्रम का अतर्निहित भाग होना चाहिये।' X

अस्तु माक्स व लेनिन द्वारा पार्टी साहित्य का महत्व दर्शाते हुए भी कलाकार के स्वतंत्र स्वभाव के कारण पार्टी के आदेशानुसार साहित्य रचना में अधिक सफलता नहीं मिली। आज पार्टी साहित्य का नारा उग्र रूप में नहीं है। साहित्य में 'समुक्त मोर्चे' की बात सुनाई पड़ती है मानव जीवन को व्यापक दृष्टि से देखने का आग्रह भी किया जाता है किन्तु उसके मूल में साहित्य का आधार अधिक ही माना जाता है और समुक्त मोर्चे कवच का हिस्सा (Nucleus) पार्टी-लेखकों को ही

X, Lenin on "Party Organization and party literature" quoted in 'Lenin on Art and Literature' by A V Lunacharsky Oriental Publishing House Benares 1943

What does this principle of party literature consist of? Not only in that for, the socialist proletariat literature cannot be a means of private gain to persons or groups at all... apart from the entire proletarian cause *Down with nonparty writers* Down with literate superman Literature must become a part of the proletarian cause as a whole Part and parcel' of a single whole, of the entire social mechanism set in motion by the whole conscious vanguard of the entire working class Literature must become an integral part of an organized planned united social democratic party work

समझा जाता है। गार्सी के इस कथन का आदर किया जाता है। मानव हमारा देवता है। मानव से बड़ा कोई सत्य नहीं, 'रेल्फ फासत ने अपनी पुस्तक 'नावेल एण्ड इ पीपुल' (Novel and the people) में मानव को साहित्य का केंद्र धारित किया है किंतु, वही चिन्ता है। कालिकारी लेखक सदा पार्टी लेखक होता है। इससे मतलब यह नहीं कि वह जिन प्रतिनिधि की समस्याओं पर पार्टी के नारे लागू किया करता है वरन् वह पार्टी को चेतना का समर्थन देने के लिए नयी चेतना का साहित्य सृजन करना है।" अवश्य यह कथन साधारण सभी जगहों से परे है तथापि सिद्धांत रूप में पार्टी के निर्णयों को सर्वोपरी मानने पर साहित्य का क्षेत्र गमना हुए बिना नहीं रह सकता। रूसी आन्तिक पश्चात् रूप में लेखकों की एक संस्था भार० ए० पी० पी० (R A P P) बनायी गयी जिसका उद्देश्य पत्रकारिता को सफल बनाने के लिए साहित्य सृजन करना था। वह साहित्य इतने घटिया स्तर का था कि अंत में भार० ए० पी० पी० संस्था को ही ताड़ देना पड़ा।

पार्टी साहित्य का प्रतिरिक्त अथवा साहित्य का भी मास्स चार्जिया की दृष्टि में कम महत्व नहीं। क्या लेखक वय-सघष के स्वरूप का स्पष्ट समझ कर ही श्रेष्ठ साहित्य की रचना कर सकता है—ऐसी रचना जिसे भावसवादी भालोचक श्रेष्ठ मानें। फ्रांसिसी उपवासकार बाब्रारक की दृष्टि के संबंध में मास्स न कहा था सामाजिक सबको को समझने में बालजाक की दृष्टि अत्यंत पनी है। इसी संबंध में ए गस्त का कथन है 'बालजाक ने जिस वास्तविकता का बयान किया है वह लेखक के अपने दृष्टिकोण से निर्पेक्ष होकर बयान हो सकती है।' अस्तु बालजाक के राजनीतिक विचार प्रतिक्रियावादी थे पर वह धर्मिजात वय के अवश्य स्थायी पतन के प्रति सजग था अतः उसको बगिक सहानुभूति ही उसे धर्मिजात वय के पतन का विवरण करने के लिए प्रेरित करती है। प्रचीन युग के लेखकों तथा धर्वावीन लेखकों में सबसे बड़ा अंतर यह है कि उम युग में इतिहास धर्मिजात बन रहा था, परंतु आज मनुष्य स्वयं इतिहास बना रहा है। धर्म वगैरे के ऐतिहासिक महत्व का समझें बिना दूसरे शब्दों में पार्टी की विचारधारा का अनुगमन किये बना आज प्रगतिशील साहित्य का सृजन सम्भव नहीं है।

कला की प्रेरणा सामूहिक भाव

कला का स्वरूप क्या है, उसको मूल प्रेरणा क्या है मास्स का 'इस प्रश्न का सोचा सामना नही करता। यह कला को स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रत्येक मानता है।

अत विगत युग की कला को सामाजिक सघर्षों की पृष्ठभूमि में रख कर उसकी व्याख्या करते हुए कलाकार के प्रपत्तिशील या प्रतिश्रियावादी होने का निष्पत्ति करता है। भावसंवाहियों के लिए कला साधन है साध्य नहीं। वह किसी सृजनारम्भक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति नहीं है। हमारी अतप्रवृत्तियाँ भी बदलती हैं। काडवेल का कथन है " कला हमारी अतप्रवृत्तियों को परिवेश के अनुकूल बनाती है और ऐसा करने में अतप्रवृत्तियों को ही बदल देती है।"

मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य के क्रिया कलाप अतप्रवृत्तियों की प्रेरणा पर आधारित होते हैं। पृथ्वी के सम्पाद्यमान होने के अवसर पर हम अतप्रवृत्ति से प्रेरित होकर आरम्भ रक्षा के कार्य में प्रवृत्त होते हैं। कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं जिनके प्रति हमारी उत्काल सहज प्रतिश्रिया नहीं होती। अथम ऐसा ही कार्य है। प्रतिश्रिया का जब प्रत्यक्ष या तात्कालिक कारण नहीं होता, सुपुप्त कारण होता ही है तब ऐसे "सामूहिक भाव" (Collective Emotion) की उत्पत्ति की आवश्यकता होती है जिससे प्रेरित होकर हम उस कार्य में प्रवृत्त हो। यह कार्य हमारी जैविक (Biological) आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाले नहीं होते वरन् उनमें आर्थिक उद्देश्य ही प्रधान होता है। कला इस प्रकार के 'सामूहिक भाव' की उत्पत्ति में सहायक होती है। काडवेल के अनुसार आदिम साम्यवादी युग में खेती के उत्सव पर कविता सामूहिक रूप में गायी जाती थी। इस संगीत और नृत्य के अवसर पर खेती का तात्कालिक अर्थमूल सा जाता था और श्रमिकों के सामने छायालोक सा उद्भासित होने लगता कि वे कल्पना लोक में देखते, खेत लहलहा रहे हैं। 'सामूहिक भाव' के प्रभाव से अर्थ का बोझ हल्का हो जाता। संगीत के मीन होने पर त्रिना बोधा हुआ खेत मनुष्य के लिए एक विशेष अर्थ रखता है और श्रमिक अधिक उत्साह के साथ अपने कार्य में प्रवृत्त हो जाता। अकेले में जब वह इन गीतों की गुणगुनाता तब अपने भावों को सामूहिक छाया चित्रों से आन्दोलित पाता। सूर्योदय या गुलाब उसके हृदय में उन भावों और अनुभवों को पुनर्जावित करते जिनका कोटि-कोटि प्राणियों ने पूव अनुभव किया था। उसके यह अनुभव अत प्रेरित नहीं होते अत व्यक्तित्वगत नहीं बड़े जा सकते।

अधिकधिक अर्थ विभाजन के साथ कविता का वास्तविक जीवन से सबध-विच्छेद हो जाता है और कला अर्थ की विरोधिनी जान पडती है, बड़े ठाले का काम होती है। कवि एकाकी व्यक्ति होता है। अर्थ विभाजन के साथ समाज में अर्थ-विभाजन होता है। कला उस शासक वर्ग के विचारों की वाहक बन जाती है जो कलाकार के लिए निष्पत्ति की स्थिति उत्पन्न करता है। कला अर्थ से भिन्न वस्तु हो जाती है और उसका दुष्परिणाम कलाकार और समाज दोनों को उठाना पड रहा है तथा उसका निराकरण वगहीन समाज की स्थापना से ही सम्भव है।

भारतीय युग की कविता सामाजिक काम की पूर्ति में सहायक होती है। कृषि उत्पन्न की कविता भ्रष्ट के दानों या कृषि श्रम का तात्त्विक विवरण नहीं देनी बरन् समाज का उस काम में जीवित, भावमय, सामाजिक सश्लिष्ट सबंध स्थापित करती है। कविता के महत्व को समझने के लिए उसके आदिम रूप की कल्पना करनी होगी जब वह श्रम के साथ गाई जाती थी। कविता शब्दों का श्रम नहीं है बरन् उसका महत्व 'सामूहिक भाव' के उत्पन्न करने में है, उसके सामाजिक उपयोग में।

कुछ भालोचको द्वारा मनोविज्ञानिक आधार पर 'साधारणीकरण' के भारतीय साहित्यिक सिद्धांत को बाइबेल के 'सामूहिक भाव' के सिद्धांत के अनुरूप बतलाया गया है। यह उचित नहीं है। साधारणीकरण यद्यपि व्यक्ति की भाव धारा को सामाजिक पक्ष प्रदान करता है इस दृष्टि से कि व्यक्ति के भाव उस धरातल पर पहुँचें कि वे सबके हो सकें पर होत व व्यक्ति के हृदयगत भाव हैं। "सामूहिक भाव" वह सामाजिक भाव है जो व्यक्ति की सहज वृत्ति से प्रेरित नहीं होता, उसे उत्पन्न करने के लिए किसी विराट् आयोजन के द्वारा विभ्रम उपस्थित करना आवश्यक होता है।

सौन्दर्यगत मान श्रम और सौन्दर्य का संयोग

मानसवाद् के अनुसार सौन्दर्य और सत्य के वास्तविक स्वरूप का निष्पन्न सामाजिक चेतना में सम्पूर्ण अनुपपत्ति ही करता है। सौन्दर्य व्यक्ति को चेतना का उज्ज्वल वरदान नहीं है। किसी वस्तु को छूकर हम ताप का अनुभव होता है उसी प्रकार किसी सुन्दर वस्तु को देखने पर हमें सुन्दरता का मान होता है। अतः सौन्दर्य परिवेश में व्याप्त है। तथापि सौन्दर्य का अनुभव करनेवाले मनुष्य की अनुपस्थिति में किसी वस्तु के सुन्दर होने की कल्पना नहीं की जा सकती। सौन्दर्य के मान बदलते रहते हैं। जन्मजात मानव भ्रष्टित अतः प्रवृत्तियों का दास अपरि-वर्तनीय होता है। मनुष्य केवल सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित होता है अतः बदलनेवाला सौन्दर्य मानो का आधार समाज है। समाज प्रकृति पर विजय प्राप्त करके प्रगतिगामी होता है। सौन्दर्य सत्य से अलग नहीं है। सत्य और सौन्दर्य स्वयं सत्य न होकर सामाजिक प्रगति के साधन हैं। सभ्यता के आरम्भ में सत्य और सौन्दर्य का समागम स्पष्ट है। उस युग में श्रम की प्रक्रिया के साथ ही सत्य और सुन्दर जुड़े हैं। श्रम सत्य है किन्तु साथ ही मानससाधक श्रम भी है। श्रम के साथ ही नृत्य का आयोजन है। बुजुर्गों का सृष्टि ने विज्ञान के ध्यान के और ध्यान के सत्य को नष्ट कर दिया है। सत्य श्रम सुन्दर नहीं है क्योंकि बुजुर्ग सभ्यता में सत्य का अर्थ नम्रता और जगतीयता है। उसी तरह सौन्दर्य सत्य नहीं है क्योंकि सुन्दरता का अर्थ धारण कल्पनिकता है अतः है। वर्तमान समाज में ही श्रम की प्रक्रिया के साथ सत्य और सुन्दर का संयोग सम्भव है। यह निरीक्षण करने के लिए

वगहीन समाज में धर्म की घृणित समझे जाने को बदले धार्मिक वग को उत्पादन को सौन्दर्य पूर्ण समझा जाने लगेगा ।

कला की विवेचना करते हुए अब तक हम विषय के सवध में ही विचार करते रहे हैं यह उचित ही था । मार्क्सवादियों का कला के सविधायक पहलू की ओर ही अधिक ध्यान रहा है । किन्तु, कला के रूप विधान की ओर वे उदासीन हों यह कथन सत्य नहीं है । ग्रीक साहित्य के सवध में मार्क्स का सुभाव है कि हम यह समझना चाहिए कि हम आज भी वह साहित्य सुन्दर क्यों पगता है । जसा कि लेनिन ने कहा है हमें प्राचीन का त्याग केवल मात्र इसलिए नहीं कर देना चाहिए कि वह प्राचीन है जो कुछ सुन्दर है-नया या प्राचीन उसका सग्रह अपेक्षित है। लेकिन कठता या हयह तो महत्वपूर्ण है ही किन्तु, वह कहुता किस रूप में है यह भी उपसणीय नहीं । डा० रामविलास शर्मा के अनुसार रचना की श्रेष्ठता का निरूपण करते समय उसकी साधनानुभूति उसकी रूप योजना शैली और प्रौढ़ता, वाक्य-रचना शब्द प्रयोग आदि अनेक दूसरी कसौटियों पर उसे कसना आवश्यक है, और प्रगतिवादी इन सब कसौटियों पर किसी भी काय या साहित्य कृति का कसना आवश्यक समझते हैं, उनके महत्व को जानते हैं यद्यपि आज के सक्रमण काल में वे साहित्य के सविधायक पहलू के दृष्टिकोण से विवेचन करना अधिक आवश्यक समझते हैं । उनके मत में "रूप और विषय-वस्तु का सम्बन्ध अभिन्न और अयो-याश्रित है ।" +

वग-विभवत समाज में मार्क्सवादो दृष्टिकोण से कला का लक्ष्य वगहीन समाज की स्थापना करना है । किन्तु, जब वगहीन समाज की स्थापना हो जाएगी तब साहित्य का सजन किस उद्देश्य से होगा ? मार्क्सवादियों के लिए शान्ति शायद कहीं नहीं है चाह सधय के लिए सधय उनका उद्देश्य न भी हो । वगहीन समाज की स्थापना के बाद भी सधय के लिए स्थान तो रहेगा ही मानव समाज का सधय प्रकृति से और उसके लिए समाज के सामूहिक भाव" को जगाने की आवश्यकता होगी । तब शायद मार्क्सवादी कला की कलात्मकता की ओर भी ध्यान देंगे ।

इतिहास

रूसी-क्रांति से पूर्व

प्रगतिवाद की संक्षिप्त पूर्व-घोटिका यों है फ्रांसिसी क्रांति ने जिस प्रकार योह्य म रोमांटिक साहित्य को जन्म दिया उसी प्रकार रूसी क्रांति के गम से प्रगति-शील साहित्य का उद्भव हुआ । क्रांति के पूर्व १९ वीं सदी के अन्त में योरुपीय साहित्य की पतनी-मुखी प्रवृत्ति का रूसी साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव था । रूसी

+ डा० रामविलास शर्मा 'प्रगति और परम्परा' किताब महल, इलाहबाद १९४८ पृष्ठ ३६

बूल्हे पर गर्म की हुई फ्रांसीसी शोरवे" के सट्टा इस दुग की कविता सेक्स की तृष्णा, व्यक्तिवाद, निराशावाण तथा धार्मिक रहस्यवाद की विभिन्न प्रवृत्तियाँ लिए थीं। बालमाट द्रुसाव और सोलोगव मे पतनो मुखी प्रवृत्तियाँ मुख्य थीं। १९०५ की प्रथम रूसी क्रांति के पश्चात् पतनो-मुखता के बदले तरुण प्रतीकवाण्डियो ने धार्मिक रहस्यवाण्ड प्रनया। माइवानव, बली, ब्लक, बोलाशिन इस धारा के मुख्य कवि थे। किंतु पीटसबग (लेनिनग्राड) के कवियों ने प्रतीकवादी शली का विरोध किया तथा ग्रमिधा ने शब्द चित्रो के द्वारा अपनी अनुभूति को ग्रमि-यक्त करने का माग प्रनया। गुमिलोव इस शली का प्रवक्त क था तथा उसके द्वारा प्रवृत्त साहित्य-धारा एकेमिस्ट धाग के नाम से धर्मिहित हुई जिसमे से एक ग्रय इमेजिस्ट शाया भविष्यवाद का विकास हुआ जिसका प्रमुख कवि येमेसिन था।

किंतु प्रगतिशील भावनाओ के प्रचार की दृष्टि से इस काल के साहित्यिक मादोलनो मे सबसे अमुख भविष्यवाण था। भविष्यवाद (Futurism) का धारणम हटली के कवि मारिनेति के का य व विचारों (सन् १९०७) से माना जाता है। मारिनेति ने सौंदर्य के प्रचलित रोमांटिक उपमानो को छोड कर मशीन को सौंदर्य का आधार माना। उसने रूढ़िगत विचारो तथा साहित्य के रूप विधान—ध्वं, व्याकरणादि नियमो व विरुद्ध विद्रोह किया। मास मे भी प्रतीकवाद के फार्मैलिज्म के विरोध म प्रवृत्तवाद (नेचुरलिज्म) का प्रचार हुआ जिसमे जीवन के नन चित्रण को उपस्थित किया गया। रूस मे भविष्यवाद के प्रवक्त श्लेनिकव तथा मायाकावस्की थे। सन् १९१२ मे मायकावस्की ने पयूचरिज्म का घोषणा पत्र निकाला जो सभी प्राचीन का विरोधी था। मायकावस्की ने पयूचरिज्म का सामयिक तथ्यो पर कविता लिखी यथा, सोवियत पासपोट, कम्युनिस्ट सम्मेलन बढते हुए रेल-गाडे आदि उनके विषय थ। हटली मे मारिनेति के भविष्यवाद के आगे चल कर दो भे-दिखाई दिए—'बयूबा फयूचरिज्म' तथा 'इगो फयूचरिज्म'। बयूबा फयूचरिज्म के वाक्य मे भविष्य की कल्पना की प्रधानता थी तथा 'इगो फयूचरिज्म' न मनुष्य की महत्ता की साहित्य म प्रतिष्ठा की। इगो फयूचरिज्म की विचार सरणि प्लेस्टीसिज्म (वस्तुमानवाण्ड) मे प्राधुनिक प्रगतिवाद का रूप प्रकट हुआ।

रूसी-क्रांति के पश्चात्

रूस म क्रांति की विजय (सन् १९१७) के पश्चात् साहित्य मे भावदृढता का वातावरण धार्मिक विषम हा गया। ए योग्वाव के पस्ताव के आधार पर प्रोलेटकव्ट की स्थापना (सन् १९२०) हुई जिसका मुख्य उद्देश्य वग मधम म विख्यात रत्ननेवाली सफ्टिन का प्रचार करना था। किन्तु रूस म लेनिन के नेतृत्व क कारण साहित्य मे भी धार्मिक सभोणता नहीं आ पाई। जो लेगक कम्युनिस्ट नहीं थ किंतु सवहारा वग क साथ य उनक प्रति सहानुभूतिरूण व उगार दृष्टिकोण रख कर उन्हें सहपात्री

(Populchiki) कहा जाने लगा। ऐसे महाप्राणी लेखकों के दौ दल थे सेरेपियन ब्रादर्स तथा ओप्याज सेरेपियन बंधु वैयक्तिक प्रेरणा तथा कला व मस्कृति के क्षेत्र में स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। जमेटिन इस दल के संस्थापक थे। मैक्सिम गोर्की की भी सहानुभूति इस दल के साथ थी। ओप्याज (opyaz) 'काव्य भाषा का विद्यापीठ'—शुद्ध शली पर आधा रित साहित्यिक मतवाद था। प्रोलेटेरियट (सवहारा बग) विषयो की सकीणता के कारण भाषा व अभिव्यक्ति-रूपों के क्षेत्र में ही नवीन प्रयोग सम्भव थे। पी० कोगन ने शलीगत नवीनताओं का विरोध किया। प्रोलेटेरियट दिशा के लिए मजबूत आवाज बुलंद करने के लिए एक नया दल ग्रान-गाड (सावधान) स्थापित किया गया। लेनिन की मृत्यु (२१ जनवरी १९२४) के बाद ट्राट्स्की, कुलक व बोजु वा पडयत्रों से भ्रवकाश पाकर जब स्टालिन ने अपनी शक्ति को दृढ़ बना लिया तब उसने प्रथम पंचवर्षीय योजना बनाई तथा देश की सभी शक्तियों का इस योजना को सफल बनाने के लिए आह्वान किया। सन् १९२६ में आर ए पी पी प्रोलेटेरियट लेखकों का रूसी सघ स्थापित किया गया जिसका अध्यक्ष आबरबात नियुक्त हुआ। पंचवर्षीय योजना और उसके ढाँचे में बग-सघष का विकास ही तत्कालीन साहित्यिक रचना का लक्ष्य स्वीकार किया गया। किन्तु इस सकीणता की लेकर उच्च कोटि के साहित्य का निर्माण सम्भव नहीं था। इस सकीणता से तग धाकर येसेनिम (सन् १९२५) व मायकावस्की (सन् १९३०) को आत्म-हत्या कर लेनी पड़ी। जमेटिन (सेरेपियन बंधु दल का संस्थापक) को पेरिस भागना पड़ा। रूसी पाठकों व लेखकों का इस धार्मिक ध्यवस्था के प्रति विरोध प्रकट होने लगा। अतत मैक्सिम गोर्की की प्रेरणा से कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने "प्रोलेटेरियट लेखकों का रूसी सघ" की मग कर एक 'यापक सघ'—'सोवियत लेखक सघ' स्थापित किया तथा लेखकों के सामने ध्यापक जीवन-श्रम—सामाजिक यथाधवाद (Socialist realism) रखा।

आंग्ल साहित्य में मार्क्सवादी प्रवृत्ति

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् आंग्ल-साहित्य में भी मनोरजन के बदले युग-चेतना का साहित्य रचा जाने लगा तथा युग की आवश्यकताओं की वाणी दी गयी। सन् १९३० के लगभग आंग्ल साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव प्रति-फलित होने लगा। गाल्सवर्दी के उप-यास, बर्नाड शा के नाटकों तथा हब्लू एच आडेन (W H Auden) सोसिल डे लेसिस, (Cecil De Lewis) स्टीफन स्पेंडर (Stephen Spender) प्रभृति कवियों के काव्य में पूजा-पदियों के घोषण के विरुद्ध भ्रमिक बग में नव जाणृति की प्रेरणा देनेवाली विद्रोहात्मक भावनाओं का प्रचार किया जाने लगा।

द्वितीय महागुरु ने समग्र प्र० से० ग० की स्थापना और भारत में प्रगतिवादी आन्दोलन

भारत में मर्दाना कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना सन् १९२७ में ही नहीं की किन्तु मातृभूमि में मातृभूमि की विचारधारा का प्रभाव द्वितीय महा-समर (१९३९-१९४५) के समय प्रतिगतिवादी हुआ। इनके पूर्व भी मातृभूमि की शोषण के प्रति विरोध के भावों में तथा इन विरोधवादी स्वयं के प्राथमिक प्रयत्नों पर किये जाने के रूप में प्रगतिवादी आन्दोलन के लिए पूर्व-पीठिका बन चुकी थी।

द्वितीय महासमर के अन्त में जब रूस पर जर्मनी ने घातकता कर दिया तब पार्लियामेंट की विरोध करने के लिए विरोध के प्रगतिशील सेनाएं तथा की स्थापना हुई। प्रगतिशील सेनाएं तथा की स्थापना के लिए प्रथम सम्मेलन में श्री जी उग्र व्यासवार ई एम फोरस्टर (E M Forster) के सम्मानित्य में पेरिस (सन् १९४५) में हुआ। इसी वर्ष नवम्बर की एक शाम सन्त की गावर्स्ट्रीट में स्थित मातृभूमि रस्तों में "प्रगतिशील सेनाएं तथा" की स्थापना हुई। प्रगतिशील सेनाएं तथा के बीचमूल प्रयत्नों में दो भारत के प्रतिनिधि थे। श्री जी उग्रव्यासवार डा० मुस्तारज खान तथा डा० साहित्यकार श्री सज्जाद जहीर। भारत में सन् १९३६ में प्रेमचन्द के सम्मानित्य में प्रगतिशील सेनाएं तथा का प्रथम अधिवेशन सतलुज में हुआ। सन् १९३७ में कलकत्ता में उसने द्वितीय अधिवेशन के सम्मानित्य रवीन्द्रनाथ टैगोर थे। द्वितीय अधिवेशन के प्रमुख कवि सुमित्रानन्दन पन्त प्रगतिवादी के अधीन बन कर घाये। †

छायावाद की स्वप्न-वद्ध कविता के विरुद्ध काव्य में कठोर आवश्यकताओं के नग्न रूप की मांग प्रगतिवादी के आरम्भ की सूचक है। प्रेमचन्द के सम्मानित्य में काशी से 'हंस' (प्रकाशन सन् १९३०) के प्रकाशन से प्रगतिवादी आन्दोलन की अत्यधिक बल मिला। सन् १९३६ के बाद से ही प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति रहा है यद्यपि प्रेमचन्द की मृत्यु के पश्चात् प्रगतिशील संगठन में अनियमितता

† पन्त ने कालाकावर से प्रकाशित 'रूपाम' वर्ष १, अंक १ जुलाई १९३८ में लिखा

'इस युग की वास्तविकता ने जसा उग्र रूप धारण कर लिया है इससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा भ्रमकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण भ्रान्तिलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न-जडित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।'

गयी। देश के विभाजन के उपरांत सितम्बर १९४७ में प्रयाग में प० राहुल साठ्यायन की अध्यक्षता में हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों का सम्मेलन हुआ तथा उसका उद्घाटन डा० अमरनाथ झा ने किया। अप्रैल १९४८ व नवम्बर १९५२ में प्राचीय आधार पर प्रगतिशील लेखक संघ के अथ अविशेषण हुए।

आलोचना के मान

प्रगतिवाद का मूलाधार मार्क्सवाद एक सामूहिक जीवन दर्शन है जिसका सचेष्ट प्रतिपादन प्रगतिवादी साहित्य का लक्ष्य है। अतः यह स्वभाविक ही है कि सज्जनात्मक साहित्य से भी बढ़कर उसके सद्भावितक आलोचना पक्ष की ओर ध्यान दिया गया है। मार्क्सवादी चिंतकों—मार्क्स, एंगल्स, लेनिन, स्टालिन आदिों से तुलना के अतिरिक्त हिन्दी की प्रगतिवादी आलोचना में क्रिस्टफर काडवेल, जेम्स टी फेरल रैल्फ फाक्स प्रभृति अंग्रेजी व अमरिकी आलोचकों के विचारों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है तथा उनके द्वारा उठाये गये साहित्यिक प्रश्नों पर विचार किया गया है।

योंही हम कला के स्वरूप के सवय में काडवेल के सामूहिक भाव के सिद्धांत का विवेचन कर चुके हैं। प्रगतिवादी आलोचक श्री शिवदानसिंह चौहान ने अपनी पुस्तक 'प्रगतिवाद' में कला की समीक्षा काडवेल के सामूहिक भाव के सिद्धांत के अनुरूप ही की है। † काडवेल के समान उनके मत में वग-विभक्त समाज में कला

† Christopher Caudwell 'Illusion and Reality' People's Publishing House Ltd Bombay 1947 Pp 24

सामूहिक-भाव से निमित्त कल्पना लोक के सवय में काडवेल ने लिखा है —
This collective emotion organised by art at the tribal festival because it sweetens work and is generated by the needs of labour, goes out again into labour to lighten it.

शिवदानसिंह चौहान 'छायावाणी कविता में असन्नाय भावना' शीघ्र लख आधुनिक हिन्दी साहित्य (संपा-संनय) हिन्दी साहित्य परिषद् मेरठ १९४० पृष्ठ १४१

'कविता जो भावों को संगठित करती या उन्हें तरतीब देती है, नवीन अथ प्रेरणाओं द्वारा भाव जगत् की सीमा विस्तृत करती जाती है। यह जीवन अथ सवय को भावों के रस से सींच कर सुदूर बनाती है।

शासन-वर्ग की चीज-गामी है। X काइडेन के समाज के पद भी मानते हैं कि कला का कला तब तब ही बनता मान न होकर ज्यार वास्तविकता है। १० टी केरल के स्वर को प्रतिबिम्बित करत हुए वे कविता को मनुष्य की हार्मनता का प्रत्य पोषित करत हैं। + क्या साहित्य प्रयोग-टा है भेग में भी गिनत गिह

X Christopher Caudwell' Illusion and Reality
People's publishing House Ltd Bombay 1947 Pp 24
The division of labour has led to a class society in which
consciousness has gathered at the pole of ruling class whose
rule eventually produces the conditions for its own
निवदानसिह चौहान छायावादी कविता में प्रसन्नता भावना शीपक
सप्त-साधुनिक हिंदी साहित्य (सपा-प्रत्य) हिंदी साहित्य परिषद् मेरठ
१९४० पृष्ठ १४२

एक प्रति उन्नत एवं सम्यक वर्ग का समाज में कविता समस्त समाज की छायावादीओं और उसका भ्रमों की व्यक्तन में कर कवल शासन-वर्ग की भावनाओं को व्यक्त करने लगती है। समस्त मानवता का दामन छोड़ कर यह शक्ति सम्पन्न वर्ग का वरण कर लेती है।

• Christopher caudwell Illusion and Reality People's
Publishing House Ltd Bombay 1947 Pp 26
'It (poetry) exhibits a reality beyond the reality it brings to
birth and nominally portrays, a reality which though second-
ary is yet higher and more complex "
निवदानसिह चौहान 'छायावादी कविता में प्रसन्नता भावना'
शीपक लेख, साधुनिक हिंदी साहित्य (सपा-प्रत्य) हिंदी साहित्य परिषद्
मेरठ १९४०

यह काव्य (श्रम को हल्का करना) कविता, मनुष्य के भावों की एक नवीन श्रेष्ठतर कल्पनात्मक ससार में प्रवर्तित कर, करती है। इस कल्पनात्मक ससार की वास्तविकता प्रवास्तविकता नहीं होती बरन् एक उच्च कोटि की वास्तविकता होती है।'

+ J T Farrell 'A note on Literary Criticism'
Constable and Co London 1936 p 137
Literature is an instrument of social influence
चौहान के शब्दों में —
कविता मनुष्य की स्वतंत्रता का अस्त है।' साहित्य की परत, पृ २४

चौहान टी फेरल की इस राय को कि "सारा साहित्य प्रोपेण्डा है" इस नारे को त्याग देना चाहिए और उसके स्थान पर 'साहित्य सामाजिक प्रभाव का अस्त्र है रखना चाहिए मानते हुए लिखते हैं 'जे टी फेरल से मैं कहा तक सहमत हूँ, यह ज्यादा महत्व की बात नहीं है यद्यपि यह स्वीकार करते मुझे कोई आपत्ति नहीं कि मैं फेरल द्वारा की गई प्रापेण्डा की व्याख्या से सहमत हूँ।" श्री शिवदानसिंह चौहान ने भावसवाद में अत्यधिक दृढतापूर्वक अपनी भास्या प्रकट की है पन्द्रह साल हो गये जब से माक्सवाद कम्युनिस्ट पार्टी और जनता का सक्रिय वायकर्ता रहा हूँ, भाजीवन रहूँगा। यही मेरा जीवन है, यही मेरा वस्तु-दर्शन और विज्ञान है केवल पढ लिख कर पाया हुआ ही नहीं बल्कि उपचेतना में आत्म-सात् होकर रक्तमास में घुलमिल कर हृदय में पुनः जन्मा। वस्तु ज्ञान के इन्द्रियज बोध के साथ साथ मन में सतत पनपने वाली, सवेदनो मनोवेगों और सहज भाव प्रतिक्रियाओं के सहारे चेतना में विकास पाया भावसवाद मेरे जीवन का ध्वास है। * भावसवाद में वही दृढ विश्वास को रखते हुए प्रगतिवादी आलोचकों ने हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन किया है तथा कला संबंधी समस्याओं पर अपने मतों को प्रकट किये हैं। प्रकाशचंद गुप्त शिवदानसिंह चौहान डा० रामविलास शर्मा अमृतराय प्रभृति आलोचकों ने माक्सवादी आधार पर साहित्यालोचन का स्वरूप खडा किया है। प्रकाशचंद ने संक्षिप्त विवरणात्मक आलोचनाएँ लिख कर आलोचना को सरल व सुगम बनाया जिससे आलोचना पर साधारण पाठकों का अधिकार हो। शिवदानसिंह चौहान ने प्रगतिवादी आलोचना के सद्धान्तिक पक्ष को सबल बनाया तथा छायावादी काव्य का विशेष रूप से मूल्यांकन किया। डा० रामविलास शर्मा ने प्राचीन हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं को भी माक्सवादी व्याख्या प्रस्तुत की तथा नवीन हिन्दी साहित्य के प्रगतिशील तत्वों को स्पष्ट करते हुए माक्सवाद के यांत्रिक प्रयोग की भूलों को दर्शाया। अमृतराय ने प्रगतिशील लेखकों के संगठन की समस्या पर विशेष रूप से सतकता दर्शायी। यहाँ पर प्रगतिवादी आलोचकों की व्यक्तिगत उपलब्धियों तथा सीमाओं का प्रश्न न उठा कर प्रगतिवादी आंदोलन से संबंधित कुछ विवादास्पद विषयों का स्पष्टीकरण समीचीन होगा।

सामाजिक दायित्व एवं वैयक्तिक चेतना का संघर्ष

प्रगतिवाद के प्रसंग में कलाकार की वैयक्तिक अनुभूति की ध्यजना का प्रश्न एक महत्वपूर्ण रूप धारण कर लेता है क्योंकि मानव जाति की मुक्ति के युग (वग-

* शिवदानसिंह चौहान 'नई चेतना' अंक ४ 'मानव आत्मा के शिल्पियों के नाम' शीर्षक लेख पृष्ठ ३४

हीन समाज की हत्या) के समय में प्रति उगड़ी रचना पर विभिन्न योजना, राजनीतिक कार्यक्रम, विद्यार्थी का प्रचार आदि के प्रतिबन्ध बनना प्रभाव डालने हैं तथा वस्तुतः अनुभूति का अभाव महसूस रह जाती है। यद्यपि उन अनुभूतियों के विपणन के कारण भेद पर कुछ ही संशुद्धि के अवशिष्ट प्रभाव रहने के कारण की सहना पड़ता है। रेल्व फासम में उग्यासों में परिवर्तन-निर्माण की आवश्यकता महसूस होते हुए तिसा है।

“इस कथन पर ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है कि उग्यास का समय मानव परिवर्तन का निर्माण होता चाहिए। दुर्भाग्यवश औपचारिकता के विनाय वस्तुन आधुनिक उग्यासकारों का इस समय से कोई सम्बन्ध नहीं है।” +

प्रेमपूर्ण के परचाह ही उग्यासों में भी हम देसते हैं कि कुछ समय उपयाम में अपने बहुर ज्ञान तथा व्यक्तिगत परिषय की भेट्ट गियों (इन्दुमती सेठ गोविन्ददास), मन की उमर्गों (भेगर् एक् जीवनी अपने) अथवा राजनीतिक वाद-विवाणे (देशद्रोही: यशपाल, टेड़े भेड़े रास्ते मगवनीपरण बर्मा सीधे सापे रास्ते रागेय रायक की अथिक् प्रथय देते हैं तथा सामयिक उग्यासों से मानवो व्यक्तित्व सुन्द-प्राय हो घसा है। अतमन के मनोविज्ञान का महारा सनेवाले उग्यासों में व्यक्तित्व सगिठ रूप में व्यक्त होता है जबकि सामाजिक परिवर्तन की लक्ष्य मानने-वाले उग्यासों में व्यक्तित्व का समाजीकरण होने के बदले वह अव्यक्त ही रह जाता है। व्यक्तित्व हीनता के विरोध में रेल्व फासम में ही तिसा है।

“ये सहस्रों यथायवादी बहो जानेवाली कृतियों जिनके लेखकों में न बला होती है, न आन्तरिक प्रेरणा, न ऊँची रचनात्मक प्रतिभा, अपने प्रकाशन के महिने भर बाद ही बासी हो जाती हैं। भाज का उग्यासकार अपने पात्रों का व्यक्तित्व बनाने के बजाय साधारण लोगो की साधारण परिस्थितियों में दिखसाने का प्रयास करता है। एक सूफानी अतजगद्वाले नायक की उपेसा करना साहित्य में युगो में

— Ralph Fox 'The Novel and the People', London
Cobbett press, Ltd Second Edition 1948 Pp 89

It seems an unnecessary platitude to emphasize that a novel should be chiefly concerned with the creation of character. Unfortunately, except in a formal sense, this is no longer in fact the chief concern of modern novelists.

बली मानेवाली मानववादी परम्परा का अपमान करना है।" (A)

रूस में लेखकों की सस्या झार ए पी पी के निर्माण के कुछ समय पश्चात् तक रचा जानेवाला साहित्य व्यक्तित्व-हीन था तथा समाज की परिस्थितियों से यात्रिक रूप में निर्मित पात्र सजीव प्राणियों के बदले निर्जीव कठपुतली-से चित्रित किये जाते थे। सारेबाबी शयवा मीठ के चित्रण में पात्रों के अन्तर्जगत् की उथल-पथल खो जाती थी। पात्रों के अन्तर्जगत् की उथल-पुथल वस्तुतः उप-यासकार द्वारा सामाजिक परिस्थितियों में दर्शाये जानेवाले परिवर्तनों की व्याख्या प्रस्तुत करती है।

हिन्दी उप-यासकारों में यशपाल ने यह अनुभव किया है कि उप-यास के पात्र केवल वगमत् भावनाओं के निष्प्राण प्रतीक न होकर सामान्य सुख दुःख का अनुभव करनेवाले जीवित प्राणी हों। यही कारण है कि 'दादा कामरेड' की भूमिका में उन्होंने सजीव मानववादी आलोचकों के हृदय पर टैस पहुँचने की आशका प्रकट की थी।†

सैद्धान्तिक मतवाद के प्रतिपादन व राजनीतिक स्थला पर यशपाल बहुत मानववादी एवम् कम्युनिस्ट के रूप में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं, किन्तु सैद्धान्तिकता के खोल के नीचे उनके पात्रों का अन्तर्द्व व्यक्त हुए बिना नहीं रहता क्योंकि मूलतः 'क्रान्तिकारी भावना' नहीं 'व्यक्ति' है। 'दादा कामरेड' का नायक-हरीश राजनतिक कायकर्ता का जीवन बिताते हुए अनुभव करता है कि एक स्प-दन-

(A) Ibid Pp 90

All the thousands of "realist" studies by those who are neither artists nor man of passion and genius are unreadable within a month of publication day The modern novelist, abandoning the creation of personality of a hero, for the minor task of rendering ordinary people in ordinary circumstances, has thereby abandoned both realism and life itself This is in effect the denial of humanism

† यशपाल : 'दादा कामरेड', विप्लव कार्यालय, लखनऊ तीसरा संस्करण १९४३ 'दो शब्द', पृष्ठ ७

"घोरों की तो बात क्या आशका है स्वयं क्रान्तिकारियों की भावना को ही 'दादा कामरेड' से छोट पहुँचने की। आशका के समझें कि क्रान्तिकारियों की महत्ता को कम करने का यत्न किया गया है। क्रान्ति का स्थान व्यक्ति नहीं भावना है। और क्रान्तिकारी भावना नहीं व्यक्ति है। क्रान्ति का श्रेय व्यक्ति के प्रति अनुरक्ति से नहीं भावना के प्रति निष्ठा से प्राप्त होता है।"

भीत भाव का हृदय उगने तथा घमण्ड ही गया है कि भाव उगने हृदय के स्थान पर कोई निष्प्राण प्राणु है। धन से भिन्नकर वह धन में एक स्थानगीन हृदय का अनुभव करने लगता है। धीरे धीरे का हृदय भी उगी घमण्ड की उचल पुगल से विभोड़ित है। यह सामाजिक ज्ञान के प्रथम में व्यक्ति-धमना का प्रथम प्रस्तुत करती है।

धन के वैश्व ज्ञान की गभीर त समझ कर अनुभव समझने की भावना तथा सामाजिक व्यवस्था के अर्थ में व्यक्ति के अर्थ में प्राणों की अर्थग्राहक का अनुभव व्यक्ति का अनुभूति के प्रति समाचार के सच्चे रहने की मांग प्रकट करते हैं। यशपाल त धन उपभोगों के राजनीतिक पात्रों में इस अर्थग्राहक का अर्थ ही नहीं किया है वरन् उन पात्रों के लिए मनासतियों के दमनपूर्ण जीवन के अर्थ में स्वयं नसागिक जीवन की आवश्यकता को भी दर्शाया है। उनके अनुभव के अर्थ में अर्थगत में कम्युनिस्ट नेता भूषण ने भिन्नरते भिन्नरते धन का अनुभव, अर्थों हृदय धीरे व्यवहार से मनोरमा की धीरे प्रकट किया था। किन्तु समाज में वैश्व के कारण जीवन की मधुर महत्वाकांक्षाओं से हाथ धोने के साथ ही उसने मनोरमा से मित्रता के भाग से काम भी हटा लिया तथा एक सच्चे कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के अर्थ को समझते हुए मनोरमा से कहा— वास्तव में यह भ्रम है धेणी का। मैं निधन साधनहीन धेणी से हूँ। इस हृदय से मैं आप लोगों की धेणी का शत्रु हूँ।' मनोरमा के प्यार की ठुकरा कर भूषण एक प्रकार से उने प्रेम के भाग पर असफलता की धीरे ढकेलता है तथा सुतलीवाला से सिबिन भेरेज कर मनोरमा का जीवन

× यशपाल वही पृष्ठ ३६

हरीश एक नई बात धनो शरीर धीरे मस्तिष्क से अनुभव कर रहा था। एक बार प्राणिकारी का जीवन ग्रहण करने के बाद स्त्री को धन के भाग से परे की वस्तु समझता था।

इधर अनेक बार शल के समीप धन पर उसने उसे भी युवती न समझ केवल पार्टी का सहायक सदस्य ही समझा था जो केवल रूप धीरे धेय में उसके दूसरे साथियों से भिन्न है। परन्तु आज बार बार उसका मन उसे सचेत कर रहा था। वह युवती है जीवन की मृदुता, सहृदयता धीरे सुष्टि का स्रोत लिये। तू क्या उम नहीं पहचानता। उसका मन कह रहा था—तू केवल प्राणिकारी मशीन ही नहीं अनुभव है।

= यशपाल वही पृष्ठ १४०

देखो तुम चाहते हो शासन में शक्ति परन्तु समाज की व्यवस्था के अर्थ में व्यक्ति के अर्थ में प्राण कसे छुटपटाते हैं इसे तुमने जाना ? क्या व्यक्ति के जीवन में कामना पूर्ण का अधिकार नहीं चाहिए मैं तो सबसे अधिक यही अर्थ में अनुभव करती हूँ।

एक टूटती वन जाता है। पारस्परिक स्वामाविक आकर्षण की अवहलना में यह टूटती उस समय और भी कड़वा हो उठती है जब भूपण और मना (मनोरमा) अपनी भूल को पहचानते हैं, अपने अपने दम से। X मनो के जीवन की टूटती तथा भूपण के जीवन के एक अंग के सूटपन की छाया गहरी और लम्बी है। अस्तु, व्यक्तिगत अनुभूति के प्रति सत्यता को अपनाता नितांत आवश्यक प्रतीत होता है जिसके अभाव में पात्र मनुष्य न रह कर प्राति की मशीन का पुर्जा मात्र रह जाता है।

व्यक्तित्व-निर्माण की समस्या स्वामाविक चरित्र चित्रण के अतिरिक्त एक दूसरी दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। व्यक्तित्व के माध्यम से ही सामाजिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति तथा उनका समाधान मिल सकता है। अथवा परिस्थितियों का यात्रिक चित्रण तथा ऊपर से थोपा गया हल न तो प्राति के आदेश को व्यक्त कर सकता है और न उसके लिए कोई प्रेरणा ही देना सम्भव है। मनुष्य कवल

X यशपाल मनुष्य के रूप" विप्लव कार्यालय लखनऊ।

प्रथम संस्करण १९४६ पृष्ठ २१०

'पारो राह देखती होगी?'—मनोरमा परिहास से वाली। वह चुभेल अपने प्रेमी बंकटा को चिट्ठी लिख रही होगी। दो दफे इनके विवाह की तारीख नियत हो चुकी है, परंतु बंकटा को छुट्टी ही नहीं मिलती वह द्रावनकोर में फसा हुआ है।

"हूँ?"—मनोरमा ने विस्मय प्रकट किया। 'कम्युनिस्ट भी शादी करते हैं?"

'क्यों?'—वसे ही भूपण ने उत्तर दिया—'कम्युनिस्ट आदमी नहीं है?"

'अच्छा हो गये हैं? क्या यह नई पार्टी लाइन है?"

भूपण ने हस दिया— तुम मजाक कर रही हो। कम्युनिस्टा के लिए प्राति एक वष के लिये स्वराज्य के सघप का वायप्रम नहीं है कि प्रतिना करके कि स्वराज्य के बाल विवाह करेंगे। या स्वराज्य होने तक नमक नहीं खायेगे, दूता नहीं पहनेंगे। सघप और प्राति को जीवन भर निभाने के लिये जहा तक सम्भव हो, जीवन को साधारणत स्वस्थ और प्राकृतिक बनाय रचना जरूरी है।"

'यह सब समझ में आ गया?' मनोरमा का स्वर दया था।

'यह सब कुछ समझा समझाया तो कोई पग नहीं होता। पूरा पानमय हो भगवान ही है और उनसे कम्युनिस्टों का परिघप नहीं है।' भूपण ने परिहास का उत्तर वसे ही स्वर में दिया।

धार्मिक परिस्थितियों को बदलता है तथा उसे बचपते हुए स्वयं भी बदल जाता है। सग सघप के सिद्धान्त पर आधारित मानव इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या को भ्रामक बतलाते हुए श्री एम० एन० राय ने व्यक्ति की सजन प्रेरणा को महत्व दिया है। उनका कथन है 'यदि सामाजिक विकास की प्रक्रिया में मानवी बुद्धि को महत्व न प्रदान किया जाय तो सम्पत्ता के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या निरर्थक ही है। यह समझना नितान्त मूल्यपूर्ण है कि इतिहास स्वयंभव विकसित होनेवाले उत्पादन के साधनों के द्वारा लाई जानेवाली घटनाओं के क्रमागत परिवर्तन का लेना है। इतिहास की विकासमान प्रक्रिया से मनुष्य को विलग नहीं किया जा सकता। सामाजिक शक्तियाँ कोई भ्रमूत मात्र नहीं हैं, वे मनुष्य की सजनशीलता की सामूहिक अभिव्यक्ति हैं एवं सजनशील मनुष्य सदैव विचारशील मनुष्य होता है।' + अतः विचारशील मनुष्य की व्यक्तिगत अनुभूति एवं चिन्तन क्रान्ति के आदेश को पूरा कराने के लिए आवश्यक उत्पादन हैं। अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी' में व्यक्तित्व के विकास को सर्वतोमुखी क्रान्ति के लिए आवश्यक ठहराया है। पार्टी से अधिक वे व्यक्ति की महत्ता मानते हैं।

'जो क्रान्ति एक दिशा में तभी बढ़ती है जब दूसरे मार्ग बन्द करले वह क्रान्ति नहीं है। हम जो इतनी हलचल के बाद भी आगे नहीं बढ़ पाते उसका यही कारण है कि हम प्रगति को कृत्रिम प्रणालियों में बहाना चाहते हैं। शायद यह सगठन का अनिवाय दोष है? सगठन एक ध्येय लेकर होता है उसका एक निश्चित कार्यक्रम हो जाता है। फलतः उसको बढ़ाने के लिए लोग दूसरी दिशाओं से हाथ खींच लेते हैं। पर सगठन के बिना भी क्या होना है।

होता है—क्रान्ति का एक सगठित पक्ष है तो एक महान्तर व्यक्ति-पक्ष भी है। बिना सगठन के भी बिना सगठन के ही व्यक्ति धकेला भी बहुमुखी वृद्धि

+ M N Roy The Marxian way Vol 2 Pp 253

The materialist conception of history to identify the history of civilization with the history of class struggle loses all sense if intelligence is accorded no place in the process of social evolution. In any case it is palpably absurd to regard history as a succession of events brought about by the automatic development of the means of production. The man can not be eliminated from the evolutionary process of history. They are the collective expressions of the creativeness of man and the creative man is always a thinking man.

के बीज बो सकता है।" +

धन व्यक्तित्व के समाजीकरण अथवा विलीनीकरण के बदले उसके प्रस्फुटन की आवश्यकता है जिसके अभाव में क्रांति का लक्ष्य किसी प्रकार सफल नहीं हो सकता ।

व्यक्तिक स्वतंत्रता का प्रश्न उस समय और भी अधिक महत्व ग्रहण कर लेता है जब कि कलाकार के व्यक्तित्व एवं उसकी सामाजिक चेतना में द्वन्द्व अनुभव होता है, जब सद्भाग्यिक मतवाद अथवा समूह का कार्यक्रम स्वतंत्र चेतना कलाकार की वैयक्तिक अनुभूति व चिंतन द्वारा माप नहीं रह जाता । आधुनिक भारत कवियों के सम्बन्ध में स्टीफेन स्पेंडर ने लिखा है

“किसी सीमा तक उनका काव्य मार्क्सवादी होने पर भी उनके व्यक्तित्ववाद और उनके सामाजिक चेतना के द्वन्द्व को अभिव्यक्त करता है ।”●

नरेन्द्र की ‘हसमाला’ में स्वर मेरे’ कविता की निम्न पक्तियों में यह द्वन्द्व रोदन अत्यधिक मुखर हो उठा है

तू नए सत्य के लिए नित्य कर मन मथन

ओ, स्वर मेरे ! तू आगत की अनुगूँज न बन !

बढ़ता ही चले नित्य तेरा मानस रथ जिनासा पथ पर

हे पान विशद, अति विशद, कहीं सकोए न बन जाए अंतर

सिद्धांत प्रयोजन साधन है, बन जाय न ममता के बंधन

ओ स्वर मेरे ! तू आगत की अनुगूँज न बन ! X

सिद्धांत व प्रयोजन को साधन रूप माननेवाला कवि वैयक्तिक चिंतन के प्रति पूरा आस्थावान है । व्यक्तित्व के प्रस्फुटन की यह माँग अज्ञेय की कविता में पुरजोर रूप में मिलती है । अज्ञेय इत्यलम्’ में युग की चाह को पूरा करने में व्यक्तित्व का क्रांतिकारी महत्व दर्शाते हैं

नहीं, सकुचा है कमी समवाय को देने स्वयं का दान विश्व जन

की अचना में नहीं बाधक या कमी इस व्यष्टि का अभिमान

+ अज्ञेय शेरर ‘एक जीवनी’ भाग २, सरस्वती प्रेस, बनारस द्वितीय संस्करण १९५७ पृष्ठ ११७

● Stephen Spender, Poetry since 1939 Pp 28

To a great extent their poetry, though leftist, expresses the problem of the liberal divided between his individual development and his social conscience

X नरेन्द्र शर्मा : ‘हसमाला’, भारती मन्डार प्रयाग, प्रथम संस्करण सन् २००३ पृष्ठ १३

कांति अणु की है सत्ता गुरु पुज का सम्मान

बना हू कर्ता, इसी से कहू मेरी चाह मेरा दाह मेरा खेद और उछाह

मुझ सरीखी अग्नि लीको से मुझे यह सबदा है ध्यान,

नयी पक्की, सुगम और प्रशस्त बनती है युगो की राह +

युग की मांग के प्रति समर्पित स्वतंत्र चेतना व्यक्तित्व के महत्व को स्वीकार करना प्रगतिवादी साहित्य के लिए आवश्यक है ।

प्रगतिवादी विचारधारा और फ्रायडोय

मनोविज्ञान

साहित्य में वैयक्तिक अनुभूति के प्रकाशन के साथ ही मनोवैज्ञानिक चित्रण की आवश्यकता निर्भर रूप से सिद्ध है । प्रेम मानव मन की नैसर्गिक प्रवृत्ति है तथा साहित्य में इसका चित्रण व्यापक रूप से पाया जाता है । यद्यपि साहित्य में प्रेम का चित्रण आदि काल से महत्व रखता है किंतु उन्नीसवीं सदी के अंत व बीसवीं सदी के आरम्भ में यूरोप में सिगमण्ड फ्रायड व अन्य विचारकों द्वारा प्रवर्तित मनोविश्लेषण सिद्धांत ने मानव मन के अचेतन भाग के जिस पक्ष का उद्घाटन किया उसके द्वारा जीवन में काम प्रवृत्ति का महत्व नये रूप में स्वीकार किया गया । मनोविश्लेषण सिद्धांत (जिसकी व्याख्या एवं प्रभाव अगले अध्याय का विषय है) काम वासना को जीवन की मूल प्रेरणा मानता है तथा नैतिक व सामाजिक वजनाघो का परिणाम अनेक मानसिक कुंठाएँ बतलाता है जिनसे वर्तमान समाज के अधिकांश व्यक्ति प्रसिद्ध हैं ।

प्रगतिवाद व्यक्ति के अंतर्जगत् का महत्व तो अस्वीकार नहीं करता किंतु वह पश्चिम में प्रचलित फ्रायड, एडलर, जुंग आदि मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों को नहीं अपनाता । इसका कारण यही है कि मनोविश्लेषण सिद्धांत प्रगतिवाद की समाजवादी निर्माण की योजना में योग नहीं देता । प्रगतिवादी आलोचक अमृतराय का कथन है "फ्रायड का दृष्टिकोण असामाजिक है । इतना ही नहीं मार्क्स के संदेश में आमूल आति की जो मांग है, फ्रायड का उसमें सवथा अभाव है । फ्रायड ऐसा कहीं नहीं मानता कि जिस समाज के व्यक्तियों की परीक्षा उसने की है उसमें भी कहीं कोई सड़न या दुग्ध है और उसे तोड़ फोड़ डालने की भी कोई आवश्यकता है । चाहे एक दिमागी उत्तुङ्गता के लिए क्यों न हो वह एक बार भी पूजोवादी समाज को सदिग्ध मुजरिमा के कठघरे में लाकर नहीं खड़ा करता उसकी नीयत में श्रुवहा नहीं करता । इस प्रकार फ्रायड आगे बढने का कोई संश नहीं देता उल्टे अपने विश्लेषण में इसी जो है

(Status quo) की बकालत करता है।" + यद्यपि फ्रायड के सम्बन्ध में यह कहना कि वह 'जो है' की बकालत करता है अनगल ही है बयो कि फ्रायड ने समाज की उस स्थिति का विरोध किया है जो अपनी वज्रताओं के कारण व्यक्ति का यौन कुंठाओं का शिमार बनाती है। इस सम्बन्ध में उसने एक पूरी पुस्तक ही 'सम्पत्ता तथा तदन्वय असन्तुष्टता (Civilization & its discontents)' रची है तथापि फ्रायड का दर्शन या मनाविनान इस दृष्टि से एकांगी है कि वह समाज की आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में मोन है और यह नहीं देखता कि कुंठाएँ कबल यौन सम्बन्धी ही नहीं आर्थिक श्रेणी-विभाजन के ऊँच नीचे के भावों से भी उत्पन्न हो सकती हैं।

फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत का प्रभाव इतना व्यापक है कि कतिपय प्रगतिवादी मार्क्स और फ्रायड के सिद्धांतों के सामंजस्य के पक्षपाती भी हैं। डाक्टर श्यामसुन्दर दास जी की स्मृति में सेंट जॉस कालेज आगरा के एक विशेष अधिवेशन में आपकी दृष्टि में शास्त्रीय आलाचना का मूल्य क्या है? प्रश्न के उत्तर में आलाचक श्री प्रभाकर माधवे ने मार्क्स व फ्रायड के विचारों के सम्बन्ध के पक्ष में अपना मत प्रदर्शित किया। X

आंग्ल कविता के क्षेत्र में आइनेन स्टाफेन स्पेहर और उनके वग के लेखक यद्यपि मार्क्सवादी विचारधारा के प्रतिपादक हैं तथापि मार्क्सवादी नियंत्रण में ब्रिटिश कर उनके दृष्टिकोण प्रायः व्यक्तिवादी हो जाते हैं एवं व्यक्ति व समष्टि का दृष्ट्य उनके कथ्य में उभर आता है। यौन प्रतीकों के रूप में भी उनकी भावना ध्वनिग हाठी है। हिन्दी की नयी कविता (प्रयोगवादी काव्य) में गजानन मुक्तिबाध, गिरिजा

+ अमृतराय 'नयी समीक्षा', हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस १९१० पृष्ठ ७१

X साहित्य-संदेश अगस्त १९४० पृष्ठ ६०

मेरा अपना मत है कि साहित्यालोचन के क्षेत्र में भी विचारों का सम्बन्ध बहुत आवश्यक है। चूंकि समस्त कला-व्यक्ति कलाकार व मनःसिद्धि का समाज में आकर मिलती है, अतः मनोविनान और समाज-विज्ञान का सम्बन्ध, उसके नवीन आविष्कारों से अभिपत्ता आलोचक की एक प्राथमिक शर्त है। राबर्ट ओसबन ने अपने 'फ्रायड एंड मार्क्स', ग्रन्थ में भी यही बात दर्शाई है कि ये दोनों ही चिंतक परस्पर पूरक थे और न कि जस आइनेन स्पेहर का भावना में 'स्टडीज इन डाइग कल्चर' में फ्रायड प्रकरण में उक्त कथ्य में ही मुख्य उच्च वग का कारण मात्र मानता है। मरी ध्यान में है कि फ्रायड इन दो चिंतकों से मूल्यनिर्धारण में बहुत-बहुत सहाय्य प्राप्त कर चुका है। मूल्य निर्धारण का विषय केवल वैयक्तिक दृष्टि से ही नहीं है बल्कि सामाजिक विषय बन चुका है।

कुमार, भ्रंशेय आदि के काव्य में हम वही व्यक्ति व समष्टि का द्वन्द्व तथा यौन प्रतीकों का प्रयोग पाते हैं। यह कविता आर्टेन वग के कवियों से प्रभावित भी है। उस स्थल पर फ्रायड व माक्स के सिद्धांतों का समन्वय प्रस्तुत करता अभिप्रेत नहीं है किन्तु, यह सकेत करना आवश्यक प्रतीत होता है कि एक ओर फ्रायड की विचारधारा से प्रगतिवादी साहित्यकार प्रभावित भी हैं किन्तु दूसरी ओर सैद्धांतिक रूप से वे फ्रायडकीय विचारधारा के सम्मुख अपने विवाद बँध कर देते हैं।

यौन नैतिकता का विरोध

प्रगतिवादी साहित्यकारों पर फ्रायड की विचारधारा का यह प्रभाव पड़ा है कि यौन नैतिकता (Sex morality) का विरोध कर उठान वसे सहज प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है।

यशपाल के "दादा कामरेड" उपन्यास में इसका विशेष आग्रह पाया जाता है। स्वयं लेखक ने तत्संबंधी मतलब प्रकट करते हुए लिखा है "हमारे समाज की वर्तमान आचार संबंधी साधारण धारणा से यह विचार भयानक और विद्रोही जान पड़ेगा। ठीक उसी प्रकार, जैसे गलीतियों की बात कि पृथ्वी गोल है और वह धूमती है, तत्कालीन धारणा का विद्रोह था। दादा कामरेड' में राबर्ट के विचार और शल का आचरण समाज में मौजूद सफ्ट और अतद्वन्ध के लिए 'उपचार' के नुसखे का दावा नहीं कर सकते हैं। वह तो निदान" का प्रयत्न मात्र है। उद्देश्य है समाज की मौजूदा परिस्थिति में और प्रमागत आचार और नैतिक धारणा में वैयम्य और विरोधों की ओर सकेत करना।" +

यौन संबंधी प्रचलित नैतिक धारणा के माग को बदलने के लिए यशपाल ने विवाह संबंध तथा पतिव्रत धर्म की मायता पर प्रहार किया है। शल जिस वातावरण में पत्नी उससे स्वच्छन्द प्रेम की प्रवृत्ति जागृत होना स्वाभाविक था। पुरुष नारी पर एकाधिकार चाहता है इसका अनुभव उसे जीवन के आरम्भ में ही हो गया जब उत्तम देखा पत्रह वर्ष का लड़का भी उसे अपनी सम्पत्ति समझना चाहता था। एक समय लड़के ने प्रेम के परिणाम स्वरूप गम निपात की दाखल याचना सह कर भी उस पुरुष से प्रवृत्तना ही मिलती है और उसका प्रेमी धनवान जमींदार की इज्जती लड़की से अपने विवाह बंधन की सूचना दे जाता है तो वह हतमन रह जाती है। उस पर भी एम का यह प्रश्न कि महेंद्र को तो तुमने कबल मन ही दिया था शरीर तो नहीं और शरीर की भा हमी भरन पर भी एम के बाहुओं का, जो शल को लपटे थीं डीला पड जाता नारीत्व का अपमान प्रकट करता है। शैल के एकाधिक

+ यशपाल 'दादा कामरेड' विन्डव कार्यालय लखनऊ तीसरा संस्करण १९५३ पृष्ठ ५

व्यक्तियों के प्रति यौन आकर्षण के मूल में उसकी यह सरल विश्वास व्यस्त है कि जो भ्रच्छा हो वह भ्रच्छा कसे न लगे ? उसके लिए चाह या प्यार कैसे न हो ? शैल का यह प्रश्न कि क्या ससार भर की भ्रच्छाई एक ही व्यक्ति में समा सकती है ? और जगह भ्रच्छाई दिखाई देने पर उसे कस स्वीकार कर दिया जा सकता है ? क्या मनुष्य हृदय का स्नेह केवल एक ही व्यक्ति पर समाप्त हो जाना जरूरी है ? — यौन संबंधी प्रचलित नतिक धारणा के सम्मुख एक कठोर प्रश्न धन कर उत्पन्न होता है ।

हरीश से पूछे गये शैल के इस प्रश्न का उत्तर और इस प्रश्न से उठी हुई समस्या का निदान हम शैल, हरीश व राबट के वार्तालाप में मिलता है । त्रिय पनोरा की राबट ने हृदय से प्यार किया था विचारों में भेद उत्पन्न हो जान पर त्रिय पनोरा से अपने विश्राह को दुभाग्य मानने लगता है । वह विवाह की व्यवस्था को बधनभय तथा स्त्री को पुरुष की सम्पत्ति बनाये रखन की प्रवृत्ति का परिणाम बतलाता है । हरीश विवाह को एक पुरुष को एक स्त्री के लिए एक-से-क रूप में देखता है तथा स्त्री की स्वतंत्रता के लिए विवाह की प्रथा का अन्त होने की कामना करता है । उसके अनुसार विवाह का बधन दूर हान पर स्त्री को पुरुष स्वाभाविक व्यवस्था में रहेंगे ।

प्रवृत्ति के लिए सफाई देनी पड़ी है। नरेन्द्र, अचल व दिनकर प्रभृति कवि जहाँ अपने सामाजिक दायित्व के प्रति सचेत हैं वहाँ उन्हें अपने व्यक्तिगत जीवन की सहज रोमांटिक प्रवृत्ति के लिए सफाई देनी पड़ी है। X कभी वे रोमांस को दुनिया को ही नष्ट कर देना चाहते हैं कभी वे नारी को श्रांतिपथ की सहयोगिनी और श्रान्ति की नारी रूप में ही कल्पना करते हैं तथा कभी उनकी दबी हुई काम वासना मानसिक विवृति यौन प्रतीको भ्रमवा यौन उच्छ्वलता के रूप में व्यक्त होती है।

नारी का जागृत रूप

नरेन्द्र का कवि 'एक नारी के प्रति' कविता में प्रेम की अलकापुरी स मु ह मोड़ लेता है। उसे अब श्वासी की सुरभि मुग्ध नहीं करती। पौ फटन पर जिस प्रकार यामिनी दूर हो जाती है उसी तरह सामाजिक चेतना के जाग्रत होने पर कामिनी की मूर्ति मन से हट जाती है। • "लाल चूनर" में अचल नारी को प्रणयिनी के रूप में देख कर सतुष्ट नहीं होने अतः उनको नारी के केवल उसी रूप को देख कर घृणा हाती है। वे नारी से प्याले प्याले में सुरा भाग की माग नहीं करते वरन् उससे युद्ध की प्रेरणा की माग करते हैं। = प्रगतिवादी काव्य की नारी प्रणयिनी मात्र नहीं है वरन् वह समाज को बदलने की भावना लिए पुरुष की वक्ष्यशील सहयोगिनी है। अतः हरिवृष्ण प्रेमी अग्नि गान में अपनी "प्रलय सहेनी" स प्रेम का राग छोड़ कर दुर्गा का रूप धारण करने का अनुरोध करते हैं। + भारतीय प्रसाद सिंह 'सचयिना' में नारी को सुकुमारता एवं कामुकता छोड़ युग के अनुसार काम्य

X प्रवासी के गीत एक क्षय भ्रम युवक कवि के गीत हैं। (नरेन्द्र) जहाँ मैं बहक गया हूँ। वहाँ मेरी दुबलता है जीवन के क्षयी रोमांस के प्रति अर्वाचीन्य श्रमक्ति है। (अचल) 'रेणुका' और 'हुकार' के विपरीत रसवती की रचना निरुद्देश्य प्रसन्नता से हुई और इसमें किसी निश्चित सङ्ग का अभाव-सा है। इन गीतों में अपने हाथ में छूट सा गया हूँ और प्रायः अक्षम्य आलमी की श्रान्ति उम प्रगल्भ अक्षरी के पीछे भटका फिरा हूँ जिसे कल्पना कहते हैं। इस अलस भ्रमण में कुछ मेरे हाथ भी लगा या नहीं यह तो याद नहीं हा याथा मुगल रनी। (दिनकर)

• नरेन्द्र शर्मा एक नारा के प्रति हस्त दिग्म्बर १९४२

= अचल 'लाल चूनर' पृष्ठ २४

+ हरिवृष्ण प्रेमी अग्नि गान पृष्ठ १४

प्रायः प्रेम का धंस हो चुका अब धारपणहीन पुराणा

अत्र की बगी छोड़ हमें अब कुरंगों का शय बजाना

मरा राय प्रेम-युव पर छाओ अब अग्निमार रचाना

मुझको अमुरों को दुनिया में है तुम्हा का रूप निगाना

होने के लिए आह्वान करते हैं । ❖

कविता के क्षेत्र में नारी के प्रति भावुकतापूर्ण उद्गार व्यक्त हुए हैं, बहा उपन्यासकारों द्वारा जीवन के काय क्षेत्र में नारी का सहज स्वामाविक रूप में कम क्षेत्र को घोर बहने की जानसा में युक्त प्रकृत किया गया है । "दादा कामरेड" की शैल समाज की प्रचलित मायनाओं के अनुरूप जीवन नहीं ढाल पाती पर इमका उमे खेद नहीं है । अपने काय के परिणामों को भेजने की उसमें सामर्थ्य है तथा सारी प्रनाडनाओं को भेज कर भी कनय पथ पर उमकी गति प्रबाध रहती है । कम्युनिस्ट हरीश से सबधित होकर कुमारी शल गमवती हो जाती है तत्र पिता से कटती है कि वह अपनी विवेक बुद्धि के सामने लज्जित नहीं है, कि उसे पछतावा नहीं है और वह कमजोरी का अनुभव नहीं करती । यदि हरीश पासो का हृवम सुनकर भी मुस्करा दिया या तो उसकी साथी, उसकी कामरेड शैल मूर्खों की छी छी से नहीं डरेगी । वह जीवन को जारी रखने के लिए दादा के साथ जाती है । लगता है जैसे उसका जीवन समाजवादी यवस्था को खाने के लिए समर्पित है । जिस हरीश को उमने उसके दादा से छीन लिया था उस हरीश के प्रतिरूप को वह दादा के हाथ में सौंप देगी कि वह समाजवादी यवस्था को खाने का भगीरथ प्रयत्न करे । "देश द्रोही" की चाद भी खाना के समाजवादी विचारों से अत्यधिक प्रभावित होनी जाती है और मत्त में खाना की सहायता के लिए ऐसा साहसिक काय भी कर बैठती है जिमका परिणाम उमके लिए लान-धूसे बेहोशी स्वतंत्रता का अग्रहरण और मृत्यु तक समव है । खानूत और गुलशा के रूप में हम रूस में उस नारीत्व के रूप का परिचय पाते हैं जो समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए पूणत अपने जीवन को समर्पित कर चुकी हैं । "मनुष्य के रूप" में मनोरमा कामरेड भूपण की जीवन मंगिनी बन कर उसके काय में सहयोगिनी खाने को तत्पर है किन्तु भूपण ही उसे प्रारम्भ में नहीं समझ पाता जिसका बाद में दोनों को पत्रचाताप होता है बम्बई में कम्युनिस्ट पार्टी के दफतर में भूपण व पारो को साथ काय करत हुए मनोरमा सोचती है 'मेरी किस्मत थी । नहीं तो मैं आज यहाँ न होनी ? पारो उमकी मित्र है । उसे पारो का भरोसा है, मुझ पर न था । कितनी व्यथ बात उसने कही-तुम्हारे लिए तो पारो ही सुन्दर है ?' लकिन जो कुछ वह कर रही है मैं क्या नहीं कर सकती थी ? मरत दिल रखने के लिए तुमने कहा मैं तीस घंटे काम कर सकती हूँ । कभी तुमने मुझे अवसर दिया ?' + 'दस द्राही'

❖ भारसीप्रसाद सिंह 'सचयिता' पृष्ठ १७६

नारि नारि, सुकुमारि नहीं यह उचित न ब्रजकुमारि
प्रोपतपतिका बन या कब तक बरसाप्रोगी वारि
बहुत त्विस हो गए बहाते नयनो से जलधार
अब तो कुछ कर दिखलाओ इस युग के अनुसार

+ मशपाल "मनुष्य के रूप" विप्लव कार्यालय लखनऊ छात्र सं० पृ० १६२

की चाद जहाँ अपने पति से विद्रोह में असफल रहती है अज्ञय के "शेखर एक जीवनी" में शशि अपने मशमशील पति को छोड़ जाने के पश्चात् शखर के व्यक्तित्व का निर्माण में अपना पूरा सहयोग देती है। एक भवसर पर तो वह विशाल समा-मण्डप में जाकर भाषण देती है जहाँ उसे हृदयहीन रेंगना तिरस्कार मिलता है। इन उपन्यासों में नारी के जागृत रूप का आभास मिलता है। वे पुरुष का केवल प्रेरणा देनेवाली नहीं चित्रित की गयी हैं वरन् कम-क्षत्र में पुरुष की सहयोगिनी भी हैं। पूरा सहयोग वे नहीं दे पाती क्योंकि समाज में उनकी वर्तमान स्थिति उनकी प्रगति में बाधक सिद्ध होती है। पर उस परिस्थिति के प्रति उनका विद्रोह स्पष्ट है। इन उपन्यासकारों ने नारी के जिस विद्रोह का चित्रण किया है उससे नारी की समाज में पथाथ स्थिति का जान हाने के साथ उसकी जागृति का भी परिचय मिलता है।

कुठित वासना का चित्रण

नारी के मात्र प्रणयिनी रूप के प्रति असंतोष तथा नारी को श्रांति माग की सहयोगिनी के रूप में चित्रित करने में जहाँ साहित्यकार की सामाजिक दायित्व के प्रति सजगता प्रकट होती है वहाँ श्रांति के स्वरूप को नारी रूप में ही चित्रित करने में कुठित वासना का भी आभास मिलता है। 'दिनकर की हुंकार' में 'विपथगा' कविता में श्रांति का चिरकुमारिका-नारी-रूप सहज प्रतीक रूप में यत्न हुआ है परन्तु, अचल की 'किरणवेला' में 'दानव' कविता में वासना का रूप ही उभर आता है। इस कविता में महाश्रांति की जोगिनी माया अपनी गिराओं को भ्रम भन बजानी आती है तब उसकी रक्तनाथ भ्रमाडो से उलझी चोली में स्तन चंचल हो उठे हैं और वह बिजली सी उच्छल बनी आती है। उसके तप्त कठिन अंगों में तूफानों का आसव मरा है तथा उसका सौ दय असहनीय हो उठा है।— श्रांति-भावना का चित्रण करते हुए कवि शृंगार, उमाद नूपुरों की छत-छनाट, रानी प्रिये के मधुर संबोधनों श्रांति से प्रच्छन्न शृंगारिका भावना को व्यक्त करता है। अचल की कविता में कहने के लिए नारी-जीवन के दोनों पक्षों प्रेम व श्रांति का निरूपण हुआ है किन्तु वस्तुतः उनमें कुठित वासना का ही अधिक चातन

+ अचल 'किरणवेला (दानव) पृष्ठ ७०

मौन विवसना चली अकुठित विपथमुखी ममता की मारी
महाश्रांति की जोगिनी माया भन भन बजती शिरा तुम्हारी
आज रक्तनाथ भ्रमाडो से उलझी चोली में चंचल
सवनामिनी बिजली सी तुम तजवत आती उच्छल
भर लाई हो तप्त कठिन अंगों में तूफानों का आसव
आज तुम्हें फिर विश्व बदलना आज तुम्हें क्या कठिन अतम्मव !

हुआ है। X

यशपाल के उपन्यासों में विकृत काम वासना के उन्नाहरण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। "दादा कामरेड" का नायक हरीश गौना होने के एक दिन पूर्व अपना घर चुपचाप छोड़ कर श्रान्तिकारी जीवन व्यतीत करने के लिए निकल पड़ता है। सात वर्ष तक वह अपने जीवन में श्रान्ति को मूर्त रूप देने का प्रयत्न करता रहा है। राबट तथा उसकी बहिन मनसी के साथ हरीश को मित्राजकर का छद्मनाम प्रदान कर शाल मसूरी लेजाती है। शैल व राबट के प्रेमपूर्ण जीवन को देख हरीश को व्यथा ईर्ष्या या कमी-सा बख़्श अनुभव होता है। श्रान्तिकारी जीवन के सम्बन्ध सात वर्षों में हरीश जीवन का आवश्यक भ्रम 'चाह' को भुलाये या दबाये रहा है और वह विकृत रूप में शैल को पूणतया निवसना देखने की इच्छा के रूप में प्रकट होती है। हरीश शाल को निवसना देख कर जैसे पूणता का अनुभव करता है। हरीश की यह मानसिक विकृति चाहे उसकी मानवीय कमजोरी अथवा मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन कही जाय किन्तु, सामाजिक श्रान्ति को उपस्थित करनेवाले पात्र से अधिक मानसिक स्वास्थ्य की अपेक्षा की जाती है। मानसिक काम विकृतियों से खण्डित यत्न द्वारा श्रान्ति का सफल होना ही सदेहास्पद है। यह सदेह यशपाल के 'देशद्रोही' उपन्यास के पात्र डा० खन्ना के जीवन से और भी अधिक स्पष्ट होता है। डा० खन्ना रुस से लौट कर साम्यवादी विचारों के प्रचारार्थ अपना जीवन समर्पित कर देता है पर जब भी वह चर्चा से मिलता है बल्कि वह मिलने का अवसर भी निकालता है तब उसकी गोद में सिर रख कर सो जाना चाहता है। अचल के "चढती घुप" उपन्यास का पात्र मोहन मिल के फाटक पर पुलिस की गोली खाकर शहीद होने से पहली रात अपनी सचित वासना को तारा से सतुष्ट करता है। यह उदाहरण प्रकट करते हैं कि प्रगतिवादी उपन्यासों के श्रान्तिकारी पात्र दमित काम वासना की मानसिक विकृतियों से ग्रस्त हैं। यह मानसिक विकृति काव्य में यौन विकृतियों एवं उच्छ्वसल वासना के प्रश्न का रूप ग्रहण करती है। अज्ञेय के "तार सप्तक" की 'जनाङ्गान' व 'सावन मेघ' कविताओं के उपमान यौन प्रतीकात्मक हैं। - भविष्य के पथ पर बढ़ा हुआ हठ पैर अत्याचार का मदन

X अचल 'करील'

रात को कथा मिला छानी से छाती सटा

रात को बनी थीं तुम गोली और रंगोली

किन्तु दिन में बनी अखंड युद्ध की करालिका

+ अज्ञेय (स०) 'तार सप्तक', प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली १९४३ पृष्ठ ७७

गुरु मन्दिर स्थानु सा गढा हुआ

तेरी प्राण पीटिका में लिंग सा खड़ा हुआ ।

करता "क्षितिज सा" अथवा मराञ्छन आकाश को भूमि के उरोजो पर झुका + चित्रित करना यौन विवृति का ही परिचय देते हैं। गजानन माधव "मुक्तिबोध" ने भी क्षितिज पर रगीले बाँसों के रूप में श्वस की बरसात के गालों पर सूर्यास्त के चुबन और नव हृदय के गम में सत्य के शिगुणों के आकार ग्रहण करने का वणन किया है। X

यौन प्रतीकात्मक उपमानों के प्रयोग में जहाँ दबी हुई कम रासना का आभास ही मिलता है वहाँ कुछ प्रगतिवादियों ने अपनी प्रज्वलित काम पिपासा का खुल कर इजहार किया। अचल की 'मधुनिका' की कविताएँ म तृष्णा व वासना का ज्वलित रूप हैं। कवि आत्म परिचय देने हुए स्वयं को नग्न वासना की उच्छ्वल गीता बतलाता है। = और वह उच्छ्वलता कभी ता कीमत्तता की इस सीमा तक पहुँच जाती है कि अपनी अनियंत्रित भावना के प्रवाह में कवि

+ अज्ञेय वही

घिर गया नभ उमड़ आएँ मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोजो पर झुका सा
विशद स्वासाहत चिरानुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष—
वज्र सा यदि तडित से थुलसा हुआ सा !

X मुक्तिबोध वही पृष्ठ १४

स्वप्न का वह यौम नीला
प्राण पृथ्वी पर झुका है,
उस महा व्याकुल अनावसत नान लिप्सा
के क्षितिज पर
अमित, नीला, जामुनी अति लाल सुंदर
दिवस की बरसात को सूर्यास्त का चुम्बन
और अनेकों सत्य के शिशु
नव-हृदय के गम में द्रुत
आ चलेंगे।

= अचल 'मधुनिका' (उच्छ्वल)

मैं इच्छा के मरुपथ का यात्री अचल
प्रज्वलित पिपासा से मरा अतस्तल
मैं अथ बताता द्रोह मरे यौवन का
मैं नग्न वासना की गीता उच्छ्वल

मातृत्व की भी उपेक्षा कर देता है । +

अचल के काव्य की नारी पुरुष की तरह ही वृष्णाकुल व विपासित दिखाई देती है । X

अचल द्वारा नारी व पुरुष के उक्त रूप में चित्रण के पक्ष में कहा जाता है कि उन्होंने नारी व पुरुष की जिस विपासा का बहान किया है वह इसलिए कि हमें जात हो सके पूजिवादी युग में पुरुष व नारी की वासना का रूप कितना उच्छ्वल हो जाता है । पर इसके अतिरिक्त अचल के काव्य में नारी का कोई अन्य रूप उभर कर नहीं आता । “किरणवेला” “करील” व “लाल चूतर” में कवि ने समाजवादी भावना का पोषण किया है । इन काव्य-रचनाओं में नारी का शोषित रूप प्रकट हुआ है पर शोषण के बीच पत्नी मजदूरिम व मिथारिम के मातृ-रूप के प्रति घृणा व नारी सौन्दर्य के प्रति अनजानी लालसा ही व्यक्त हुई है । डा० शैल कुमारी के शब्दों में “अचल ने नारी के साथ अनियमित निबंध और उद्दाम यौन-सम्बंध का आदर्श रखा है । वह कवि के किसी अन्य काव्य में सहयोग देती नहीं देखती । नारी यौनि मात्र है । वह पुरुष वासना की उत्तेजना और वासना की पूर्ति का साधन है । स्वयं में भी वह वासना पूण है । उसका कोई सामाजिक व्यक्तित्व नहीं है ।” = इसी प्रकार प्रगतिवादी कवि उपन्यासकार नागाजुन ने भी वासना का भद्र व अश्लील रसपूर्ण चित्रण किया है । *

+ अचल “अपराजिता” (मुहूर्त) पृष्ठ ४०

आज निरकुश गमन में यही जलन की तो बेला

माना कटि प्रदेश में मुहूर्ता पर

मुहूर्त यह अलबेला

X अचल “मधूलिका” (आज तो)

आज तोहाग हरू में किसका

किसका लूट यौवन

किस परदेशी को बदी कर सफल करू

यह बेदन !

= डा० शैलकुमारी ‘आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना’ शिन्धुनाली एकेडेमी, इलाहाबाद पृष्ठ २३५

* नागाजुन “रतिनाथ की चाबी”, पृष्ठ १४१

‘मा के मरने के बाद लगभग आठ साल तक रतिनाथ के

का अंगना विस्था डका रहा । नगा नहाने समय या दिगा फरावत के वक्त उसके साथी उसको ताना मारते रती तेरी न तो शाही होगी, न तेरे लिये सडका बच्चा पडा हागा । तू तो हिजहों से भी बदतर है । रतिनाथ को साथियों का वह ताना

इस चित्रणों से उम हृदय नतिक्रमता का घमास प्रकट होता है जो आगिरागी सेगक का युग-घम मानी जाती है। घम-वैडर बुप्रिन (Alexandar Kooplin) ने 'यामा द पिट' (Yama the pit) उपन्यास से येग्यासयों का मुता यणन किया है तथापि उस यणन का पात्र का मन पर दूषित प्रभाव नहीं पड़ता यरन् घमागिनी येग्यासो के प्रति सहानुभूति ही जागृत होती है। 'सेवा सन्' म प्रेमघ-न भी यग्या जीवन के एष पक्ष को उद्घाटित किया है कि तु, उसम यासनापूण स्वत सगमात्र भी नहीं है। यग्यापाल की आरम्भिक रचनाओं से यीन विवृतिर्या का उगाहरण ह्य पीछ दे चुके हैं। तथापि उनही नवीन रचनाओं म यह प्रवृत्ति अवशिष्ट नहीं रहा है। मनुष्य के रूप" म १६४२ के आदोलन म तोड पाड के अवसर पर पाच तिगाहियों की रात मे रेल्ये साइन पर पहरा दन हुए बताया गया है। वे रेल्व साइन क पाग से गुजरनवाले राहगीरों की गोली से मार कर उनकी जयों से खप निकाल सते हैं पर उनके साथ एक स्त्री है जिसे गोली न मार कर उससे बलाशरार करते हैं। उपन्यास कार ने बसात्कार का मुता यणन किया है किन्तु इस यणन स पाडेय घेचन शर्मा उग्र या म्हायमचरण जन जस मयाधवादी उपन्यासकारो मयवा 'रतिनाथ की वाचा' के लेखक तथा यग्यापाल की दाती का अंतर स्पष्ट हो जाता है। जहां प्रथम प्रकार के लेखक यणन करते हुए रस मे लीन हो जाते हैं वहां दूसरे प्रकार के लेखको की दृष्टि असोमनीय के प्रति घृणा जागृत करने की शोर रहती है।

सुमता और अनेले में वह फफक फफक कर रोना। एक दिन जब वचारा इसी उघेड बुन मे पडा था तो सतो ने आकर पीठ थपथपाई थी और कहा था रती तेरा इलाज मैं करूंगा चिंता मत कर और सचमुच सतो के ही बसाये हुए तरीके से रतिनाथ की वह बुटि दूर हुई थी। नियमित रूप से कई दिनों तक

पर ही गई सब रती ने तारा बाबा की दुर्गा को पाच पस का प्रसाद चढाया।"

रतिनाथ के भाई उमानाथ का विवाह हो रहा है, इस अवसर पर

"भागन म औरतो ने कमीज और बनियान खुलवा कर उमानाथ का गहरी निगाह से देखा। एक मुहुफट खवासिन बोली 'भाख मूद लो भइया। पोती खुलेगी।' 'आ तू ही खोल दे'—अघेड उग्र की एक औरत ने अपनी छोटी भाखें नचा कर उससे कहा। वह अप्रतिम हो गई। उमानाथ को ट्राम कम्पनी का वह डाक्टर याद आया जिसके सामने इसी भाति कपडे खोल कर खडा होना पडा था। उस दिन भी पसीना निकल आया था, और आज भी। फक यही था कि उस दतुदुटे डाक्टर ने मगर इन औरतों ने बसा कुछ नहीं किया।"

सौन्दर्याभास के बदले वस्तुपरक सत्य की भाग साहित्य-रचना साधन रूप में

छायावादी काव्य में सूत्रम अशरीरी सौन्दर्य-पूजा का भाव प्रधान था, प्रगतिवादी साहित्य में इसके विरुद्ध वस्तुपरक सत्य की भाग प्रकट होती है। प्रगतिवादी कवि छायावादी कवि की तरह स्वप्नदर्शी नहीं है। वह 'उस पार' के नीरव सन्शा' अथवा 'हृद्गतरी के तारा की झंकार' सुनने में लीन नहीं होता वरन् उसे धरती पर आश्रित जन-जीवन आकष्ट करना है। "युगवाणी" में सुमित्रानन्दन पंत कल्पना लोक में विचरने व मृत्यु को महिमान्वित करनेवाले छायावादी कवि का भूमि की ओर देखने के लिए आह्वान करते हैं। + दिनकर की कविता नील-कुज में स्वप्न खोजना व चमेली में चन्द्र किरणों से चित्र बनाना छोड़ देती है तथा कवि व्योम कुजों की कल्पना को भूमि पर ही आकर स्वर्ग बसाने की चुनौती देता है। प्रगतिवादी को छायालोक का सी दय नहीं लुभाता क्योंकि जगजीवन को वह विपण्ण व निर्जीव देखता है। बग-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'शाहजहा' कविता में ताजमहल को आलम्बन मान कर अत्यन्त मधुर भावों की व्यञ्जना की किन्तु उद्ग के सङ्की पसद गीतकार साहिर लुधियानवी ने ताज को एक बादशाह के दौलत के बल पर गरीबों की उड़ायी हुई मुहब्बत की मजाक के प्रतीक रूप में देखा। साहिर की तरह सुमित्रानन्दन पंत भी 'ताज' के रूप में मृत्यु का अपायिव पूजन देखते हैं एवं जग के विपण्ण जीवन की ओर दृग्भाव करने का आग्रह करते हैं। •

+ सुमित्रानन्दन पंत 'युगवाणी', प्रथम संस्करण १९३६ पृष्ठ १६

ताक रहे हो गपन ?

मृत्यु नीलिमा गहन ?

देखो भू को

जीव प्रभू को

हरित मरित

ममरित गुजरित

कृमुमित भू को !

• सुमित्रानन्दन पंत "आधुनिक कवि", हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चतुर्थ संस्करण सवत २००६ पृष्ठ ७१

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर अपायिव पूजन

जब विपण्ण निर्जीव पढा हो जग का जीवन

मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति

भारमा का अपमान, प्रेत भी' छाया से रति

प्रगतिवादी कल्पना-लोक में सौन्दर्य का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करता, वहाँ केवल सौन्दर्यमास प्रयत्न ही सही मरीचिका है। अतएव 'सगर एक जीवनी' में इस मटान पर व्यंग्य करते हैं तथा कल्पना के सौन्दर्य को निष्पादित करते हुए उसी शक्ति यथाम जगत् में प्रयुक्त भावना के बन्ने मांसल शरीर में देसते हैं। - "तार-सप्तक" में भारत भूषण प्रप्रवाल छायावादी कल्पना विलास एव असायन के विरुद्ध यथाथ की पहचानने का प्रारम्भ करते हैं। #

पत जैसे सौन्दर्य-प्रेमी कवि की भी सौन्दर्य भावना धरा के बुरूप मुग को देख कर हिल उठती है। \angle

वे धरती के शोषित व पीडित मानवों में सौन्दर्य-दर्शन करते हैं। X सामाजिक समस्याओं के प्रति उदासीन शुद्ध काव्य का विद्रोह प्रगतिवादियों के

+ प्रथम "शेखर एव जीवनी" भाग २ सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वितीय संस्करण १९४७ पृष्ठ ३०

शेखर द्वारा सौन्दर्य की लोच की परिसमाप्ति स्वप्न भग के रूप में होती है "उसने स्वप्न में देखा था एक काली घटान की गोल गोल छाँड़ें उस पर टिकी हैं और चट्टान कह रही है, तुमने बहुत अच्छा किया जो सौन्दर्य की लोच में चले प्राय मरे पास।" और फिर वह एकाएक उसकी स्त्री में परिणत हो गई थी जो ठठा कर हस पड़ी थी। "

प्रथम (स०) तार सप्तक प्रतीक प्रकाशन दिल्ली १९४३ पृष्ठ २४

तू सोचा किया भाव वाचक है तब तू य जिसको छूने की भी चेष्टा है व्यर्थ ! दूर यो भाग गया तू जीवन से तू सदा सोचता रहा "मुक्त हो जाऊ जग के बधन से उड कर दिग्गत के पार !" सृष्टि को पाया तूने क्षण मयुर निज दिव्य-दृष्टि से । रे ! तेरी यह भाषा तो है मात्र मुकुट उस दर्शन का जिसने देखा प्राप्तमान योया नीला नश्वरता से डर कर जिसने देखी न प्रकृति विचर गतिशीला

\angle सुमित्रानन्दन पंत
यहा धरा का मुख बुरूप है
सुलभ यहा रे कवि को जग मे
युग का नहीं सत्य, शिव, मुन्दर

X सुमित्रानन्दन पंत
इस धरती के रोम रोम मे
मरी सहज सुन्दरता
इसकी रज की धू प्रकाश
वन मयुर वितन्न निलरता

लिए अमाय बन जाता है। डा० रामविनास शर्मा की 'सत्य, शिव मुदरम्' कविता में शूद्र वाच्य के सिद्धांत पर व्यंग्य किया गया है। X साहित्यकार से अपना उत्तरदायित्व पहचानने की मांग की जाती है। नेमिचन्द्र "कवि गाथा है" कविता में कलाकार से वषम्य मिटाने और पद-दलित मानवता की रक्षा करने की मांग करते हुए उलाहना देते हैं। =

साहित्य की रचना सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के ध्येय को लेकर की जाती है साहित्य साधक बनने साधन बन जाता है। कलात्मक सौंदर्य का प्रश्न विषयगत उद्देश्य से निम्न नहीं रहता। प्रश्नेय उद्देश्य के प्रति एकाग्रता से ही सौंदर्य की सृष्टि सम्भव मानते हैं।

वग-सधय की भावना सर्वहारा वग के प्रति सहानुभूति एवं क्रांति में विश्वास

माक्सवादी जीवन दर्शन को अपनाते के कारण प्रगतिवादी वग सधय में विश्वास रखते हैं। उनके अनुसार वर्तमान समाज पूँजीवादी वग एक सर्वहारा-वग में विभाजित है। मध्यम-वग प्रायः पूँजीवादी वग का पिछलगू बन कर पूँजीपति वग के स्वार्थों की रक्षा करता है। इतिहास के गति क्रम व युग-चेतना के प्रति सजग मध्यम वग के प्राणी पूँजीपति वग की दासता स्वीकार न कर सर्वहारा वग की क्रांति को सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। तब वे अपनी ऐसी चेतना से विहीन (declassed) होकर सर्वहारा वग के तद्रूप हो जाते हैं। समाज में व्याप्त वग सधय में प्रगतिवादियों की सहानुभूति सर्वहारा वग के प्रति रहनी है और वे साहित्य के माध्यम से सर्वहारा वग की क्रांति को सफल बनाने के लिए प्रयत्नशील होने हैं।

जहाँ तक दलितों के प्रति सहानुभूति का प्रश्न है छायावादी कवि 'कलावादी' होने के कारण कदाचित् अनेक भ्रमों से पीड़ित पद-दलित मानवता के दुख को चाँगी नहीं दे सके किन्तु यह भी सत्य है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक

X प्रश्नेय (सपा) 'तार सप्तक' प्रतीक प्रकाशन दिल्ली, १९४३ पृष्ठ ६६
= वही पृष्ठ २६

गाता है वह कलाकार

जब बाहर दुनिया में पंखी घनघोर विषमता

निश दिशि से उठ रहा मयकर चीत्कार

उसको तो बस अपने सपनों से ममता—वह कलाकार

व्याकुल मानवता की रक्षा का

उसके ऊपर आज भार है

दानवता से रौंदे जाते मनुष्यत्व का प्रतिनिधि है

वह कलाकार जो गाता है,

जो केवल लगाता है— !

युग के प्रारम्भ से ही भारत-दु-युग के लेखकों ने सामाजिक व भाषिक दृष्टि से मानवता की मुक्ति का स्वर छोड़ा था। साहित्य में धर्म निर्पेक्षता का भाव जो प्रथम विवक्षित होता रहा है स्वयं अपने में मुक्ति का संदेश था। उदारवादी दृष्टिकोण रखते हुए मैपिलीकरण गुप्त तथा प्रेमचंद के साहित्य में दलित मानवता के प्रति विशेष सहानुभूति व्यक्त हुई है। स्वयं प्रगतिवादियों व सम-समाधिकों में बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारीसिंह "दिनकर" सुमद्रा कुमारी चौहान प्रभृति राष्ट्रीय धारा के कवियों ने भी पद-कवियों व नायिकों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की परन्तु दलितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करना ही प्रगतिवादियों का उद्देश्य नहीं है। छायावाद के प्रतिश्रिया रूपा में केवल "सौ-दर्य-भूजा" के भाव से हट कर सामाजिक भाव की भांग के आन्दोलन रूप में प्रारम्भ हुआ प्रगतिवाद धीरे-धीरे निश्चित सैद्धांतिक मतवाद के रूप में परिणत हो गया। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, वग-सधप साम्यवादी व्यवस्था में विश्वास आदि सैद्धांतिक मायताएँ प्रगतिवादी होने के लिए अनिवार्य समझी गयीं। उदारवादी लोकदृष्टि के साहित्यकारों का प्रगतिवादी खेमे से निष्कासन सा हो गया एवं उनकी कटु आलोचनाएँ की गईं। प्रगतिवाद के प्रारम्भिक नेता सुमिधानन्दन पंत को आज प्रगतिवादी स्वीकार नहीं किया जाता तथा प्रेमचंद को उनकी व्यापक मानव सहानुभूति के कारण नहीं बल्कि उनके द्वारा वग-सधप के सिद्धांत को मायता देने के कारण प्रगतिवादी कहा जाता है।

प्रेमचंद यद्यपि अपनी रचनाओं में विशेष रूप से गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित रहे तथा अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में उन्होंने प्रेम व कल्याण के द्वारा हृदय-परिवर्तन में विश्वास किया किन्तु, पिछली रचनाओं में वग-सधप के सिद्धान्त में उनकी आस्था प्रकट होती है। प्रेमचंद के "गोदान" में आशुबादी पात्र महता शिक्षित कहलानेवाले लोगों द्वारा प्रशिक्षित भोल ग्रामवासियों पर होते भत्याचार को देख कर आश्चर्य करता है। किन्तु, उपमासकार प्रतिभावान महता की सरलता पर एक सतक जीवन-दृष्टा के रूप में लिखता है "अज्ञान की भाँति ज्ञान भी सरल निष्कपट और सुनहले स्वप्न देखनेवाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़ इतना सजीव होता है कि वह इसके विरुद्ध प्रवृत्तियों को प्रमानुषीय समझने लगता है। यह वह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाब सदैव पजे और दातों से दिया है।" + स्पष्ट ही प्रेमचंद समाज को भेड़िया व भेड़ो-शोषक व शोषित वर्गों में बँटा देखते हैं तथा शोषक वर्ग के हाथा शापिता के स्वाथ को मुरगित नहीं मानते। यशपाल के उप-यासा में वग-सधप की

+ प्रेमचंद "गोदान" सरस्वती प्रेस, बनारस, नवा संस्करण

भावना स्पष्ट उभर कर सामने आती है। उनके सभी उप-यासों में समाज का वर्गों में बंटा हुआ तथा यह वर्ग, सघन मरत चित्रित किया गए हैं। 'दादा-कामरेड', 'देशद्रोही' मनुष्य के रूप में पूजा की व सवहारा वर्ग के सघन में यद्यपि लेखक ने सवहारा की विजय तो नहीं दर्शायी है किंतु, जिस साहस व उत्साह से आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन के लिए उस वक्त व्य निष्ठा से प्रयत्नशील चित्रित किया है इससे पाठक का सवहारा वर्ग की विजय में विश्वास हो जाता है। उपरोक्त उप-यासों के माध्यम हरीश, डा० स्वप्ना तथा कामरेड भूपण यद्यपि आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने की चेष्टा में, बल्कि इनो चेष्टा के कारण मृत्यु का सामना करते हैं किंतु, वे उसका वीर की तरह ही सामना करते हैं और उनकी मृत्यु में निराशा का लेश भी नहीं है। यही नहीं, यशपाल के उप-यासों के पात्र वर्ग-सघन की चेतना के प्रति स्वयं भी जागरूक हैं। 'दादा कामरेड' में राबट व्यक्तिगत रूप से जमा पूजा का स्वयं लाभ उठाते तथा उसकी इतिहास-क्रम में आदर्शकता अनुभव करते हुए भी आधुनिक युग में उसके शोषक रूप को सामाजिक अभिशाप मानता है। * उप-यास में शल के पिता शैल के मनोरंजन के लिए अथवा अर्थाथ कार्यों के लिए हजारों रुपये खर्च करने की तयार हैं किंतु, मजदूरों का हडताल में सहायता देने से बिल्कुल इन्कार कर देते हैं क्योंकि यह समाज की व्यवस्था की बाबी एक श्रेणी के हाथ से दूसरी श्रेणी के हाथ में चले जाने का सवाल है। देशद्रोही में यशपाल ने पिछड़ी हुई जाति बज्जीरियों में भी वर्ग-सघन की चेतना का उदय दर्शाया है। =

- यशपाल "दादा कामरेड", विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४३
पृष्ठ १२३

समाज का यह माना हुआ कायदा है वाप के या स्वयं हमारे सम्पत्ति जमा कर लेने से हम बिना हथ पर हिलाये भी मजदूरों में जिन्गो गुजार सकते हैं। किसी समय यदि यह कायदा न बनाया जाता तो लोग न सम्पत्ति इकट्ठी करते और न पैदावार के बड़े बड़े साधनों का विकास ही हो पाता। लेकिन आज भी वह कायदा चला आ रहा है। व्यक्तिगत रूप से मैं उससे लाभ उठा रहा हूँ। लेकिन यह भी देखता हूँ जब अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के लिये सम्पत्ति या पैदावार के अधिक से अधिक साधन व्यक्तिगत रूप से जमा किये जाते हैं तो लाखों करोड़ों बिना किसी साधन के भी रह जाते हैं।

Ⓐ वही, पृष्ठ १८४

= यशपाल 'देशद्रोही' विप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४६
पृष्ठ २६

कविता में भी षण-सषप की भावना का चित्रण पाया जाता है । सुमित्रानन्दन पंत पू जीवादी व्यवस्था की निष्प्रयोजन बताते हुए उसकी मत्सना करते हैं तथा पू जीपतियों के अन्तिम दिन निकट देखते हैं -

निराला के "नये-पत्ते" काव्य संग्रह में 'घोड़े के पेटों में बहूतों को भाना पडा कविता में षण-सषप की भावना व्यक्त हुई है । राज' पू जीपति-वग तथा सद्मी' उत्पादन के साधनों के प्रतीक बन जाते हैं । ✓

निराला के "कुङ्कुरमुत्ता" व्यंग्य-काव्य में 'कुङ्कुरमुत्ता' नियम वग का प्रतीक है जो कपिटलिस्ट के प्रतीक 'गुलाब की मत्सना करता है । ≡ तार सप्तक' में भारत भूषण अग्रवाल 'मसूरी के प्रति' शोषक कविता में धर्मवशातियों के हास-विलास की चर्चा करते हुए नीचे मैदानों की बस्ती की सुघाथ धीलों का वर्णन करते हैं तथा इसे पू जीवादी प्रणाली को साधारण घटना बताते हैं । ↓ प्रभाकर माधवे की बीसवीं सदी' शोषक कविता में पू जीवाद के अन्तिम विरोध की दर्शाया गया है जो निरन्तर बढ़ते रहने के कारण रहस्यमय नहीं रह पाता तथा उभका पर्दाफाश हो जाता है । ≠ गजानन भाषव मुक्तिवाध 'पू जीवादी समाज के प्रति' कविता में पू जीवादी सम्यता के समस्त रूपों को 'केवल एक जलता सत्य देने टाल' रुचेष्ट देखते हैं और यह जलता सत्य पू जीपतियों द्वारा किया जाने वाला शोषण है । अतः इस शोषक वर्ग को संबोधित कर कवि उसे मृत व व्यथ को सजा प्रदान करता है । ×

- सुमित्रानन्दन पंत

वे नृशस हैं, वे जन के श्रम बल से पीपिता
दुहरे धनी जोक जग क भू जिनसे शोपित
अब न प्रयोजन उनका, अन्तिम है उनके क्षण

✓ शान्ति के राजे ने सद्मी को हर लिया
टापू में घल कर रखा और कद किया (निराला नये पत्ते)

≡ निराला 'कुङ्कुरमुत्ता'
खून सीधा खाद का तू ने अशिष्ट
हाल पर इतरा रहा कपिटलिस्ट

↓ अज्ञेय (सपा) 'तार सप्तक' प्रतीक प्रकाशन दिल्ली १९४३ पृष्ठ ३६
हा, मैंने अपनी आँवों देखा है विभेद यह
यह विरोध जो साधारण घटना है

≠ वही, बीसवीं सदी' शोषक कविता

× वही, पृष्ठ १७

किसानों का वर्ग-सघर्ष में सहयोग

पूजीवादी व्यवस्था में आर्थिक दृष्टि से किसान व मजदूर समाज को पूजा पतियों के शोषण-चक्र में सर्वाधिक पिसना पड़ता है। यद्यपि मार्क्सवाद के अनुसार सबहारा-वर्ग की भाँति मजदूर वर्ग ही सकल बनाता है क्योंकि किसान वस्तुतः सबहारा नहीं है—उसके पास भूमि की मिल्कियत रहती है और इसी कारण सामन्त-वाणी परम्परा के अवशिष्ट रूप रुढ़ि-प्रेम आदि निष्ठाएँ बनी रहती हैं जो भाँति-धर्मा व्यक्तित्व के निर्माण में बाधक होती हैं तथापि वह शोषित वर्ग का ही प्राणी होने से प्रगतिवादी साहित्य में उसके प्रति सहानुभूति दर्शायी जाती है। मानववादी प्रेमचन्द के उपन्यासों में किसानों के जीवन का चित्रण मिलता है जब कि सद्दर्शनिक प्रगति-धर्मी यशपाल ने मजदूरों के जीवन का ही चित्रण किया है। यह भेद कदाचित् भावस्मिक नहीं है, इसके मूल में जहाँ प्रेमचन्द ने दलितों के प्रति ध्यापक सहानुभूति का भाव पाया जाता है वहाँ साम्यवादी यशपाल के मजदूर वर्गों को जातिकारी समझने की भाँसा का निदर्शन मिलता है।

भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के संरक्षण में एक ओर अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए शासक ने जमींदारी प्रथा को बनाये रखा वहाँ दूसरी ओर स्वयं ब्रिटेन के पूजीवाद के अन्तर्विरोध के कारण देशी पूजीवाद पनपने लगा। इस स्थिति में भारतीय किसानों का शोषण दुहरे रूप में होने लगा। सरकारी लगान के साथ ही किसानों को जमींदारी प्रथा के भार को भी ढोना पड़ता है। बिरादरी की रुढ़िगत मान्यताओं रश्म-रिवाज, जमींदार का हिस्सा सरकारी लगान आदि की अधिक्ता के कारण किसानों के पास जब कौड़ी भी नहीं बच पाता तो उसे सूदखोर महाजन से बड़ी हुई दर पर उधार लेना पड़ता है और मूल की कई गुना रकम चुका देने के बाद भी किसान बजदार ही बना रहता है। दूसरी ओर औद्योगिक नगरों के निर्माण के कारण किसानों द्वारा उत्पादित माल कच्चे माल के रूप में गाँवों से नगरों में कम कीमत पर बिकने आता जिससे कि पूजापति कम कीमत में उत्पादन कर सकें। अतः किसानों की आमदनी से कहीं बढ कर खच होता जो बज के रूप में बढता जाता। किसानों की इस कष्ट स्थिति का जिसमें उनकी फसल कटने के पहले ही उस पर जमींदार और महाजन का अधिकार हो जाता तथा स्वयं किसानों के पास एक दाना भी नहीं बचने पाता, प्रगतिवादी साहित्य में सुलभता चित्रण मिलता है।

प्रेमचन्द का 'गोदान' उपन्यास भारतीय किसानों के दयनीय जीवन का महाकाव्य है। 'गोदान' में किसानों व आर्थिक-शोषण के दोनों रूप मिलते हैं—अवशिष्ट साम्यवादी निष्ठाओं और साम्यवाद व पूजीवाद के गठबन्धन के प्रतिफल रूप में। किसानों प्राण देकर भी अपनी मर्यादा को रखा करना चाहता है। हीरा

गाय को बिप देकर भाग जाता है तब पुलिस दरागा उसने घर की तलाशी लेना चाहते हैं। पर होरी के लिए हीरा कितना ही बुरा हो ह तो वह उसका भाई ही। उसने घर की तलाशी होरी अपनी ही हार समझता है। अतः होरी घर की मर्यादा रिश्वत देकर भी बचाना चाहता है। होरी का पुत्र गोबर गम्बती श्रुनिया को छोड़ कर शहर भाग जाता है। होरी श्रुनिया को पुत्र बधू मान कर आश्रय दे देता है। किंतु श्रुनिया के परिणीता न होने के कारण पचायत जुटती है जो होरी पर जुर्माना व डांड लगाती है। होरी अपनी फमल उठा कर और घर गिरवी रख कर डांड चुकाता है। उधार मिल सके थ तब होरी ने दुलारी से उधार लेकर अपनी लडकी सोना का विवाह किया पर भव नहीं मिला तो आत्म-ग्लानि से मर कर अघेड उग्र के रामसेवक से रूपा का दो सौ रुपये लेकर विवाह किया। पर उसने विवाह के आवश्यक सब को आवश्यक ही माना। होरी घम-भीरु है। जब मोला को गाय के पसे नहीं चुका सका तो घम की दुहाई देकर गाय के बदले अपने बैल ही ले जाने दिये, चाहे छेती जोतने से भी उसे बचित होना पडा।

अस्तु यह सामंतयुगीन निष्ठाएँ - घर की मर्यादा, रूढ़ि परम्परा का पालन, घम भीरता आदि भारतीय किसान के जीवन को ग्रस लेती हैं। यह नहीं कि किसानों में भी इसके विरुद्ध जागृति न हो। होरी की पत्नी घनिया का चरित्र एक जाति-कारिणी सी नारी का व्यक्तित्व है जो आश्रय का प्रतिकार किय बिना नहीं रह पाती। जब पुलिस दरागा को रिश्वत देने के लिए भोगुरीसिंह से रुपये उधार लेकर होरी जाता है तो सबके बीच धनिया पोटली पर झपटती है और ललकारती है "हम बाकी चुकाने को पचीस रुपये मांगते थे, किसी ने न दिया। आज अजुली भर रुपये टनाठन निकाल के दिये। मैं सब जानती हूँ। यहाँ तो बाट बखरा होने वाला था। सभी के मुह मीठे हाते। ये हत्यारे गाव के मुखिया हैं गरीबों का खून चूसने वाले। मूद-याज डेढी सवाई, नजर-नजराना, घूस घास जैसे भी हो गरीबों को सूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा गाय से।" + गाव के नेताओं के मुह पर घनिया द्वारा पोती हुई कालिख का रंग गहरा है। पुलिस अधिकारियों से मिल कर पटवारी, महाजन पंच आदि किसानों के शोषण में सहयोगी बनते हैं। देश की स्वतंत्रता के आकांक्षी किंतु साम्राज्यवादी शोषण के सहयोगी नेताओं पर यहाँ उप पासकार ने कठोर व्यंग्य किया है। गोबर द्वारा श्रुनिया के गम-स्थापन की घटना को लेकर पचायत द्वारा होरी पर जुर्माना और डांड लगाई जाती है, इसका घनिया खुल कर विरोध करती है 'यह पंच नहीं हैं राक्षस हैं, पक्के राक्षस ! यह सब हमारी जगह जमीन छीन कर माल

+ प्रेमचन्द 'गोदान' सरस्वती प्रेस, बनारस, नवा संस्करण

मारना चाहते हैं, डाढ़ तो बहाना है।" × जमींदार व महाजन के शोषण के कारण किसानों का जीवन दुखों का मूत रूप बन गया है। होरी अनुभव करता है कि किसान का जन्म अपना खून बहाने और बड़ा का घर भरने के लिए ही हुआ है। मनुष्य की तरह जीने का उन्हें अधिकार नहीं। होरी का यह कथन अपने म कितना निरीह है हम राज नहीं चाहते, खाली मोटा भोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सघता। † गोबर दुबारा लखनऊ से लौट कर गावा का करणास्पद चित्र अपनी आँखों के सामन देखता है 'दादा हा का क्लेश है कि वह सब सहते हैं उससे तो एक दिन न सहा जाय और यह दशा कुछ होरी ही की न थी। सारे गाव पर यह विपात्त थी। ऐसा एक आदमी भी नहीं जिसकी रोनी सूरत न हो, मानो उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर मे लिखा था। जीवन में न कोई आशा, न कोई उमग। मानो उनके जीवन के सोते सूख गये हा और सारी हरियाली मुर्झा गयी हो।' *

सुमित्रानन्दन पत की 'ग्राम्या' म गावों का चित्रण निराशा को व्यजित करता है। वहाँ मोन प्रभात अकेला और सध्या उदासी से मरी आती है। कठपुतले से मनुष्य "छल प्रतिमा" सदृश छाया 'या माया से' निर्मित प्रतीत होते हैं। उदर धु ध" एष नग्न तन" प्राणियों के जीवन मे कवि को युग का सत्य-शिव-सुन्दर अप्राप्य ही गया है। कवि ग्राम-युवती के पनघट पर जाने, घोड़ियों के नृत्य, घमारों के हल्लड हडदग, बहारों के नृत्य प्रभृति का चित्रण कर अपनी सौंदर्य वृत्ति को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न अवश्य करता है किन्तु गावा के करणास्पद जीवन का भाव उसके काय म उमर आता है। वह पृथ्वी पुत्र कृषक के जीवन को सुखमय बनाने की कामना करता है। —

अचल ने अपनी कविता मे किसानों पर जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध भावना अभिव्यक्त की है। † दिनकर किसानों के जीवन के प्रति सहानुभूति दर्शाते

× वही, पृष्ठ १७०

† वही, पृष्ठ २४३

* वही, पृष्ठ ४७४

— सुमित्रानन्दन पत ग्राम्या

हो घरणी जनों की जगत स्वर्ग-जीवन का घर

मव मानव को दो प्रभु ! मव-मानवता का वर

† अचल

इन कविहानों म गूँज रही किन अपमानों की लाचारी
हिलती हड्डी के दाखों ने पिटती देखी घर की नारी

हए उसे पशु तुल्य चित्रित करते हैं । X भगवतीचरण वर्मा की "भैमागाड़ी" कावता म गावों से सस्ता कच्चा माल खरीने के रूप में नगरो द्वारा गावो की शोषण क्रिया का चित्रण मिलता है और इस शोषण से पीड़ित ग्राम भविक्ल ऋ दत्त करते हैं । •

श्रमिक-वर्ग का वर्ग-सर्घर्ष

प्रगतिवादियों की दृष्टि में पू जीवादी व्यवस्था म समाज का सबसे अधिक पीड़ित म ग श्रमिक-वर्ग है । यह सबहारा है-वह वर्ग जिसके पास खोने के लिए कुछ नहीं होता सिवाय अपने बदनो के । यही वर्ग श्रमि का भ्रगुम्रा बनता है तथा उत्पादन के साधनो पर अपना अर्थात् सम्पूर्ण समाज का अधिकार कर साम्य की स्थापना करता है । प्रगतिवादी साहित्य मे मजदूर वर्ग के शोषण का चित्रण ही नहीं मिलता बरन् उसमे श्रमि त की भावना का उद्बोधन भी मिलता है ।

पू जीवादी व्यवस्था मे श्रम व पू जी के सहयोग से उत्पादन होता है किन्तु उत्पादन के साधनो पर पू जीगतियो का अधिकार होने के कारण अधिकश साम पू जीपति हस्तगत कर लेते हैं तथा श्रमिक-वर्ग को मजदूरी के रूप मे जो मिलता है वह उनके जीवन यापन के लिए भी पर्याप्त नहीं होता । प्रेमचन्द के 'गोदान'

जब लाट लौट सी पड़ती हैं ये गेहूँ धानों की बालें
है याद इन्हें धाती मानो जब लिचती थी तेरी खालें
थुग मुग के अत्याचारो की प्राकृतिया जीवन के सल म
धिर धिर कर पू जीमूत हुई ज्यो रजनी के छाया छत मे
इसकी भी भाई थी आमो सी बौराती प्रखरी जवानी
किन्तु गई छुप चाप जमीनारों के भय की छोट कहानी
उन जुल्मों की याद न पूछो ! जल उठता प्रति रोम सिहर कर
दबे कण्ठ से रोती पटुम्रा ब्रीती रजनी धम्री प्रहर भर

X दितकर बँलों के ये बंधु वप भर कर क्या जाने कैसे जीते हैं
जवाँ बंद ऋरती न प्राप्त गम खा शायद धासू पीते हैं
• भगवतीचरण वर्मा

वह राज काज जो सधा हुआ है इन भूखे कालो पर
इन साम्राज्यो की नीब पडी है तिल तिल मिटने वालों पर
व ध्यापारी वे जमींदार, वे हैं लक्ष्मी के परम भक्त
वे निपट निरामिय सुदखोर पीते मनुष्य का उण्ण रक्त
इस राज काज क वही स्तम्भ उनकी पृथ्वी उनका ही धन
ये ऐश और धाराम उही के धीर उ ही क स्वग सदन
उस बडे नगर का राग रग हम रहा निरन्तर पागल-सा
उस पागलपन से ही पीड़ित कर रहे ग्राम भविक्ल ऋ दत्त

में जब शक्कर शेयर मिल के मालिक खाना सरकारी छूटी बढने का बहाना लेकर मजदूरों का दशन धनुवात से अधिक घटा देते हैं तो प्रोफेसर मेहता मिस्टर खाना की मत्सना करत हुए मजदूरों की स्थिति की ओर इ गित करत हैं 'क्या आपका विचार है कि मजदूरों को इतनी मजूरी दी जानी है कि उसमे चौथाई कम कर देने से मजदूरों को कष्ट न हागा। आपके मजूर बिलो में रहते हैं—गदे बदवूगार बिलो में जहा आप एक मिनट भी रह जाय, तो आपको बँ हो जाय। कपडे जो वह पहने हैं उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे। खाना जो वह खाते हैं वह आपका कुत्ता भी न खायेगा।' + यशपाल के उपयासा म मजदूरों के जीवन व समस्याओं का ध्यापक चित्रण मिलता है। 'दादा कामरेड' का नायक हरीश त्राँ तकारी दल से निष्वासन के पश्चान अपने मित्र अख्तर मजदूर के यहा लाहोर में जाकर ठहरता है। उपयास फार ने इस अवसर पर मजदूरों की दशा का चित्रण किया है। अख्तर के फिटर बनने का अवसर था किंतु रिश्वत दैने पर भी अय को पद दे देने पर उसके मन में गयकर प्रतित्रिया जाग्रत होखी है और वह हैड मिस्त्री का वध कर देना चाहता है। हरीश उसे इसकी व्ययता समझाता है। अख्तर के अनुसार मजदूरों की दुदशा का कारण तीन व्यक्ति इर्जीनियर कश्मीरी और जाबर हैं। यह तीनों प्रतीक हैं मजदूरों की काय अवस्था की बुराईयो दुराचार एव आर्थिका असहायता के। कश्मीरी केश्याओ का दलाल है जिसने कारण मजदूरों का ननिक पतन ही नहीं करत आधिक स्थिति और शारीरिक स्वास्थ्य का भी ह्नासा हाता है। जाबर कारखाने को मजदूर देनेवाला ठेकेदार है जा मजदूर से दो रुपया स्वय कई महीने लेता है तथा रोजाना प्रति रुपया एक आना दर पर कज भी देता है। आर्थिक कठिनाईयो से दब कर मजदूरों म एक प्रकार की उत्तरदायित्वहीनता आजाती है तथा वे शराब पी कर अपने दु खों को भुला देने का व्यथ प्रयत्न करते हैं। प्रेमचंद के "गोदान" म सारी फसल की कमाई खोकर एक आने को ताडी पी अछरी अपने दु ख को भुलाने का असफल प्रयत्न करता है। यशपाल के "दादा कामरेड" म अख्तर हरीश से एक घूट शराब पी सर्दी की रात बिताने का प्रस्ताव करता है तब हरीश मुभाता है "रोज पीकर सर्दी काटने से एक रजाई न बनवालो आदमी?" इस पर अख्तर की भल्लाहट श्रमिक-वग की दयनीय दशा को प्रकट करती है 'लगा तू फिर काप्रेसी छाटने— — — — — बच्चा राज रोज काटनी पडे तो पता चले। यहा मजदूर चार पसे म रात काटते हैं रजाई बनती है पाच रुपये में। जब तक पाच होंगे ब'दा जहनुम म पडू घ जायगा।' × मदन वात्स्यायन

+ प्रेमचंद "गोदान", सरस्वती प्रेस बनारस नवा संस्करण १९३८ पृष्ठ ३८५
 × यशपाल "दादा कामरेड", विप्लव कार्यालय लखनऊ, तीसरा संस्करण १९६८ पृष्ठ ८१

“ गिरा पारमेर ” नीचर बरिदा मे धर्मिक के चिन्-राग अम म ही सीन रहने का बिबल करते है । इम धर्मिक ने गुना भर है कि प्राग सुर्वोप्य एब सध्या म अग्रोप्य होना है पर उमने प्राग मोर सध्या तो कारनाने के मोर ही सुबित करते है

मोरो धीग उठा , मेरी मोर हो गई
 श्रीमतीजी जरा एक कप चाय बना दो
 गुना है गोने-गा चमरीसा गोना एक मूय होना है
 जब यह आता है तब मस्जिद के गोन गोन गुम्बज पर
 जब यह आता तो फुहा स जाल को काट कर
 सारी दुनिया को जमाने लगता है
 गुना है चांती-सा चमरीसा गोना एक चां होना है
 जब यह आता है तब मस्जिद के मोल-मोल गुम्बज पर
 राश हो मुसज्जिन खुदा के नाम पर
 उसने सारे बन्दो को पुकारता । =

प्रस्तुत उद्धरण स धर्मिक के जीवन की व्यस्तता के साथ ही यह भी व्यक्त होता है कि वह मानो अपना जीवन मगीन की तरह जी रहा है और कि उसके जीवन म कठोर अम क प्रतिरिक्ति कोई भावपण नहीं है ।

क्रान्ति मे विश्वास

प्रगतिवादिगों का श्रेणी सपथ (Class Struggle) तथा इस सपथ म सवदारा वग की दिग्ग में अ म्य विश्वास प्रकट होता है । प्रगतिवादी प्रेम के सामर्थ्य की अपेक्षा घृणा की क्षमता मे अधिक विश्वास करते हैं । अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी' म आतिकारी को बनावट के लिए घृणा को 'एक अत्यन्त करणीय पाप' माना है ।+ प्रेमचन्द के "गोदान" मे गोबर लपनऊ से दूसरी बार लौट कर

= मदन वात्स्यायन "प्रतीक" (सपा अज्ञेय) सितम्बर १९५१

+ अज्ञेय "शेखर एक जीवनी" भाग १, सरस्वती प्रेस, बनारस चतुर्थ संस्करण १९५१ पृष्ठ ३०

इही निष्कलक पापों मे आन्ति के लिए एक अत्यन्त करणीय पाप है घृणा ।

आतिकारी की बनावट म एक विराट ध्यापक प्रेम की सामर्थ्य तो आवश्यक है ही साथ ही उसमे एक और वस्तु नितान्त आवश्यक, अनिवार्य है— घृणा की क्षमता एक कभी न मरने वाली जला डालने वाली, घोर मारक, किन्तु इतना सब होते हुए भी तटस्थ, सात्विक घृणा की क्षमता, यानी ऐसी घृणा जिसका अनुभव हम अपने सचेतन मस्तिष्क से करते हैं, ऐसी नहीं जो कि हमे ही भस्म कर डालती है ।

ता है तब राजनीतिक चेतना का परिचय देता है। यह सवहारा वग का उत्थान वय अपने परो पर सठे होने में ही मानता है तथा किसी देवी शक्ति की सहायता विश्वास नहीं करता। सवहारा-वग के लिए काल मानस का यह बयन 'Labourers of the world unite ! A proletariat has nothing to loose but his chains ' गोब्रर के विचारों के कितना समीप है 'उसने राजनीतिक लसों के पीछे सठे होकर भाषण सुन हैं और उनस भग भग में विधा है। उसन तुता है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस इन भाषना पर विजय पाना होगा कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आयेगी। खु ने तुम्हें एक सूत्र में बाध दिया है। बहुत्व के इस देवी बयन को क्यों अपने तुच्छ स्वार्थों में तोड़ डालते हो ? इस बयन को एकता का बयन बनाओ।' × यशपाल के उप-यासों में क्रांति भावना यथाय परिस्थितियों के चित्रण के पार्श्व में व्यक्त हुई है। यशपाल श्रमिकों की केवल आर्थिक स्थिति के सुधार पर ही बल नहीं देते वरन् सवहारा वग का राजनतिक सत्ता पर अधिकार (Dictatorship of the proletariat) आवश्यक समझते हैं। 'देशद्रोही' में शिवनाथ मिल मालिक के सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण की माग नहीं करता वरन् सिद्धांतत वह मिल की पैदावार पर मिल मालिक की अस्पृहा मजदूरों का अधिकार अधिक मानता है। = मराठे मजदूरों के अधिकार को और भी अधिक बढ़ाते हुए मिल को मजदूरों की महनत की कमाई का फल बतलाता है। * यशपाल के उप-यासों में मजदूर आन्दोलन को राजनीतिक रूप देने का स्पष्ट प्रयास लक्षित होता है। 'दादा कामरेड' में हरीश अख्तर से क्वल मजदूरी बढ़ाने की चिंता छोड़ कर मजदूरों के राजनीति में भाग लेने की शिक्षा देता है जिसमें कि राजनतिक सत्ता श्रमिक वग के हाथ में आजाय। +

- × प्रेमचन्द 'गोदान', सरस्वती प्रेस बनारस, नवा संस्करण १९४८ पृष्ठ ४७५।
 = यशपाल 'देशद्रोही' विप्लव कार्यालय, लखनऊ तीसरा संस्करण १९४६ पृष्ठ १०३।
 * वही पृष्ठ १०४।
 + यशपाल 'दादा कामरेड', विप्लव कार्यालय, लखनऊ तीसरा संस्करण, १९४८ पृष्ठ ८३।

अख्तर य बम बना कर सुराज लेता फिरता है न ? अरे तुम बाबू बनियों से नहीं सुराज लिया जाता है। इन्हें तो जायदादा की फिरों हैं। हम कहा न मजदूरों और दिशत के लोगों को, एक दिन में तखता पलट कर रख दें।"

‘देशदोही’ में उप-यासकार ने उग्र दल (प्रकारान्तर से कम्युनिस्ट पार्टी) द्वारा संचालित मजदूरी की हड़ताल का निहित उद्देश्य बग-सघष की शिक्षा देना बतलाया है। जिससे सर्वहारा बग राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने की ओर भ्रष्टर हो सके। ‘उग्र दल की नीति थी, मजदूरी वेशा और कम वेतन पाने वाले लोगों को, उनकी श्रेणी की प्रवृत्त्या सुधारने की समस्या पर सगठित कर राजनैतिक क्षेत्र में लाना। वे जानते थे मजदूरी की मार्ग सहज म प्रुरी न होगी परिणाम होगा हड़ताल। हड़ताल मुझ है और बग-मुझ के लिए आरम्भिक शिक्षा। + “मनुष्य के रूप” उप-यास में मजदूर नेता कु दनसिंह सगठन के द्वारा ही सभी समस्याओं का हल सम्भव मानता है। काल मार्क्स ने भी तो ‘दुनिया के मजदूरी एक हो’ का नारा दिया था। प्रगतिवादियों का विश्वास है कि इस एकता के बल पर क्रांति सफल हो सकती है। तथा क्रांति को कोई रोक नहीं सकता। भ्रष्टेय ने लिखा है

“क्रांति का विरोध करोगे, उसे रोकोगे तुम ! सूर्य का उदय होता है, उसको रोकने की चेष्टा की है ? समुद्र में प्रलय लहरी उठती है उसे रोकना है ? ज्वालामुखी में विस्फोट होता है—घरती कापने लगती है, उसे रोकना है ? क्रांति सूर्य से भी अधिक दीप्तवान प्रलय से भी अधिक भयकर ज्वाला से भी अधिक उत्पन्न भूकम्प से भी अधिक विदारक है।—उसे क्या रोकोगे ?”

“तो फिर पलटता क्या नहीं ? सठ पलट !” हरीश ने खौचा दिया।
“पलटें क्या ? यह सब मिस्त्री जैसे का ही राज हो जायगा। वह भी तो वाला हिन्दुस्तानी ही है। देख ला कैसे छून पीता है।

‘काला हिन्दुस्तानी तो तू भी है ! क्यों हो जायगा मिस्त्री जैसे का राज ? तेरे जैसे का ही क्यों न होगा ? जो बोलीश करेगा राज उसी का होगा।’
हरीश ने उत्तर दिया।

‘भरे हमारा राज क्या होगा ? हम भव भी मरना तब भी ! मजदूरी तो बढ़ नहीं पाती, राज होगा ?’ भ्रष्टर ने चिढ़ाया।

तुम भी तो मजदूरी बढ़ाने की बात करते हो।”
तो क्या भण्डा उठाया करें काप्रेस का ?

‘भ्रगर तुम सब लोग मिल कर काप्रेस का भडा उठाने लगा तो काप्रेस तुम्हारी हो जाय ! तू ही बता, ज्यादा तादाद तुम्हारी है या बाबुओं की ? भ्रगर तुम लोग एक हो जाओ तो बाबू तुम्हारे पीछे पीछे भावें !”

+ मसपाल दशद्रोही, विप्लव कार्यालय लखनऊ तीसरा संस्करण १९४६
पृष्ठ ७५।

रूस की प्रशस्ति

रूस की प्रशस्ति प्रगतिवादी साहित्य की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है। जिस साम्यवाद की स्थापना के लिये प्रेरणा देना इस साहित्य का उद्देश्य रहा है उसका सब प्रथम एवं व्यापक प्रयोग रूस में हुआ अतः यह प्रवृत्ति स्वामाविक है। किन्तु, द्वितीय महायुद्ध में जब जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया तो लेनिनप्राय व मास्को की रक्षा का प्रश्न केवल एक देश की रक्षा का प्रश्न नहीं रहा वरन् बल्कि फसिस्तों के विरुद्ध साम्यवादी सिद्धांत, विचारधारा या भावधारा की रक्षा का प्रश्न बन गया। रूस में साम्यवाद की स्थापना के कारण साधारण रूप में उस और आशा भरी दृष्टि का आभास हम प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में देख चुके हैं। यशपाल ने 'देशद्रोही' उपन्यास में रूस की परिस्थितियों का लालसापूर्ण दृष्टि से वर्णन किया है। डा० खाना को अंग्रेजी फौज से एक दिन चुपचाप उठा कर बजीरी स्थित ले गये और फिर उसे मुसलमान अस्त्रार बना कर गजनी के सौदागर अब्दुला के यहाँ बेच दिया। अब्दुला की दुकान पर अस्त्रार काम किया करता था। उसके पास अब्दुला का बेटा नासिर भी बठा रहता। नासिर को अस्त्रार से सहानुभूति हो गयी। वह अस्त्रार से हिन्दुस्तान का तथा अफगानिस्तान के अतिरिक्त अन्य देशों का हाल पूछता है। नासिर की कल्पना में रूस का चित्र इस प्रकार आता है "सुना है, रूस में छोटे बड़े सब एक हो गये। कोई खुदा को नहीं मानता। मुल्ला और मसजिद सब खत्म हो गये। भूखा कोई नहीं मरता। मजदूर भी अमीरों की तरह महलों में रहते हैं। कोई किसी का नौकर नहीं। हमारे मुल्ला लोग रूस से बहुत जलते हैं। इन्हें विलायत की बातें पसंद नहीं क्योंकि उससे उनका राज नहीं रहेगा।" — नासिर व अस्त्रार के हृदय में गजनी के आवद्ध घातावरण से मुक्त होकर रूस में भाग जाने की प्रबल इच्छा जागृत होती है। एक दिन वह अवसर आ जाता है जब कि यह दोनों छुप कर रूस की सीमा में प्रविष्ट हो जाते हैं। उपन्यासकार ने रूस में खाना के अनुभवों के रूप में रूसी जीवन की विशेषताओं को दर्शाया है। यह विशेषताएँ हैं— वहाँ के लोग राष्ट्र निर्माण के कार्य को अपना काम समझ कर करते हैं, नौकरी समझ कर नहीं विद्वान मानव समाज के उपयोग में रत है, उत्पादन के साधना की मालिक पूजोपति श्रेणी नहीं, शिशुग्रहों की आदश व्यवस्था है शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है जन सख्या की वृद्धि अभिशाप नहीं बनती अतः, परिवार नियोजन जसी समस्याएँ नहीं हैं, आदि।

प्रगतिवादी साहित्य में रूसी जीवन की ही प्रशंसा नहीं मिलती, रूसी नेताओं के प्रति भी श्रद्धा (या वीर पूजा) की भावना प्रकट हुई है। सुमित्रानंदन

पत "युगवाणी" में माक्स को प्रलयकर शक्ति के त्रिनेत्र की उपमा देते हैं ।
 "दूसरा सप्तक" में नरेश कुमार महता 'समय देवता' कविता में कार्तिक विधासक
 सेनिक के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए रूस का गौरवास्पद शब्दों में स्मरण करते
 हैं । × द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया तब रूस की विजया
 काथा के लिए अनेक प्रगतिवादी कवियों ने रूसी सेना की वीरता की प्रशस्ति की
 तथा बबर नाजिया के प्रति घणा की भावना व्यक्त की । भारतीय किसानों की
 दुःशा की ओर सचेत करते हुए नरेन्द्र शर्मा ने रूस के दुश्मनों को सभी किसानों,
 मजदूर व किसानों का शत्रु घोषित किया ।- शिवमगलसिंह "सुमन" में रूसी

- सुमिता नन्दन पत "युगवाणी"
 धर्म माक्स चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर
 सुभ त्रिनेत्र के शान चक्षु स प्रकट हुए प्रलयकर
- × अज्ञेय (सपा) "दूसरा सप्तक"
 यह यौवन की भूमि सोवियत
 जहा मनुज की उसके धर्म की होती पूजा
 पूजा और साम्राज्यवाद की तोड़ बेडिया
 हाथा में नवजीवन की उत्काए लेकर मनुज सदा है
 कुतुब सरीसा ।
 सबसे प्रथम इसी भूमि पर धर्म की जयकार हुई है
 एक पुरुष लेनिन की वाणी शतकठी ह्वकार हुई है
 धीमे धीमे समय देवता ! उसी पुरुष की यह समाधि है
 धर्मो धर्मो जो कम निरत था
 सब झारों आवाग भीच कर धर्म के सपने देख रही है

(नरेश मेहता)

- + नरेन्द्र शर्मा
 जहाँ सहस्रहाथी सेना पर कारिन्ते महारात ना
 खनी रात की डेरी पर लालाजी घात लगात ना
 ब्याज चुकाते ही न जवानी गई जमीन जवाना की
 सात रूस का दुश्मन साथी दुश्मन सब किसानों का
 दुश्मन है सब मजदूरों का दुश्मन सभी किसानों का

सेना को विपमता मिटानेवाली शक्ति के रूप में चित्रित किया। † “तार-सप्तक” में प्रभाकर माचवे का सानेट “दा ज्दास्तव्युते सोवित्सकी सोयूज” (सोवियत यूनियन-जि-दाबाद) रूस की व्योम सेना की प्रशस्ति में लिखा गया। X डा० रामविलास शर्मा ने युद्धकालीन एक सोवियत चित्र पर “जस्ताद की मोत” शीपक कविता लिखी जिसमें जर्मन धात्रमण के अवसर पर लाल सिपाहियों की पराजय, इस पराजय में भी विजय की भावी आशा वास्तविक विजय, सबर नाजियों के प्रति पूणा तथा रूस के नव निर्माण का भाव प्रकट किया। • अज्ञेय के ‘नदी के द्वीप’ में चन्द्रमाधव इस युद्ध को सस्कृति का अंतिम युद्ध मानता है तथा वर्तमान सस्कृति को सडा हुमा चौलटा बतलाता है ‘हिमाश्रंसी घोषा है, गिनतियों का राज है।’ कदाचित् अज्ञेय का यह साम्यवादी व्यवस्था के प्रति योग्य है। अज्ञेय की साम्यवाद में आस्था नहीं रही है किंतु युद्ध में वे फासिस्ट शक्तियों की पराजय की कामना करते हैं। (वे स्वयं अपनी आस्था के अनुसार युद्ध काल में सेना में मर्ना हुए थे।) भुवन के कथन में युद्ध के प्रति उनका दृष्टिकोण ‘यक्त हुमा है—‘यह युद्ध किसलिए लडा जा रहा है, सहसा नहीं कह दिया जा सकता, ठीक स्वाधीनता के लिए ही है, यह कह देना भोलापन होगा क्योंकि स्वाधीनता के साथ कितने इतर स्वाध भी तो मिले हुए हैं, पर यह जरूर कहा जा सकता है कि इस युद्ध से प्रारंभ करके हमे सस्कृति के उन मानों के लिए सपप करता है जिन्को स्वयं हमारो इस सस्कृति ने ही नष्ट कर दिया या जोखम में डाल दिया।’ †-अस्तु प्रगतिवादी साहित्यकारों में रूस के प्रति स्वभावत आत्मीयता का भाव पाया जाता है। चीन में कम्युनिस्ट राज्य की स्थापना के बाद उसके प्रति भी प्रगतिवादियों का सहानुभूति एवं श्रद्धापूर्ण दृष्टिकोण रहा है।

† शिवमगलसिंह ‘सुपन’

युमा की सडो रुद्धियों को कुचलती
जहर की लहर सी लहरती मचलती
अधेरी निशा में मशानों सी जलती
चली जा रही है बड़ी लाला सेना
समाजी विपमता की नोवें मिटाती
गरीबों की दुनिया में जीवन जगाती
अमीरों की सोने की लका जलाती
चली जा रही है बड़ी लाल सेना

X पृष्ठ ५७।

• वही पृष्ठ ६८।

† अज्ञेय ‘नदी के द्वीप’ ती० स० पृष्ठ ८१।

साहित्य और मनोविश्लेषण

(मदभ अध्याय)

मनोविश्लेषण (Psycho analysis) सिद्धांत

फ्रायड द्वारा मानव मन का विश्लेषण करने की प्रणाली और उस प्रणाली के द्वारा प्राप्त तथ्यों का आधार पर निर्मित सिद्धांत विशेष का नाम मनोविश्लेषण है। फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के साथ एडलर व जुग के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का भी निकट सम्बन्ध है। फ्रायड के सिद्धान्त से अपने सिद्धांतों का विभेद स्थापित करने की दृष्टि से ही एडलर ने अपने सिद्धांत का 'व्यक्ति मनोविज्ञान' (Individual Psychology) और जुग ने 'विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान' (Analytical Psychology) सजा दी है। परन्तु, फ्रायड एडलर व जुग के सिद्धांतों में अवचेतन मन की प्रधानता अनिवाद्य रूप से है और कला का उद्गम अवचेतन मन की प्रक्रिया से सम्बन्धित होने के कारण प्रस्तुत अध्याय में तीनों मनोविज्ञानों के सिद्धान्तों की चर्चा बाध्यनीय होगी।

उन्नीसवीं सदी की प्रमुख विचारधारा बुद्धिवाद थी। भौतिक विज्ञान की प्रगति ने मानव सम्यता के विकास की पूरा भाषा दिला दी। मनुष्य ने कुछ राजनीतिक अधिकार प्राप्त किये, उसके प्राचीन धार्मिक बंधन हट गये, भौतिक समृद्धि के परिणामस्वरूप उसे कुछ भाविक तान हुआ, प्रकृति की अधःशक्तियों पर वह उत्तरोत्तर विजय प्राप्त करता गया। अतः उसका एक विवेकपूर्ण जगत् की स्थापना में विश्वास बढन लगा। युद्ध की बात भीते युग की कहानी सी जचने लगी और वह विश्वास होने लगा कि अब यदि कोई युद्ध होगा तो वह सारे भावी युद्धों का अन्त करने लिए होगा। इसी पृष्ठभूमि में प्रथम विश्व युद्ध भी घटना घटी। उसके पश्चात् लोगों का ध्यान मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोविश्लेषण सिद्धांत की ओर आकर्षित हुआ। फ्रायड के इस सिद्धांत ने पिछले युग की सखी आशावादिता को जड़ मूल से हिला दिया। उसने अपने पूर्व विचारकों की अपेक्षा अवचेतन मन की अविश्वकशील शक्तियों का और विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया।

कला काम वासना का उदात्तकरण

फ्रायड हमारे मन का तीन भागों में विभाजन करते हैं चेतन (conscious) पूर्व चेतन (pre-conscious) और अवचेतन (Unconscious) पूर्व चेतन चेतन मन

का ही भाग है। परन्तु, अवचेतन मन के उत्पत्तिको का हमें पान नहीं होता। पानी के ऊपर तैरते हुए बर्फ के शिलाखण्ड का जिस तरह एक चौथाई भाग पानी के ऊपर रहता है और तीन चौथाई पानी के नीचे बसे ही चेतन मन हमारे मानसिक जीवन का बहुत छोटा भाग है और अवचेतन ही प्रमुख है। महत्वपूर्ण बात यही नहीं है कि मन का अवचेतन भाग चेतन की अपेक्षा प्रमुख है बल्कि यह कि हमारा अवचेतन मन के चेतन स्वरूप से बिल्कुल भिन्न है। कल्पना कीजिये एक दुमझिला मकान है। उसके ऊपरी भाग में थोड़े-से शांतिप्रिय सम्य लोग रहते हैं परन्तु नीचे के भाग में बहुत-से लोगों की भीड़ जमा है। वे भगडावू स्वार्थी और असम्य हैं। परन्तु मकान के ऊपरी भाग में जाने के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहते हैं। इस दृष्टि से कि उनके भ्रान्तिपूर्ण वातावरण में खल न हो ऊपरी भाग में रहनेवाले लोगों ने अपने लिए सीढ़ियों पर एक पहरेदार नियत कर लिया है। वह पहरेदार कुछ लोगों को बिल्कुल रोक देता है। इस तरह स्वाभाविक रूप में खुली हवा और प्रकाश में न आ सकने के कारण यह व्यक्ति बीमत्स और भयकर रूप धारण कर लेते हैं। जिस तरह किसी भरने का एक जगह इकट्ठा हुआ गदा और सडा पानी प्रकाश के अन्तर्गत के कारण यह व्यक्ति बीमत्स और भयकर रूप धारण कर लेते हैं। जिस तरह किसी भरने का एक जगह इकट्ठा हुआ गदा और सडा पानी प्रकाश के अन्तर्गत के कारण यह व्यक्ति बीमत्स और भयकर रूप धारण कर लेते हैं। जिस तरह किसी भरने का एक जगह इकट्ठा हुआ गदा और सडा पानी प्रकाश के अन्तर्गत के कारण यह व्यक्ति बीमत्स और भयकर रूप धारण कर लेते हैं।

सभी प्रत्येक व्यक्ति सम्पूर्ण मकान के वातावरण को दूषित बना देता है। कभी जब पहरेदार अपनी जगह पर नहीं होता तो नीचे की मझिन के लोग ऊपरी भाग में जाने का मौका पा जाते हैं। कुछ प्रशा में नीचे रहनेवाले लोग और पहरेदार के बीच समझौता हो जाता है और तब उन्हें ऊपरी भाग में जाने की अनुमति मिल जाती है। परन्तु इस दशा में उनका स्वभाव बिल्कुल परिवर्तित हो जाता है। वे ऊपरी मझिन के लोगों की तरह सम्य समाज के प्राणी जान पड़ते हैं। यह दुमझिला मकान मानव मन है। ऊपर का मझिन उसका चेतन भाग है, नीचे की अवचेतन। सम्य और असम्य निवासी हमारे मन की इच्छाएँ हैं। मन के चेतन भाग में केवल वे ही इच्छाएँ रहती हैं जिन्हें सामाजिक मायता प्राप्त है। अवचेतन में हमारी बहुत सी असामाजिक इच्छाएँ होती हैं जो अपनी पूर्ति के लिए निरन्तर चौकस बनी रहती हैं। पहरेदार प्रतिबन्धक (censor) है। अवचेतन की इच्छाओं के दमन के कारण मानसिक ग्रन्थियों (complexes) का जन्म होता है। मानसिक ग्रन्थियों की तीव्रता होने पर मनुष्य विकल्प (Neurosis) पीडित हो जाता है। समझौते के रूप में दमित इच्छाएँ अपना स्वरूप परिवर्तित कर चेतन में उन्मत्त रूप धारण कर लेती हैं। कला इसी तरह का उदात्तकरण (sublimation) है। हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया मूल रूप में काम वासना से प्रेरित होती है। कला इसका अपवाद नहीं।

मानसिक अन्तर्द्वन्द और कला

हमारे मानसिक जीवन में अवचेतन ही प्रधान और महत्वपूर्ण है। इसे समझने-

का लिए माटचीय रगमच की कल्पना कीजिए । किसी नाट्यशाळा में होनेवाले खेल के सभी पात्र एक साथ रगमच पर नहीं आ सकते इसी तरह हमारे मन की सभी इच्छाएँ चेतन मन में प्रकट नहीं होतीं । रगमच पर होनेवाली घटनाएँ पदों के भीतर से संचालित होती हैं । यों के भीतर का यह सूत्रधार ही प्रवचतन मन है । यही यह निष्पत्ति करता है कि कौन पात्र कब रगमच पर आवेगा, अनावश्यक पात्रों को रगमच पर आने से यह रोक देता है ।

हमारे मन में अन्तः ३ बगो बना रहता है इसका भी कारण है । फ्रायड हमारे मन की पुनर् तीन रूपां में कल्पना करते हैं—अह (Ego) नैतिक अह (super ego) और इन्स (Id) । इन्स हमारे प्रवचतन मन और अन्तःप्रवृत्तियों (Instincts) का प्रतीक है । अह हमारी चेतना का वह भाग है जिसे साधारणतया हम परिचित करते हैं । नैतिक अह समाज और सभ्यता के द्वारा स्वीकृत आचरण का हमारी चेतन पर आरोप है । अह नैतिक अह से संतुलन करने के लिए प्रयत्नशील रहता है । ऐसा करने में उस इन्स की अन्तःप्रवृत्तियों का दमन करना पड़ता है जो अनिर्वायत आदिम होती है । जैसे जैसे हमारी सभ्यता अधिक सश्लिष्ट होती जाती है उसे ही यह दमन तीव्र होता है । परिणाम स्वरूप व्यक्ति के विकृष्ट (Neurotic) होने की सम्भावनाएँ बढ़ती हैं जिसे निराकरण करना फ्रायड को विचारणा का मूल सदेश है । उस अन्तःप्रवृत्तियों का उदात्तकरण की अवस्था भी रहती है जहाँ तक व्यक्ति प्रवचतन की अन्तःप्रवृत्तियों का उदात्तकरण करने में सफल होता है । परन्तु अपनी अन्तःप्रवृत्तियों का उदात्तकरण कर पाने की शक्ति की शक्ति समिति होती है क्योंकि उदात्तकरण अर्थात् उपभाग नहीं भुलावा है । समाज व्यक्ति की इच्छाओं का दमन करता है । साधारणतया व्यक्ति की इच्छापूर्ति और कला-सृजन में विरोधी सम्बन्ध रहता है । जितना ही अन्तःप्रवृत्तियों का दमन होगा उतना ही कला सृजन की प्रेरण तीव्र होगी । और व्यक्ति के विकृष्ट होने को अधिक सम्भावनाएँ हानगी) प्रवचतन की इच्छाओं की पूर्ति के साथ कला सृजन की गति में निश्चित ह्रास होगा ।

काम वासना का विकास और मानसिक ग्रन्थिया

जीवन की मूल प्रेरणा काम वासना है, इस धारणा का स्पष्टीकरण आवश्यक है । कोई भी मनोविश्लेषण वेता इसका अर्थ प्रत्यक्ष यौन क्रियाओं (sexual intercourse) के रूप में नहीं लेना । फ्रायड अपने सिद्धान्त में काम शक्ति (Libido) के अन्तर्गत यौन भावना के साथ अह भाव का भी समावेश करते हैं । परन्तु, उनकी विचारणा में अन्तर्गत काम वासना के साथ यौन भावना अनिर्वाय रूप से स्थित रहती है । हमारा कोई भी प्रेम व्यापार यौन भावना के बिना नहीं होता । साधारणतया हम अपने चेतन मन में उस यौन प्रवृत्ति से अन्तर्निष्ठ रहते हैं । बाल्य काल से ही हम इस

काम शक्ति से प्रेरित होते हैं । हमारी वामवासना का विकास आत्म सम्मोह (Narcissism) मातृ रति (Oedipus complex) स्ववर्गीय रति (Homosexual) एवं विजातीय रति (Heterosexual) की सरणियाँ में होकर होता है । फ्रायड आत्म सम्मोह और मातृ रति के उदाहरण प्राचीन ग्रीक कथानकों में देखते हैं । नार्सीसस नाम का एक सुन्दर बालक था । वह एक दिन झरना एक झरने के पास गया । कुछ देर तक उसके किनारे खेलते खेलते उसकी दृष्टि पानी में दिखाई देने वाली अपनी परछाई पर पड़ी । इस परछाई को खेल कर वह मोहित हो गया । उसने समझा कि पानी में कोई अन्य सुन्दर बालक है । उसे नार्सीसस ने बुलाने की बहुत चेष्टा की कि तु जब वह न आया तब झरने के किनारे ही उसकी बिता करते करते वह मर गया । इस ग्रीक कथानक के आधार पर मनोविश्लेषण वेताग्रो ने आत्म सम्मोह (Self love) की अवस्था का नाम नार्सीसस अवस्था रखा ।

ग्रीक कथाओं में वर्णित लगे योद्धा आडीपस को उसके पिता-पत्नी के राजा ने बचपन में इसलिए ठुकरा दिया क्योंकि भविष्यवता ने वह भविष्यवाणी की थी कि यह बालक बड़ा होकर अपने पिता को मार कर मता में शादी करेगा । किसी पड़ोसी राज्य के राजा ने बालक को अपने संरक्षण में रख लिया । आडीपस बड़ा हुआ तब उसे अपने सच्चे माता पिता का ज्ञान नहीं था और गोद लेनेवाले राजा रानी का ही वह अपने माता पिता समझता था । एक बार जब वह किसी भविष्यवेत्ता के पास गया तो उसने भी यही बात बतलाई कि तुम अपने पिता को मार कर माता से शादी करोगे । इस दुपटना से बचने के लिए वह अपने संरक्षक माता पिता से दूर रहने लगा । पर अपने घुमक्कड़ जीवन में कहीं अपने सच्चे पिता से मिलने पर उसका उससे भगडा हो गया और अनजाने उसने अपने पिता को मार दिया । तत्पश्चात् वेब्स में पहुँच कर वहाँ के लोगों को उसने अत्याचारों से मुक्त किया और लोगों ने उसे अपना शासक घोषित किया तथा अपनी विधवा रानी का उससे विवाह कराया । वर्षों बाद इस अनजाने धरराधी दम्पति को सत्य का पता चला, उस समय तक उनके चार सन्तानें हो गई थीं । बेचारे आडीपस ने निराशा में जड़ होकर अपनी आर्म्बों को बाहर निकाल लिया । इसके उपरांत वह जीवन, प्यार, अनेक दुर्भाग्या का शिकार बनता रहा । इसी आडीपस की कथा के आधार पर फ्रायड ने मातृ रति को आडीपस ग्रन्थि (Oedipus complex) की संज्ञा दी । आडीपस ग्रन्थि से फ्रायड का आशय यह था कि आत्म रति की अवस्था के बाद कोई भी बालक लड़का माता से और लड़की पिता से प्रेम करती है । लड़के की पिता के प्रति एवं लड़की की माता के प्रति विद्वेष व भय की भावना के रूप में क्रमशः आडीपस एवं एलेक्ट्रा ग्रन्थि की अभिव्यक्ति होती है । कभी यह भी होता है कि लड़का अपने नारी रूप की कल्पना करके पिता से प्यार करके माता से प्यार करता है और लड़की अपने पुरुष रूप की कल्पना करके माता से प्यार करती है तथा

पिता से पूछा । परन्तु, समाज इस तरह के सम्बन्धों को मायता नहीं देता अतः समाजगत ज्ञान की चेतना हीन पर यह भावना हमारे भ्रवचेतन में चली जाती है और वही मानसिक प्रिय का रूप धारण कर लेती है जो हमारे प्रौढ जीवन में विशेष, स्वप्न या कला-संजन के रूप में प्रकट होती है । मातृरति की भवस्था के बाद बालक अपने स्ववर्गीय बालकों से प्रेम करता है और उसके बाद विपरीत लिंगी नारी जाति से । समाज के बाह्य आचरण व प्रतिबन्धों के कारण उस अपनी मनक इच्छामों का दमन करना पड़ता है जिसकी हमारे भ्रवचेतन में प्रियता बनती रहती है ।

कला सृजन में शशव की स्मृतियों का महत्व

इस पृष्ठभूमि के साथ हम कदाचित् फ्रायड के कला-सिद्धान्त को मासानी से समझ सकते हैं । फ्रायड के अनुसार कला दमित काम वासना का उदात्तकरण है । शशव बाल में ही हमारी काम वासना का नतिक ग्रह दमन करने लगता है और तब वह हमारे भ्रवचेतन में मानसिक प्रिय का रूप धारण कर लेती है । स्वप्न के छायाचित्रों में यह मानसिक प्रियता प्रतीकों के रूप में प्रकट होती है इसी तरह कलाकार की रचना में यही अतृप्त काम वासना भाव चित्रों का रूप धारण कर लेती है । कला सामाजिक क्षेत्र में सृष्टि का महत्वपूर्ण अंग मानी जाती है । अतः कला संजन के बहाने अपने अरमानों को कविता के रूप में अभिव्यक्त करना कलाकार के लिए स्वाभाविक होता है । इसका आशय यह नहीं है कि कविता करना बहाना है । वास्तव में कविता के द्वारा कवि अपनी आत्मामिव्यक्ति करता है । इस आत्मामिव्यक्ति का कविता में कला स्वरूप होता है या कैसा होना चाहिए यह दूसरा प्रश्न है । व्यवित्तव के निर्माण में हमारे शशव काल के अनुभवों का सबसे अधिक महत्व होता है । उसी तरह कला संजन में शशव की स्मृतियों प्रतीकों के रूप में प्रकट होती हैं । अतः यह प्रतीक अतीत की अभिव्यक्ति होते हैं—परन्तु वह अतीत जो आज भी बतमान बना है । यह प्रतीक कलाकार का चित्र होता है, फोटोग्राफ की तस्वीर नहीं । कलाकार अपने चित्र में कुछ रेखाओं का ही प्रयोग करता है और अनात्मक विस्तार को छोड़ देता है । उसी तरह अतीत की बसल कुछ स्मृतियाँ जिनका मानसिक प्रियता से सम्बन्ध होता है प्रतीकों के रूप में कला कृति में प्रकट होती हैं । प्रायः कहा जाता है कि कलाकार चित्र खींचते समय रूपना ही चित्र खींचता है । यदि शशव को जान कर युवावस्था को हम अच्छी तरह समझ सकते हैं तो इसका कारण यह नहीं कि शशव में यौवन के बीज निहित हैं बल्कि इसलिए कि यौवनावस्था में शशव की स्मृतियों के द्वारा हम अपनी आत्मामिव्यक्ति करते हैं । अतृप्त काम वासना के कारण हमारे भ्रवचेतन में जो मानसिक प्रियता पड़ती है उनमें प्रधानतः मातृ रति की प्रियता है । प्रसिद्ध कलाकार लियोनार्दो विन्ची का मनोविश्लेषण करते हुए फ्रायड ने उसके शशव काल की इसी प्रियता को प्रधानतः

दी है। विन्ची ने अपने बचपन की एक विचित्र धारणा का उल्लेख किया है कि जब वह पालन में लेटा हुआ था तो मानो उसके पास एक गृद्ध आकर बैठ गया और अपनी पूछ बर वार जैसे उसके मुह में डाल निकाल रहा हो। इस कल्पना के आधार पर फ्रायड ने अपने प्रतीक सिद्धान्त के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि विन्ची की काम-वासना स्ववर्गीय रति के रूप में अभिव्यक्त हुई थी। बचपन में पिता के अभाव में उसकी मातृ रति प्रत्यन्त जागृत हो गई थी जो उसे किसी भी अन्य स्त्री की ओर आकर्षित नहीं होने देती थी। मोनालीसा के चित्र में वह इसी मातृ रति की अभिव्यक्ति दृश्यता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आटोरेक के अनुसार निम्न साहित्य की प्रसिद्ध कथाओं का आधार मन्वय इसी श्रिय के विभिन्न स्था से है। परन्तु अनृत काम वासना सम्बन्धी अन्य मानसिक प्रक्रिया का भी प्रदर्शन कला-सृजन के रूप में होता है। फ्रायड के अनुसार जिस तरह स्वप्न हमारी अनृत वामनाओं की पूर्ति के साधन होने हैं उसी तरह कला सृजन में हम अपनी दमित वासनाओं की पूर्ति प्रतीकों के रूप में करते हैं।

कला जीवन से पलायन के लिए

अपनी अपेक्षाकृत पीछे की रचनाओं में फ्रायड संस्कृति के विभिन्न तत्वों को हमारे सामाजिक जीवन में अभावों की पूर्ति के रूप में किये गये मानसिक प्रयत्न मानते हैं। जिस तरह माक्सवादी इतिहास की आर्थिक आधार पर व्याख्या करते हुए उस उत्पादन के विभिन्न जरिया द्वारा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का उपक्रम मानते हैं उसी तरह कहा जा सकता है कि फ्रायड संस्कृति को उन अभावों की पूर्ति के लिए किये गये मानसिक प्रयत्नों का फल समझते हैं जो व्यक्ति को समाज में रहने के लिए अपनी अतृप्त वस्तुओं की बलि देकर सहने पड़े हैं। इस तरह धर्म के सम्बन्ध में उनका कथन है कि भौतिक जीवन में अतृप्त तक अपने पिता से दुत्कार और रक्षा पाने में असफल रहने के कारण हम ईश्वर के रूप में स्वर्गिक रक्षक और अभिभावक की कल्पना करते हैं। नतिकता को प्रायः विवेकपूर्ण चिन्तन का परिणाम माना जाता है। फ्रायड के अनुसार वह केवल अपने मन की आश्वासन देने का प्रयास है जिससे हमारी अतृप्त वस्तुओं के दमन होने पर भी हम समाज से समझौता बनाये रख सकें क्योंकि उसके बिना जीवन सम्भव नहीं है। इसी तरह कला का महत्व इसी में है कि जीवन जमा है उसके द्वार से भागात व्यक्ति अपने लिये एक विभ्रम पैदा कर के आश्रय प्राप्त होना चाहता है। अन्तर्गत मन की अतृप्त वस्तुओं के दमन से असंतुष्ट होकर हम एक विभ्रम की संयोजना करते हैं। कला एक ऐसा ही संयोजन है। अपने दिता स्वप्न के जगत् से हम एक मरीचिका या छायाजाल बुनते हैं। उस छाया पथ के अन्तर्गत व सुनो में सबसे बढ कर कला के सृजन और आश्वासन का सुख है। कला जगत् का कठोर परिस्थितियों से क्षण भर के लिये पलायन है।

फ्रायड का कथन है कि मनुष्य के सामाजिक जीवन के सम्बन्धों ने उसके जीवन को इतना मार स्वरूप बना दिया है कि उसके उपचार का उपाय सोच बिना कोई चारा नहीं। दुःख की इस अनुभूति से बचने के तीन उपाय हैं। फ्रायड के अनुसार हमारे जीवन का ध्येय इस दुःख की अनुभूति से छुटकारा पाना और मुख का अनुभव करना है। दुःख से छुटकारा पाने के प्रथम उपाय को भुलावा देने के उपाय है—

(१) व्यक्ति किसी एक कार्य में अपने को इतना लीन कर दे कि दुनिया के दूसरे दुःख दर्दों को भूल जाय, प्रसिद्ध वनानिका का कार्य प्रायः इसी श्रेणी में आता है। प्रथम (२) व्यक्ति नशीली वस्तुओं का सेवन करता है जिसके कारण शरीर में रसायनिक परिवर्तनों के प्रभाव स्वरूप उसे मानसिक दुःखों की चिन्ता नहीं रहती। (३) कुछ दशाओं में व्यक्ति अपने दुःखों को कल्पना के द्वारा भुलाने का प्रयत्न करता है।

कला का द्वारा इच्छा पूर्ण या दुःखों से मुक्ति का रहस्य यह है कि हम अपनी मूल वासनाओं को ऐसी शिशा की ओर अभिमुख कर देते हैं जहाँ बाह्य संसार के द्वारा इच्छाओं के लण्डित होने का भय नहीं रहता। कला सृजन का मुख्य एक तरह से अनिवार्य है, फ्रायड के शब्दों में हम उसे 'उच्च और सुन्दर' कह सकते हैं। कवि जिन दिवा स्वप्ना का कविता में चित्रित करता है उसकी ओर संकेत करते हुए फ्रायड लिखते हैं

‘कलाकार मूलतः ऐसा प्राणी है जो कठोर वास्तविकता से पलायन करता है क्योंकि पहिले उन वजनाओं को जो उसकी अन्तःप्रवृत्तियों को अभुक्त रखने की मांग करती हैं स्वीकार कर, वह अतस्त उस स्थिति में सतुष्ट नहीं रह पाता। अतः वह कल्पना जगत् में अपनी रति वासनाओं और महत् इच्छाओं की पूर्ति का विराट आयोजन करता है। पर इस छाया जगत् से वास्तविक जगत् की ओर पुनः लौटने का मांग भी उसे मिल जाता है। अपनी असाधारण प्रतिभा के द्वारा वह इन छाया चित्रों को एक नये प्रकार की वास्तविकता में परिवर्तित कर देता है और समाज उन्हें गम्भीर चिन्तन के रूप में स्वीकार कर अपने को कलाकार का कृत्य मानता है। अतः एक विशिष्ट ढंग को अपना कर वह बाह्य जगत् में परिवर्तन लाने के कठिन मांग का अनुपाय बिना सचमुच मानस व्यक्ति, नेता सप्टा और लागा का प्रेम प्राप्त बन जाता है जिसकी कि उस आकाशा रक्षा करती है।’ × परन्तु प्रत्येक व्यक्ति

× Freud 'Collected Papers' (The Relation of the poet to day-dreaming) Pp 183

The artist is originally a man who turns from reality because he cannot come to terms with the demand for the renunciation of instinctual satisfaction as it is first made, and who then in phantasy life allows full play to his erotic and ambitious

कलाकार नहीं होता। उसके लिए विशिष्ट प्रतिभा और प्रवृत्ति की आवश्यकता रहती है, जो साधारणतया काफी अज्ञान नहीं पायी जाती। कलाकार बाह्य जगत् से मुंह मोड़ कर अपने अंतर्जगत् में लीन रहता है। वह कला मूर्ति में विभ्रम (Illusion) के द्वारा इच्छा पूर्ति करता है। इस विभ्रमपूर्ण इच्छा पूर्ति के बारे में फ्रायड का कथन है

“यह विभ्रम उस छाया जगत् के उपकरणों से बने होते हैं जो कि जीवन की वास्तविकताओं का पान होने पर सच्चाई की कसौटी पर नहीं कसे जाते तथा उन इच्छाओं की पूर्ति के लिए सुरक्षित रखे जाते हैं जिन्हें पूरा करना सम्भव नहीं होता। इस छायालोक के सुख के अनुभवों में सबसे महत्वपूर्ण बना के आस्वादन का सुख होता है जो कि कलाकार के माध्यम से उन लोगों के लिए भी सहजगम्य हो जाता है जिनमें कि सृजन शक्ति का अभाव होता है।” *

अतः हम देखते हैं कि कला जीवन से पलायन के क्षणों का सृजन है। वस्तुतः कलाकार का पलायन कला सृजन के लिए हाता है—वह कला जिसमें जीवन की प्रेरणा होती है। किन्तु निराशावादी साहित्य भी सबथा अनुपयोगी नहीं होता। फ्रायड के अनुसार कला का सबसे बड़ा उपभाग उसका सृजन और आस्वादन सुख है।

मनोविश्लेषण और सौन्दर्यगत मान

सौन्दर्यानुभूति का विवेचन करते हुए फ्रायड का कथन है कि जीवन के लक्ष्य के रूप में कला प्रेम हमारे अभावसादा का अंत नहीं कर सकता परन्तु, कला हमारे जीवन के अभाव की बहुत बड़ी पूर्ति है। सौन्दर्य अनुभूति गुलाबी नशे की तरह

wishes But he finds a way of return from this world of phantasy back to reality, with his special gifts he moulds his phantasy into a new kind of reality and men concede them a justification as valuable reflections of actual life Thus by a certain path he actually becomes the hero king creator favourite he desired to be without the circuitous path of creating real alterations in the outer world

* Freud Civilization and its discontents Pp 35

These illusions are derived from the life of phantasy which, at the time when the sense of reality developed, was expressly exempted from the demands of the reality test and set apart for the purpose of fulfilling wishes which would be very hard to realize At the head of these phantasy pleasures stands the enjoyment of works of art which through the agency of the artist is opened to those who cannot themselves create

हमें समझा कर गयी है। प्रयत्न शीघ्र का कोई उपाय नहीं जान पड़ता, शक्ति व विद्या व निरुत्तरी धारणाया धारणाएँ नहीं ह परन्तु सत्यता फिर भी उत्तम बिना जीवित नहीं रह सकती। शीघ्र विद्या वन परिस्थितियों का विषय करता है जिसे विनिष्ट वस्तुओं को सुन्दर समझा जाता है पर यह सौन्दर्य की उत्पत्ति और उत्तम सुन्दर की व्याख्या नहीं कर पाता। प्रायः हम सभी को सुन्दर और निरर्थक शब्दों से ज्ञात व पुनः या प्रयत्न किया जाता है। दुर्भाग्यवश भाग्यविशेषण सिद्धांत भी शीघ्र व सम्बन्ध में प्रयत्नया गीत है। केवल मान्यता विनिष्ट है कि शीघ्रमत्त भाव (Beauty concepts) काम वासना से सम्बन्धित है। यह महत्वपूर्ण बात है कि यौन भावों की जितनी दृष्टि मन में हमारा विचार उत्पन्न करनेवाली होती है सौन्दर्यपूर्ण नहीं समझा जाता। जीवन में मान्यता को हम सुन्दर नहीं कहते। शीघ्र का सम्बन्ध काम-वासना से सम्बन्धित प्रतीका से है।

कला और नैतिकता फ्रायडीय मत

कला और नैतिकता के सम्बन्ध में फ्रायड व कथा विचार हैं यह भी यज्ञा जान लेना उचित होगा। मानसिक प्रक्रिया के द्वन्द्व पीडन (Conflicts) की बात इतना और नरिण ग्रह के सधय के रूप में कही जा चुकी है। हमारे चेतन मन के भाव और विचारधारण अवचेतन के द्वारा संचालित होती हैं। हमारा विवेक इच्छाओं का सेवक है। हम अपनी इच्छाओं के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराये जा सकते। अतः नैतिकता आत्म प्रवृत्तता है। कला में नैतिकता के लिए कोई स्थान नहीं। कला सजन की प्रेरणा शैशव के भाव चित्रों से प्रेरित होती है और हमारे शशव की भूलें कितनी ही भयकर हो किन्तु उन्हें, पापमय कहना जीवन सौन्दर्य के अस्तित्व को भी नष्ट करना है।

प्रतीक विधान

फ्रायड के कला-सिद्धांतों में प्रतीकों का महत्वपूर्ण स्थान है। अपनी स्वप्न सिद्धांतों की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया कि अभुक्त काम वासना स्वप्नावस्था में विभिन्न प्रतीकों के रूप में अभिव्यक्त होती है। वस्तुतः प्रतीक अतः प्रेरित सम्बन्ध सूत्रों (Association) से निर्मित होते हैं। प्रतीक कलाकार के अतमन तक पहुँचने के प्रमाथ साधन हैं। अतः हम काय के बाह्य सौन्दर्य अलंकारों—उत्तम, उत्प्रेक्षा रूपक आदि के प्रति उदासीन नहीं रह सकते। वास्तव में इन्हें काय का वाह्य-स्वरूप मानना बहुत बड़ी भूल है। इन्हीं के सहारे हम कवि के अतमन तक पहुँच सकते हैं। फ्रायड के मत में कोई भी मानवी क्रिया निरर्थक नहीं होती—महत् तक कि हमारी दैनिक जीवन की साधारण मूला के पीछे भी कोई न कोई तथ्य छुपा होता है। अतः किसी विशेष प्रतीक या अलंकार के प्रयोग का भी जो अनुकृति

मात्र नहीं है निश्चित भय होता है जिससे कलाकार क अन्तर्जगत् का गहरा सवध पाया जाता है ।

फ्रायड के कला सम्बन्धी प्रमुख निष्पत्ति निम्नलिखित हैं

- १ कला दमित काम वासना का उत्पत्तिकरण है ।
- २ कला-सृजन म अनुभूत काम वासना प्रतीकों के रूप प्रकट होती है ।
- ३ कला जीवन से पलायन के क्षणों की सृष्टि है ।
- ४ कला और नतिकता का कोई सवध नहीं ।

व्यक्ति-मनोविज्ञान (Individual Psychology) सिद्धान्त

फ्रायड के समकालीन और परवर्ती विचारकों में मनाविश्लेषण सिद्धान्त को अपना योग देनेवालों में एडलर और जुग महत्वपूर्ण मनावैज्ञानिक हैं । जमा कि कहा जा चुका है, यह दोनों ही विचारक अपने अपने नय सस्थाना के सस्थापक हैं परन्तु, उनके विचारों का फ्रायड के विचारों से गहरा सम्बन्ध है ।

एडलर फ्रायड के शिष्य थे और आरम्भ में उनके दल में थे परन्तु उनका विचार था कि फ्रायड सक्षम भावना के महत्व को प्रावश्यकता से अधिक तूल दे रहे हैं । कुछ समय पश्चात् यह स्पष्ट हो गया कि एडलर जिस अहं भाव पर सर्वाधिक जोर दे रहे हैं वह फ्रायड की काम शक्ति से भिन्न है । अतः उन्होंने 'व्यक्ति मनोविज्ञान' नाम की अलग विचारधारा प्रतिपादित की जो फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त से भिन्न थी ।

हीन-भावना की ग्रन्थि, जीवन-लक्ष्य निर्धारण एवं क्षतिपूरक व्यवहार

फ्रायड की तरह एडलर भी अवचेतन के महत्व को स्वीकार करते हैं परन्तु ये अनुभूत काम-वासना के बदले हीन भावना की ग्रन्थि को विश्लेषण का कारण मानते हैं । मनुष्य अपने काम के अवसर पर शक्तिहीन और असहाय होता है । प्रकृति की दुर्जेय शक्तियाँ स बचने के लिए उससे पास कोई साधन नहीं होता और ग्यान तथा रक्षा के लिए वह अपने से बड़ा पर आश्रित रहता है । बड़ा की महत् शक्तियों और उनकी स्वतन्त्रता को देख कर वह प्रभावित होता है तथा इस हीन भावना से मुक्ति पाने के लिए वह अपने वातावरण का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करता है । जब ऐसा करने में वह सफल नहीं हो पाता क्योंकि वातावरण कब नित्य-प्रति सुखमय रहा है, तब वह अपने ही स्वप्न लोक में विचरण करने लगता है । वह सपना का राजा होता है और यथाथ-जगत् में तिन शक्तियों के हाथों उस अपमान भेदना पडा है, उन पर व्यग्य की हसी हसता है । लेकिन सपने कब अपने

हृण है जीवन की बटोर वास्तविकता का सामना तबिये बिना कोई पारा नहीं। एडलर का कथन है कि जैसी या देरी से प्रत्यक्ष वास्तव एक नया दृग वात का अनुभव करता है कि यह स्वयं घरेना घरो गुन के घमिरर की वायम रगने म घतमथ है घोर दग जान क उ य होने पर यह घरा जीवन की माधरता क नित घाघार भूमि दू डने लागता है। यी घवगर उतर माथी जीवन की गति को निरिघा करने याता होता है, पडे को परता बनानेयाता पीधे की टानियो को निरिघा निशा की घोर मोटायाता। वातक स्वय घपन जीवन क लप्य का निर्घान करता है। पस्तु हीन-मायना क हुरण का दूर करने का प्रयत्न प्रयत्न करता है। प्रीग क प्रमिद्ध वक्ता हेमस्योज यपन म वातत समय हरान थ। घान मुह प कक्ता को मर कर वे समुद्र के बिनारे डेर तक उच्च हर म भोते रहन। अत म क प्रीस के सबसे बडे यथा प्रमिद्ध हृण। सागरणमया जिस क्षेत्र म हीनता की मायना होती है व्यक्ति उगत दूगरे क्षेत्र म अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न करता है क्यकि जिस क्षेत्र म वह दूगरो से पिछडा हाता है उसम अपिक प्रयत्नशील होने की घावश्यकता हाती है। इन तरह शारीरिक दृष्टि से कमगोर विद्यार्थी पटने म तेज पाया जाता है। यह वात घ्यान म रखने की है कि हीन भावना से घात्रान व्यक्ति का मानसिक सतुलन बनाये रखने के लिए बली तक प्रयत्नशील होना घावश्यक है जिनना कि जहरी हा म यथा उसका विघेपपूर्ण होना बहुत स्वभाविक है। इस तरह के विघेपपूर्ण व्यक्ति विफासशील सम्मता के इतिहास को कभी पतन की गहरी खाई म डाल देते हैं। नेपोलिया के युद्ध-प्रिय होने का कारण उनके वचपन मे सह गये अत्याचार थे। हमारे युग म न्ठिनर एस प्रभावपूर्ण विक्षिप्त व्यक्ति थ जिहोने नृशसता क जीवन को बीसवी सदी म एक बार पुन गीवित कर दिया।

एडलर क अनुसार हमारे मानसिक जीवन में चेतन और अचेतन का सघष गी रहता वल्कि सहयाग होता है। अचेतन की हीन भावना की अथि चेतन मे स्पष्टन क्षतिपूरक कमशीलता के लिए अनुप्रेरित होती है। हीन भावना की अथि और क्षतिपूरक अवहार एक ही गत्यात्मक अथिनत्व के सबघ-मून से जुडे हैं। हीन-भावना की अथि का क्षेत्र अचेतन है क्यकि उसका हम चेतन मन म जान नही होता और जान न होने का कारण यही है कि वह हमार सुदूर अतीत शशव की अथि है।

यह नही कि एडलर जीवन म काम-वासना का महत्व न स्वीकार करते हों परंतु उनके मत मे काम वासना हमारे समष्टिगत जीवन का अग मात्र है। जीवन की तीन मुख्य समस्याए सामाजिक जीवन घधा और प्रेम है। इनके प्रति बालक का जैसा दृष्टिकान है उमा के अनुरूप वह अपना जीवन-लक्ष्य निर्घारित करता है। अथ समस्यामा का वह किस दृष्टि से सुनभाता है यह इस पर निर्भर होगा कि बालक सामाजिक सतुलन किस रूप म करता है। यदि बालक की अपने वाता

करण के प्रति उत्साह और प्रेम की भावना है—दूररा को प्रमाणित करने और स्वयं प्रभाव ग्रहण करने के सम्बन्ध में वह धागावादी है तो वह यौन-सम्बन्धों को भी इसी रूप में स्वीकार करेगा। यदि बालक का सामाजिक दृष्टिकोण अपने वातावरण पर पूरा प्रभाव जमाना है तो वह अपने यौन सम्बन्धों को भी इसी लक्ष्य की पूर्ति का साधन बनायेगा।

कला हीन-भावना की ग्रन्थि का क्षतिपूरक प्रयास

अस्तु एडलर के अनुसार कला हीन-भावना की ग्रन्थि का क्षतिपूरक प्रयास है। श्री म० ही० वात्स्यायन अपने निबन्ध 'कला का स्वभाव और उद्देश्य' में जिस स्थापना पर पहुँचते हैं 'कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न, अर्थात् कला के विरुद्ध विद्रोह है'। इसी एडलरीय सिद्धांत का प्रतिपादन है। वात्स्यायन जो उस युग की कल्पना करते हैं जब मानव पहाड़ों में बन्दराएँ खोद कर रहता था और घास-पात या कभी पत्थर या ताम्र के फरसों से आश्रित कर के मांस खाता था। उस मानव समाज का 'किसी कारण एक कमजोर व्यक्ति जब समाज के अर्थ प्राणियाँ का उनके काय में सहयोग नहीं दे सकता तो वह अपने आप को प्रमाणित करने के लिए दूसरे क्षेत्र में विकासमान होता है। उस आश्रित युग में जब कल्पित 'कमजोर व्यक्ति' देवता है कि उसके अर्थ सब साथी आश्रित के लिए गये हैं और वह पकेला बन्दरा में है, तब वह कुछ ऐसे काय करता है जो उपयोगी न होते हुए भी सुंदर हैं और हम उन्हें कला की सजा देते हैं। X

• स० ही० वात्स्यायन अज्ञेय त्रिशकु सरस्वती प्रेस, बनारस १९४५ पृ० २३

X वही, पृष्ठ २१

'हमारी कल्पना देवता है कि जब उस समाज के समय और बलिष्ठ घेरी अपने अपने अस्त्र सभालते हैं तब वे पात हैं उनके अस्त्रों के हत्यो पर शिकार की मूर्तियाँ खुनी हुई हैं जिनमें अपनी सामर्थ्य या प्रतिस्पर्ध देख कर उनकी छाती फूल उठती है, कि जब वे दल बाँट कर खोहों से बाहर निकलते हैं तब शिकार के रणनाद और घमासान के तुमुल स्वर न जाने कसे एक ही कठ के आलाप में रणरंगित हो उठते हैं कि जब वे लगे हुए कंधों पर धके और धमसचित मुटू खटकाए लोहों की ओर लौटते हैं तब पाते हैं कि खोहों का माग पत्थर की बुकनी में घाकी गई फूल पत्तियों स सजा हुआ है कि जब वे दाम्पत्य जीवन की द्विगुणित एकावता में प्रवेश करते हैं तब सहसा पाते हैं कि उस जीवन की चरमावस्था सहचरी के वक्ष पर किसी फल के रस से गोद दी गई है।

मत्तारार जीवा व दूगरे घेरा म या भय तिगी तव सेन में धनुमून हीनता की भावना को मुनारा देवे के निरु बना-जेन म धरने दरिद्रिय वा सकत योग प्रगात करना है। धवश्य कता गृजन के लिए विगिष्ट प्रतिमा घोर मनोवृत्ति की प्रातगवता होगी है। कता तितो ममाव की पूर्ति है। जीवन की बुद्धरता हमें सौम्य तोन को करता व निरु प्रेरित करती है।

परन्तु, यह हीनता की भावना जिस कता सकत की प्रेरणा कहा गया है क्या वास्तविक कमजोरी है? ऐसा कहना कताचित कताहार वा मरमान सममा जायेगा। जता कि हम देग चुके हैं यह हीनता की भावना आवश्यक नहीं है कि शारीरिक् रूप म हो। जता नि वास्तव्यापन जी कहन हैं यह हीनता सामाजिक सतुलन धनाय रतने की एक विशेष दशा म असमथता है। इस असमथता वा यही अर्थ है कि कलाकार, समाज का साधारण जीवन जिन रुद्धिमो म वध कर चला है उनम वधना स्वीकार नहीं करता। रुद्धि मुक्त होने की यह भावना उस नई राह बनान की प्रेरणा देती है। *

तव के विस्मय से भर कर कहते हैं "अमुक्त है तो बिचारा पर उसके हाथ मे हुनर है।'

हमारे कल्पित कमजोर प्राणी ने हमारे कल्पित समाज के जीवन म माग लेना कठिन पाकर, अपनी अनुपयोगिता की अनुभूति से ग्रहण होकर, अपने विद्रोह द्वारा उस जीवन का सेन विकसित कर दिया है। उसे एक नई उपयागिता सितार्ई है-सो दय बोध। पहला कलाकार ऐसा ही प्राणी रहा होगा पहली कला वेष्टा ऐसा ही विद्रोह रही होगी फिर चाहे वह रेखाभा द्वारा प्रकट हुआ हो चाहे बाणी द्वारा चाहे ताव द्वारा चाहे मिट्टी के लोदों द्वारा

* हरिवशराय बरचन 'मधुकलश

स्थल गया है भर पधों स
नाम कितनो के गिनाऊ
स्थान बाकी है कहा ? पय
एक अपना भी बनाऊ
राह जत पर भी बनी है
रुद्धि पर न हुई कमी यह
एक तिनका भी बना सकता
यहा पर माग दूनन
तीर पर कस रू में
प्राज लहरा म निमन्त्रण !

यह नई राह बनाने की जो प्रेरणा हम कलाकार में मिलती है, उस व्यक्ति का हीन भावना की प्रिय से आक्रांत कह कर कैसे टाला जा सकता है !

कला और नैतिकता एडलरोंय मत

एडलर फ्रायड की ही तरह कला का जीवन के सघष से पलायन के क्षणों का सजन मानते हैं । यद्यपि दोनों मनोविद्या की दृष्टि में कला का उद्देश्य आत्म-मिथ्यत्व है परन्तु, एक की दृष्टि में कलाकार अपनी सृष्टि में विगत जीवन की खिन्न इच्छाओं की पूर्ति का छाया जाल बुनता है जब कि दूसरे की दृष्टि में जीवन का किसी क्षेत्र में हीन भावना को प्रिय से प्रसित हो कर वह ससृष्टि के निर्माण में अपना सुयोग प्रदान करता है । फ्रायड कलाकार के लिए नैतिकता का प्रश्न उठाना नहीं चाहते । एडलर यद्यपि कला और नैतिकता के सम्बन्ध में मौन हैं परन्तु, उनका सिद्धांत प्रयान्तया उपयागितावादी है । वे कला मूजन की प्रेरणा अतर्भावना के दमित रूप में नहीं पाते । मन हमारी अतर्भाविनाए जो है, वे हैं कह कर छुट्टी नहीं मिलती । व्यक्ति और सामाजिक भावना के सतुलन की ओर अग्रसर होना एडलर का निश्चय प्रयास है ।

विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (Analytical Psychology) सिद्धांत

काम वासना और हीन भावना की प्रिय, इनमें जीवन की मूल प्रेरणा कौन सी है यह निर्णय करना कठिन है फ्रायड और एडलर के सिद्धांतों को देखते हुए यों कहें असम्भव है । परन्तु इन दोनों विरोधी सिद्धांतों में हम देखते हैं कि जुग महोदय ने आश्चर्यपूर्ण समन्वय किया है ।

मन के स्तर और जातीय अवचेतन

जुग फ्रायड की तरह मन का प्रधान भाव अवचेतन मानते हैं । परसनेलिटी (Personality) का जुग के लिए विशिष्ट ग्रह है । नाटकों के अभिनय के समय रोम में पात्र अपने मुह पर नकली चेहरा (Persona) धारण करते थे । दशकों को वही भाग लिखलाई देता था । समाज व्यक्ति के चरित्र के जिस रूप से परिचित होता है वही उसका व्यक्तित्व (Personality) है । यदि व्यक्ति का अह जो कि चेतना का केन्द्र बिन्दु है उसके व्यक्तित्व के अनुरूप है तो उसे स्वयं अपने अन्तमन का भी परिचय नहीं रहता । उसकी दमित इच्छाएँ जिन्हें चेतन मस्तिष्क में स्थान नहीं मिलता, अनजाने व्यक्तिगत अनुभव और साधारण भूलों सभी उसके व्यक्तिगत अवचेतन (Personal unconscious) में संचित रहते हैं । इसके अतिरिक्त जुग जातीय अवचेतन मन (Racial unconscious mind) की कल्पना करते हैं । प्राणि काल में जब मनुष्य केवल जीवित अणु (Protoplasm) था तब से लेकर आज तक के विकास काल में जो बतिया बनती बिगड़ती रहीं, वृत्तियाँ के सक्षार हान पर व नष्ट न होकर हमारे जातीय अवचेतन मन में संचित होती गईं । भगदास

अनप्रवृत्ति का उदाहरण लें—आज चाहे आदिम रूप में वह प्रवृत्ति हमारे अन्दर ही पर दगल,मर्गा लडाई या महायुद्धों के रूप में वह हमारे जीवन में अभी भी अभिप्रेत होती है। अस्तु इस सुग्रीव काल में असह्य मूल पशु प्रवृत्तियाँ हमारे जातीय अचेतन में दबी पड़ी हैं। सम्पत्ता के सत्कारों से हम अपने चेतन मन को सफेदपोश बनाये रखते हैं परन्तु उसका आवरण इतना भीना है कि नींद का मन बार बार दिखलाई पड़ता है। जुग के अनुसार मानव शिशु अपने अनुभव की वसी जातीय अचेतन के आधार पर 'पाठ्या' करता है। समार की जातियों के पौराणिक साहित्य में हम देवता, राक्षस भूत आदि की कल्पना अभिप्रेत पाते हैं। वह पूव युग के सीमित ज्ञान का परिणाम था परन्तु आज भी प्रत्येक मानव शिशु उस जातीय अचेतन से प्रभावित होता है और वसी कल्पना करता है। जिस तरह व्यक्तिगत अचेतन हमारे चेतन मन में प्रकट होने के लिए प्रयत्नशील रहता है उसी तरह जातीय अचेतन के तत्व भी हमारे चेतन मन में प्रकट होने के लिए प्रयत्नवान होते हैं। परन्तु उनके प्रयत्नों में साधारणतया सफलता नहीं मिलती। पागलपन या विक्षेप की अवस्था में अथवा असभावित परिस्थितियाँ, यथा भूम्प के अवसर पर अथवा स्वप्नों में या कलाकार के कृत्रिम आधारण क्षणों में जातीय अचेतन अभिप्रेत होता है। ऐतिहासिक विकास की अवस्थाओं में जिस तरह मनुष्य एक के बाद दूसरे तरह के सतुलन में प्रवृत्त हुआ उसने सतुलन प्राप्त करने के लिए काम शक्ति का प्रयोग किया। काम शक्ति का स्वरूप केवल यौन मय ही नहीं रहा यद्यपि उसकी शब्दावली प्रतीक के रूप में यौन सम्बन्धी बनी रही। एक व्यक्ति रात को स्वप्न देखता है कि वह अपनी माता और बहिन के साथ उड़ रहा है। एक पवन की चोटी पर पहुँचने पर उसे बताया जाता है कि उसकी बहिन के बच्चा होने वाला है। इस स्वप्न की 'पाठ्या' जहाँ फायड यौन सम्बन्धों के रूप में करते हैं जुग उसका बिल्कुल भिन्न अर्थ लगाते हैं। जुग की दृष्टि में माता व्यक्ति की गरिम्माधारिता की प्रतीक है क्योंकि वह व्यक्ति अपनी माता व प्रतिभवा तर जीवन में उत्तमोत्तम बना रहा था। बहिन उसकी प्रेम भावना की प्रतीक है और बहिन के बच्चा होने का अर्थ है 'व्यक्ति जीवन को नय सिरे से आरम्भ करने चाहता है। जुग के अनुसार चेतन और अचेतन का सम्बन्ध अनुरूप न होकर विरुद्ध तथा अतिपूरक होता है। यदि चेतन में नारी एक पुरुष की ओर आकर्षित होती है तो उसका अचेतन अनेक व प्रणय की माँग करता है।

जैसा कि कहा गया है 'जुग काम शक्ति को यौन सम्बन्धों से मुक्त समझते हैं। य उम यगशा व जीवन शक्ति' (Elan Vital) या प्राधुनिक भौतिक विज्ञान की ऊर्जा (Energy) की तरह मानते हैं। काम शक्ति चतुर्थी दृष्टि में जीवनच्छा है। जिस तरह ऊर्जा का प्रयोग किसी भी शिशा में किया जा सकता है—स्टीम से रेलवे इंजिन भी चलाया जा सकता है। कपड का कारखाना भी उसी तरह उनके मत में

काम शक्ति का प्रयोग भी विभिन्न रूपा में किया जा सकता है। काम शक्ति की इस नवीन धारणा के आधार पर वे फ्रायड और एडलर के विरोधी सिद्धांतों में समन्वय स्थापित करने हैं और व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों की—अंतःप्रेरित (Introvert) और बाह्य प्रेरित (Extrovert) की नियोजना करते हैं। उनके मन में कुछ लोगों के जीवन की प्रेरणा का मूल स्रोत काम वासना-यौनमय होती है कुछ का हीन भावना की प्रथि से प्रेरित ग्रह मानव। काम वासना जातीय अवचेतन मन में किस तरह परिवर्तित रूप धारण करती है इसका विवेचन वह नतत्व विज्ञान, पुराण, साहित्य और लोकगीतों के आधार पर करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि त्याग की भावना मनुष्य में उतनी ही अंतर्निहित है जितनी ग्रह की क्योंकि वह ग्रहण से ही गिरोह में साथ (Gregarious) रहा है। नतिकता मनुष्य की आत्मा की प्रतिया है जो उतनी ही प्राचीन है जितनी स्वयं मानव जाति। निश्चय ही यह फ्रायड के विचारों में बिल्कुल विपरीत धारणा है।

कला के माध्यम से

जातीय अवचेतन की अभिव्यक्ति

जुग की धारणा है कि अवचेतन के चेतन में अभिव्यक्त होने पर और उसकी अधःशक्तियों का विश्लेषण किया जाने पर जीवन में विकास सम्भव है। हमारी जाति का अस्तित्व बना रहे हमारा जीवन विकासमान हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम अपने आपको अभिव्यक्त करते रहें, हमारा जातीय अवचेतन व्यक्त होता रहे जिसके अभाव में उसका विस्फोट अत्यंत भयंकर हो सकता है। अस्तु कला प्राण चेतना की ऐसी ही सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। कला की मूल प्रेरणा क्या है इसके सम्बन्ध में किसी अंतिम निष्कर्ष पर पहुंच पाता जुग के मत में असम्भव है। उनका कहना है कि यदि मनोवैज्ञानिक कला सृजन के सम्बन्ध में पूर्वापर सम्बन्ध (Causal relations) स्थापित करने में सही हों, तो फिर कला के अध्ययन की कोई स्वतंत्र आधार भूमि शेष नहीं रहे पायेगी और मनोविज्ञान उसे अपने अध्ययन के लिए एक विशिष्ट शाखा बना लगे। वास्तव में जीवन में सृजन-प्रेरणा जिसकी कला के रूप में स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है किसी तरह के नियमों में नहीं बांधी जा सकती।

कला का निर्वैयक्तिक स्वरूप

किसी कलाकृति के अध्ययन में साहित्यकार और मनोवैज्ञानिक की दृष्टि में मौलिक भेद होता है। उदाहरण के लिए मनोवैज्ञानिक कहे जानवाले उपन्यासों को लिया जाय। शायद कुछ साहित्यिक व्यक्ति यह समझते हों कि इन उपन्यासों के द्वारा साहित्य में मनोविज्ञान की सेवा की जाती है परन्तु वास्तव में मनोवैज्ञानिक के लिए यह उपन्यास उपयोगी नहीं होते क्योंकि उनका लेखक स्वयं ही मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत कर देता है और मनोवैज्ञानिक उसकी केवल आलोचना

कर सकता है या उगे उचित ठहरा सकता है। इनके विपरीत वे उपवास होते हैं जिन्हें मनोवैज्ञानिक व्याख्या करने के बन्ने सेगक जीवन का सम्पूर्ण समिलष्ट चित्रण प्रस्तुत करता है। मनोवैज्ञानिक के लिए ऐसे ही उपवास चित्रण सामग्री प्रस्तुत करते हैं। व्याख्यापूर्ण साहित्य के बन्ने स्वप्नदर्शी बना मनोवैज्ञानिक के लिए जीवा को समझने के अधिक अवसर प्रदान करती है। कलाकार की कृति में हमारी समझ की पराङ्ग म न ध्यानवाला ऐसा वातावरण रहता है जो मनोवैज्ञानिक को उसकी व्याख्या करने के लिए ललकारता है। हमारे जातीय अवचेतन में, व्यक्तिगत अवचेतन में निहित आदिम पशु प्रवृत्तियाँ दबी पड़ी रहती हैं, उन्हें पशु प्रवृत्तियाँ ही क्यों कहा जाय—मानव मन में कसी रहस्यमयता, एक भ्रममयता का वातावरण बना रहता है। केवल हम सम्यक् कहे जानेवाले 'यक्तियों ने पुराण-पद्यों या अथ विश्वासी कहे जाने के भय से उन प्रवृत्तियों को दुरी तरह से दमन कर दिया है क्योंकि हम स्वतंत्र चेतन होकर एक सुरक्षित 'यवस्थित विवेकपूर्ण जगत् की स्थापना करना चाहते हैं। परन्तु हमारे बीच ही कवि कभी हम उस जगत् का आभास देता है जिस 'निशा-लोक' कहा जा सकता है कि जो अघनारमय रहस्यपूर्ण पशुओं राक्षसों, देवताओं परियों से भरा है। केवल कवि ही नहीं सिद्ध पुरुष भविष्यवता, नेतागण स्वप्नदर्शी भी इसी लोक के आभास को पाते हैं। मानव मन के इस आश्चर्यजनक रूप को समझ कर ही जीवन में हम किसी तरह का विकास कर सकते हैं।

अतः युग का मत है कि कविता में अपने युग की मांग करना भयकर भूल है। युग के प्रतिनिधि कवि की बात बहक है। कलाकार तो युग युग का प्राणी होता है। उनका कथन है कि प्रत्येक युग एक यक्ति की तरह है जिसके चेतन मन का मांग सीमित है। अतः उसे जीवन में मानसिक सन्तुलन के लिए अवचेतन के क्षतिपूर्क प्रयास की आवश्यकता रहती है। यह प्रयास चित्रकार की तूलिका के द्वारा, कवि की लेखनी के द्वारा स्वप्नदृष्टा की कल्पना के द्वारा जातीय अवचेतन की अभि यक्ति के रूप में होता है। यह प्राणी अपने युग की उन अमुक्त इच्छाओं की अभि यक्ति करते हैं जो प्रत्येक 'यक्ति अनात रूप में मोगने के लिए इच्छुक रहता है चाहे उसका परिणाम अच्छा हो या बुरा, युग के घाव को पूरा करने में या उसकी विनाश लीला में। हम देखते हैं महाभारत के कृष्ण कृत 'य का पाठ पढ़ाने वाले हैं 'सूर सागर' के कृष्ण वाले भगवान हैं, 'विहारी सतसई' के प्रेमी-रसिक घर 'प्रिय प्रवास' के देश भक्त। इनमें से चाहे किसी भी कवि का कितना ही महत्व हो परन्तु प्रत्येक कवि लालो प्राणियों की इच्छाओं को अभिव्यक्त करता है जिससे अमश इन कवियों का युग के चेतन मन के परिवर्तित स्वरूप का पता चलता है।

जसा कि कहा जा चुका है, फ्रायड कलाकार के व्यक्तिगत जीवन में पड़ी मानसिक ग्रंथियों से कला-सृजन का सम्बन्ध जोड़ते हैं। प्रत्यक्ष जीवन में इच्छाओं के अभाव में कलाकार कल्पना लोक में अपनी इच्छाओं को पूरी करने का स्वागत रचता है। इस दृष्टि से जीवन में कला का विशेष महत्त्व नहीं है वह एक अवाञ्छनीय क्रिया है मुलावा है। फ्रायड कला को कलाकार की दमित वासनाओं की प्रतिक्रिया मानते हैं। यदि इसका अर्थ यह लिया जाय कि कलाकार के जीवन की व कौन सी बातें हैं जो उसे कला सृजन के लिए प्रेरित करती हैं तो इस स्थापना को चुपचाप स्वीकार किया जा सकता है। कलाकार के जीवन से अलग कला कृति का स्वयं अपने में महत्त्व है। फ्रायड की यह मान्यता कि कलाकार विशेषतः व्यक्ति होता है जहाँ तक कलाकार के व्यक्तिगत जीवन का सम्बन्ध है चाहे सही हो पर तु कलाकार के रूप में यह कदापि सही नहीं है। जुग के मत में कलाकार निरपेक्ष और निर्व्यक्तिक होता है

“वह निपेक्ष और निर्व्यक्तिक होता है—यहाँ तक कि अमानव भी क्योंकि कलाकार के रूप में वह अपनी कृति है, मानव प्राणी नहीं।”+ कलाकार के व्यक्तिक जीवन की अभिव्यक्ति के बारे में उनका बयान है

‘कलाकृति में जिन व्यक्तिगत बेहूदगियों का समावेश होता है वे आवश्यक नहीं हैं। जितनी ही व्यक्ति विशेषताओं का प्रदर्शन किया जाता है कला का रूप उतना ही भोग्य बन जाता है। कला सृष्टि के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत सीमाओं से ऊपर उठ कर कलाकार विश्व मानव के रूप में कवि की आत्मा और हृदय के सन्धि को सुनायें। कला के क्षेत्र में व्यक्तिगत पहलू बयान है और यहाँ तक कि पाप भी।’ ×

+ CG Jung ‘Modern man in search of soul Pp 194

He is objective and impersonal even inhuman for as an artist he is his work and not a human being

× Ibid Pp 194

The personal idiosyncrasies that creep into a work of art are not essential, in fact the more it has to cope with these peculiarities, the less it is a question of art. What is essential in a work of art is that it should rise far above the realm of personal life and speak from the spirit and the heart of poet as man to the spirit and the heart of mankind. The personal aspect is a limitation and even a sin in the realm of art

हिन्दी कथा साहित्य की अतन्मुखी प्रवृत्ति

प्राधुनिक मनोविज्ञान का हिन्दी साहित्य पर गहरा और व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है। यह मनोविज्ञान के अध्ययन का ही परिणाम है कि आज का हिन्दी साहित्यकार नये मूल्य सत्ता (values) और अभिप्रेरित क नये माध्यमों को अपनाने के लिए सचेष्ट है। मनुष्य के सामाजिक व राजनीतिक जीवन की अभिव्यक्ति जो बाह्य घटित का अनुलेख है, वे बन्ते व्यक्ति के अतर्जिवन के सत्य का उद्घाटन आज के साहित्यकार का प्रधान लक्ष्य प्रतीत होता है। बाह्य जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत अवश्य किया जाता है कि तु वे पात्रों के अतर्जिवन का अंग बन कर आती हैं। और यही पर हम अनुभव करते हैं कि प्राधुनिक साहित्य और मनोविज्ञान सम्बन्धित-साथ म बंधे हुए हैं।

कथा साहित्य में प्रेमचन्द युग तक बाह्य घटना बहिर्मुख प्रथम सामाजिक राजनीतिक समस्याओं का चित्रण ही प्रधान था। पात्रों के अतर्जिवन की भाँती प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी मिलती है किन्तु वह क्षण भर सास ल लेने की तरह है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में यदि कवर बाह्य घटनाओं को ही जान लिया जाये और पात्रों के अतर्जिवन की कथा एक बार उठाली जाय तो अवश्य उपन्यास से रस प्राप्ति में कुछ कमी होगी किन्तु उपन्यासकार का अर्थ कुछ मित्र नहीं होगा। ठीक इसके विपरीत, प्रेमचन्द-युग के बाद के उपन्यासकारों-जन्म, अन्ध, इलाचन्द देवराज प्राणिक उपन्यासों में बाह्य जीवन की घटनाओं का निस्संग रूप में कोई महत्त्व नहीं। वे कथा की उपजीव्य बन कर केवल इसीलिए आती हैं कि हम पात्रों के अतर्जिवन की प्रतिभया जान कर उनके चरित्र को अधिक स्पष्ट रूप में पहचान लें।

मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण प्राधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की समस्याएँ आ व्यक्ति के अतर्जिवन से सम्बन्धित हैं और नये मूल्य सत्ता की खोज प्राचीन धारणाओं की अभावता पर।

प्रेमचन्द की रचनाओं में सामान्य मनोविज्ञान के दर्शन होते हैं। प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी कथा साहित्य में मनाविज्ञान सिद्धान्त का प्रभाव अधिकधिक बढ़ता गया। प्रायः ही विचारधारा से प्रभावित होकर प्राणिक उपन्यासों में केवल विवाहित स्त्रीपुरुष के बीच यौन संबंध की पवित्रता को उच्च प्राणिक रूप में अपनाने के बन्ने विवाह सम्बन्धी उपयोगिता पर ही प्रश्न चिह्न लगा दिया गया जिसका विद्वान् इस नाम पर अन्वेषण कर चुक है जन्म हिन्दी के पहले कथाकार हैं जिनकी रचनाओं में प्रायः एक अर्थ मनोविज्ञानिकों के जटिल मनाविज्ञान का समावेश हुआ है। जन्म की रचनाओं में मनोविज्ञान का प्रभाव दो रूपों में लक्षित होता है—(१) चरित्रचटन के रूप में (२) नवीन मूल्य-सत्ताओं (new values) की

स्थापना के रूप में। फ्रायड के अनुसार मरण-मुखी मूल प्रवृत्ति (Death Instinct) दो रूपों में अभिव्यक्त होती है (१) आत्म पीडक प्रवृत्ति (Masochistic tendency) तथा (२) पर पीडक प्रवृत्ति (Sadistic tendency)। जेनेट्र न इसी के अनुरूप आत्म-पीडक एवं पर-पीडक चरित्रों की सृष्टि की है। नवीन मूल्य सत्त्वों की स्थापना की दृष्टि से जेनेट्र मनोविज्ञान की गस्टाल्ट धारा (Gestalt Psychology) के अधिक निकट है।

जेनेट्र के उपन्यासों में पर-पीडक तथा आत्म पीडक चरित्र सृष्टि "सुनीता" में श्रीकान्त के

चरित्र में पर-पीडन (Sadism) का भाव

जेनेट्र के "सुनीता" उपन्यास में श्रीकान्त को पर पीडक चरित्र के रूप में अंकित किया गया है। श्रीकान्त का कानिज का मित्र हरिप्रसन्न आत्मकवादी रह चुका था। सुनीता काल के बाद एक दिन श्रीकान्त को अचानक एक मेले में वह साधु के रूप में दिखाई पड़ता है। श्रीकान्त उसे पाने के लिए आतुर हो उठता है। वह हरिप्रसन्न का सामान्य जीवन की राह पर जाना चाहता है। कपो लाना चाहता है, इसी में श्रीकान्त का मानसिक जीवन का भेद निहित है। श्रीकान्त के चरित्र गठन में हम मनोवैज्ञानिक फ्रायड द्वारा कथित (Sadistic Character) पर पीडक चरित्र की प्रवृत्तियाँ पाने हैं। फ्रायड के अनुसार आत्म पीडन (Masochism) तथा पर पीडन (Sadism) दोनों भाव मरण-मुखी प्रवृत्ति (Death instinct) की अभिव्यक्ति करते हैं। शक्ति में मरण-मुखी प्रवृत्ति प्रत्यक्ष रूप में नहीं प्रकट होती है। फ्रायड का कथन है कि मरण-मुखी प्रवृत्ति काम प्रवृत्ति के साथ मिश्रित हो जाती है तथा जब वह स्वयं के विरोध में कद्रित होती है तो आत्म पीडन तथा जब प्रयत्न के विरोध में कद्रित होती है पर पीडन भाव के रूप में प्रकट होता है। एरिक फ्रॉम (Erich Fromm) ने अपनी पुस्तक "द फ्रीडम फ्रॉम फ्रीडम" (The of Freedom) में आत्म पीडन पर पीडन की प्रवृत्ति को व्यक्ति के अकेलेपन की असहायता में सहारे की चाह के रूप में आवश्यक बताया है। वे मानते हैं कि फ्रायड का आत्म पीडन व पर पीडन सम्बन्धी उनका विचार उनके आरम्भिक विचारों से भिन्न है। फ्रायड ने आरम्भ में इन प्रवृत्तियों को काम वासना से संबंधित बताया था परन्तु वस्तुतः इनका मरण-मुखी प्रवृत्ति से संबंध है। काम वासना के मिश्रित हो जाने से मरण-मुखी प्रवृत्ति का रूप भिन्न दिखाई देने लगता है। आत्म-पीडन व पर-पीडन की प्रवृत्तियाँ मूलतः एक ही मानसिक स्थिति अकेलेपन की असहायता की अनुभूति की उपज हैं। प्रेम के सम्बन्ध में इन प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए फ्रॉम का कथन है "प्रेम समाप्तता व स्वतन्त्रता के भाव पर आधारित रहता है। यदि वह एक सहयोगी के समक्ष पर अन्वित की विश्वसनीयता पर आधारित है तो वह आत्म पीडन युक्त आशय की माँग का रूप लेता है, चाहे इस सम्बन्ध का किमी रूप में

बौद्धिकरण किया जाय। पर पीडन की प्रवृत्ति भी प्रायः प्रेम के छद्म-वेष में व्यक्त होती है। दूसरे व्यक्ति पर अधिकार यदि कोई विश्वास कर सके, वह अधिकार उस व्यक्ति के भले के लिए ही है प्रायः प्रेम की अभिव्यक्ति करता प्रतीत होता है, किंतु मूलतः वह अथवा व्यक्ति पर अधिकार प्राप्ति के मान-द के भाव से ही प्रेरित होता है।” X

इस विश्लेषण के प्रकाश में हम हरिप्रसन्न की सामान्य जीवन के पथ पर लाने की श्रीकांत की प्रवृत्ति की जांच करें। श्रीकांत हरिप्रसन्न से मिला कि उसके जी में बस गया। श्रीकांत के लिए कालेज के जीवन से ही हरिप्रसन्न का निद्रा दब जोखम से पूरा जीवन स्पृहणीय रहा है यद्यपि वह स्वयं सयत व नाप जोख का जीवन व्यतीत करता है। क्या इन स्पृहा के कारण ही श्रीकांत हरिप्रसन्न के कालेज जीवन का अधिकांश व्यय अपने पर नहीं छोड़ता? और अब जब वह वकील बन गया है तो चाहता है हरिप्रसन्न भटकना छोड़ कर सीधी राह लगे। क्यों? श्रीकांत का स्पष्टीकरण ध्यान देने योग्य है— उसके भटकते रहने से अपने बारे में मेरा विश्वास क्षीयित होता है। हरिप्रसन्न की याद घुण्डीदार प्रश्न वाचक सी बनी मेरे इस जीवन के भाग खंडी हो जाती है। मानो पूछती है, तुम यह श्रीकांत, तुम यह? जब कि तुम्हीं देखो मैं क्या हूँ। मुझे अपने तमाम जीवन की और हरिप्रसन्न की याद सदेह से सकेत करती दीख पड़ती है। मानो कुछ भीतर से अधेरा मा उठ कर तजनी की नोक मरे सामने करके पूछता रहता है श्रीकांत यही मांग है? यही जीवन है? इन सबमें मैं बच नहीं सकता। बचने के लिए ही मैं कहता हूँ हरिप्रसन्न को पाना होगा और पाकर इस विस्मयबोधक को मिटा कर वही जीवन के आगे निश्चय वाचक विराम चिह्न ले आना होगा। मुझे दसना होगा कि हमारी सुनिश्चित और सुप्रतिष्ठित जीवन नीति को इस व्यक्ति की याद विचलित नहीं करती। मैं परमाथ का कायल नहीं। कोई हरिप्रसन्न की कल्याण कामना के हेतु उसका हित बनाना

X Erich Fromm The fear form Freedom Routledge and Kegan Paul London Fifth impression 1950 Pp 133

Love is based on equality and freedom. If it is based on subordination and loss of integrity of one partner it is masochistic dependence regardless of how the relationship is rationalised. Sadism also appears frequently under the disguise of love. The rule over another person if one can claim that to rule him is for that person's own sake frequently appears as an expression of love, but the essential factor is the enjoyment of domination.

चाहता हूँ या उसका उद्धार करना चाहता हूँ ऐसी बात नहीं है। मुझे तो मेरा अपना हित ही इसमें दीखता है। जब जब उसकी याद सिर उठाती है, मुझे अपनी तरफ शका होती है अपने धीवित्य पर सपेह होता है।”* श्रीकांत के इस कथन से हो भासित हाता है कि जीवन नीति की बात मात्र हेतुभास (Rationalisation) है। उपयास के अंत तक भी गृहस्थ बन कर रहने प्रवृत्ति निवृत्त जीवन व्यतीत करने की समस्या विरोध का रूढ़ धारण कर हरिप्रसन्न का उद्धलित नहीं करती। प्रवश्य, सुनीता की बहिन सत्या को पढाने श्रीकान्त व सुनीता हरिप्रसन्न को गृहस्थी में बाधने की कोशिश करत है। फिर भी हरिप्रसन्न के निमित्त श्रीकांत का सुनीता का पाने का क्या तात्पर्य हो सकता है। निश्चय ही गृहस्थ जीवन की प्रेरणा देना ही इसका मन्तव्य नहीं। इसका भी गूढ मनोवैज्ञानिक कारण है—और वह है हरिप्रसन्न को पाना श्रीकान्त जिस भाग का इ गिन करे उस पर हरिप्रसन्न को चलते हुए देखना जिससे कि श्रीकांत के व्यक्तित्व की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता (प्रकेलेपन के भय की अनुभूति का नाश) पूरी हो। क्योंकि श्रीकांत के प्रकेलेपन की अनुभूति एक तथ्य है। सुनीता को पाकर भी वह सूनापन दूर नहीं कर सका है, तभी तो हरिप्रसन्न के निमित्त सुनीता को पाने की बात कहता है। † और सुनीता की राह से हरिप्रसन्न को दुनिया में लाने की सोचता है। × डा० देवराज उपाध्याय का कथन है कि कुछ मनोवैज्ञानिक केस ऐसे होते हैं जो कुमारी कन्या स प्रेम न कर विवाहिता से ही कर सकत हैं। श्रीकांत का उहोंने ऐसा ही केस बताया है जो अपनी पत्नी सुनीता का हरिप्रसन्न में सम्बन्ध मान लेने के बाद ही उसे प्रेम दे पाता है। किंतु ऐसा क्यों है? इसके मनोवैज्ञानिक आधार की खोज उपाध्यायजी ने नहीं की। हम समझते हैं श्रीकांत के चरित्र में पर पीडन प्रवृत्ति बढमूल है और वह सुनीता व भय किसी को पाने के बदले हरिप्रसन्न को ही पाने को विकल है। इसके लिए कितना त्याग वह नहीं करता। श्रीकांत के जटिल मनोविज्ञान को समझे बिना उसके व्यवहार को भी समझना असम्भव है। भला कोई व्यक्ति शरीर के साथ ही मन से भी सुदूर लगनेवाली अपनी पत्नी को किसी भय व्यक्ति के साथ काम-

* 'जनेद्रकुमार सुनीता', हिन्दी भय रत्नाकर कार्यालय बम्बई, चौथा संस्करण
१९४६ पृष्ठ ११

† वही, पृष्ठ १२६

× वही, पृष्ठ ११

सम्बन्ध स्थापन के लिए प्रेरित करेगा जब कि श्रीकांत ऐसा ही करता है । X यस्तुत पर पीडन (Sadism) की प्रवृत्ति श्रीकांत के चरित्र में बद्धमूल है जो उसके मित्र हरिप्रसन्न पर केन्द्रित हुई है और हरिप्रसन्न को पाने के लिए वह अपनी पत्नी को साधन बनाता है (क्याकि इस साधन का प्रचूना होने की सम्भावना है) । लाहौर से लौट कर जब श्रीकांत गुनीना को अपने और निकट पाता है तब हरिप्रसन्न को भूलता नहीं बरन् उस खोजने की आतुरता व्यक्त करता है और उसके द्वारा अकित चित्र को स्टडी रूम में मध्य में स्मृति चिह्न के रूप में लगाने को कहता है । श्रीकांत का पर पीडन का भाव अपने लक्ष्य प्राप्त को पीडा देन के भाव के विपरीत प्रेम भाव से मिश्रित है, उसी रूप में जिस कि एरिक फ्रॉम ने कहा है पर पीडन इस शब्द का हमने प्रयोग किया है वह अपेक्षतया पीडन से मुक्त भी हो सकता है और अपने लक्ष्यप्राप्त के प्रति मत्मी भाव से मिश्रित होता है ।” +

“त्यागपत्र” की “बुझा” में आत्म-पीडन
(Masochistic tendency) की प्रवृत्ति

जनेद्र के कथा-साहित्य में पति के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति के प्रति आकर्षण का अनुभव करते हुए भी नारी कपटपूर्ण नहीं है । पति की इच्छा को वह अपने रास्ते की बाधक न मान, बल्कि सहयोगी ही मान कर उस पर चल पाती है । किन्तु यदि नारी के लिए वह रास्ता बन्द कर दिया जाता है और वह पति द्वारा ठुकराई जाती है तो वह उस पर मार बरकर नहीं रह सकती जनेद्र के नारी पात्रों की सरल निष्पटता ही उन्हें गरिमायुक्त बना देती है । त्याग-पत्र की बुझा बचपन में शीला के भाई से प्रेम करती थी । जब बुझा का विवाह हो गया और वह अपने पति के यहाँ चली गयी तो शीला के भाई का पत्र आया जिसमें उसने विशेष कुछ नहीं लिखा पर बुझा ने इसका जिक्र अपने पति से करना आवश्यक समझ कर किया । इसी पर वह पति द्वारा ठुकरा दी गयी । बुझा

X वही पृष्ठ १३६

तुमस कहता हूँ तुम इन दिनों के लिए अपने को उसकी इच्छा के नीचे छोड़ देना । यह समझना कि मैं नहीं हूँ तुम हो और तुम्हारे लिए काम्य कम कोई नहीं है । इस भाँति निपिद्ध कम भाँ काई नहीं रहेगा ।

+ Erich Fromm 'The fear of Freedom Routledge and Kegan Paul Ltd London Fifth Impression 1950 Pp 137

Sadism as we have used the word, can also be relatively free from destructiveness and blended with a friendly attitude towards its object

पतिव्रता घम की याह्या नये रूप म करती है । वह पतिव्रता का घम मानती है कि पति यदि उस नहीं चाहता तो उस पर भार बन कर न रहे । इसके पश्चात् दुष्मा कष्टमय जीवन को म्गीकार करती है । वह कोयलेवाले के साथ रहती है जा उसे गमवती अवस्था म ही छाड कर चला जाता है । दुष्मा यह जानते हुए भी कि कोयलेवाला उसका साथ नहीं निभायेगा और छोड कर एक दिन चला जाएगा फिर भी उस अपना सारा घन दे दती है । अस्पताल मे एक बच्ची को जन्म कर जो बाल म मर जाती ह दुष्मा किसी प्रकार एक घर मे बच्चों को पढान का काम करक जावन यतीत करती है । किन्तु वहा भी व्यवधान आता है । उसक भतीजे प्रमाद का इस घर म विवाह का सम्बन्ध स्थापित होन वाला था । पर वह दुष्मा स अपना सम्बन्ध प्रकट कर देता है जिसस सम्बन्ध तो स्थापित हाने से रुक ही जाता है किन्तु, दुष्मा का काम भी छट जाता है । उसके बाद क्या-नायक का अपनी दुष्मा से मिलन वहा होता है जहां नगर की सडाद रहती है—“अधेड अवस्था की वेश्याए, बेकार मजूर, पेशेवर मिलमगे, कानून की भाव और चगुल से बचकर छिपे अधेड काम करने वाले उच्चके लागे के रहन की जगह ।”

सम्पूर्ण कथा मे दुष्मा के चरित्र की एक ही विशेषता उभर कर आती है—मुख सुविधा का अवसर मिलने पर भी दुष्मा ने उसे सदब छोड दिया है और कष्टपूर्ण जीवन का वरण किया है । मनाविज्ञान की दृष्टि से आत्म पीडन (Masochism) की प्रवृत्ति दुष्मा के जीवन म बद्धमूल है । प्रमोद कोयलवाले के यहा से दुष्मा को घर ल जाना चाहता है, अपने सम्भावित समुराल म मिलने पर भी उससे घर चलने को आग्रह करता है, जीवन की दुग्ध भरी जगह म मिल कर वह दुष्मा को अपने साथ ले चलने के लिए आतुर हो उठता है पर हर बार दुष्मा इसका प्रतिरोध करती है । क्या वह आत्मपीडा को म्गीकार करती है ? दुष्मा समाज की यौन-नतिकता की प्रचलित मायताओं की शिकार है और एक बार पति के द्वारा ठुकराई जाकर तथा पिता या भाई के घर भी स्थान न पाकर एवाक्पिन की असहायावस्था की भावना स पीडित है । जिस स्थिति मे पठ गई है वहा सहारे के लिए किसी शिमा म वह हाथ नहीं उठा पाती । एसी दशा मे पीडा म ही वह अपने को सुला दती है । उसका आक्रोश अपने ही विरुद्ध लरजता है । यद्यपि पीडा रुध्य नहीं है लक्ष्य से अपने को सुलाना ही है वह पीडा क द्वारा ही, अपने को भाग्य क घपडो को समर्पित करने स ही सम्भव है । मानो इस प्रकार पाडा को भाड कर वमा समाज की प्रचलित यौन नतिकता के सामने प्रश्न चिह्न बन खड़ी होती है ।

दुष्मा परिस्थिति के प्रति अपने को पूरा समर्पित कर असहायावस्था के भाव स मुक्त हा जाती है । आत्म पीडन की प्रवृत्ति के कारण आत्म-हत्या भी तो सतोप

का कारण बन जाती है तब बुद्धा की पीड़ा को प्रपनाने की प्रतिक्रिया मनोविज्ञान की दृष्टि से अस्वाभाविक नहीं है। गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित होन से जो स्वयं आत्मपीड़न के मनोविज्ञान पर आधारित है, जनेन्द्र के 'त्यागपत्र' में बुद्धा के चरित्र में आत्मपीड़न का भाव प्रमुखतया पाया जाता है।

'त्याग पत्र' में नये मूल्यों की खोज गेस्टाल्ट पथी मनोविज्ञान की प्रवृत्ति

किंतु 'त्यागपत्र' की मुख्य समस्या नये मूल्य सत्त्वों की खोज है। जनेन्द्र के उपन्यासों की याख्या करते हुए डा० देवराज उपाध्याय ने अपने प्रबन्ध 'आधुनिक हिंदी कथा साहित्य और मनोविज्ञान' में दर्शाया है कि जनेन्द्र का दृष्टिकोण गेस्टाल्ट पथी है—सम्पूर्णतावादी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण। वे किसी स्थिति का समग्र रूप में अवलोकन करते हैं अवयव रूप में नहीं—विश्लेषण नहीं सश्लेषण ही उनका श्रेय है। जैसा कि उपाध्यायजी ने जनेन्द्र के उपन्यासों से उदाहरण देकर बताया है जनेन्द्र ने समग्रतावादी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। पर यह दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक पद्धति (Psychological method) तक ही सीमित नहीं है। नवीन मूल्य सत्त्वा की खोज में भी जनेन्द्र का यही दृष्टिकोण पाया जाता है। वस्तुतः गेस्टाल्टपथी मनोविज्ञान का महत्त्व उसकी मनोवैज्ञानिक पद्धति के रूप में इतना नहीं है जितना कि नवीन जीवन मूल्यों की खोज में प्रयत्नशील होने में गार्डनर मर्फी (Gardner Murphy) ने अपनी पुस्तक 'कॉन्टम्पररी साइकलॉजिकल सिस्टम (Contemporary psychological System) में गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के सम्बन्ध में लिखा है 'दशक का पहला काम निर्माण करना नहीं बरन् निरस्य रूप में विश्व में व्याप्त नियम व अध को समझना है। अनेक रूप व प्रकारों में दशक के लिए सभी समान सम्बन्ध नहीं रहते। अनुवीक्षण अपूर्ण से अधिक पूर्ण की ओर गतिमान होता है तथा इस प्रकार रूपों का गत्यात्मक चुनाव व संगठन होता है। अतः हम अनुवीक्षण मनोविज्ञान से सीधे विचारों के मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और इसमें मूलतः भिन्न नियमों की आवश्यकता अनुभव नहीं होती। सब प्रथम हमारे लिए प्रवृत्ति में व्याप्त नियम को समझना आवश्यक है तत्पश्चात् उसकी भीतरी व्यवस्था के उत्तरोत्तर प्रकारों को जानना जो संगठित होते हुए किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख प्रतीत होते हैं।' +

+ Gardner Murphy 'An Historical Introduction to Psychology
Routledge and Kegan Paul Ltd London Fifth Ed Pp 289
The first task of the perceiver, then is not to create, but to
apprehend the order and meaning which is objectively in the

“त्याग पत्र” में बुद्धा के सामाजिक बहिष्कार पर प्रमोद की झुझनाट्ट सृष्टि व समाज में प्राप्त प्रवृत्त नियम की ही जान लना चाहती है। प्रचलित मूल्य-सत्त्वा की असंगति उसे उद्विग्न कर देती है “कहीं कुछ गड़बड़ है। वही तो सब गड़बड़ ही गड़बड़ है। सृष्टि गलत है। समाज गलत है। जीवन ही हमारा गलत है। सारा चक्कर यह ऊटपटांग है। इसमें तब नहीं है। इसमें जरूर कुछ हाना होगा, जरूर कुछ करना होगा।” + कुछ करना और कुछ होना वस्तुतः मानवता के अखण्ड और अखण्ड प्रतीक सलिल को समी में एक ही प्रवाहमान धरने की प्राकाशा को व्यवस्थित करता है जिसकी गति में सदाचार के बाह्य कृत्रिम नियम काई की तरह टूट जाते हैं। सहज भावना का वही बहिष्कार नहीं और सदाचार के ढोंग का मूल्य नहीं है—बाहर और भीतर एक है। छन नहीं है। बुद्धा उस प्रवाहमान अतः सलिल को ही देखती है। समाज की झूठन वही जानेवाले लोगों के बीच में रह कर भी वह अनुभव करती है इन लोगों में जिन्हें दुःख कहा जाता है, कई तरह पार कर वह भी तट रहती है कि इसको छू सको तो दूध सी प्रवेत सद्भावना का साता ही फूट निकलता है। × कलईवाले सदाचार की भत्मना कितनी सरी है “सच्चरित्र दिखनेवाला यहा नहीं टिक सकता। उसे मज्जा तक सच्चा हाना होगा तभी सरियत है। जो बाहर हो वही भीतर हो। भीतर

world There are however, many many forms of structures to be found not all of which are of equal relevance to the perceiver. Just as perception moves from the incomplete towards that which is more nearly complete so there is continuous dynamic selection and integration of forms. We have thus a direct transition from the psychology of perception to the psychology of thought without involving the need of any essentially different principles. We need to grasp, first of all the order lying in nature and waiting for our apprehension and second the internal order which the thinker manifests as he passes from one to another orderly form, creating new order in the succession and the integration.

+ जनेद्रकुमार 'त्यागपत्र' हिंदी ग्रंथ रत्नाकर वायलिय बम्बई, चौथा संस्करण १९४६ पृष्ठ ६३

× वही, पृष्ठ ७५

पशु हो तो इस जलवायु में घाबर बाहर को मनुष्यता एक क्षण नहीं टहरेगी। मनुष्य हो, तो भीतर तक मनुष्य होगा। कलई वाला सगाधार यहाँ मुल बर उपद्र रहता है। यहाँ तारा कचा ही टिक रहना है, क्योंकि उमे जफरत ही नहीं कि यह कहे कि मैं पीतल नहीं हूँ। सोन व धग की यहाँ परीधा है। + बाहर और भीतर की एकता की भावना से जीवन मूल्यता को समग्र रूप में देगन की प्रवृत्ति प्रकट हाती है। स्पष्ट ही जैनेन्द्र की दृष्टि में प्रचलित यौन नतिकता (Sex morality) मानवता के विकास की ओर प्रवाहमान गणपामरु चुनाव व सगठन के माग में घरेल्य ही है। यही नहीं, धन सचप की प्रवृत्ति को भी वे मानवता के विकास के माग में बाधक समझते हैं तभी तो प्रमोद बुधा की मृत्यु का समाचार पाकर सबसे अधिक दुःखी इसी बात से है कि जब बुधा से समाज की जूठन कहे जानेवाले लोगों के बीच व मिला और बुधा ने जितने स्वयं दे सकते हो उतने दे जाने के लिए कहा था स्वयं के जोर से यह नरद कुण्ड स्वयं बन सकता है, ऐसा तो नहीं जानती फिर भी स्वयं कुछ न कुछ काम सा सकता है तब क्यों उसकी मुठ्ठी मिच गई उसका आज वह यही उत्तर दे सकता है 'मैं धुद्र या।' X मानो त्यागपत्र' का मन्त्र यही है धुन्ता छोड़ो, कलईवाला सगाधार छोड़ो—सह्य मनुष्य बनो, पूरे मनुष्य ! पत्तो के नीचे बहनेवाले दूध—से श्वेत सदभावना क स्रोते को पहचानो और उस प्रवाह के वेग में कृत्रिम यौन-नतिकता के किले को टह जाने दो।

बाल मनोविज्ञान

आधुनिक उपन्यासकारों की अथ प्रमुख प्रवृत्ति बाल मनोविज्ञान सम्बन्धी है। अज्ञेय क शेखर एक जावनी प्रथम भाग का महत्व बाल मनोविज्ञान सम्बन्धी सामग्री के आधार पर है। वस्तुतः इस रचना को उपन्यास कहना भी उपन्यास शब्द की सीमा तान करना है क्योंकि इसमें कथा की एकसूत्रता नहीं, व्यक्तित्व की ही एकसूत्रता है। स्मृति के दृश्य सामने आते हैं और व्यक्तित्व की रेखाएँ उभरती जाती हैं। किन्तु मनोविज्ञान के अध्ययन को कलात्मक रूप में आत्मसात् करने की दृष्टि से यह अत्यन्त ही प्रौढ रचना है। शेखर के व्यक्तित्व के सूत्र उसके बाल जीवन से पोषित हुए हैं।

बाल्य काल के अध्ययन का आधुनिक मनोविज्ञान में बहुत महत्व समझा जाता है। हम स्मरण है कि फ्रायड ने मानसिक विकृतियों व जीवन प्रवृत्तियों के सूत्र बाल्य जीवन में ही देखे हैं तथा अपने सिद्धांत को शशव के काम जीवन के अध्ययन पर आधारित किया है। अथ मनोविश्लेषणवेत्ताओं में अग्रा फ्रायड

(Anna Freud) मेलन क्लेन (Melaine Klein), डेविड लेवी (David Levy) आदि ने बाल जीवन के अध्ययन के नवीन दृश अपनाये तथा मनोविज्ञान की मनो-विश्लेषण शाखा के बाहर भी मनोविज्ञानवताओं ने बाल मन का अध्ययन किया। अतः हिन्दी साहित्य पर मनोविज्ञान के अन्तर्गत हुए प्रभाव के साथ यह स्वाभाविक ही है कि बाल मन के अध्ययन की ओर प्रवृत्ति विकसित हो। यद्यपि हिन्दी में इस दृष्टि से अनेक 'शेखर एक जीवनी' उपनाम ही महत्वपूर्ण है किन्तु इस एक रचना से ही इस प्रवृत्ति का हिन्दी साहित्य की विचारधारा में विवचन आवश्यक हो जाता है।

बाल-मन के अध्ययन का महत्व स्वीकार

बाल मनोविज्ञान का अध्ययन प्रौढ व्यक्तित्व के समझने का अनिवार्य साधन है। फ्रायड ने पहन प्रौढ व्यक्तित्व का मनोविश्लेषण किया तथा उन्हें उनकी मानसिक विकृतियों के कारण उनकी शशव काल की स्मृतियों में मिले। अतः तब शशव-काल की निरपेक्षा एवं आनन्द में विश्वास किया जाता था किन्तु फ्रायड ने सिद्ध किया कि शशव के आरम्भिक काल में काम प्रवृत्ति सजग मात्र नहीं होती बरन् अवरोधी के कारण उसमें कुप्राण भी उत्पन्न हो जाती हैं जो व्यक्तित्व के सहज विकास में बाधक सिद्ध होती हैं। केवल प्रौढ व्यक्तियों के जीवन के अध्ययन से ही नहीं शिशु जीवन के अध्ययन से भी फ्रायड ने इसी निष्कर्ष को पुष्ट किया। अतः उनका बाल जीवन के प्रति आकषण अधिकाधिक होता गया। अनेक मनोवैज्ञानिक फ्रायड की मान्यताओं से मनभेद रखते हुए भी शिशु जीवन के अध्ययन में प्रवृत्त हुए तथा परिवार समाज आदि के बाल मन पर प्रभावों का उन्होंने अध्ययन किया। अस्तु अन्त में मनोविज्ञान की इस सामग्री को अपने उपनामों में स्वायत्त किया है। 'शेखर एक जीवनी' की भूमिका में उन्होंने लिखा है 'बाल्य काल का अध्ययन स्वयं अपना महत्व रखता है और विद्वानों के कई कलाकारों ने बाल्य मन का अध्ययन और चित्रण किया है लेकिन जीवनी में अध्ययन साध्य नहीं है वह केवल उन सूत्रों को खोजने का साधन है जो हाथ हैं प्रत्येक जीवन में

”+

• Sigmund Freud An Autobiographical study The Hogarth Press London Fourth Impression 1948 P p 58

In my search for the pathogenic situations in which the repressions of sexuality had set in and in which the symptoms as substitutes for what was repressed had had their origin I was carried further and further back into the patient's life and ended by reaching the first years of his childhood

+ अज्ञेय शेखर एक जीवनी भाग १ सरस्वती प्रेस, बनारस, अतुष सस्करण १९५१ पृष्ठ ६

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के सामने बाल मन के अध्ययन का अत्यधिक महत्व है । चरित्र की विगिष्ट प्रवृत्तियाँ की जटिल प्रयानाया शशव के अनुभव में देखने हैं । अनेय के ' नदी के द्वीप ' उपन्यास में भुवन रेगा का जीवन में असाधारण रूप से अटकने की प्रवृत्ति का जाने पर उसमें प्रश्न करता है ' व्यक्तिगत जडे तो फेंकने लगता है विलुप्त बचपन से और ' × हमारा यहा "और" में तात्पर्य नहीं, तात्पर्य है यही दर्शाते से कि आज का उपन्यासकार चरित्रगत विगिष्टनाओं का स्रोत शशव के अर्थ में क्यों म देखता है । अनेय बच्चों के व्यक्तित्व के स्वामाविक विनाम के पगपानी हैं तथा सामाजिक परिवेश द्वारा व्यक्तित्व के विनाम में पहुँचने वाली बाधा को हानिप्रद मानते हैं । वे बच्चों से प्रीडा की तरह व्यवहार चाहते बाले माना पितामा को घातक व कपटी मानते हैं । लोग प्रायः भूल जाते हैं कि उनसे जीवन क्या रहे । सभी समाज अपने लिए सम्भव पाता है कि विधान करे ' योग्य माता पिता वे हैं जो बच्चों को वय प्राप्त लोगों की तरह रहना सिखाए । ' इस एक भावना ने जीवन का जिनना अज्ञान किया है उनका शायद ही किसी और वातून या प्रथा या विधान ने किया हो । अपनी स नान को वय प्राप्त लोगो सा बर्ताव सिखाते समय वे भूल जाते हैं कि उनके अपने जीवन क्या थे कि वे भी कभी बच्चे थे उनमें भी बच्चों की निष्पाप शरारत थी, कि बच्चों का कोई दोष है तो यही कि वे इतने भोले इतने अछूते इतने स्वच्छ निष्पाप हैं कि वे अपने माता पिता को अपने कण्ठ पर लज्जित कर देते हैं । यदि माता पिता अपना बचपन याद भर रख सकते तो उनकी सतान और वे स्वयं कितने सुखी होने । * बच्चे के मन पर माना पिता व परिवेश का गहरा प्रभाव पडता है । किन्तु प्रायः ' यह तो बच्चा है ' कह कर उसकी उपेक्षा की जाती है । इस उपेक्षा की प्रतिक्रिया बालक के मन में मयकर रूप में हो सकती है और उसके व्यक्तित्व में इससे गाढे पडता सम्भव है । इस सम्बन्ध में अनेय लिखते हैं "कभी तो विवश होकर पूछना पडता है कि य अखिर बच्चों को समझने क्या है ? जहा एक और वे कहते हैं कि बच्चे सब बदमाश और पाजी होते हैं वहा दूसरी ओर वे ऐसा भी बर्ताव करते हैं, मानो बच्चे मिट्टी के लौड़े से अधिक भुछ न हों । बच्चा के सामने ऐसी हरकतें करते हैं । जो यदि वे बच्चे को तनिक भी समझने तो कल्पना में लाते भी लज्जित होते । किसने

× अनेय ' नदी के द्वीप ' प्रोग्रेसिव पब्लिशस, दिल्ली १९५१ पृ० ३४

* अनेय ' शेर एक जीवनी ' भाग १, सरस्वती प्रेस बनारस चतुर्थ संस्करण १९५१, पृष्ठ १२४

नहीं सुना, अरे इसके सामने बहने में क्या हज़ है, यह तो बच्चा है। अरे उसे क्या पता वह तो बच्ची है। 'उत्तरदायित्व शून्य' बच्चे की निष्कपटता का उत्तरदायित्व कितना बड़ा है व मला क्या ममकें! वे कोमल अत्रिणमिक मस्तिष्क, अपनी कोमलता के कारण ही मयकर होते हैं। हम लोग कच्ची सड़क पर चलते हैं, तब पर बहुत गहरा घस जाता है। पक्की सड़क पर पानी बह जाता है कच्ची सड़क पर जहाँ जहाँ घसे हुए परो से गड्डे बने होते हैं, वहाँ कीच बनती है =

'पथ की खोज' में डा० देवराज ने दर्शाया है कि बच्चों का स्वयं अपना व्यक्तित्व होता है जो उपलक्षणीय नहीं है। इस उपवास में दो छोटी सी घटनाएँ बाल मन का महत्व दर्शाती हैं। एक समय चन्द्रमाधव की भतीजी बर्फ खाने के लिए आतुर है किन्तु उसे कोई पना नहीं देता कि तब तक बर्फ खाना ही चला जाता है। तब वह रा पड़ती है। इस रीने की लेखक पाठ्या करता है कि बालकों के दुःख व उसका कारण को कोई महत्व नहीं देता, वह रोकर ही लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकती है सरला को सिर्फ बर्फ ही खाने को नहीं मिला सो नहीं। बर्फ खाने को न पा सकने की घटना न उसकी सारी सतकता और उद्योग को मानो ग्रथ हीन सिद्ध कर दिया था। निष्ठुर ससार में जस सरला की आकांक्षा और प्रयत्न का कोई मर्या ही न था।' ❧ ऐसी ही दूसरी घटना, साधना का विवाह होने वाला है। उसका छोटा भाई प्रमोद चन्द्रमाधव का चाहने लगा है। वह चन्द्रमाधव से साधना के तिलक तक रकने का आग्रह करता है। किन्तु, तिलक तो बहाना है प्रमोद या भी चन्द्रमाधव रोकना को चाहता है और उसे अपने स्नेह की शक्ति में विश्वास नहीं है कि बिना बहने स्वयं ही उसे रकन के लिए कह दे। चन्द्रमाधव सोचता है 'क्या अवस्था कम होने से बालकों के सुख दुःख और भावनाया का महत्व भी कम हो जाता है।' + बालकों के व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास की भावना मनोवैज्ञानिक उपयासों में स्वाभाविक रूप से पायी जाती है।

मनोवैज्ञानिकों ने बालक के जन्म के साथ ही उसके मन पर पड़नेवाले प्रभावों का विश्लेषण किया है। स्पष्ट ही "शेखर एक जीवनी" में बाल मन का अध्ययन साध्य नहीं, साधन है। अतः शशव के प्राथमिक दो-तीन वर्षों में उसके व्यक्तित्व पर पड़नेवाले प्रभावा का जो सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व व्याख्या की अपेक्षा रखते हैं सकेत मात्र किया है। यह उचित भी है क्योंकि एक तो जन्म स्तन पान, आदि की अवस्थाओं का विश्लेषण, जसा कि मनोवैज्ञानिका ने किया

= वही, पृष्ठ १२६

❧ डा० देवराज 'पथ की खोज', बुद्धिवादी प्रकाशनग्रह, लखनऊ १९५१, पृष्ठ ५४

+ वही, पृष्ठ २६५

है, स्वयं घसपट्ट एव विवादरूप है। दूसरे, अभी यह त्रिजना वागानिक विश्लेषण का विषय है बालारम्भ प्राकलन का नहीं। फ्रायड ने जन्म के अनुभव की बालक के जीवन की प्रथम भयावह स्थिति का अनुभव बताया है जिसकी पुनरावृत्ति स्तनपान की उस अवस्था में होती है जब पहली बार उसकी भ्रूण प्रवृत्ति रह जाती है : (The situation of being unsatisfied in which the amount of excitation reaches a painful degree must be analogous for the suckling to its experience of birth and must therefore be repetition of that danger situation) ❧

अनेक ने लिया है 'शिशु शायद जिस समय एक माकार हीन मांस पिण्ड भर होता है, तभी से वह एक अमित द्वाप ग्रहण करने लगता है" ❧ शेखर अपने छोटे मांस पिण्ड की कल्पना करता है। उस समय भी उसकी शारीरिक प्रियाओं व मानसिक उलझना का उसके चित्तत्व निर्माण में क्या योग रहा कौन जाने ? शेखर को शशव के घटना चित्र चाहे स्मरण न हो किन्तु भाव स्थितियाँ उसकी कल्पना में साकार हो उठती हैं। फ्रायड के रूप में आकस्मिक प्रेरणा शेखर के मन में प्रतीत की, शशव काल की भाव स्थितियों को यदि जगा देती है तो स्वामाविक ही है। वस्तुतः मनोविज्ञान की दृष्टि से वास्तविक घटनाओं की अपेक्षा इन भाव स्थितियों का ही अधिक महत्व है। फ्रायड भी मानसिक रागियों का विश्लेषण करते हुए इसी नियम पर पहुँचा था कि शशव की जिन घटनाओं का वे मानसिक रोगी स्मरण करते हैं वास्तव में कभी घटित नहीं हुईं वरन् वे उनकी भाव स्थितियाँ रही। ❧

❧ Freud quoted in 'The Psycho analysis of children by Melanie Klein, The Institute of Psycho analysis, London Third edition 1949 pp 182

❧ अज्ञेय 'शेखर एक जीवनी' भाग १ सरस्वती प्रेस बनारस चतुर्थ संस्करण १९५१ पृष्ठ ४८

❧ Freud 'An Autobiographical study The Hogarth Press London 1948 P p 61

The neurotic symptoms were not related directly to actual events but to phantasies embodying wishes and that as far as the neurosis was concerned psychical reality was more important than material reality


‘शेखर एक जीवनी’ में मनोविज्ञान


शेखर मानव जीवन के मूल में तीन महती प्रेरणाएँ देखता है—ग्रहन्ता, भय और सखस। यह तीनों प्रेरणाएँ सहजात प्रवृत्तियाँ हैं। वे व्यक्ति-जीवन को ही प्रभावित नहीं करती बल्कि सामाजिक संगठन और संस्कृति के आकार भी उन्हीं पर आधारित हैं। सूत्र रूप में शेखर सामाजिक जीवन के नियम प्रस्तुत करता है ‘प्रेम ने मनुष्य को मनुष्य बनाया भय ने उसे समाज का रूप दिया, अहंकार ने उसे राष्ट्र में संगठित कर लिया।’ शशव की स्मृति के आधार पर तो शेखर ने इन प्रेरणाओं को पहचाना ही है किन्तु स्वयं उसके स्मृत जीवन में इन प्रवृत्तियों का अत्यधिक महत्व रहा है।

अहंता — शेखर का अहंभाव अत्यधिक शक्तिशाली है। उसमें विद्रोह की भावना इसी अहं भाव के कारण जागृत हुई। एतादृशत्व मान के प्रति विद्रोह माता के अविश्वास की भयंकर प्रतिश्रिया का परिमाण है। यहाँ तक कि शेखर विद्रोह की जिस अवस्था में है उसका कुछ भी श्रेय अपनी माता को नहीं देना चाहता। शेखर का बड़ा भाई भाग कर कलकत्ता चला जाता है। पिता को अज्ञ समाचार मिलता है तो उन्हें इस बात का बड़ा दुःख होता है कि उसने वलदियत गलत बतलायी। माता कहती है, ऐसे लड़के का कोई क्या विश्वास करे और शेखर की ओर सकेन कर धीमे स्वर में कहती है ‘सच पूछो मैं इसका भी विश्वास नहीं करती।’ शेखर की इनके विरुद्ध भयंकर प्रतिश्रिया होती है। वह रोगी छोड़ कर उठ गया। शाम तक पत्थर-सा बठा रहा। बहुत रात गये उसने डायरी में अपना उफान उतारा— ‘अच्छा होता कि मैं मुक्ता होता, चूड़ा हाता दुग वमय कीडा कृमि हाता—बनिस्वत इसके कि मैं बसा आदमी होना, जिसका विश्वास नहीं है’ और वह “भाई हेट हर कह कर खिडकी से कूट कर धूमने चला जाता है। लिख कर, जिस पर विश्वास किया जा सके एना व्यक्ति न बनने की प्रतिज्ञा करता है पर फिर उस कागज के टुकड़े को फेंक देता है और सारे ससार का विश्वास पा उसके मुँह पर ला पटक देने की साधता है। इस प्रकार वह प्रथम विद्रोही बन कर पर लौट जाता है। = और आज विद्रोही के रूप में फासी पर चढ़ने जातेवाला शेखर अपनी माँ को इनके गहरे प्रभाव के लिए कोई श्रेय देने की इच्छा नहीं करता। (क) एक और उदाहरण, शेखर का गांधीवाद के प्रति आकर्षण बढ गया है। पिता को यह आश्चर्य उचित नहीं लगता। एक दिन पूछते हैं— कोई तुम्हें एक गान पर धप्पड मारे तो क्या करोगे? उत्तर—दूसरा गाल


== अनेक शेखर एक जीवनी’ भाग १, सरस्वती प्रेस बनारस, चतुर्थ संस्करण
१९५१ पृष्ठ १८७


(क) यही पृष्ठ २७

घागे कर दूँगा। पिता जो कोई घाना है उसके सामने शायद मे वही प्रश्न फिर फिर पूछ कर उसका प्रश्न करते हैं। एक बार एक बैरिस्टर घाने हैं तो उन्हें देव कर ही भोगर को घृणा हो जाती है। शेरर उसके सामने घाना प्रश्न प्रपमान समझता है और अपत्यागत उत्तर देता है "मैं उसके दांता, गालो पर लगाऊँ।" कह कर शेरर हुताश प्रगाढ़ नरायण के साथ लोटता है। अपना नाटक जिस लिपन क वाँ किसी को सिखाया भी नहीं था निहाल कर माय को सिखा देना है। पत्थर बन कर बठ जाता है। बहिन की सहानुभूति उसे निराशा स लौटानी है। वह भीतर कुछ दूट गया अनुभव करता है यद्यपि उसका बहिन के सह न उसे बचाया भी ह। गाधीवाँ पर विश्वास, पिता के प्रति पूज्य भाव गमाप्त हा गया।  जीवन सिखा क यह गहर परिवर्तन प्रकृता भाव से ही सम्बन्धित हैं किंतु हम पाते हैं कि पिता के प्रति शेरर उतना कठोर नहीं है जितना माता के प्रति क्या इसका कारण यह नहीं है कि पिता पीट कर भी शेरर के पराजय भाव को मादर भाव से स्वीकार करते हैं जब कि माता उस पर अविश्वास ही करती रही है। माता के अविश्वास ने शेरर के यत्नित्व म मानसिक प्रयत्नी छोड दो है ' मुझे जान पडता है कि मेरे मन के दो टुकडे हो गये है। कभी कभी तो दो स भी अधिक जान पडते हैं किंतु दो तो अवश्य हो गये हैं। और जहा तक मैं स्वय सोच पाता ह इस न भरनेवाली दरार का कारण वह एक कल्पित चित्र ही है जो मेरे भा ने उस रसोइघर की दिवार भेद कर देखा था, उस समय जब कि मा कह रही थी— मैं तो इसका भी विश्वास नहीं करती।'

कभी कभी मुझे स्वय जात होता है कि मेरे मन क व दोना खण्ड घोर युद्ध कर रहे हैं, मेरी चचना पर रातत्व पाने के लिए लड रहे हैं और ऐसा भी हाना है कि कभी किसी का प्रभाव बढ जाता है कभी किसी का और इसके पत्र स्वरूप मेरे कार्यो म एक प्रतिकूलता एक असम्बद्धता आ जाती है"  स्पष्ट ही आधुनिक मनाविज्ञान की भाषा म खण्डित व्यक्तित्व (dual personality) की बात वही जा रही है।

भय — शेरर की भय की अनुभूति के साथ शशव का एक विशेष अनुपम जुडा है। अजायबघर मे बाघ को देव कर वह भयभीत हो भाग लडा होता है। भागत समय भी वह यही समझता है कि बाघ उसका पीछा कर रहा है। अत रास्त म एक चपरासी जब उसे पकडता है तो वह चीख पडता है। पर धीरे धीरे इधर उधर दखने पर बाघ के न मिलने से आश्रस्त होता है। किंतु रात म उसे भयकर स्वप्न घान लगते है—अघकार अमख्य बाघो म बदल जाता है। अत म बसा ही बाघ लाय जाने पर भाईयो की देखा देखी वह उमके पाम जाता है मुश्किल से पीठ पर बठना भी है, निर्बल पाकर

 वही, पृष्ठ १३०

 वही पृष्ठ ३१

मुह म हाथ भी डालता है । फिर चाकू से उसे चीर कर मीनर क घाम पूम का बिछेर कर हमता है । शेखर के जीवन का प्रयावलाका मगप के इस अनुभव की सोख प्रकट करता है ' शिशु न जाना डर डरन म होता है । सगार की सब भयानक वस्तुए हैं, बवल एव घास पूम म भरा निर्जीव चाम, जिमस डरना मूयता है ।' यही प्ररणा शखर की भावी जीवन म सगार क सबसे बडे डर घासन की चीर कर उसके भीतरी खोलपन को गिठाने क लिए प्रेरित करनी है और इमक लिए फासी का दण्ड पाकर भी वह एस दण्ड के प्रति बवल हसना है और फामी की कल्पना कर मुग्ध होता है । शापद यही अनुभव है जो मृत्यु के डर की भी शखर क लिए तुल्य बना देता है । वह सरता न जानते हुए भी भाईयों की देया देया पानी में कूट जाता है । गगा की धारा म बले के स्तम्भों पर लेट कर ब, जाता है, मृत्यु उसकी कल्पना में दान उखाडन की प्रिया के महान अधिव महत्व नहीं रगती । इन क्रियाप्रा व विचारों के मूल में क्वाचित् शेखर के भय क अनुभव की पहली प्रतिप्रिया की ही पुनरावति सजग होती है ।

सँवस — और सबस । गेखर की सम्पूर्ण जीवनी अनेक प्रगया की स्मृति ही तो है । जीवनी को आरम्भ करने से पहले ही शेखर की स्मृति म कुछ चित्र तीव्रता के साथ घूमते हैं और यह चित्र ही हम कह सकते हैं उसके जीवन म सबसे अधिक महत्व के हैं । शशि उसक जीवन की सबसे अधिक स्फूर्ति दनगानी प्रेरणा स्रोत है । शेखर का होना अनिवार्य रूप से शशि के होने को लेकर है । शेखर को याद आती है । कमी ऐमा भी था कि हम मन्त्र भाव न मिलते जुलते थ । स्नेह हम म था मोह हम में था लेकिन वह स्नेह नहीं जो कि विघनों के सहारे बन्ता है वह मोक्ष नहीं जो कि पीडा की नीव पर ही अपना घर खडा करता है । ' = यह अस्मिक नहीं है कि इस स्नेह की याद आन पर शीघ्र ही शखर को याद आता है अपने जेल स छूट कर शशि (जा अब विवाहिता है) के घर मिलन जाना । स्पष्ट ही यह शशि क परायी हो जाने की भावना की कटु स्मृति है । शेखर शशि के गीत को अपने विद्रोही अकित्व से अपील कर रूप में स्मरण करता है तो उसरी हसी को अपने मन क तूमे खण्ड म सौन्दर्य-बेलना जगाने क कारण रूप में । अपनी सगी बहिन सरस्वती का भी शखर के जीवन पर कम प्रभाव नहीं पडा । उसके प्रथम स्नेह की प्रति पति सरस्वती को देख कर हृद- मिनती अच्छी लगती हा तुम । ' जब कि अभी उसकी शब्दावली म मुदर और अनुसर प्रच्छेद व दुरे क लिए अलग शब्दावली भी नहीं थी । ' बहिन का भीत मुनत मुनते, एकाएक कोई अगात भाव बालक के मन म जागता है । वह एजाएव उदरन नहीं हृषा कई मिनो से घीरे घीरे उसक हृदय में अकुरित हो रहा है किन्तु इसकी यह यजनाय सम्पूर्णता नहीं

है, आज ही मालाए पहनाते समय, उसके मानमिक क्षितिज के ऊपर घाँ है। एक अत्यन्त शोमल स्पश में बहिन के कंगोल को छूँर बालक कहता है— 'कितनी प्रच्छी लगनी हो तुम।' + सरस्वती शेखर के मन में वन 'सरस' बन जाती है कि वह इस नाम का उच्चारण भी नहीं कर सकता और मन में छिपा रखता है 'वहीं काश्मीर में उन्ही वर्षों के जिना एक दिन सरस्वती उमा मन में एकाएक सरस्वती' से ग्रहिन और ग्रहिन में मरम' हो गई थी—यद्यपि इस प्रतिम अतरग नाम का उसने कभी उच्चारण नहीं किया, इसे मन में ही छिपा रखा। सरस्वती का मन ही है जो उस समय शेखर को टूटने से बचा लेता है जब कि बरिस्टर के सामने पिता द्वारा अपमानित किय जाने के बाद शेखर दुःख अनुभव करता है। कितनी जिनासाए है जो शांत तो नहीं होती पर घर में वह किसी से पूछने का भी साहस नहीं कर पाता। केवल एक सरस्वती कुछ सीमा तक उसकी जिनासाओं को शांत कर पाती है। मृत्यु के रहस्य का जानने के लिए मा से यह पूछने पर कि तुम कब मरोगी जो व्यवहार घर में उसे मिला उससे वह हताश ही हो गया तब सरस्वती में ही उसे पता चला—मृत्यु का डर कुछ नहीं, मरने से इसलिए डरते हैं क्योंकि जीना अच्छा लगता है। 'बच्चे कसा पटा होते हैं' सम्बन्धी शेखर की जिनासा भी सरस्वती द्वारा कुछ शांत होनी है जब वह यह बता कर मा के शरीर में से अटूट मौन ग्रहण कर लेती है। शारदा के प्रति शेखर का वय सधि का प्रेम तो सचमुच शेखर की आकुल ही बना देता है। वातना से खिच कर शेखर जब नौकरानी अत्ती की ओर बढ़ता है तो शारदा के बाल व नीम की सुगंध की याद ही उसे लौटा ले आती है और वह कमरे के बाहर निकल कर जोर से दरवाजा बंद कर चला जाता है। महाबलीपुर में मंदिर की देहरी से चांद को देगल समय वह शारदा की याद की प्रोम के भीठ स्पश से भीग उठता है। कालज जीवन में सत्पशिव के साथ वह छुट्टिया में कुछ दिन टावनकोर पढ़ने के लिए चला जाता है। वहाँ शारदा से मेट होती है पर शेखर जानता है शारदा के घरवाला द्वारा शेखर व शारदा के मिलन का शांत शिष्ट किंतु हठ विरोध किया जा रहा है। शेखर शारदा से स्पष्ट शो में प्रणय की याचना भी करता है किंतु शारदा कदाचित् उस याचना को सामाजिक अवरोधों के कारण नकारने के लिए बाध्य है। शेखर की व्यथा किननी घनीभूत हो उठी है जब वह सोचता है कि महाबलीपुर के समुद्र ने उसे अस्वीकार कर बाहर फेंक दिया था। (महाबलीपुर में तरना ठीक से न जानने हुए भी शेखर समुद्र में तरने लगा था और डूबने को था कि समुद्र की लहर ने उस बाहर फेंक दिया) शारदा भी उसे नहीं अपनानती तो अचम्भा क्या। शशि का विवाह होने पर जब वह जेल में शेखर को पत्र लिख कर आशीवाद मागता है 'तुम उस शशि की आशीर्वाद देना जो आज

तक तुम्हारी बहिन थी, किंतु कल वैसा नहीं रहेगी, और जो आज इस पद स प्रतिम बार तुम्हें प्रणाम करता है ' तब शेखर अनुभव करता है कि शक्ति के अलग होने के रूप में उसका एक अंग ही अलग हो गया है "नहीं है वह सहोदरा, वह सहजमा है एक खण्डित आत्मा दो क्षेत्रों में अकुरित हुई है—तमी ता तमी तो शेखर अपने को देखता है और नहीं समझ पाता कि क्या वह अलग हो गया है—यद्यपि एक गहरी टीस उसमें उठनी है और एक मूच्छता भी उसमें बचे हुए भाग पर छाई जा रही है "X शेखर के स्नेहाकषण के सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है कि उसमें सब्र एक अतिरिक्त-पवित्रता-शारीरिक तटस्थता, का भाव पाया जाता है । हमकी जड़ उसके बाल जीवन की उस "मही व वीभत्स" स्मृति में है जो उसे याद भी नहीं है पर उस दृश्य को देखकर उसके हृदय में घणा की भावना जमी है "जिस के ही समझ सकते हैं, जो कभी वासना से उत्पन्न हुए पाप कम के किनारे तक पहुँचकर लोट आये हैं—किमी बाह्य रुकावट के कारण नहीं, एक आंतरिक स्वतः उत्पन्न शक्ति के कारण ।" + यही कारण है What all Married People Should know शीघ्र पुस्तक को पढ़ कर जब पहली बार बच्चे कैसे ज मते हैं' का रहस्य जानता है तो "अकथ्य घणित अचिन्तनीय भ्रष्टाचार" के प्रति उसकी तीव्र प्रतिक्रिया होती है और यथाथ का ज्ञान पाकर वह सोचता है ' अच्छा है कि सारा ससार मर जाय । ✓ अज्ञायवधर में महावीर जिन की विशाल काय मग्न मूर्ति को देखना, तारा की मूर्ति की पीठिका पर रात भर बठे रहना एकाकी प्रकृति के आगम में अपनी दह को अनावृत करना माता के मासिक धम की अवस्था के प्रति जिनासा, माता पिता के प्रेम-यापार दशन आदि बाल जीवन की सबस अनुभूतियों का 'शेखर एक जीवनी' में चित्रण है । आधुनिक मनोविश्लेषणवेत्ता 'यत्तित्व की जड़' ऐसी ही बाल जीवन की परिस्थितियों में देखते हैं ।

‘शेखर एक जीवनी में वय सधि अवस्था का मनोविज्ञान

बालक की वय सधि काल की मानसिक प्रवृत्तियों का भी शेखर एक जीवनी" में चित्रण मिलता है । वय सधि की अवस्था में बालक के मानसिक जगत् में गहरी उथल-पुथल मची रहती है । इस अवस्था में बालक को सामाजिक व्यवस्था के प्रभाव से स्ववर्गीय रति अपने लिंग के छल के साधियों के साथ सम्बन्ध को छोड़ विजातीय रति विपरीत लिंग के साथी या साधिन का खोजने की आवश्यकता का अनुभव

× अनेक शेखर एक जीवनी भाग २ सरस्वती प्रेस बनारस पाचवा ४० पृष्ठ ८०

+ अनेक 'शेखर एक जीवनी' भाग १ सरस्वती प्रेम बनारस चतुर्थ संस्करण १९५१ पृष्ठ ५२

✓ वही पृष्ठ १९७

होता है। इसके साथ ही उसकी शारीरिक वनामद में भी परिवर्तन होने लगता है। एक बार बालक अपने सम्पूर्ण परिवार में प्रति विद्रोह का भाव लिए रहता है तथा स्वयं को ससार भर का ही समझ अपने विरुद्ध पढयन्त्र सा अनुभव करता है तथा दूसरी ओर बाताव स्वयं ही अपनी इच्छाओं को अच्छी तरह नहीं समझ पाता। इस समय जिस एक विपरीत लिंगी व्यक्ति को ओर उसकी रति मानना कठिन होती है उसे वह सम्पूर्ण मन में चाहने लगता है। प्रायः वह उन विवाह-स्वप्ना में खोया रहता है जिनमें अपने प्रिय पात्र को अपनी ओर आकर्षित पाता है। वय सधि की अवस्था में परिवार में नियन्त्रण का भी बालक के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस समय वह माता पिता के नियन्त्रण के विरुद्ध असन्तोष लिए रहता है किन्तु साथ ही से यह भय भी बना रहता है कि सचमुच ही माता पिता के स्नेह से वह अपना सम्पर्क ही न तोड़ ले। 'शेखर एक जीवनी' में वय सधि काल की प्रायः सभी उक्त मानसिक प्रवृत्तियों का चित्रण मिलता है।

घर में बहिन सरस्वती के प्रति ही स्नेह भाव होने के कारण शेखर प्रायः उसके साथ ही रहता है। सभी आश्रित व प्रिय की पूज्यभूत रूप उसके लिए सरस्वती ही बन जाती है जब कि मां सभी अवाञ्छित, अप्रिय की कठोर साकार रूप। सरस्वती के विवाह व उसके पति के घर चले जाने से शेखर कितना व्यथित रहता है। क्या भाव उसके मन में है इसका स्वयं उसे भी पता नहीं। वह जब तब रो पड़ता है पर क्यों कारण उसके स्वयं के समझ में नहीं आता। वह अपने सम्पूर्ण परिवेश को अपने विरुद्ध पढयन्त्र में लीन समझता है "उसकी यह भावना धीरे धीरे बढ़ने लगी कि ससार में अयाय ही अयाय है और यह अयाय विशेष उस पर किया जाने के लिए है। मानो ससार का पहिया उसी को घुरी मान कर उसके आसपास घूम रहा है जो कुछ है केवल इसलिए है कि शेखर है और साथ ही साथ उसकी असहिष्णुता बढ़ने लगी वह चलने लगी उस अयाय के विरुद्ध

+ उसे अपने वय सधि काल के शारीरिक परिवर्तनों का भी अनुभव होता है 'उस लगता, उसके शरीर में कोई परिवर्तन हो रहा है। उसे लगता वह बीमार है उसे लगता उसमें बहुत शक्ति और स्फूर्ति आ गई है, उसे लगता, उस जीवन में एक नई शक्ति मिलने वाला है और वह अपने ही मद से उमद बस्तूरी मृग की तरह या प्लेग से आक्रांत चूहे की तरह, या अपनी दुम का पीछा करते हुए कुत्ते की तरह, अपने ही आसपास चक्कर काट कर रह जाता × शेखर मा के साथ शारदा की मा के महा जाता है तब पहली बार उसे शारदा की उपस्थिति में आने हाय, पर व कपडों का महावन अनुभव

+ वही पृष्ठ १५३

× वही पृष्ठ १५४

होना है। शारदा को शेखर ने हृदय से प्रेम किया है “वय सधि का व्यक्ति मात्र के प्रति घुणा और विद्रोह के वान का प्रेम !” — शारदा के अनुपगो ने उसे कितने दिवा स्वप्ना म विमोर नहीं कर लिया है — दिवा स्वप्न जो कवि की कल्पनाओं से कम नहीं हैं, कथाकार ने कहा भी है ‘ वय सधि काल मे कौन नहीं कवि होता।’ × शारदा की उपस्थिति में ही उमे वय सधि में वह उत्कट अनुभूति हुई है जिसे वह नहीं जानता क्या कहे, और एक छोटा सिर उस सिर के बालों की गय ने उसे अपनी के स्पश से दूर कर दिया है, सावित्री, शांति और यों तक कि शशि के बारे म कभी सोचकर उस अनुताप हुआ है कि क्यों उमने अपने जीवन का एक क्षण भी शारदा के अतिरिक्त किसी को दिया, अनुताप जिसको ससि वह लेता रहा उस क्षण तब कि जब स्वयं शारदा ने ही मट्वावलीपुर व समुद्र की तरह उन्ध्राट ममझ कर उसे अपने स बाहर नहीं फेंक दिया, कि जिसे अपनी पराजय मान शेखर भागा है पराजय से दूर।

परिवार का व्यक्तित्व पर प्रभाव

पिता— व्यक्तित्व के निर्माण म परिवार के प्रभाव का मनोविश्लेषणवेत्ता बहुत मट्त्व मानत है। शेखर के व्यक्तित्व में भी उसके परिवार के लोग का व परिवश का महती योग रहा है। शेखर के व्यक्तित्व का आकषण—जीवन के प्रति आदर भाव विद्रोह भावना, और बौद्धिकता व सौंदर्य प्रेम की प्रवृत्तिया हैं जिन्ह उमने परिवार के प्राणियों से अपने व्यक्तित्व मे छाप रूप पाया है। शेखर के पिता म दूसरों की पराजय को भी उन्तरता से भेजने की सामर्थ्य थी। कितनी बार शेखर घर के बानाघरण स खिन होकर चला गया है पर पराजित होकर लौटा है। और उसके पिता ने उस एक शब्द भी नहीं कहा है। पिता ने उसे पीटा भी है तो शांत होने पर फिर उसमे सुलह करली है। जिस आदर भाव से पिता दूमरो की पराजय भी भेज लेते उसी आदर भाव से शेखर अपनी जीवनी की स्मृतिया लिपिबद्ध करता है। मानव की कमजोरियों के प्रति उसमे जब तब महानुभूति का भाव ही जागृत हुआ है। यही नहीं जीवन के प्रति उसम गहरा सम्मान है तभी तो फासी की कल्पना में वह प्रारम्भ ही में जीवन की घोर हृदयहोन उपेक्षा का प्रदर्शन देखता है मद्यपि स्वयं उमम मृत्यु का लेश भी डर नहीं रहा है।

माता—शेखर की विद्रोह भावना वचनप मे माता द्वारा उसके प्रति प्रदर्शित अविश्वास की प्रतिक्रिया का परिणाम है मद्यपि इसके लिए वह अपनी माता को कोई श्रेय नहीं देना चाहता और मानता है कि विद्रोही बनते नहीं, पैदा होते हैं। कि तु क्या कुछ म नों में यह हेत्वामान और शेखर के बड़े हुए अह भाव

+ वही, पृष्ठ १६६

× वही, पृष्ठ १७०

का प्रभाव नहीं ? चाहे अगर जहाँ यह है (पांसी की गजा पाये हुए विद्याही क रूप में) उस बड़े परिणाम का सम्पूर्ण ध्य घाती माता को न ले किन्तु उसके प्रभाव को अस्वीकार करन का कोई रास्ता भी है प्रकृति का साहन्य एव घाती बहिन सरस्वती के स्तर में उनकी शीघ्र-वृत्ति का जाग्रत किया है । घर में सनकीन वातावरण न जिसमें ईश्वर शिशु का जन्म घाति से सम्बन्धित उसकी जिगासाए शान नहीं हुई, उस घोर बुद्धिवादी बना लिया है— यदि किसी का कोई है, तो उसकी अपनी बुद्धि मनुष्य को उसी का सहारे चलना है, उसी का सहारे जीना है । एम स्थान अवश्य है जहाँ बुद्धि जवाब दे जाती है लेकिन इसमें यह ईमानदारी है जो बात नहीं जानती, वही पर चुप रहती है गलत उत्तर नहीं देती ।”+ शेखर ने पशु पक्षियों जगल घाति से स्वतन्त्रता की भावना का आन्तर सीला है । नीच समझी जानेवाली जाति की बच्चा फूला की माता को अपने लडकी को घातम विश्वास की सीख तन गहर में बाढ़ आने पर नाव में पिता के साथ गरीबी की बस्ती की ओर जाकर गरीबी के कारण न खेल सानवाने शिशुओं को दाने खाना न मिल सकने का कारण घोड़े के गिर कर मर जाने आदि शशव कालीन स्मृतियों में उसकी सामाजिक दृष्टि के अंकुर भी जग हैं ।

व्यक्तित्व की असाधारणता

माता, पिता तथा बहिन के सम्बन्धों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी “शेखर एक जीवनी’ का विवेच्य विषय रहा है । बालक पर माता और पिता का प्रभाव के सम्बन्ध में फ्रायड ने एक स्थान पर लिखा है कि ‘काम जीवन के विकास में आडीपस ग्रन्थि की अवस्था की समाप्ति पर माना को काम-लक्ष्य के रूप में छोड़ना आवश्यक जाना है । उसका स्थान दो विकल्पों में से एक लेता है—या तो माता से अपनी अनुरूपता स्वीकार करले अथवा पिता से गहन अनुरूपता अपनाय । दूसरे विकल्प को ही हम प्रायः ग्रन्थिक उचिन मानते हैं, इससे एक सीमा तक मान्य का प्रति स्नेह भाव बना रहता है । इस प्रकार आडीपस ग्रन्थि का विलय लडके का चरित्र में पुरुष के योग्य गुणों को संचालित करना है । प्रायः इसी के अनुरूप छोटी लडकी में आडीपस दृष्टि अपनी माता से गहरी अनुरूपता प्राप्त करने (अथवा यह अनुरूपता प्रथम बार ही प्राप्त की गयी हो) में रत हाती है—जिसका परिणाम लडकी के चरित्र को स्त्रीजनोचित रूप देने में प्रकट होता है ।”× अतः साधारण व

+ अनेक शेखर एक जीवनी प्रथम भाग सप्तम संस्करण सरस्वती प्रेस, बनारस पृष्ठ ६३

× Freud ‘The Ego and the Id The Hogarth Press and The Institute of Psycho analysis Fifth impression, 1949 Page 41
Along with the dissolution of the Oedipus complex

माय पुरुष पिता के चरित्र के अनुकूल गुण ग्रहण करता है। पर शैश्वर पिता की ओर आकर्षित होकर साधारण नहीं है। फ्रायड की मायता के विपरीत शैश्वर पिता प्रभाव को ग्रहण कर असाधारण बना है। शैश्वर क मनोविज्ञान के ज्ञान का बशराम भी इच्छा लिए है। प्राय लोग सन्तान पर मा के प्रभाव की बात बहा करते हैं। बहूतो का विश्वास है कि सभी असाधारण व्यक्तियां पर उनकी मा का प्रभाव रहा होता है। लेकिन जहां तक मैं समझ पाया हूँ, पुत्रों पर मा का प्रभाव नृत्रियों पर पिता के प्रभाव की तरह नकारात्मक होता है। वह स्थिरता नेता है, उत्थान में भी उतना ही बाधक होता है, जितना कि पतन में। यो कहना चाहिए, मा का अर आकर्षित पुत्र और पिता की ओर आकर्षित बच्चा साधारणता की ओर, सामान्यता की ओर जाते हैं और पिता की ओर आकर्षित पुत्र, माता की ओर आकर्षित बच्चा असाधारण होते हैं।^१ × शैश्वर अपन पिता का उपासक है और साधारण नहीं है। शायद मनोविज्ञानवेत्ता फ्रायड ही की स्थापना सही हो किंतु, शैश्वर रचनाकार की सृष्टि है, पूणतया वास्तविक जगत् का जीता जागता व्यक्ति नहीं, अतः उसके सम्बंध में वही सत्य मानना होगा जो उसका रचनाकार उसके सम्बंध में कहता है।

बहिन

हिन्दी के कुछ मनोवैज्ञानिक उपासकों में बहिन के प्रति भाव के उस सीमा तक आकर्षण का चित्रण मिलता है जिसे रति प्रेम की सजा से अभिहित किया

the Object cathexis of the mother must be given up. Its place may be filled by one of two things—identification with the mother or an intensified identification with the father. We are accustomed to regard the latter outcome as the normal. It permits the affectionate relation to the mother to be in a measure retained. In this way the passing of the oedipus complex would consolidate the masculinity in the boy's character. In a precisely analogous way the outcome of the oedipus attitude in the little girl may be an intensification of the identification with her mother a result which will stamp the child's character in the feminine mould.

× अनेक शैश्वर एक जीवनी प्रथम भाग सरस्वती प्रेस बनारस सप्तम संस्करण
पृष्ठ १२३

जा सकता है, चाहे उनमें गिष्ट नारीरिक्त दूरी मन्त्र बनी रही हो। इनाब जोगी
 का "पूरणामयी" उपासना में तो रञ्जना अपनी सान को उगम प्रेमी डा० कह्या-
 लास से मिलत दग कर ईर्ष्या से भर कर स्वयं भ्राम हत्या कर लेता है। जिस परिवार
 में पूरणामयी रहती है उसमें प्रविद्याहित भयस्या में उसका प्रेमी से मिलना अनुचित
 नहीं है जबकि विशेष रूप से वह उसी से विवाह करने का भी निरचय कर चुकी
 हो, किन्तु रञ्जना का उसकी ओर भावपण ही उसकी ईर्ष्या का कारण बनता है
 और आत्महत्या का भी। डा० देवराज के 'पय की खोज' उपनाम में साधना
 यद्यपि चंद्रनाथ की पत्नी सुशीला की सखी है, किन्तु साधना व चंद्रनाथ का सम्बन्ध
 इतना गहरा हो गया है कि भाई और बहिन के सम्बन्धन के साथ ही साधना अपने
 हृदय की गूँथतम बातें पत्र द्वारा चंद्रनाथ को लिखती है जबकि चंद्रनाथ ने साधना
 की सखी अपने निकटतम पाया है 'मेरे जीवन की यह बड़ी साध रही है कि कहीं
 मेरा ऐसा सम्बन्ध न हो जहाँ किसी प्रकार का अलग-थलग किसी तरह का दुराव न
 रहे। जहाँ मैं अपने को सम्पूर्णता में खो सकूँ जहाँ मुझे आनन्द का भय न
 हो। जहाँ केवल एक ही वस्तु मिले अकृत्रिम प्रेम निमल सौहाद। + वह साध
 साधना है जिसे उसके विवाह की घटना में चंद्रनाथ दूर बहुत दूर अनुभव
 करने लगता है। शहर 'एक जीवनी' में शशि शेखर के जीवन के निकट ही नहीं
 प्रायी एक तरह से अपने उमे बनाया भी है। यह शशि शेखर की सगी बहन नहीं
 है सगी नहीं है इसलिए शेखर उस अपने और भी निकट अनुभव करता है। अपनी
 सगी बहन सरस्वती के अपने व्यक्तित्व पर प्रभाव को शेखर ने एक गहन मनस्त्व
 द्रष्टा के रूप में व्यक्त किया है। वय सधि काल में वाञ्छित व प्रिय का पूजोभूत
 रूप सरस्वती बन जाती है जब कि मा अवाञ्छित व अप्रिय का। शेखर बहिन में
 अपना प्रक्षेपण (projection) करता है। वह इस सत्य का आनाम पाता है
 'आदमी बनते हैं तो वे अपने को प्यार करने वाली अपने से छोटी किसी स्त्री के
 लिए बनते हैं जो उनमें आस्था रखती है, और जिस आस्था के योग्य होने की
 चेष्टा में वे जान लडा दत हैं माताएँ हैं अपना स्थान रखती हैं, लेकिन बनाती
 हैं बहिनों या बहिनो के बराबर और क्योए जो बहिनो के बराबर, बहिनो से बढ कर
 होती हैं मा ज में देती है, परवरिश देती हैं पिता बुद्धि देने हैं लेकिन व्यक्तित्व
 अपने ही की सदन की सामर्थ्य वह वहा में नहीं मिलती।' < मलन क्लिन
 (Malanie Klein) ने अपनी पुस्तक 'द साइकोएनलेसिस ऑफ चिल्ड्रन'
 (The Psycho analysis of Children) में बताया है कि बालक के विकास में

+ डा० देवराज 'पय की खोज' बुद्धिवादी प्रकाशन गृह लखनऊ १९५१,

× प्रजेय शेखर 'एक जीवनी' प्रथम भाग, सरस्वती प्रेस बनारस। सप्तम सं १४४

माता या पिता के प्रतिरिक्त किसी एक अथवा ऐन व्यक्ति का गहरा होय रहता है जिसके प्रति वह अपने जीवन में स्तह व सद्गानुभूति की भाकाया रख सके । यदि आनीपस अवस्था में किसी प्रकार बालक के लिए उसके काम लक्ष्य (माता पिता) उमकी दृष्टि में अच्छे नहीं हैं तो अथवा व्यक्ति उसके काम-लक्ष्य का रूप ले लेते हैं । इस प्रकार आडीपस काम लक्ष्य का भय (अन उमके प्रति घृणा) आगे आकर उ- प्रेम लक्ष्य के निकट ले आता है । X सम्भवत बहिन के प्रति माई के प्रेमाकर्षण का जा रति की सेवा को छूना-भा प्रतीत हो, यही कारण है जिसका हि-गी के मनावनानिक उपयोग में प्राय चित्रण किया जाता है । "शेखर एक जीवनी" में तो स्पष्ट ही आडीपस अवस्था के काम-लक्ष्य माता के प्रति शेखर के मन में विराध व घृणा का भाव है । बचपन में माँ के बले बहिन सरस्वती ही उसके लिए नया काम लक्ष्य बन कर आती है । वय सधि में उमका प्रेम स्वभाविक रूप में शारदा की ओर उ मुख होता है पर परिस्थितिया के कारण सफल नहीं होता । शशि जो उमरी सगी बहिन नहीं पर बहिन है और सगी न होने के कारण ही अथिक निकट है क प्रति जा आकर्षण भाव शेखर में पाया जाता है उसमें कितना अश उमके वय सधि के प्रेम की पराजय का है और कितना आनीपस अवस्था में मा के बदले बहिन के प्रति उ-मुन काम-लक्ष्य का इसका विवेचन बाद मनावनानवेता ही कर सकना है ।

मानसिक कुठाग्रो का चित्रण

सामाजिक वधनो के विरुद्ध प्रकृत जीवन की मांग

फायड के अनुमार मानव सम्यता की मूल समस्या व्यक्ति और समाज के अपरिहाय विरोध की समस्या है । समाज अपने वर्तमान रूप में व्यक्ति के प्रकृत जीवन में अवरोधो को खडा कर उस मानसिक कुष्ठाग्रो से ग्रसित बना देता है । यह कुष्ठाए प्रतीकात्मक स्वप्न साकनिक चेष्टाया शारीरिक व मानसिक रोगा कलात्मक सजन मानसिक ग्रथिया विवेन आदि के रूप में यक्त होती हैं । सामान्यत ऊपर से सम्यता का चोना पहिन भीतर से मनुष्य की प्रकृत प्रवृत्तिया

X Melanie Klein "The Psycho analysis of Children The Hogarth press and the Institute of Psycho anlysis Third Edition 1949 Page 303

But if, because its anxiety is too great or for realistic reasons, its oedipus objects have not become good imagos, other persons such as a kindly nurse brother or sister, a grand parent or an aunt, or uncle can in ceritan circumstances take over the role of the 'good' mother or the 'good father

दुष्कारती रहती है। यदि मनुष्य किसी तरह प्रवृत्त जीवन बिता सके तो उसका जीवन सजनात्मक भ्रान्त लिए विकासमान होगा किन्तु भ्रवरोधा के मडे हो जाने पर मनुष्य जितना ही ऊपर स सम्पत्तिनामी पडेगा भीतर म उतना ही बबर हागा।

वर्तमान सम्पत्ता के विरोध म प्रवृत्त जीवन की बाध्नीयता धन्य के 'नयी के द्वीप' म रेखा के विचारो म व्यक्त हुई है

'मसल म मेरे दो पहलू हैं—एक चरित्रवान, प्रवृत्त मुक्त एक सम्पत्त और चरित्रहीन—' × सम्पत्ता व्यक्ति के ऊपर के गुणर रूप को प्रशंसित करती है—किन्तु भीतर वह व्यक्ति चरित्रहीन बन जाता है।

इलाचन्द जोशी के "मुक्तिपथ" उपन्यास म सामाजिक बघनो व प्रवृत्त जीवन की माग का सघप कथा का उपजीव्य बना है। उमाशकर सक्सेना सरकारी उच्च अधिकारी हैं जिनके यहा उनके दूर के रिश्ते की युवती विधवा बहिन सुनदा रहती है जो घर के काम काज म अत्यधिक तत्पर है। उमाशकर का अपने गाव के एक युवक राजीव से परिचय होता है जो देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन के भवसर पर प्रातिवारी का जीवन व जेल जीवन बिता चुका था। उमाशकर के आग्रह से और जेल से छूटने के बाद अपनी आर्थिक स्थिति की कमजोरी के कारण राजीव भी उमाशकर के यहा रहने लगता है। राजीव सुनदा को भूठी सामाजिकता, अध-परम्परा से प्रचलित मिथ्याचारपूर्ण लौकिकता और भूठे शिष्टाचार द्वारा फलाये गये जाल को तोडने की प्रेरणा देता है। सुनदा म वह एक तेजस्विता के दशन करता है जिसे घर गिरस्ती की चार दीवारी बाध कर नहीं रल सकती और या तो वह चहार दीवारी उसके तेज से जल कर ढह जायेगी या सुनदा को एक दिन स्वय अपने ही तेज मे अपनी ही आहुति देनी होगी। राजीव की प्रेरणा से सुनदा मध्यम वग की सीमित और सकीण पारिवारिकता को विस्तृत और बहुद् कौटुम्बिकता मे बदलने को तत्पर हो जाती है और उन दोनो के प्रयत्न स 'मुक्ति निवेश' की स्थापना होती है जिसका उद्देश्य श्रम का महत्व समान वितरण व समान अधिकार की स्थापना करना है। अपने उद्देश्य म उह महान् सफलता मिलती ह किन्तु, राज व का कठोर समय का जीवन सुनदा के असतोप का कारण बन जाता है और वह अपने पकितत्व म भारी कभी का अनुभव करती है। वह अप्रावृत्त कठोर समय क जीवन को व्यक्तित्व की परिपूर्णता का बाधक मानती है और इसी कारण नारी की मुक्ति कवन श्रम क आधार पर चलने वाले 'मुक्ति निवेश' म पाकर वह नारी की मुक्ति के नय माग की ओर बन्ती है। सुनदा कठोर समय के जीवन

की भवद्देशना कर प्रकृत जीवन की उपयोगिता दर्शाती है। + बाहर के पार्थिव जीवन के साथ साथ भीतर के भाव-जीवन का विकास "भुक्तिपथ" का संदेश है।

आडीपस व एलेक्ट्रा ग्रन्थि

समाज एवं यश के अपरिहाय विरोध का प्रमुख कारण काम वासना का दमन है। काम दमन जनित असाधारण काय कलापो के अतिरिक्त काम जीवन के प्रति दृष्टिकोण भी अनेक मानसिक प्रथियों को जन्म देता है जिसमें प्रतिस्पर्धा अथवा प्रतिहिंसा का भाव प्रमुख रहता है। इलाच द जोशी के उप-यासों में इन मानसिक प्रथियों का वर्णन व विस्तृत विवचन किया गया है। यहाँ पर दा एक उदाहरण पर्याप्त होगा। 'प्रेत और छाया' जोशी जी का प्रसिद्ध उप-यास है जिसमें पारसनाथ का पिता यह जानते हुए भी कि उसकी पत्नी सती साध्वी है अकारण उसके चरित्र पर सदेह करने लगता है एवं अपने पुत्र से कह देता है कि वह अपनी माता की जारज सतान है। इससे पारसनाथ के चरित्र में एक मानसिक प्रथि बन जाती है और जिस प्रेमिका के सम्पर्क में वह आता है उस गमवती या सतानवती बना कर या प्रेम में विश्वासघात कर वह सदैव माग निकलता है और अंत में सयोगवश जब उसका पिता ही उसके जारज होने के मन में काटे की अपने चरित्र की कमजोरी बता कर दूर करता है तभी हीरा से जिसके गहनों को लेकर

+ इलाच द जोशी 'भुक्तिपथ' हिंदी भवन इलाहाबाद सं० २००६ प० ४२७

'मरी उपयोगिता आपके आगे केवल इसी रूप में आई कि आप मरी ग्राह्यस्थिक काय क्षमता से परिचित थे और उस क्षमता को एक बहद परिवार की व्यवस्था के लिए उपयोजित करना चाहते थे आपने यह नहीं सोचा कि किसी भी कुटुम्ब की व्यवस्था का मुचास संचालन केवल जड व धनो को मीन भाव से स्वीकार कर लेनवाले यत्न परिचालित पुतला और पुतलिया द्वारा नहीं होता। उन पुतलो के भीतर प्राण स्पन्दन कर सकनेवाले स्नेह प्रेम, कष्टा और ममता का अंत स्रोत निरंतर बहाते रहने वाले किसी महाप्राण प्रेरक की आवश्यकता मूल रूप में होती है। मैंने उसी सूत्र में आपको पाने की आशा इतन दिना तक बाध रखी थी। मैं मनुष्य हूँ, राजीव बाबू कोई यत्नचालित पुतली नहीं। मैंने सारे पिछले वषण का तोड कर जो आपका साथ दिया था, वह केवल इस मूलगत आशा से कि मेरे अंतर्जीवन की अन्त प्रसारित जलती हुई महभूमि को भी आप अंत प्राणों के अतिरिक्त स्नेह रस से सींच सींच कर, बाहर की बजर भूमि की तरह ही, उदर और हरा मरा बना पायगें। पर आपका तो केवल मरे बाहरी जड श्म की आवश्यकता थी, भीतर के स्नेह रस सिंचित आश्रय की नहीं।

वह भागने को था वह विधिवत् विवाह करता है व भावी अपराधो को करने से बचता है। 'प्रेत और छाया' की मनोवैज्ञानिकता इसी से स्पष्ट है कि पारसनाथ का पिता किसी घटनावश अपनी पत्नी के चरित्र को कलकित नहीं बताता वरन् सम्पन्न जीवन की एकरसता (Monotony) ही अपनी पत्नी के चरित्र में कलक आरोपित करने को उसे प्रेरित करती है जिससे कि वह स्वयं सदाचारहीन जीवन व्यतीत कर सके। मैं मली भाति जानना था कि तुम्हारी मा के रक्त की एक एक बूंद में सतीत्व की भावना कूट कूट कर मरी हुई थी। शायद इसी की प्रतिक्रिया के फल से मेरे विरत मन को यह विश्वास करने की इच्छा हुई कि वह घोर असती है। + पारसनाथ के पिता के इस सशय में बहु विलास की कामना का मनोवैज्ञानिक तथ्य तथा पिता और पुत्र के द्वेष भाव में आड़ीपस ग्रंथि का ही रूप मिलता है। इसी प्रकार मजरी के चरित्र में एलेक्टा ग्रंथि का रूप प्राप्त है, मजरी व उसकी मा परस्पर ममता के बधन में आलिप्त है पर मा की मृत्यु के पश्चात् मजरी जिन शक्तियों में मातृ प्रेम का शोषक रूप पारसनाथ के सामने व्यक्त करती है उससे मा और बेटी की अतश्चेतना में द्वेष भाव प्रगट होता है। मजरी अपने कानों में यह पुनःपुनः सुनकर आश्वस्त होती है 'स्नेह के जिस कठोर बधन में वह तुम्हें बांधे हुई थी वह तुम्हारे जीवन की गति को चारों ओर रोके हुए था और भीतर ही भीतर तुम्हारे अनजान में तुम्हारी अन्तर्त्तमा का रस सोख-सोख कर तुम्हें निष्प्राण सूखे आँसू में परिणत करने पर तुला हुआ था। पर अच्छा ही हुआ कि उसकी मृत्यु ऐसे समय में ही गई जब तुम्हारे भीतर घोड़ी सी हरियाली शेष थी।' × इसी प्रकार जोशी जी के 'निर्वासित' उपन्यास में नीलिमा के चरित्र में एनेक्ट्रा ग्रंथि बद्ध रूप है। अपनी मा के शोषक प्रेम के कारण वह महीप से प्रेम करते हुए भी अपनी मा की आत्मानुसार ठाकुर लक्ष्मणमिह से विवाह करने ही तयार नहीं हाती वरन् अपने अतमन से भी वह महीप के प्रेम को भुलाने में समर्थ होती है।

प्रेम में घात-प्रतिघात

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में एक प्रबल प्रेम के क्षेत्र में स्त्री पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता को चित्रित करना है। प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता जो डी एच लॉरेंस (D.H. Lawrence) के अग्रंजी उपन्यासों का प्रमुख विषय है इलायद जोशी के कथित उपन्यासों में चित्रित का गयी है स्त्री पुरुष के प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता का मनोवैज्ञानिक कारण यही है कि स्त्री और पुरुष एक दूसरे की ओर प्राकृतिक नियम से आकर्षित रहते हैं किन्तु सभी कारण उनमें हीनता की भावना भी रहती है कि विपरीत दिग्गी दूसरे के बिना, एक का जीवन अमार्ग हो जाता है। अतः वे एक दूसरे का मान

+ इनाचन्द जागी प्रेम और छाया द्वितीय सर्ग २००४ सर्ग पृ ३८५

× इनाचन्द जोशी वही पृष्ठ १६५

खण्डन करने की लातसा रखने हैं। जब प्रेमी प्रेमिका को वेहद प्यार करता है तब वह उसे वेहद घृणा भी करता है। इलाचंद जोशी के 'सयासी' उपन्यास में नन्दकिशोर भारम्भ म ही जयती की ओर आकृष्ट होता है। किन्तु, इसके उपरान्त वह शांति के साथ स्वच्छन्द प्रणय जीवन व्यतीत करता है। शांति से नन्दकिशोर का सम्भव नन्दकिशोर के घरवालों व माई को नहीं रुचता और शांति चनी जाती है। इसके उपरान्त जयती से नन्दकिशोर का विवाह प्रस्ताव रखा जाता है जिसका नन्दकिशोर प्रकट रूप में तो विरोध करता है किन्तु उसका व्यवहार से स्पष्ट है कि वह विवाह के लिए तत्पर क्यों हुआ। इसका कारण स्वयं नन्दकिशोर बताता है। जयती से मैं विवाह इसलिए नहीं करने जा रहा था कि मैं अपने एकांगी जीवन की अपूर्णता को पूर्ण करूँ बल्कि इसलिए कि मुझे इस तजस्वनी नारी के स्वभाव में एक शांत और सयन तथापि दुदमनीय गव का जा भाव दिखाई दिया था उसे प्रकरण ही चूर चूर करने की प्रतिहिंसापूर्ण भावना मेरे मन में समा गई थी।" × जोशीजी के 'पदों की रानी' उपन्यास में प्रेम की प्रतिद्विद्धिता का चित्रण 'पापक रूप में हुआ है। मनमाहनजी निरजना को अपनी वासना पूर्ति का साधन बनाना चाहते हैं कि तु इसमें असफलता दिखाई देने से वह निरजना के हृदय पर यह बतला कर कि वह शेरया की लडकी है गहरी चोट पहुँचाते हैं। निरजना इसका बदला लेने अपने प्रति मनमोहन के पुत्र इन्द्रमोहन के प्रेम को उक्साती है। इस प्रकार के घात प्रतिघातों में सम्पूर्ण उपपास की क्या बधी है। मनमोहन शीला से इसलिए विवाह करता है कि निरजना की दृष्टि में वह सच्चरित्र दिखाई देने लगे और एक बार निरजना के यह कह देने पर कि इन्द्रमोहन को वह तब तक प्राप्त नहीं हो सकती जब तक शीला जीवित है इन्द्रमोहन शीला को घन २ मारने वाला विष दे देता है। शीला को विष देने की बात इन्द्रमोहन निरजना से गाड़ी में उसका कोमापि छिपित कर देने के पत्रचात्र बताता है और स्वयं गाड़ी के नीचे आकर प्राण दे देता है। प्रेम की प्रतिद्विद्धिता का मनोवैज्ञानिक कारण हम ऊपर प्रकृति की माग के कारण उत्पन्न हीनता की भावना बता चुके हैं कि तु बहुत अशील म सामाजिक व्यवस्था में काम तबर्धों की असफलता इसका कारण है। 'यत्ति स्त्री व व्यक्ति पुरुष की एक दूसरे के प्रति लालसा या घृणा विशिष्ट दृष्टिकोण बना देती है और उनके व्यवहारों में उसी दृष्टिकोण के अनुकूल प्रतिक्रिया पायी जाती है। यौन वजनाघ्रा से परिपूर्ण समाज में प्रतिद्विद्धिता का भाव विद्यमान होना स्वाभाविक है। डी एच लारेंस न समाज व्यवस्था में पाये जाने वाले काम

संक्षोभा भाषा का महाराई से विवेका किया है, जार्ज बर्नो-शा ने उन नाम विद्वत्तियों पर निर्मम व्यंग्य प्रहार किया है जो सामाजिक जीवन की विरोधिनी हैं एवं प्रकृत जीवन को गणुविन ठहराया है। इलाच-द जोशी का विवेचन सारंगत की तरह महारा व शा की तरह निमम नहीं है किन्तु विद्वत्तियाँ स मुक्त स्वस्थ प्राकृतिक जीवन का उद्देश्य उनमें स्पष्ट है। 'पत्नी की रानी' के अन्तिम पृष्ठों में निरजना का जो मनोविश्लेषण गुरुजी द्वारा किया गया है उसमें यह भाव की हाशिरारकता व प्रेम के स्वभाविक स्वरूप का महत्त्व दर्शाया गया है। डा० शैलकुमारी ने अपने शोध प्रबंध 'प्राधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना में 'यौन सम्पत्त तथा स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक विकल्प की आवश्यकता तथा' को प्राधुनिक प्रेम-व्यवस्था की विचारधारा का केन्द्र माना है। उनका अनुसार 'अन्य को छोड़कर अपनी अधिकांश कवियों की इस प्रकार की भावना में परिवर्तन की कमी है। वे सतुलन को खोकर घृणात्मक दृष्टिकोण का ही निर्माण कर रहे हैं।'

हीन भावना की ग्रन्थि

काम विद्वत्तियों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में हीन भावना की ग्रन्थि का भी व्यापक रूप में विवेचन मिलता है। इलाच-द जोशी के 'मुक्तिपथ' उपन्यास का विजय पात्र ध्वजपन में अर्थात् से पीड़ित रहता है तथा उसकी हीन भावना की ग्रन्थि घन सचय की ओर प्रवृत्त हो जाती है। उसका आत्म विश्लेषण स्पष्ट है 'मैंने कौसी गरीबी में अपना प्रारम्भिक जीवन बिताया। अपनी हीनता की भावना से मैं सब समय दबा रहता था। इतना मैं समझ गया था कि वह छुटकारा मुझे तभी मिल सकता है जब मैं एक अच्छी पूजा जोड़ पाऊँ। जीवन की काल्पनिक सुविधाएँ जुटाने में मैं प्रत्यक्ष सुविधाओं से हाथ धो बठा। 'अज्ञेय के नदी के द्वीप' उपन्यास में भी हीन भावना का विवेचन किया गया है। इस उपन्यास में चन्द्रमाधव जो स्वयं रेखा से निराश होकर कम्युनिस्ट बन अपनी हीन भावना को मिटाने का क्षतिपूर्क प्रयास करता है, रेखा व भुवन के सिद्धांतों की एडलर की हीन भावना की ग्रन्थि के सिद्धांत का आधार लेकर व्याख्या करता है "सब सिद्धांत क्षतिपूर्क होते हैं आप जो हैं उसे हैं उससे ठीक उल्टा सिद्धांत गढ़ कर उसका प्रचार करते फिरते हैं। इससे एक तो आप अपने लिए सतुलन स्थापित कर लेते हैं ताकि आपको ठीक ठीक कोई पकड़ न पा सके।" • और स्वयं चन्द्रमाधव

+ डा० शैलकुमारी 'प्राधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना', हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद पृ २१

× इलाच-द जोशी 'मुक्तिपथ हिन्दी भवन इलाहाबाद स० २००६ पृ २४६

• अज्ञेय 'नदी के द्वीप', प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, दिल्ली १९५१ पृ ५०

को अपने जीवन में सबसे बड़ा प्रीवेंस यंत्र है कि उसे प्रीवेंस के लायक भी कुछ नहीं मिला कि जिसके सहारे उत्पीडित मसीहा की तरह वह चल निकलता। अतः उत्पीडित मसीहा का जीवन बिाने को वह कम्पुनिजम भपताता है तथा भुवन के शब्दों में "उसकी कुण्ठा और उसका घाद परस्पर पोषी" + बन जाते हैं।

अन्य मानसिक प्रक्रियाएँ

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मानसिक प्रक्रियाओं के चित्रण के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक क्रियाओं तथा प्रक्षेपण (Projection) आरोपण, (Introjection) साकेतिक चष्टाएँ (Tics) भ्रकारण भय (Phobia) स्वप्न (Dream) आदि का चित्रण भी हुआ है। अनेक बड़े "नदी के द्वीप" में रेखा चन्द्र और भुवन एक अग्रजी सिनेमा देखने जाते हैं। रेखा के रहस्यमय चरित्र से परिचय पाकर भुवन सिनेमा को तटस्थ भाव से न देख रेखा पर उसकी प्रतिक्रिया जानने को उत्सुक है तथा मनो-विज्ञान के प्रक्षेपण (Projection) व आरोपण (Introjection) सिद्धांतों का संकेत करता है 'समस्त तटस्थ भाव से तो कुछ देखा नहीं जाता, हम अनजाने क्यावस्तु पर अपना आरोप करते चलते हैं या फिर अपने पर ही घटनाएँ घटित करते चलते हैं और मन की यह भी एक शक्ति है कि जरा से भी साम्य के सहारे वह सहज ही भयकारी सबंध जोड़ लेता है।' × रेखा के कुण्ठित व्यक्तित्व की साकेतिक चष्टा को भुवन ने नोट किया है 'रेखा को एक आदत थी—सहसा जाने अनजाने उसका हाथ उठता और पपटी के पास मानो कुछ खाने लगता फिर बालों की किसी छुगी हुई लट—कभी कभी काल्पनिक ही लट को कानों के पीछे डालता हुआ धीरे धीरे लौट आता। सारी क्रियाएँ एक बड़े कोमल और आयासहीन ढंग से दुहरायी जाती थी।' — मानसिक प्रक्रियाओं की एक विशेषता यह है कि 'यत्तित्व को कुण्ठित करनेवाले कारणों का पुनः स्मरण दिलानेवाले ससर्गों का सम्पर्क उस व्यक्ति को विक्षिप्त बना डालता है। जब तक 'यक्ति की कुण्ठा के कारण उसकी चेतना के तल पर नहीं आजाते और वह उह किसी सहानुभूतिशील श्रोता को नहीं कह देता तब तक उसके मन में गाठ बनी ही रहती है। किन्तु चेतन मन की विनशीलता एवं सहानुभूतिशील श्रोता के प्रति कथन उस प्रक्रिया को दूर कर देता है। 'नदी के द्वीप' में इस प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओं के कारण उत्पन्न भ्रकारण भय (Phobia) के उदाहरण रेखा व भुवन के चरित्र में मिलते हैं। पति

+ अनेक वही पृ० ४०८

× अनेक वही पृ० २६

— अनेक वही पृ० १३५

चेहरा दिखाई देता है, तो गौरा समझ जाती है बात गहरी है। गौरा के आग्रह से भुवन रेखा के प्रति अपने प्रेम व होने वाले गिगु' के गम निपात की सम्पूर्ण कथा भाग की ओर देखते हुए मन्त्राविष्ट की तरह कह देना है तथा क२न के पश्चात् अपने बोझ को हल्का हुआ अनुभव करता है " भुवन न कहा मुझ तो लगता है, वह जो बोझ मुझ पर था—वह सागर का बूढ़ा जो भरे कंधों पर सवार था वह उतर गया। साचता हूँ पहले ही तुममें कहा होना— ' + अस्तु इन उदाहरणों में मानसिक ग्रंथ के कारण होने वाले अकारण भय व उसके निरोध का मनोविज्ञान सम्मत स्वरूप मिलता है।

‘ नदी के द्वीप में डा० रमेशचन्द्र के विवाह—प्रस्ताव को स्वीकार करने के बाद रेखा भुवन से अलग होने के भय तथा उससे एकात्म बने रहने के इच्छाजनित विश्वास की स्वप्न प्रतीकात्मक शली में व्यक्त करती है

“ फिर एक दिन स्वप्न में तुम्हें देखा था—देखा कि तुम हमारे घर आये हो—हमारे घर, मेरे माता-पिता और छोटे भाई सब की उपस्थिति में और सबसे मित्र हो, पिता तुम्हें बाहर नगी की रॉस पर मेरे पास बिठा गया हैं फिर हम लोग कागज की नावें बना कर नदी में डालते हैं और उनका वह जाना देखते हैं। नावें कभी दूर दूर तक चली जाती हैं, कभी पास आ जाती हैं कभी टकरा भी जाती हैं कभी नदी में बहते हुए शवान से उलझ जाती हैं। सहसा देखती हूँ कि जहाँ हमारी कागज की नावों में हम भी हैं फिर नावें एक बालू के द्वीप में जा लगती हैं, जहाँ हम उतर कर नावों को खींचने लगते हैं—पर नावों में बड़े भी रहते हैं। अब हम रॉस पर से देखते भी हैं नावों में बड़े भी हैं, नावों को खींच भी रहे हैं। फिर देखती हूँ बहुत से द्वीप हैं हर एक पर हम नाव में भी बड़े नाव को खींच भा रहे हैं और रॉस पर बड़े देख तो रहे ही हैं। सहसा नदी का पानी बहती हुई सूखी बालू हो जाती है और तुम्हारा चेहरा तुम्हारा नहा, कोई और चेहरा है, तुम मुस्कारते हो तो वह चेहरा तुम्हारा भी है पर नहीं भी है, मैं कहती हूँ यह सपना है जागेंगे तो तुम्हारा चेहरा दूसरा ही जायगा तुम कहते हो सपना थोड़ी देर और देखें न फिर चेहरा बदल नहीं सकेगा। फिर मैं तुम्हारी मुस्कान देखती रही थोड़ी देर में जाग गयी, सपना के सिर पर नगी हाते होत हो जसा मनोविश्लेषक जतात हैं तो उसका ग्रंथ जानने की जरूरत नहीं होती—पर मैं जागो एक मधुर भाव लेकर फिर ध्यान आया कि तुम तो बर्मा में होंगे

×

वहना न होगा कि स्वप्न में वर्णित प्रतीक रेखा व जीवन से गहरा सम्बन्ध रखते हैं तथा उनके विश्लेषण के लिए जसा कि रेखा स्वयं जानती है मनस्त्व वेता के ज्ञान की आवश्यकता है।

+ अनेक वही प० ३६१

× अनेक वही पृ० ४१४

इलाचंद जोशी के "संयासी" उपन्यास से स्वप्न विश्लेषण का एक घोर उदाहरण लें। नन्किशोर शान्ति व साय स्वच्छंद प्रणम जीवन व्यतीत करता है किन्तु उसने मन में संशय है कि शान्ति बलदेव का चाहती है। नन्किशोर को भावी भय सपट भी दिखायी देना है और वह कानिवाल म लानर जुए में अपने रुपये खो देता है। उस रात वह स्वप्न देखता है

‘ मुझे बहुत देर तक नींद न आई, अतः मैं जब बड़ी मुश्किल से झाल लगी तो मैंने स्वप्न देखा कि कानिवाल म मैं जीतता चला जाता हूँ—इस हद तक कि मेरे जीत का रूपया जुटाने जुटाते कानिवाल बान परेशान हो गए हैं और उनका स्ट्राइक म अधिक रूपया न रहने से उन्हें मेल बंद करना पडा है। जीत के रूपको से अपनी जबें ठसाठम मर कर मैं मकान पर पहुँचा हूँ। यहाँ पर मर मनजान म स्वप्न का दृश्य इलाहाबाद स एक दम बनारस में उस मकान पर आजाता है जहाँ मैं शान्ति से पहिले मिला था। वहाँ दलता क्या हूँ कि शान्ति घोर बलदेव आपस में बातें करते हुए ठहाका मार कर हस रहे हैं + भादि कहना न होगा कि इस स्वप्न का चित्रण ही नन्किशोर के भायिक सपट, बलदेव के प्रति उनकी ईर्ष्या, शान्ति के लिए त्याग की तत्परता भादि को सभू से पर व्यक्त कर देता है।

मनोविश्लेषण सिद्धांत का शलोगन प्रभाव भी प्रतिकलित हुआ है जिस हय प्रतीकात्मकता (symbolism) मुक्त आसय (Free Association) एक अंतर्दृष्टि (Introspection) इन तीन रूपों में विभाजित कर सकत है। पिछले अध्याय म बताया जा चुका है कि नयी कविता के उपमान प्राय चीन प्रतिक्रिय रखते हैं। अतमन की स्थिति को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग आवश्यकता हो गया है क्योंकि इसने पहले कनो भाषा की असहायता को पतने स्पष्ट रूप म नही बताया गया था। 'ननी के द्वीप' म गौरा जब अपने को उलगय कर मुवा के घाव मरन की बात सोचती है तो कहती है "कह नहीं सकती तो इसलिये कि सोचना चिन्तो से, प्रतीकों से होता है, कहना शब्दों से, और शब्द अचूरे हैं।"● अपने ने तो तार सप्तक' क अपन ध्वनव्य म साधारणीकरण की पुरानी प्रणालियों की अग्रमय ठहराने हुए आज क कवि का दना तक उद्योग बताया है। 'भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम सकेतो से, अ का और सोधी तिरछी लकीरों से, छोटे बड टाइप स कीधे या उल्टे अक्षरों से, लोगो और स्थानों क नामा से, अचूर

+ इलाचंद जोशी 'संयासी', भारतीय मडार, इलाहाबाद चतुथ स० • २००६ पृ० २४२

● अग्रय नदी क द्वीप, प्रोग्रेसिव पब्लिशस दिल्ली, १९५१ पृ ३९४

वाक्यों से सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अधुण्य पहुँचा सके। "● मनोविश्लेषण सिद्धांत के अनुसार अचेतन मन के भाव चेतन मन में आते हैं तो प्रत्येक भाव तल में दूसरे से जुड़ा होता है इसी से पुनः स्मरण संभव है। एक भाव दूसरे से अनिवाय संबन्धित नहीं होता है तथा उन्हें जोड़नेवाले तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। इस प्रकार मुक्त आसक्ति हमारे मन में विद्यमान आते रहते हैं। इस पद्धति का आधुनिक साहित्य में अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा है। अनेक के उपयोगों में ऐसे बहुत से स्थल हैं जहाँ मुक्त आसक्ति पद्धति का पात्रों की मनोदशा प्रकट करने के लिए प्रयोग किया है। इसी प्रकार, गिरिजाकुमार मायूर 'चूड़ी का टुकड़ा,' कविता में रेडियम की छाना सूना पलंग खानी कमरा, चलती रेलगाड़ी आदि कितने प्रसंगों का स्मरण दिलाते हैं। आधुनिक साहित्य में वाह्य घटनाओं के विवरण का अधिक महत्त्व नहीं है। साहित्यकार अन्तर्दृष्टि का अधिकाधिक प्रयोग करता है तथा आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति अधिक महत्त्व रखती है फिर चाहे वह उपयोग हो नाटक हो, या कविता।

अस्तु, हम देखते हैं कि आधुनिक युग में हिंदी साहित्य पर पश्चात्त्य प्रभाव के फलस्वरूप साहित्य और मनोविज्ञान का सम्बन्ध सायास और गहरा हो गया है। हिंदी उपयोग में पात्रों के अन्तर्गत जीवन का चित्रण ही नहीं मिलता (अन्तर्गत जीवन के बिना पात्र कठपुतली-सम और कथा विकास फामूला बुद्ध पूर्वग्रह युक्त पात्र होता है) वरन् जटिल चरित्रों व मानसिक प्रक्रिया का सद्भासिक विवचन भी प्रस्तुत किया गया है। व्यक्ति जीवन के आन्तरिक मनोवैज्ञानिक गठन के साथ उस पर पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों एवं व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया तथा मनोविज्ञान के सम्बन्ध में व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला गया है। जीवन मूल्यों की खोज भी मनोविज्ञान के सद्बन्ध में की जाने लगी है। विषय-वस्तु के साथ ही वस्तु शक्ती एवं कथा शिल्प में भी मनोविज्ञान परक परिवर्तन दृष्टिगत होता है यद्यपि इन दृष्टि से सफल कृतियाँ अधिसंख्य नहीं हैं।

अन्तर्धारा रूप अन्य प्रवृत्तियाँ (राष्ट्रीयता, यथार्थवाद, प्रयोगवाद)

(१) राष्ट्रीयता—

राष्ट्रीयता एक सामुनिक भाव (Concept) है जिसे सामान्य देशभक्ति अथवा देश प्रेम से भिन्न समझा जाता है। पश्चिम में राष्ट्रीयता का विकास इटली के रिनैसा (Renaissance) से हुआ जब कि पोप की सब शक्तिमान सत्ता से अलग होकर योरोपीय देशों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता की स्थापना की। पोप के पाम राजनीतिक सत्ता न होते हुए भी योरोपीय देशों के शासकों पर उसका अत्यधिक प्रभाव था। एक शताब्दी से भी अधिक काल तक चलते रहनेवाले धार्मिक युद्धों (Crusades) में योरोपीय देशों के सभी ईसाई राजाओं का पोप के आदेशानुसार सेनाएं भेजनी पड़ती थी। ईसाई शासकों की राज्य सत्ता भी पोप का मुंह दबा करती थी। किन्तु इस्लाम की शक्ति से टकरा कर पोप की शक्ति का ह्रास हो गया। यारूप के विभिन्न देशों में धार्मिक साम्राज्यवाद से मुक्ति पाने वाले देशों की अलग राष्ट्रीय भावना का विकास किया। अतः अपने देश का अन्य देशों से अलग व श्रेष्ठ समझना एवं किसी भी बाह्य शक्ति की अधीनता स्वीकार न करना राष्ट्रीयता के अनिवार्य अंग हैं। जॉन स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) ने राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए लिखा है— 'मनुष्य जाति व उस भाग को राष्ट्र की सत्ता से अभिहित किया जाता है जिसके व्यक्ति परस्पर समान सहानुभूति का अनुभव कर सकाटिन हात हैं तथा यह सहानुभूति का भावना उनमें दूसरा व प्रति नहीं पाये जाती अन्य लोगों से सहाय्य करने की अपेक्षा व स्वेच्छापूर्वक परस्पर सहाय्य के लिए तत्पर रहते हैं एवं स्वशासन अथवा बवल अपने में स ही कुछ लोगों व एक शासन द्वारा शासित होने की भाका ता रखते हैं। राष्ट्रीय भावना का स्फुरण अनेक कारणों से सम्भव है। कभी वह जाति व धर्म की एकता का परिणाम होती है। भाषा तथा धर्म की एकता उसका विकास के महत्वपूर्ण कारण हैं। नैतिक सोमाएं भी एक कारण हैं। किन्तु सत्रम बढ़ कर कारण है—अतीत में समाज राजनीतिक स्थिति एक राष्ट्रिय इतिहास व उससे सम्बन्धित समान स्मृतियाँ, विगत जीवन की विभिन्न घटनाओं व प्रति सम्मिलित मानापमान तथा

भुव व दुव की अनुभूति' + अत जाति भाषा, वम समाजिक परम्परा व एक सत्ता के अगत राजनीतिक तत्र की एकता राष्ट्रीयता क प्रमुख तत्व हैं ।

आधुनिक अर्थ मे राष्ट्रीयता की भावना पाश्चात्य देन

राष्ट्रीयता के उपयुक्त तत्वों की दृष्टि से प्राचीन भारत मे राष्ट्रीयता के विकास व लिए आवश्यक आधार भूमि का अभाव था । यद्यपि जम्बू द्वीप भारत एवं आयावर्त 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' एवं गंगे व यमुन चैव गोश्वरी सरस्वती, नर्मदे सिंधु कावरी जले सिन्धु सतिधि प्रभृति प्राग एतिहासिक उक्तिषों से भौगोलिक व मानसिक दृष्टि से दशमकति की सामाय भावना का परिचय मिलता है कि तु जाति भाषा वम, सामाजिक स्थिति आदि विभेदों के कारण प्राचीन भारत मे राष्ट्रीयता का विकास नहीं हो सका । अतजातीय विवाहों की अधिकता हान पर भी आधुनिक भारत मे भी जातिगत विभिन्नताए पायी जानी हैं । उत्तर मे तुर्की ईरानी पूव मे मगोल द्रविड तथा दक्षिण मे द्रविड जातिया रक्त की विभिन्नता सूचन करती हैं । दमाली मद्रासी व पजाबी के बीच जाति व रक्त भेद पहचानना कठिन नहीं है । मद्र १६२१ की भाषा गणना के अनुसार भारत मे १७६ भाषाए अनुचित की गयी थी किंतु उनमे से बहुत सी भाषाओं को बोलनेवाले इनने कम लोग थे कि इससे भाषा सबधी स्थिति का पता चलना कठिन था । ग्रियसन ने भाषा परिवार का विवचन करत हुए भारत मे पाच विशाल

+ John Stuart Mill 'Representative Government'

A portion of mankind may be said to constitute a nationality if they are united among themselves by common sympathies which do not exist between them and any others which make them co-operative with each other more willingly than with other people and desire to be under same government by themselves exclusively

The feeling of nationality may have been generated by various causes, sometimes it is the effect of identity of race and descent Community of language and community of religion greatly contribute to it Geographical limits are one of its causes But the strongest of all is identity of political antecedents the possession of a National History and consequent community of recollective pride & humiliation pleasure and regard, connection with the same incidents in the past

भाषा परिवार माने हैं प्राय, द्रविड मुंडा तिब्बती चीनी । घम की दृष्टि से, हिंदू घम जो भारत की सर्वाधिक जनसंख्या द्वारा माना जाता है स्वयं समयवादी है किंतु हिंदू घम इस्लाम की अपने घम में आत्मसात् नहीं कर सका व विरोधी राष्ट्र के रूप में मुसलमानों की आकांक्षा पाकिस्तान की स्थापना (१५ अगस्त १९४७) के रूप में व्यक्त हुई । साथ ही हिंदू घम में जाति प्रथा के कारण एकता के बदले छुआछूत की भावना को प्रथम मिला । आधुनिक युग से पूर्व एक सत्ता के अंतर्गत सुदीर्घ काल के लिए राजनीतिक तन्त्र की एकता का भारत के प्राचीन इतिहास में कभी अंतर नहीं आया । अत आधुनिक युग से पूर्व भारत में राष्ट्रीयता का विकास आधुनिक रूप में नहीं हुआ था ।

प्राय यह समझा जाता है कि गुप्त काल में विदेशी आक्रमणों का प्रतिकार करने के लिए देश रक्षा की भावना से भारत में राष्ट्रीय चेतना का उदय हुआ था किंतु यह स्मरणीय है कि स्वदेश व भारतीय संस्कृति की रक्षा की भावना से उस युग में भी केवल ब्राह्मण व क्षत्रिय ही प्रेरित हुए थे जो भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या का केवल एक अंग थे । गुप्त साम्राज्य का नमदा के पार दक्षिण की ओर विस्तार नहीं हुआ था । कृषि जीवन व्यतीत करनेवाले सामान्य भारतीय की मुद्रों में दिलचस्पी नहीं थी । हर्षवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् देश विभिन्न हिंदु राज्यों में विभक्त हो गया, मुहम्मद गौरी द्वारा पृथ्वीराज को पराजित करने पर (सन् ११९२) जयचंद तटस्थ ही बना रहा । इतिहासकार डा० ईश्वरीप्रसाद के शब्दों में "सम्पूर्ण भारत में फैले हुए बहुत से राज्यों में एक भी ऐसा शासन नहीं था जो सभी राज्यों को सम्मिलित सुरक्षा के उद्देश्य से एक साम्राज्य के रूप में संगठित कर सके ।" अत एव के द्वीय शासन के अभाव में भारत में राष्ट्रीयता का विकास नहीं हुआ । भारत में राष्ट्रीयता का अभाव का दूसरा महत्वपूर्ण कारण है कि देश के सभी निवासी अपने का एक समझ कर सम्मिलित गौरव का अनुभव कर सकें । हिंदुओं में जाति प्रथा अन्तर्गत में अथ विभाजन का आधार पर निर्मित थी किंतु कालान्तर में वह ऊँच नीच का भेदभाव की पोषक बन गयी । जहाँ प्रचलन की छाया से भी ब्राह्मण दूर रहना चाहता था वहाँ ब्राह्मण व प्रचलन की प्रम में साथ प्रचलनवाला मानस नहीं मिल सकता है । टागोर रवीन्द्रनाथ

+ Dr Ishwari Prasad

In the numerous states that existed all over India we do not find a single ruler capable of organising them into an imperial union for purposes of common defence

तगोर ने किया "राष्ट्रवादी कहते हैं स्विट्जरलैण्ड का उदाहरण देखो जहाँ जातिगत विभेदों के होना हुए भी जनता एक राष्ट्र के रूप में संगठित हो गयी है। किन्तु, हम स्मरण करना चाहिए कि स्विट्जरलैण्ड में जातियों परस्पर मिल सकनी हैं—उनमें अन्तर्जातीय विवाह सम्भव है क्योंकि उनका एक रक्त है। भारत में सभी जातियों का एक रक्त नहीं है और जब हम पारश्चात्य राष्ट्रीयता की बात करते हैं तो यह भूल जाते हैं कि वहाँ एक राष्ट्र का सदस्य इस प्रकार पारस्परिक शारीरिक घुणा नहीं करते हैं। क्या विश्व भर में वहाँ ऐसा उदाहरण मिल सकता है जहाँ लोगो में परस्पर रक्त सम्बंध न हो पर वे एक दूसरे के लिए बिना किसी दबाव या धार्मिक जिहाद के रक्त बहान को तत्पर रहते हों? और क्या हम आशा कर सकते हैं कि हमारे जाति सम्मिलन में बाधक यह नतिक यथन हमारी राजनीतिक एकता के माग में अवरोधक सिद्ध नहीं होगा?" X

जाति, भाषा, धर्म सामाजिक भेदों आदि स्थितियों के रहने हुए भी अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के साथ जब सम्पूर्ण भारत एक केन्द्रीय शासन के अंतर्गत आया तब आधुनिक भारत में राष्ट्रीयता के विकास के लिए बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हुई इसलिये नहीं कि भारतवासी उस शासन से सन्तुष्ट हो बरन् इसलिये कि एक विदेशी शासक के रूप में सभी भारतवासियों को उनका सम्मिलित घट्टु दिखायी दिया जिसके विरुद्ध संगठित होने के लिये वे सभी तत्पर हुए। अंग्रेजी शिक्षा, यातायात के आधुनिक माध्यम न्यायालयों की स्थापना व प्रेस ने देश के एकीकरण में सहयोग दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (सन् १८८५) व स्वराज के लिए उसके द्वारा किये गये प्रयत्नों ने राजनीतिक जागृति उत्पन्न की।

X Rabindranath Tagore — Nationalism

Nationalists say look at Switzerland where inspite of race differences the people have solidified into a nation Yet remember that in Switzerland people can mingle, they inter marry because they are of the same blood In India there is no common birth right and when we talk of Western nationality we forget that the nations there do not have physical repulsion, one for the other that we have between castes Have we an instance in the whole world where a people who are not allowed to mingle their blood for one another shed their blood for one another, except by coercion or for mercenary purposes? And can we ever hope that these moral barriers against our race amalgamation will not stand in the way of our political unity

महात्मा गांधी क नवृत्त्व म स्वतंत्रता प्रा दोलन की गूज मामांय जनता के बीच पहुँच गयी । सामांय जनता चाहे राष्ट्र नी विशिष्ट समस्याओं स निता त अनभिन्न भी रही हो ि तु स्वतंत्रता की भावना ने उसने नवीन चेतना फूक दी जिसे हम राष्ट्रीय चेतना के नाम स पुकारते हैं ।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अंकुर

किसा भी देश मे राजनीतिक जागृति के लिए उसके अनीत गौरव का स्मरण अथवा उपयोगी होता है । जब भविष्य अघटारमय होता है और वतमान अनिश्चित तब आलोक क लिए हम अनीत की ओर मुड कर देपत है । किसी देश की सांस्कृतिक पतितावस्था के समय उसकी प्राचीन सभ्यता और सस्कृति ही उसकी प्राणाधिक बहुमूल्य सम्पति बन जाती है जिस वह ' अपनी ' कह कर सतार के प्रगतिशील राष्ट्रा क सम्पुन अचना मस्तक उठाने का अधिकार सचिन करता है ।

पौठिका अध्याय म हम देल चुके हैं कि प्राश्चात्य विद्वानों द्वारा प्राचीन भारतीय सस्कृति के अध्ययन के फलस्वरूप हमारे देशवासियों के हृदय म गौरव की भावना का उदय हुआ और भारतीय विद्वान भी प्राचीन भारतीय सस्कृति का अध्ययन करने के लिए आकृष्ट हुए । यह भारतवासियों क लिए कम गौरव की बात नी थी कि जो अंग्रेज शासक प्रारम्भ म भारत को केवल प्रसभ्य व अज्ञानी लोगों का देश समझते थ प्राचीन भारतीय सस्कृति के अध्ययन से उनकी आँखें खुल गया और वे भारतीय सस्कृति की महानता के प्रशंसक बन गये ।

वारेन हेस्टिंग ने चांस विधिक स द्वारा भगवद्गीता क अनुवाद की भूमिका म लिता

' बहुत िन नही हुए जस अनेक व्यक्तियों द्वारा भारतवासियों का जगती जीवन व्यतीत करने का प्रसभ्य प्राणियों स अधिक नी समझा जाता थ मुक्त मन है ि वह प्रथम अमी म्पू एतया नल नही हुआ है । यद्यपि अथशय वट घारणा बहून अशा म अथ समाप्त हो गयो है । उनक वास्तविग चरित्र की हमारी दृष्टि क सामुग सानेवाला प्रथम उदाहरण रूप उनकी रचनाया की अधिक उदार दृष्टि स समझन क लिए प्रेरित करेगा और यह रचना उस समय भी जीवित रहगी जस भारत स ब्रिटिश साम्राज्य कनी समाप्त हा पुरा होगा एव एक समय की उगत बसव व सता की स्तुति मात्र मप रह जाएगी । '+

+ Charles Wilkins-Bhagwadgita (Introduction by Warren Hastings)

It is not very long since the inhabitants of India were considered by many as creature scarce elevated above the decre

अतः सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए भारत दु ने इतिहास की पुनर्जागरण करना आवश्यक समझा । 'काश्मीर कुमुम' की भूमिका में उन्होंने भारतीय इतिहास के तुष्ट होन पर रोद प्रकट करते हुए लिखा

' भारतवर्ष क निमल आरागम इतिहास चन्द्रमा का दशन नहीं होता क्यों कि भारतवर्ष की प्राचीन विद्याओं क साथ इतिहास का भी लोप हो गया । कुछ तो पूर्व म शृ पलायन इतिहास लिखने की चाल ही न थी और जो कुछ बचा बचाया था वह भी काल के गान म चला गया । जनो ने वैदिकों के ग्रथ नाश किय और बंदिकों न जनो के । एक राजधानी म एक वंश राज्य करता था । जब दूसरे वंश न उसका जीता ता पहन वंश की सम्पूर्ण वंशावली के ग्रथ जला दिये । कवियों न ग्रथन अन्वयता की झूठी प्रशंसा जोड़ली और उनक जो शत्रु थ उनकी सब कीर्ति लोप करनी । यह सब तो था ही मुसलमानो न आकर जो कुछ बच बचाये ग्रथ थे जला दिये । चलिये उठ्टी हुई । ऐसी काली घटा छाड़ कि भारतवर्ष की कीर्ति चन्द्रमा का प्रकाश ही छिप गया " X

राजनीतिक विचारधारा का विवचन करते हुए हम चौथे अध्याय में देख चुके हैं कि भारत-दु युग के साहित्यकारों ने केवल युग की आवश्यकता के अनुरूप मुसलमानों से एकता की आशा व्यक्त की थी किन्तु, सांस्कृतिक दृष्टि से वे मुसलमानों को विराधी तत्व के रूप में ही देखते थे । भारत-दु ने बादशाह दण्ड म मुसलमान लेखकों द्वारा लिखे हुए इतिहास को पूर्वग्रहीत व भ्रामक ठहराया तथा यह आशा प्रकट की कि किसी दिन मज्जे भारतीय इतिहास का प्रणयन होगा । भारत-दु के इतिहास ग्रंथ प्राचीन सस्कृत नाटकों के अनुवाद, ऐतिहासिक शोध के आधार पर मौलिक नाटकों का प्रणयन सभी मुसलमानों राज्य काल से पूर्व की भारतीय सस्कृति क पुनरुत्थान की म बना स अनुप्रेरित थ । पर कवल मुसलमानों ने ही प्राचीन इतिहास को नष्ट नहीं किया था अंग्रेज भी प्राचीन भारतीय इतिहास की गलत व्याख्या कर रहे थे । अंग्रेजों द्वारा स्थापित रायल एशियाटिक सोसायटी

of savage life nor I, fear, is that prejudice yet wholly eradicated though surely abated Every instance which bring their real character to observation will impress us with a more generous sense of feeling for their writings and these will survive when the British Dominion in India shall have long ceased to exist, and when the forces which it once wielded of wealth and power are lost to r remembrance

X भारत दु हरिश्चन्द्र, काश्मीर कुमुम पृष्ठ ७

एव 'पुरातन विभाग' के प्रयोग करने दोषपूर्ण व पूर्वग्रहीत थे इसका परिचय भारत-दु द्वारा ऐटिवेरियन (Otiqurian) नाम के प्रति किये व्याप से प्रकट है ' जो सूतियाँ मिलें वह जना की हैं हिन्दू लोग तातार से या और कहीं पश्चिम से आए होंग, चाहे यहाँ सूति पूजा नहीं होती यो इत्यादि कई बातें बहुत मामूली हैं जिन्हें कहने से आरमी-ए टिवेरियन हा सकता है ।"

वर्तमान हीनावस्था की प्रतिक्रिया

राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिए यह आवश्यक है कि देश में घोर सम्मान जाग्रत हो । शीघ्र ही इसका भ्रयसर मिल गया ।

अंग्रेज मारगवासियों को बना और असम्भ्य कहते थे कि तु भारत से बाहर जिन साम्राज्यवादी युद्धों को लड़ने के लिये भारतवासी भेजे गये वहाँ उड़ने अघ्रजों की नृणसता और घोर असम्भ्यता का परिचय पाया । गंगाधरसिंह ने 'चीन में तेरह मास' पुस्तक में अपने सस्मरण लिखे जिनमें चीन युद्ध में अंग्रेज जाति द्वारा किये गये अमानुषिक व्यवहारों का वर्णन था । आर्थिक और राजनीतिक लाभ के लिए लडे जानेवाले इन युद्धों में प्रबुन होनेवाली अंग्रेज जाति के प्रति भारतीयों की सम्मान व श्रद्धा की भावना को ठेस पहुँची । उड़ने यह अनुभव कर लिया कि सम्भ्यता की दृष्टि से पश्चात्य जातियाँ किसी प्रकार भारतीयों से श्रेष्ठतर नहीं हैं, अंग्रेज केवल पशुवल के सहारे ही भारत के शासन बने हुए हैं ।

तत्कालीन युग की एक पत्रिका में 'उन्नीसवीं शताब्दी और ये सम्भ्यता' शीपक लेख प्रकाशित हुआ जिसमें पश्चात्य जातियों द्वारा अकारण बंवल अपनी स्वाधपूरति के लिए लडे जानेवाले युद्धों की निंदा की गई । लेखक के अनुसार केवल पशुवल का नियम ही इन युद्धों का मूल आधार है तथा इस आधार पर अंग्रेजों का अपने को सम्भ्य कहना उनकी सम्भ्यता के माग प्रश्न बिहू लया देता है । अंग्रेजों की वीरता की अपेक्षा कूटनीति क द्वारा भारत पर भ्रमता शासन स्थापित किया यह भारत-दु युग के लेखकों के लिए ऐतिहासिक तथ्य मात्र न होकर निःकटवर्ती सस्मरण था । प्रतापनारायण मिश्र ने रजनीका न गुप्त द्वारा बगता भाषा में लिखित 'आय कीर्ति' पुस्तक का अनुवाद किया जिनमें कुम्भ के चरित की श्रेष्ठता को दर्शाया गया है । कुम्भ न अपने शत्रु मालवा अर्पति को पराजित करके भी उसकी प्रतिष्ठा नष्ट नहीं की वरन् उसकी वीरता पर प्रसन्न होकर उसे बहुत-सी सम्पत्ति देकर मालव भेज दिया था । वीरता के इस आदर्श की अंग्रेजों की कूटनीति में तुलना करके हुए लेखक ने लिखा है

जिस सम्रथ सिक्खों के सेनापति का परामत्र हुआ था और सिक्ख सरगरो न अंग्रेज सेनापति को भ्रमता तजसार देकर कहा था कि अंग्रेजों के मत्वावार से

व्यथित होने के कारण हम लोग युद्ध में प्रवृत्त हुए थे और अपने दम की रक्षा के लिए यथासाध्य युद्ध किया भी। हमन कभी वीर धर्म की अवमानना नहीं की पर जब हमारी सेना मर कट गई और शस्त्र बेचाम हा गए हैं इससे नाना अभाववशत हम आधीनता स्वीकार करते हैं हमन जा कुछ किया है उससे निमित्त लज्जित नहीं हैं वरच सामर्थ्य होने पर फिर भी वैसा ही करेंगे उस समय अंग्रेजों के दलपति ने इन पराजित तजस्वी वीरों की सम्मान रक्षा नहीं की थी वरच ब्रिटिश राज प्रतिनिधि ने पंजाब की स्वाधीनता नष्ट करदी थी और गुजरात के युद्ध क्षेत्र में पठे घायल योद्धाओं पर भी दया न प्रकाश की थी। उत्तरीसवी शताब्दी के सम्यता श्रोत में वीरत्व की महिमा दुगुनी थी पर पन्द्रहवीं शताब्दी में मवाड ने अपनी सच्ची वीरता सरसित की थी। लाड बनाइव यदि मीर जाफर और जगत सेठ आदि को मिला न लेते तो प्लासी के युद्ध में समस्त बंगाल बिहार तथा उड़ीसा एकाएकी ब्रिटिश कम्पनी के आधीन न हो जाता। कप्तान निकलसन और कप्तान लारेंस पड़यंत्र रचना न करत तो महाराज रणजीतसिंह का राज्य ब्रिटिश जाति के हस्तगत हो जाना हसी खेल न था। हिन्दुस्तान में बहुत लोगो ने इसी प्रकार अपना वीरत्व क्लुपित किया है पर राजपुत्रों की वीरता पर कभी ऐसे क्लक की छाया भी न पड़ी।' +

अस्तु भारतीय सस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने के लिए प्राचीनता के पुनरुत्थान की भावना का उदय हुआ। मुसलमानों के प्रति भारत दु युग के सान्त्वित्यकार की मनोवृत्ति को देखते हुए यह स्वामाविक ही था कि वह अतिकृत भारतीय सस्कृति मुसलमानी राज्य काल से पहले की हिंदु सस्कृति के आराधक बने। भारत की आरम्भिक रचनाओं में हिंदू सस्कृति के प्रतीक अनेक नामों का बार बार उल्लेख मिलता है। प्रबोधिनी' (अगस्त १८७४) कविता में कवि भगवान को जगत कृप पुकारता है विष्णु, भोज राम, बलि, कण मुघिष्ठर कहा गये चन्द्रगुप्त और अशोक वय सभी क्षत्रिय (और ब्राह्मण) नष्ट हो गये जहां विष्वेश्वर सामनाथ, ११५५ के मंदिर थे वहां मस्जिदें बन गई—'राजकुमार शुभासन वणन' (अग १९११) में कवि नगर का वणन करने के पश्चात् भारत के प्रचीन वंश का उल्लेख करता है। यद्यपि भोज, व्यास वाल्मीकि, राम शाक्य, हरिश्चंद्र, युधिष्ठिर, कृष्ण, विश्वामित्र, कालिदास आदि नहीं हैं एव भारत सणहर के सण बनाई गया है। राजकुमार के आसन से जस उसमें नवीन प्राणों का संचार हुआ था। यथादि अश्रेणी

राज्य प्रस्थापनारी यवन राज्य का बाण मुग और शासन का अप्रदूत बनकर आया है। मिश्र विजय के अन्तर पर— विजयनी विजय पताला या वजयनी— कविता म भारतवासियों का मिश्र विजय पर गौरव का अनुभव करते हुए कवि अजु न कल नीम, ननुन, महदन, विराट भूमिपु, द्रुप गन्ध युद्ध, रघु अज, परपुराम, रावण मुषीय हुमान भीष्म द्रोण, सात्यकि पोष्य पृष्णाराज हम्मीर, विश्वम, माया रणजोर्तसिद्ध प्रवृत्ति योरो ना स्मरण करना है। कवि अगरी हीनावस्था का ध्यान करते हुए पचन पानीपत विद्रोह आदि को पुनार कर कहना है कि देश की इतनी हीन दशा होन पर भी व पृथ्वी पर अमी तक कस विराजमान रहे। मिश्र विजय एव मुसलमानी दश पर विजय थी। अत कवि ने यचना का जिनके कारण दश का अत पतन हुआ भरपूर कोसा है और कहा है कि रण म इनको मारने से कोई पाप नहीं होता।

यदि भारत-दु मुग विचारधारा की दृष्टि स दशमति का युग था तो द्विवेदी युग का हम सांस्कृतिक पुनरुत्थान का युग कह सकते हैं। अतीत का गौरव मान व उसके आशोक म भविष्य निर्माण की भाषा सांस्कृतिक पुनरुत्थान युग की मूल प्रवृत्ति है। महावीरप्रसन्न द्विवेदी ने एक अग्रजी पुस्तक की समालोचना करते हुए पतित राष्ट्र के जीवन में गौरवपूर्ण अतीत की स्मृति का महत्व दर्शाया है। मधिलीशरण गुप्त ने अत अनुज सिपारामगरण गुप्त द्वारा रचित 'मोय विजय' की भूमिका म पतित जातियों का भविष्य उनकी अतीत स्थिति पर ही आधारित बताया है। वे लिखते हैं

'हमारी वतमान दशा ऐसी नहीं है कि उस पर विशेष अभिमान किया जा सक। ऐसी दशा म अपने अतीत के गौरव की ओर ध्यान देना आवश्यक ही है यदि सौमन्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हा और उस पर अभिमान कर सके तो उसका भविष्य भी गौरवपूर्ण हो सकता है " पतित जातियों को उनके उत्थान में उनके अतीत गौरव का स्मरण बड़ा सहायक होता है आत्म विस्मृति हा अवनति का मुख्य कारण है और आत्म स्मृति ही उन्नति का।'

जयशंकर प्रसाद ने भी 'विशास' की भूमिका म अपनी नाट्य रचना के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए पतित जाति क लिए आश सगठित करने इतिहास का अनुशीलन आवश्यक बताया है। X

X जयशंकर प्रसाद— 'विशास' भूमिका।

इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को आदेश सगठित करने के लिये

वतमान पतितावस्था ही गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण दिलाती है तथा वतमान अवस्था कवि के क्षोभ का कारण बन जाती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी विद्या बल व धन से दीन भारत की उजड़ी हुई दशा पर अपनी मनोव्यथा व्यक्त करते हैं :—

मैथिलीशरण गुप्त के 'स्वदेश संगीत' की 'अनिश्चय' कविता में भारत अपनी वतमान दशा की अतीत गौरव से तुलना करते हुए चिन्ता-सा करता प्रतीत होता है।—
 अया-यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'जुमते चौपने' में 'क्या से क्या' शीपक कविता के अन्तगत भारत व अतीत व वतमान की तुलना करते हुए वतमान असहायता व पतन का चित्रण किया है

आज वेढग बन गए हैं वे डग जिनमें भरे हुए गुण थे
 बाध सकते नहीं कमर भी व बाधते जो समुद्र पर पुल थ
 जो रहे आसमान पर उठते आज उनक कतर गये हैं पर
 सिर उठाना उह पहाड हुआ जो उठाते पहाड उ गली पर
 तप सहारे क्या न सके कर जो मन उही का मरा हुआ हारा,
 है लहू घूट आज वे पीते पी गये थे समुद्र जो सारा,
 राज पाकर राज जो करते रहे काम अब व राज का है कर रहे
 डालते थे जान जो दे जान में आज वे हैं जानवर जाते गिने,

यद्यपि कमप्यता का पाठ पढ़ाने के लिये वतमान पतितावस्था के प्रति क्षोभ प्रकट करना आवश्यक था किन्तु यदि अतीत के प्रति वास्तविक गव की भावना एवं अपने में आत्म विश्वास जाग्रत न किया जा सका होता तो यह क्षोभ केवल भाग्य पर रोने का रूप ले लेता अत आलोचक काल में मैथिलीशरण गुप्त कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या हागे अभी' की समस्याओं पर विचार करते हैं वतमान सदव उनके सामने रहा तथा अतीत गौरव का वरण भी वे वतमान को सुधारने की दृष्टि से ही करते हैं। अस्तु 'भारत भारती' में जिस प्राचीन गौरव का कवि स्मरण करता है

अत्यन्त लाभदायक होता है। हमारी गिरी हुई दशा को उठाने के लिये हमारी जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है उससे बढकर उपयुक्त और कोई आदेश हमारे अनुकूल होगा कि नहीं इसमें मुझे पूरा सन्देह है।

— विद्या नहीं है बल नहीं है, धन भी नहीं है,
 क्या से हुआ है क्या यह गुलिस्तान हमारा

(महावीर प्रसाद द्विवेदी)

+ विश्व सुम्हारा भारत हूँ मैं हूँ या या चिन्तारत हूँ मैं
 (मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश संगीत')

ईसा मुहम्मद आदि का जग म न था तन भी पना,
 कय भी हमारी सम्म्यता है कौन सवता है बजा ?
 ससार म जो बुद्ध जहा पना प्रकाश विनाम है
 इस जाति की ही ज्याति का उमम प्रधानामास है,
 देतो हमारा विशय म कोई नही उपमान था
 नर देव थ हम और भारत देव तोर ममान था ।

यह देश यह कहन का अधिकारी भी हो सका

अन यद्यपि दुधन भारत है,

पर भारत के सम भारत है

सियारामशरण गुप्त के 'मौय-विजय' म प्राचीन भारत का गौरव गान गाया गया है । 'मौय विजय' म चन्द्रगुप्त की सत्युकश पर विजय दशावी गई है । इस ऐतिहासिक आख्यान के द्वारा कवि न भारतीय सस्कृति की श्रद्धता प्रतिपादित की है तथा सम्पूर्ण विश्व द्वारा व दनीय बतनाया है । × राष्ट्रीय गौरव की उज्ज्वल भावना प्रागामी युग म तयशकर प्रसाद क नाटकों म अत्य त प्रसर हर मे प्रकट हुई ।

पाजिटिविस्ट दर्शन के अनुरूप सास्कृतिक विशिष्टता
 की देन सबधो विचारणा, रवीन्द्र के माध्यम से

पीछे 'धार्मिक विचारधारा शीघ्र अ-याय के अनगत मानववादी प्रवृत्ति का विवेकन करते हुए हम काम्ने (Comte) क पाजिटिविज्म (Positivism) दर्शन की चर्चा कर चुके हैं । मानव सेवा भावना क समय तत्कालीन युग म पाजिटिविस्ट दर्शन की लोक प्रियता का कारण उसका राष्ट्रीय भावना का पोषक होना है । हिी म पाजिटिविस्ट दर्शन का प्रभाव यगला के माध्यम से आया जहा पाजिटिविज्म के माननेवाले क्वाचित् स्वय फास से भी अधिक थ । =

× जग म अब भी गूज रहे हैं गीत हमारे
 शीघ्र वीध्य गुण हुए न अब भी हमसे "यारे
 रोम मिश्र चीन आदि कापत रहत सार
 सब हम जानत हैं सदा भारतीय हम हैं अमय
 फिर एक बार हे ! विश्व तुम मामो भारत की विजय
 (सियारामशरण गुप्त 'मौय-विजय')

= Priya Ranjan Sen 'Western Influence in Bengali Literature' 19, College Street Market, Calcutta 1947
 Pp 102

It was said there were more Comtists in Bengal than in France

पाजिटिविस्ट दशन मानव हित की घोर लक्ष्य करती है किन्तु, उसके अनुसार मानवता कुटुम्ब और राष्ट्र के रूप में व्यक्त होती है तथा मानव सेवा कुटुम्ब व राष्ट्र की सेवा द्वारा ही सम्भव होती है। पाजिटिविस्ट दशन जितना मानव सेवा भावना का प्रचारक है उतना ही राष्ट्रवाद का भी समी राष्ट्र को एक स्तर पर लाने से मानवता शक्तिशाली नहीं बनती बल्कि हमारे लिए प्रत्येक राष्ट्र के स्वतंत्र विकास के साथ उनकी विशिष्ट अभिरूचि व योग्यताओं का मानवता की सम्मिलित सेवा में लगाना आवश्यक है। मानव भक्ति कुटुम्ब व राष्ट्र के प्रति प्रेम भावना पर आधारित है। मानव सेवा भावना राष्ट्रीयता का विरोध नहीं करती बल्कि उसका नियंत्रण करती है जिससे अल्प राष्ट्रों का अपने अधिकार में लाना राष्ट्रीय गौरव का विषय न बन कर राष्ट्र सेवा ही उसका लक्ष्य रहे। मासृतिक क्षेत्र में भारत की राष्ट्रीय उन्नति का यह अर्थ समझा गया कि भारत का विशिष्ट रूप में अपनी उन्नति पर विश्व सम्पत्ता को अपनी देन प्रदान करना है। रबीन्द्रनाथ टगोर 'विश्व-हित' के लिये भारतीय स्वतंत्रता की मांग करते हैं

‘अगर हमारा ऐसा विश्वास हो कि पहले हम कभी भी एक जाति (एक नेशन) नहीं थे, नई शिक्षा के साथ हम राष्ट्रीय जीवन का यह स्वाद मिना है, धीरे धीरे मन में अगर ऐसी एक नयी सत्त्व का उदय हो रहा हो कि अपने देश में इन्हें हुए इन सब हत्याओं को आज अतीत समय के विशाल क्षेत्र में बोकुर अकुरित कर के हमें उनका पूर्ण विकास करना होगा सबमें एक सा जीवन प्रवाह संचारित कर के एक अग्रव शक्तिशाली विराट पुरुष की जागृत करना होगा, हमारा देश एक खास और अलग यह धारण करके विदुष मनुष्य समाज के लिए अपनी आजादी का हक हासिल करेगा और हम विश्व यात्री चत्तचत्त की राह में वह बिना किसी सत्ता के असाम जनता में निरलस निर्भीक होकर लन-देन करता रहेगा और अत में अपनी ज्ञान की खान अरना काय का क्षेत्र अरना प्रेम का रास्ता सबके लिए खोल देगा, तो हम अपने मन के अन्दर विश्वास की दृढ करना ही पड़ेगा।’ X

अस्तु, कास्त, के पाजिटिविस्ट-दशन की यह विचारणा कि देश सेवा के रूप में मानव सेवा प्रतिफलित होती है तथा प्रत्येक राष्ट्र को अपनी विशिष्ट योग्यता का विकास कर मानव सेवा के आदेश को पूर्ण करने में सतत होना चाहिए आचार्यकान्नीन हिंदी साहित्य का भी प्रभावित करती प्रतीत होती है। रामनरेश त्रिगठी ने 'स्वप्न खण्ड काय में आत्मात्मग की ही सच्चे प्रेम का आधार बताया है तथा देश सेवा के रूप में ही के मानव सेवा का विकास करते हैं

सच्चा प्रेम वही है जिसकी
 तृप्ति प्रात्म बलि पर हो निमर
 त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है
 करो प्रेम पर प्राण निष्ठावर
 देश प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है
 भ्रमल भ्रमीम त्याग से विलसित
 प्रात्मा के विनाश से जिसम
 मनुष्यता होता है विसरित

मैथिलीशरण गुप्त ने हिंदू म विश्व हित के लिए ही भारत को राष्ट्रीय
 उद्योगन दिया है तथा परतत्रावस्था म उसकी विश्व मैत्री की बात को उपहासास्पद
 बतलाया है । भारत का उत्कष स्वयं अपने लिए नहीं वरन् ससार के लिए अथवा,
 मानवीय आदर्शों के लिए है

अथ विश्व मैत्री की बात
 आज दीन दुःखल तुम तात
 यह आदाय नहीं उपहास
 तुम्ह जानते हैं सब दास
 बिपरी शक्ति करो एकत्र
 फिर सबको कह दो सबत्र
 भुवन हंतु है भारतवष
 सबका है उसका उत्कष

स्वी-द्रनाथ टगोर ने भारत के जिस 'लास और प्रलग देह धारण कर' अपनी
 स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त करने और विश्व को नया सदेश देने की कामना प्रकट
 की मैथिलीशरण गुप्त के वतालिक म वही सांस्कृतिक वशिष्ण्य की भावना मुखरित
 हुई है । १७ पश्चिम की देन को स्वीकार करते हुए भी कवि भेड़ों की तरह उसके
 अधानुकरण को अनुचित समझता है । १८ पश्चिम के मौक्तिकवाद के विरोध मे वह भारत

१७ आप प्रात्म उद्धरण करो
 कुछ न बने अनुकरण करो
 पर भ्रमों की भाति नहा
 तुम भेड़ा की पाति नहीं

(मैथिलीशरण गुप्त — 'वतालिक')

• पश्चिम ग्याता पीता है इसीलिए वह जीता है
 इष्ट हम है वह जीता मरने स न जाय छीना

के आध्यात्मिक 'भोग म भोग' के संदेश की मुखरित करता है। जिसके पास देने के लिए कुछ होता है और स्वयं अपने में विषनाग नहीं खोजता तब एक दिन स्वतंत्रता के उस लोक में जगने की आवाज़ यह राष्ट्र प्रवक्ष्य करता है जिसके लिए रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा है

जहाँ निडर मन शिर ऊँचा हो बिना चम्प मिलता हो जान
जहाँ तग दीवारें टुकड़े टुकड़े करें न विश्व महान्
जहाँ सत्य की गहराई से जल निकलते प्यारे हों
जहाँ धरक ड्योग पूरता की दिशि बाहु प्रसारे हो
जहाँ विवेक विमल का सुंदर बहता स्रोत मुहामा हो
रूडि रूप मरुभूमि भयानक में जाके न समाया हो
जहाँ सदा विस्मयी विचारो और कम में मन रत हो
ह पितु उसी स्वतंत्र स्वर्ग में जगता प्यारा भारत हो

(अनुवादक गयाप्रसाद शुक्ल)

रामनरेश त्रिपाठी के 'मानसी' काव्य संग्रह की 'कामना' कविता भी रवीन्द्रनाथ की इसी भावना को प्रतिच्छापित करती है। मैथिलीशरण गुप्त के 'स्वदेश संगीत' के प्रायना गीत में हम भारतीय राष्ट्र की अपने निजी रूप में अभ्युदय की आकांक्षा पाते हैं

राम तुम्हें यह दश न भूले
धाम धरा धन जाय भले ही यह अपना उद्देश्य न भूने
निज भाषा निज भाव न भूने निज भूषा निज वेश न भूले
प्रभो तुम्हें भी सिंधु पार से सीता का संदेश न भूले ।

राजनीतिक चेतना के प्रभाव स्वरूप देश प्रेम की भावना का प्रसार हुआ। यह तो स्पष्ट ही है कि भावना कहीं से उधार नहीं आती किन्तु अभिव्यक्ति के लिए

यह संयोग मात्र पाकर प्रवर्तित हुआ यहाँ आकर
पर तुम आप न आये हो कुछ संदेश लाये हा
तुमको उसे सुनाना है सबको यह बतलाना है
हूए नहीं तुम मरने की आये हो कुछ करन की
उनकी प्रस्तावना पगे पर अपनी भावना जग
उनका सा उद्योग करो किन्तु भोग म योग भरो

(वही)

भाष्य अनुकरण की सामान्य प्रवृत्ति (General Tendency) ने अनुदेरित ही वाच्य साधना का सहायता दिया जा सकता है। अथ प्रेम की भावना में रहे जानेवाले राष्ट्र स्तयन में गीता में पश्चिम की प्रेरणा की श्रीधर पाठक की 'भारत गीत' रचना की भूमिका में श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने लिखा

“विद्युत् शताब्दी में प्रायः क विप्लव क समय प्रसिद्ध मारमल्ल के गीत ने नैराश और युवक से व्यथित क जाति में एसा उगाह भर दिया कि उक्त क्रांति क इतिहास की गुरुत ही बताने में। 'वदे मातरम्' के गीत ने बग देश में कमा जातीय परिवर्तन किया यह बल ही की बात है। पञ्चीत गीतों का यह महत्त्व राष्ट्रीय गीतों का अनुपम प्रथ है।”+

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि स्वतंत्रता का गोलन के युग का भारत का राष्ट्र-गीत— 'वदे मातरम्' क्रांति के मारमल्ल गीत के अनुकरण पर लिखा गया किंतु यह अवश्य है कि पश्चिमी राष्ट्रों की रीति पर राष्ट्र गीत गायन के अनुकरण रूप में 'वदे मातरम्' गान को अपनाया गया। बकिम क 'वदे मातरम्' गान ने स्वदेशी आन्दोलन में भाग लेनेवाले राजनीतिज्ञ क्रायवर्तमानों को ही प्रेरणा नहीं दी बरन् हिन्दी-कवियों को भी मातृभूमि क प्रति भावनाएँ प्रकट करने के लिए प्रेरित किया। श्रीधर पाठक के 'भारत गीत' की कविताओं महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'वदे मातरम्' गीत राय दबीप्रसाद पूरण के स्वदेश कुण्डल मैथिलीशरण गुप्त की 'मातृभूमि' तथा रामनरेश निपाठा की 'जन्मभूमि भारत' कविता में बकिम के 'वदे मातरम्' गीत की छवि सुनाई पड़ती है। 'वदे मातरम्' गीत में भारत माना को दुर्गा के रूप में देखा गया है। हिन्दी भाषी प्रांत में बंगाल के समान दुर्गा की भावना नहीं थी अतः महा राष्ट्र की कल्पना एक और 'वदे मातरम्' की सुजला सुफला शस्य शमामला भारत भूमि की कल्पना प्रधान हुई तो दूसरी ओर रवींद्र की 'भुवन मोहिनी' का रूप निखर पड़ा। निम्न पंक्तियाँ राष्ट्र कल्पना में हिन्दी कवियों की प्रधान प्रेरणा स्रोत रही

वदे मातरम्

सुजताम् सुफताम् मलयज शीतलाम्

शस्य शमामलाम् मातरम्

(बकिम)

अथि भुवन मन मोहिनी

अथि निमल सूर्यकरोज्ज्वलधारिणी जनक जननी

नील सिंधु जल घीत चरण तल
 अनिल विकम्पित श्यामल अञ्चल
 अम्बर चुम्बित माल हिमाचल शुभ तुपार किरीटिनी
 (रवीन्द्र)

उपरोक्त पक्तियों का निम्नलिखित कविताश्रा मे भाव साम्य दृष्टव्य है
 भारत हमारा कसा सुंदर सुहा रहा है
 शुद्धि भाल पै हिमालय, चरणों म सिंधु अचंचन
 मणि वद्ध नील नम का विस्तीर्ण यह अञ्चल
 सारा मुद्रश्य वैभव मन को लुभा रहा है
 (श्रीधर पाठक)

पानी की कुछ कमी नहीं है, हरियाली लहराती है
 फल औ फूल बहुत होत हैं रम्य रमन छवि छाती है
 मलियानिल मृदु मृदु है शीतलता अधिकती है
 सुवदायिनी वरुणायिनी तेरी मूर्ति मुझे अति भानी है
 (महावीर प्रसाद द्विवेदी)

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुंदर है
 सूर्य चंद्र युग मुकुट मेलला रत्नाकर है
 नदिया प्रेम प्रवाह सूर्य तारे मण्डन हैं
 बदी विविध विहग शेषफन सिंहासन है
 करत अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस वेश की
 है मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की
 मैथिलीशरण गुप्त)

द्विवेदी युग की सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना छायावादी-युग म कोमल रूप म मिलती है । निराला जागरण कविता में वैदिक युग के भारत के पान श्रेष्ठता का स्मरण करते हैं

दवत्व की पताका
 सोऽहम् का शांत स्वर
 मरा ह्यप्रा प्रतिमुख में
 'अण्वप्युचितम् विशाल हृदय
 मुक्त द्वार खुला था
 सदा ही ससार को
 जितना देन क लिए +

महादेशी जी 'मैं कम्पा हू तू गण राग कविता में देश क दुरी जनों क विपाद में स्वयं रो जाना चाहती हैं तथा देश की मिट्टी में मिल जान की कामना रगती है । ये स्वयं को छाया और देश को छाया मानती है ।

मैं छाया तू उसका छाया
मेरे भारत मेरे विशान
बहुता है जिनका व्यथित मौन
हम सा निष्कल है आज कौन
निघन के घन ली हास नेत्र
जिनकी जग न पाई ने देस
उन सूखे झोठो क विपाद
म मिल जाने दो हे उदार
मैं तुझम मिट जाऊ उदार

पतञ्जी की रोमांटिक प्रयत्ति उ ह स्वयं पुरातन को मोहक दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित करती है । 'अथतहि परालोक कविता में भी यही भाव पाया जाता है ।

निराला के 'भारती जय विजय करे' गीत में भारत माता का दवी रूप अंकित है

लका पदतल शतल गङ्गोमि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल, स्तव कर बहु अथ भरे
मुकुट शुभ हिय तुपार प्राण प्रणव ओकार
ध्वनित दिशाए उदार, शत मुख शतरव मुखरे

पत ने 'भारत माता' के कवण स्निग्ध रूप को अंकित कर भारतीय प्राणी जनता की दीन दशा को समुपस्थित किया

भारत माता भ्रामवासिनी
खेतो में फला सा श्यामल
धूल भरा मैला सा आचल
गंगा यमुना में भासू जल
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी

भारत के दिव्य मूर्तिकरण और प्राचीन गौरव की पुनरुत्थानमयी भावना में आर्य सस्कृति का जयघोष था । तथापि इस सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना में सकीर्णता नहीं थी । राजनीतिक स्वतंत्रता के उद्देश्य से प्रेरित हो हिंदी साहित्यकारों ने हिन्दु मुस्लिम एकता की भावना का प्रसार किया था । साथ ही गांधी जी के सभी धर्मों की समानता के भाव एवं रवीन्द्र की अंतर्राष्ट्रीयता अथवा विश्व सस्कृति की भावना का तत्कालीन साहित्य पर गहरा प्रभाव था । अतः सांस्कृतिक विशिष्टता की

जस दन का प्रस्तुत अध्याय मे पीछे विवचन किया गया हे भारतीय स्वतंत्रता के बाद सका समुज्ज्वल रूप मिलता है । भारत ने अपनी स्वतंत्रता के साथ साम्राज्यवाद व उन्निवृत्तता से परन देना की मुक्ति की कामना की । विश्वशांति की थापना मे भारत के बढत हुए अतरोप्टीय महत्व के अनु रूप ही हि नी क कवि की बाणा है

भारत ह¹ तरी जय ध्वनि में,

विश्वशांति की उदापणा है अ्वनि मे

(मियाराम शरण गुप्त जयहिन्द')

हो भारत स्वातंत्र्य विश्व हित स्वण जागरण

(पत)

मेरे प्यारे देश देह या मन को नमन करू मैं

भारत नही स्थान वाचक गुण विशेष नर का है

एक दश का नही शील वह धूमडल भर का है

उठे जहा भी घाय शांति का, भारत स्वर तरा है

धम दीप हो जिसके कर मे वह नर तरा है

तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अडने जाता है

किसी थाय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है

मानवता के इस लडाट चदन को नमन करू मैं +

(निबकर)

हिंदी नाट्य साहित्य में जयशंकर प्रसाद के नाटका मे सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना सबसे बत्कर मिलती है । ऐतिहासिक नाटको का आधार लेकर प्रसाद ने अविच्छिन्न भारतीय सस्कृति-प्राय सस्कृति का समुज्ज्वल रूप अंकित किया है । उनके नाटका मे महाभारत काल (जनमजय का नाग यन) से लेकर ह्य बद्धन (राज्य श्री) के राज्य काल का युग अंकित किया गया है । यही भारतीय सस्कृति के उत्थान का युग भी रहा है । अपने नाटको मे देश के सांस्कृतिक उथल पुथल क युग का अंकित कर तथा विदेशी आक्रमणकारिया क विरुद्ध राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रसार कर उठेने इतिहास के माध्यम स वतमान युग की आवश्यकता का प्रभावशाली रूप मे प्रस्तुत किया है । प्रसाद जी की सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना इसम प्रकट है कि उनके नाटक गम्भीर ऐतिहासिक अध्ययन के उपरांत लिखे गये हैं ।

प्रसाद जी के एक इगुप्त (१९२८) नाटक मे एक इगुप्त को हम प्रारम्भ मे एक उदासीन व्यक्ति के रूप मे पाते हैं जिसे अपिहार मुक्त मान्य और सारहीन

प्रतीत होता है। किन्तु महाबलाधिकृत पण्डित से जब यह प्रश्न करना है 'अधिवार का उपयोग किस लिए' तो पण्डित उसे अपने वक्तव्य के प्रति मन्वैत करता है "वस्तु प्रजा की रक्षा के लिये, मतीत्व के सम्मान के लिये दवता बाह्यण और गी की मर्यादा में विश्वास के लिये आतक स प्रकृति को आश्वासन देने के लिये, अपने अधिवारा का उपयोग करना होगा।" स्वर्ग्युक्त देश की हूणा से रक्षा करने को तत्पर हाता है और अतः उसे सफलता मिलती है। स्वर्ग्युक्त का चरित्र इतना भव्य है कि वह पूरा सफलता प्राप्त करने के बाद भी अपने माई पुरगुप्त को आय साम्राज्य का अधिपति बना देता है और देवसेना के प्रति आदृष्ट होने पर भी मर्यादा पालन और प्रेम के आदेश को निमा कर वानप्रस्थ ले जाता है। मटाक हूणों से मिल कर स्वर्ग्युक्त के साथ विश्वासघान करता है जिसके कारण उसकी पराजय हाती है। फिर भी अपनी माता द्वारा देशद्रोह के लिए प्रताडित किये जान पर जब मटान आत्यन्तया के लिए प्रस्तुत होता है तब स्वर्ग्युक्त उसे रोक्ता है 'रणभूमि में प्राण देकर जननी ज मभूमि का उपकार करो। मटान यदि कोई साथी न मिला तो साम्राज्य के लिये नहीं ज मभूमि के उदार के निम में अनेका युद्ध करूंगा और तुम्हारी प्रतिभा पूरी होगी। पुरगुप्त का सिंहासन देकर मैं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करूंगा।' +

स्वर्ग्युक्त की पराजय स हूणों द्वारा देश के पलायन होने पर पण्डित भीम माग कर रोटिया एवमित करता है जिससे कि देश रक्षा के उपशम के लिए प्राण बचे रह सकें। X

स्वर्ग्युक्त विजया के यह प्रस्ताव करने पर कि वह घन दकर हूणा को छोटा द और यह सम्पत्ति विजया उसे प्रदान करने को तत्पर है जिससे कि य सुग से साथ रह, कन्ता है "विजया तुमने मुझ क्ताता सामी ममक लिया है? कस्त्र बल से मन्त्रि हो सका तो ज मभूमि का उदार कर लूंगा, सुग के सोम स मनुष्य के भय में मैं उत्तरोच देकर शीत साम्राज्य भी चाहता। =

विजया के आत्म हत्या करने पर मटाक उस माहन के लिए जब वह सोन्ता है तो उस उग स्थान पर ही गुला हूणा ररनागार मिलता है तथा स्वर्ग्युक्त मटाक के सहयोग से सना मगन्ति कर शन से हूणों को मगा आय साम्राज्य

• जदगार प्रसाद स्वर्ग्युक्त भारती मटार, लाडर प्रस, इसाहाबाद म्पारहवा मस्वरण पृ० १०

+ वी पृ० १४४

X वहा पृ० १२६

= वहा पृ० १४२

की स्थापना करता है तथा पुरगुप्त का जिसके कारण उसे आंतरिक पक्षपातों का सामना करना पड़ा था राज्याभिषेक करता है। उसकी अपनी यही कामना है—
 'देखना मेरे बाद जन्म भूमि की दुःशा न हो।' +

प्रसाद जी की देश भक्ति की भावना विदेशी पात्रों द्वारा भी भारत की प्रशंसा कराने के रूप में प्रकट हुई है। 'स्व-द्रुगुप्त' में घातुसेन भारत की प्रशंसा करता है। * वह इस देश को समुद्रों का हृदय और 'सपत्नी का देश भव्य भारत कह कर संबोधित करता है। 'च-द्रुगुप्त' (१६३१) में भी कार्नेलिया का भारत प्रेम अभिमत है। प्रसादजी ने भारतीय संस्कृति का गौरव विदेशी आक्रमणकारियों को पराजित कर उनके प्रति क्षमाशील होने में दर्शाया है। 'च-द्रुगुप्त' में सिक्खंदर के आहत होकर गिरने पर मालव सैनिक कहते हैं "सनापति रक्तपात का बदला ? प्रतिशोध ?" तब सिंहरण की देश भक्ति इन स्वरो में प्रकट होती है 'ठहरा मालव वीरो, ठहरो, यह भी एक प्रतिशोध है, यह भारत के ऊपर एक श्रेण था, पवतेश्वर के प्रति उदारता दिलाने का यह प्रत्युत्तर है।" स्व-द्रुगुप्त भी पुरगुप्त के राज्याभिषेक के समय बन्दी बना कर लाये हुए हुए सनापति का छोड़ देता है 'इस हूण को छोड़ दो और कह दो कि सिंधु के इस पार के पवित्र देश में कभी आने का साहस न करे।" X

सामयिक समस्याओं का चित्रण भी प्रसाद ने इतिहास के माध्यम से किया है। 'स्व-द्रुगुप्त' में बौद्ध और ब्राह्मण वर्ग का संपर्क प्रकारान्तर से वर्तमान युग के हिन्दु-मुस्लिम बमनस्म का ही रूप है। गुप्तकाल की जनता के मुह से यह कहला कर 'हम लाग यय आपस में भगडते हैं और आनतायिया का देख कर घर में घुस जाते हैं। हूणों के सामने तलवारें लेकर इसी तरह क्यों नहीं भड जाते ?' = मानो वे तत्कालीन राजनीतिक समस्या का संकेत करत हैं और साम्राज्यवाद के विरुद्ध उद्बोधन देते हैं। 'च-द्रुगुप्त' में चाणक्य के इस उपदेश में 'मालव और मगध को भूल कर जब तुम आर्यावत का नाम लोने तभी वह (भारत सम्मान) मिलेगा' और सिंहरण के इन शब्दों में "परंतु मेरा देश मालव ही नहीं गांधार भी है, यही क्या समग्र आर्यावत है" में आधुनिक युग की राष्ट्रीयता की भावना प्रकट हुई है। 'स्व-द्रुगुप्त' के गीत हिमालय के आगमन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार उपा ने हस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार ' में भारतीय संस्कृति का नया रूप प्रकट हुआ है।

+ वही, पृष्ठ १५२

* वही पृष्ठ ११६

X वही पृष्ठ १५२

= वही पृष्ठ १२४

(२) यथायथाव

उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा गया। रैल्फ फॉक्स (Ralph Fox) का साहित्य का इतिहास नामक पुस्तक में उक्त विचार है कि "महाकाव्य में समाज की प्रतिबिम्बित प्रतिरूप में समाज की सभी प्रतिबिम्बित उपयाम नहीं कर सका और न कर सकता था। महाकाव्य का चरित्रों में समाज का माय सतुलन रहना या और वह सतुलन समाज का युग में लुप्त हो गया है। उपन्यास व्यक्ति का चित्रण करता है यह व्यक्ति की समाज व प्रकृति के विभिन्न सघप की गाथा है और कथन उसी युग में दसरा विद्वान् सम्भव था जब कि व्यक्ति और समाज के बीच सतुलन नष्ट हो गया हो एक व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन परियोजना व विभिन्न सघप में लीन हो + उपन्यास का व पात्र जिनका साथ लक्षण पाठकों की सहानुभूति जागृत करता है किसी न किसी रूप में सामाजिक मायतामा का मूर्तिमजक होत है।

पाश्चात्य साहित्य का सम्पर्क से हिन्दी उपन्यासों में यथायथाव प्रवृत्ति का विकास हुआ है। भारते दु-युग से ही इस दृष्टि से उपन्यासों पर पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षित होता है। लाल श्रीनिवास दास ने 'परीक्षा-गुरु उपन्यास के प्रेरणा स्रोत का सघप में लिखा 'इस पुस्तक के रचने में मुझे महामारत आदि सस्कृत गुलिस्ता वगैरे फारसी स्पेक्टेटर, लाड बेकन, गाल्डस्मिथ, विलियम कूपर आदि का पुराने लेखों और स्त्रीवाच आदि रिसालों से बड़ी सहायता मिली है।'* तत्कालीन युग में प्रचलित कथाओं-ताता मैना छबीली मटिगारिन आदि से भिन्न इस उपन्यास में पाश्चात्य अध्यानुकरण से फिजूल खर्चों की समस्या को लिया गया है तथा देश की दुरावस्था व उसके आर्थिक शोषण समाज-सुधारकी आवश्यकता आदि के रूप में लेखक की उपदेशात्मक प्रवृत्ति प्रकट होती है। उपन्यास में मौलिक कथा अथ बहुत कम है तथा विश्व इतिहास एवं पाश्चात्य साहित्य से उदाहरण लेकर दिये

+ Ralph Fox 'The Novel & the People' Cobett Press Ltd
Second Impression 1948 Pp 43

The epic was a complete expression of a society in a way in which the novel never has been and never could be. There is a balance between the character of the epic and the society in which they lived which has since been lost and it could only develop in a society where the balance between man and society was lost, where man was at war with his fellows or nature

* श्रीनिवास दास 'परीक्षा गुरु' निवेदन' पृष्ठ २

गप उपदेशों की भरमार है। यह उपदेशारमक प्रवृत्ति बालकृष्ण भट्ट व राधाकृष्णदास क उप्यासों में भी पाई जाती है परंतु उनके उप्यासा में परीक्षा गृह की तरह साहित्य व इतिहास में उदाहरण दान की प्रवृत्ति नहीं मिलती। श्रीनिवासदास पाश्चात्य उप्यासकारों में गोल्डस्मिथ से अधिक प्रभावित हुए थे। रेवकीनान खत्री ने उप्यासों में भारते दु युग की यथाथवादिता से हटकर निलस्मी उप्यासों की रचना की। खत्रीजी भी पाश्चात्य रचनाओं से प्रभावित हुए थे। रनाल्ड के समान उनके उप्यासों में निलस्मी का भेद किसी त्रिविक सम्मत सूत्र के सहारे खुलता है। गोपालराम गहमरी ने जामुनी उप्यासा की रचना की। वगना से पचकौडी के जामुनी उप्यासों के उद्धान अनुवाद भी किये थे। गहमरी जी पर बगला के माध्यम से रनाल्ड, राइट्टर हैगाड कानन डायल एडगर वालेस व क्लेक मिरीज के जामुनी उप्यासों का प्रभाव पड़ा। किशोरीनाथ गोस्वामी के उप्यासों में सब प्रथम सामाजिक समस्याओं का उल्लेख हुआ। गोस्वामीजी ने जिस समय अपने उप्यासों की रचना की उस समय हिन्दी में बंगाल से बंकिमचंद्र चमणचंद्र दत्त प्रभृति के उप्यासा के अनुवादों का भरमार थी। वगना के यह लेखक पाश्चात्य लेखकों से प्रभावित हुए थे। हिन्दी में प्रेमचंद के आगमन से सामाजिक व राजनीतिक उद्देश्य लेकर उप्यासा की रचना की जान लगी। हिन्दी उप्यासों पर आगल उप्यासकार डिकसन व विलियम मक्वीस धेकरे रूठी उप्यासकार तासताय व मक्सिम गार्की तथा फ्रांसिसी प्रकृतवादी (Naturalist) उप्यासकारों के यथाथवाद का प्रभाव मिश्रित रूप में पड़ा।

उप्यास स्वभावतः यथाथ चित्रण की ओर ऋजु होता है। किंतु यथाथ की परिभाषा विभिन्न लेखकों के साथ भिन्न रूप धारण कर सकती, और करती है। प्रमचंद की मानव-कर्मकारिया के प्रति विशेष सहानुभूति थी। यही कारण है कि वे उसकी पतितावस्था का चित्रण करके भी निमग्न नहीं बन सकते थे। उनके मत में 'यथाथवाद यदि हमारी आँख खोल देता है, तो आदेशवाद हमें उठा कर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है वह हमारा पथ प्रदर्शक होता है वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है हमारी दृष्टि को फलाता है—कर्म से कर्म उसका यही उद्देश्य होना चाहिए।' * अतः प्रेमचंद अपनी रचनाओं द्वारा मनुष्यत्व का जगान का आदेशवादी प्रयत्न करते रहे। वेश्याओं के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्होंने सेवा सदन जैसी संस्था की स्थापना का उपदेश दिया। अपनी धार से जमींदारों द्वारा स्वत्वों को त्याग कर प्रेमाश्रमों के निर्माण की प्रेरणा दी। भ्रष्टों को समाज में ब्राह्मणों के साथ बंधे ऊँचा स्थान दिलाना चाहते थे। किंतु समाज में यह परिवर्तन नहीं आया। फलतः

* प्रेमचंद 'कुछ विचार' 'उप्यास का विषय शीघ्र लेख

प्रेमचन्द अपनी पीढ़ी की रचनाओं (गोदान, कफन व अर्थ कहानिया) में समाज की बातें छाड़ कर यथाथ का अंकन करते हैं। 'सेवासदन' के अंत में वधवा सुधार के लिये सदन की स्थापना की गई थी किंतु 'गोदान' में वधवा सुधार का समाधान दूसरे रूप में प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक परिवर्तन के साथ वे वधवाओं के लिये सम्माननीय जीविका का साधन जुटाने के हामी हैं। इसी प्रकार, प्रेमचन्द अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं में अछूतों को समाज में सम्माननीय स्थान दिलाने के पक्षपाती थे। समाज ने अछूतों को वह स्थान नहीं दिया ता 'गोदान' में मातादीन द्वारा चमार के स्तर पर उतारा गया है। उसके मुँह में हड्डी डाल कर उसे चमार बनाया जाता है तथा वह जेठे तोड़ कर ब्राह्मण समाज को सजाक दे चमारिन सिलिया को आत्म-समर्पण करता है। 'गोदान' में प्रेमचन्द के व्यंग्य अत्यधिक पीने हो गए हैं। कृषक समस्या का हल करने के लिये प्रेमाश्रम में इ गिन किये हुए प्रेमाश्रम की भी भारतीय समाज में स्थापना नहीं हुई। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में कृषक समस्या का कोई सुधारवादी हल प्रस्तुत नहीं किया। जीवन भर गूंगोरी लगान विवाह आदि सामाजिक बर्तों धम हड्डियां म पता हारी मरता। तब उसकी पत्नी गंगान के लिये बचत सवा रूपया देकर मूर्छित हो जाती है। विमान का यात्रा द्यनीय जीवन है। हारी बरोडा भारतीय समाज का पीर है। मपणों से घबरा कर मूठने में ही उसका व्यक्तित्व सजीव हो उठा है और वह एक यथायथानी उप शय के मच्च नायक के रूप में हमारे सामने घाता है-व्यक्ति परिवर्तन के विरुद्ध संघर्ष में लीन।

जयचन्द प्रसाद के अनुसार यथायथा की विशेषता है। लघुता की और साहित्यिक दृष्टिगत जिसमें स्वभावतः सुगंध की प्रधानता और पंक्ति की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में प्रसाद जी समाज में पठित कृत जानवाले वग की धरना की धर्मियति दया यथायथा का लय मानत है। अतः प्रेमचन्द की तरह उन्होंने पठित जावन के अ पकारमय पत्र का अन्वया नहीं किया है। प्रसाद ने 'कहाव' में समाज के अ पकारमय पत्र का ही अन्वयण किया है। समाज की संघर्ष की विज्ञान के विरुद्ध कहाव में प्रसाद ने धार्मिक सीध स्थानों का उत्र घुता है। 'कहाव' व्यापक उत्र शय है और 'कहाव' शब्द बड़ा व्यंग्य दही है कि जा मया का मो का छातना जान है समाज उनका मापु ममम कर पूजा करता है और उनका बर्तों का अन्वयण करने का अन्वयणता गरी ममन्ता विन्दु का अन्वयण है। ममन्ता के विरुद्ध विरोधों के विचार हापर अतः ममन्ता जान का विरुद्धमय अन्वयण करत है। 'कहाव' के मधी पात्र अन्वयण ममन्ता में अन्वयण है। अतः और दुःख का पाठान्त वर नाहित है किन्तु ममन्ता अन्वयण ममन्ता का अन्वयण म कर ममन्ता अन्वयण अन्वयण का अन्वयण करत है। कहाव का अन्वयण दुःख का अन्वयण म कर अन्वयण है। कहाव के अन्वयण ममन्ता का अन्वयण विरुद्धता है अन्वयण पाठान्त ममन्ता अन्वयण का अन्वयण अन्वयण करत है और अन्वयण ममन्ता के विरुद्ध विरोध

से किसी यमुना अपने भाई का कान लिये बठी है। घमसघ के रूप में मानो प्रसाद न प्रमचद के सवासदना व प्रमाधमों की ध्यवता व धारतव की नग्न रूप में दर्शा दिया है।

प्रसाद के तितली' उप-यास में हम उनके द्वारा व्यक्ति व समाज के सघष व पर्याय चित्रण का घोर भी स्पष्ट रूप पाते हैं। समाज घोर ध्याक्त का सघष मान' मधुवन व एक वाक्य में ही मूक्त हो उठा है—'ससार पाजी है ता हम अकेल महात्मा बन कर मर जायेंगे।' मधुवन जानता है आज के समाज में अघाय का प्रतिकार करने के लिये शक्ति सपत्ति घोर सहाम (Push) की आवश्यकता होती है।

'तितली' में हम केवल भारतीय विमान के शोषण का ही चित्रण नहीं पाते प्रसाद ने इस उप-यास में इगलैण्ड व वानावरण की भी चित्रित किया है। लदन का चित्रण करते हुए वे लिखते हैं 'एक घोर मुग'व जल के पुम्बारे छूत हैं, बिजनी से घम कमरा में जाते ही काहे उतार देने की आवश्यकता होती है। दूसरी घोर पाले में चूतरो' के नीचे अघ नग्न दरिद्रा का रात्रि निवास'+ प्रसाद ने इगलण्ड के निम्न वग का चित्रण करके यह स्पष्ट बतना दिया कि समाज शोषक व शोषित वग में बटा है, चाहे इगलण्ड की बात हो या भारत की। तितली में उन्होंने सामाजिक वषम्य की अधिकतर अधिक कारणों का परिणाम बननाया है। अवश्य प्रसाद अथ प्रेम व पगपाती नहीं थे। इगलण्ड से लौट कर इन्द्रदेव ग्राम सुधार का प्रयत्न करते हैं तब कहते हैं "म तो अपने घम घोर मरुति से भीतर ही भीतर निराश हूँ। मैं सोचता हूँ कि मेरा सामाजिक वधन इतना विश्रल्ल हैं कि उसमें मनुष्य के ल डोंगी बन सकता है। आप लोग इतने दुखी हैं कि थाडी सी सहानुभूति मिलत ही कृता नाम की दासता करने लग जाते हैं। इससे तो अच्छी है पश्चिम की अधिन या भीतिक समता जिसमें ईश्वर के न रहने पर भी मनुष्य के लिए सब तरह की सुविधाओं की योजना है।" × तब इसके उत्तर में रामनाथ के शब्दों में मानो प्रसाद ही कहते हैं

'जनता को अथ प्रेम की शिखा देकर उसे पशु बनाने की चेष्टा प्रनथ करेगी। भारतीय आत्मवा' की मानसिक समता ही उसे स्थायी बना सकेगी। यात्रिक सन्धता पुरानो होते ही लीली हाकर बकार हो जायगी। उसमें प्राण बनाम रखने के लिये यावहारिक समता के ढाके या शरीर में भारतीय आत्मन साम्य की आवश्यकता कब मानव समाज समझ लेगा, यही विचारने की बात है। मैं मानता हूँ कि पश्चिम एक शरीर तयार कर रहा है, किन्तु उसमें प्राण देना पूष व प्राध्यात्म

+ जयशकर प्रसाद तितली, पृ० ३३७

× जयशकर प्रसाद वही, पृ० २४७

जाता है यही सबैत पयाप्त था किन्तु लेखक ने इससे आगे भी उद्गम वासना के चित्रण की आवश्यकता समझी। 'आत्म दाह' भिन्न रूप से यथाथ चित्रण प्रस्तुत करता है। व्यक्ति नियति का दास बन कर (नियति यथो कि इस उपन्यास में यक्ति के कष्टों का कारण सामाजिक परिस्थियाँ नहीं अतः भाग्य ही है) कष्टमय जीवन व्यतीत करता है और अतः मे सीखियों पर हम उसे रोटी के टुकड़ों के लिए कुत्तों से स्पर्द्धा करते पाते हैं। वंशाली की नगर वधू' विस्तृत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (६०० ई पू से ५०० ई पू) पर रची हुई यथाथवादी रचना है जिसमें वैदिक घम के प्रभुत्व और इतिहास के स्वर्णकाल में समाज के कुत्सित पक्ष का उद्घाटन किया गया है। गणतंत्र व सामन्ती राज्य आकण्ठ विलासिता में निमग्न थे। प्रायः सम्राट प्रसन्नचित्त क यहाँ भेड़ बकरियों की तरह सभी जाति की पत्नियाँ एकत्रित हैं वज्जीगणसभ का नियम है कि सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी जनपत्कल्याणी अथवा नगर वधू बनने के लिये बाध्य है ब्राह्मण व क्षत्रिय वर्गों ने अथ जातियों की स्त्रियों से उपभाग कर जिन सत्तानों को ज म दिया उनकी नवीन सकर जाति बन गई थी जिसने राजवंशों को चुनौती दी, दासों का विप्रय पशुओं की तरह हो रहा था—विशेष रूप से स्त्रियों का वासना की पूर्ति के लिए यत्ना की मोट में विलासिता, घन और अहंकार पनप रहे थे। अतः स्वामाविक ही है इन परिस्थितियों में बौद्ध धर्म के विरुद्ध जैन व बौद्ध धर्मों का विकसित हुमा 'वंशाली की नगर वधू विलासिता में अर्धे पुरुष समाज की पानविक वासना वृत्ति के विरुद्ध एक अर्निद्य सुन्दरी किन्तु असहाम नारी के विद्रोह की कहानी है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के सयासी (१९३१) नाटक में पाश्चात्य शिक्षा के रूप पर व्यंग्य किया गया है। किरणमयी व मालती के जीवन द्वारा उ होने पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव की दर्शाया है। आजीवन अविवाहित रह कर देश सेवा का यत्न लेने वाला मुरलीधर किरणमयी का कौमार्य गम करता है। मुरलीधर की मृत्यु के उपरांत किरणमयी बद्ध प्रोफेसर दीनानाथ के साथ रहती है किन्तु अपने मन के असंतोष के कारण प्राण त्याग देती है। नाटक में केवल स्त्री वर्ग पर ही व्यंग्य नहीं किया गया है आधुनिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षकों का चरित्र भी असंस्तृत व पतित बताया है। मालती का, सहपाठी विश्वनाथ के प्रति प्रेम खुलने पर प्राफेसर उत्सव बालेज से निष्वासन कर देता है किन्तु प्राफेसर स्वयं ही मालती पर अनुरक्त है। मालती के प्रेम में असफल होकर विश्वनाथ सयास ल लता है। विश्वनाथ व अफगानी अहमद 'एशियाई सभ' की स्थापना करते हैं। एशियाई सभ की स्थापना के मूल में पाश्चात्य शिक्षा पद्धति तथा गोरी जातियों द्वारा रगभेद की नीति का विरोध प्रकट हुमा है। नाटककार बुद्धिशील दृष्टिकोण को प्रदानता देता है। नाटक के पात्र अपने विगत जीवन की घटनाओं पर चिन्तन करते हुए इन निष्पत्त पर पहुँचते हैं कि जीवन में सफलता के लिए यह आवश्यक है कि भावुकता पूर्ण दृष्टिकोण का परित्याग किया जाय।

'राक्षस का मन्दिर' (१९०१) में मिश्रजी ने वेश्या-समस्या का चित्रण किया है तथा सम्य और शिक्षित समाज की छिपी हुई बुराईयों का अनावरण किया है। लेखक अपने दृष्टिकोण की अनाताले फ्रांस तथा टात्मटाय जैसे पश्चिमी लेखकों के मत से पुष्टि करता है। बड़ वकील रामलाल का अगरी वेश्या से संबंध है। उनका पुत्र रघुनाथ भी इस वेश्या से प्रेम करने लगता है। रघुनाथ का मित्र मनाहर जो शानिकारी है रघुनाथ को प्रभावित कर उसकी सारी सम्पत्ति वेश्या-मुन्धार के लिए मातृ-मन्दिर' खुलवाने में लगा देता है। किन्तु यह मातृ मन्दिर राक्षस मन्दिर के रूप में सामने आता है जहाँ अगरी वेश्या रहती है और ऊपर से सम्य दिखाई देनेवाला समाज यहाँ पतित जीवन यतीत करता है। जाज वनाड शॉ ने 'मिसज वारेस प्रोफेसन' में मिसज वारेस को वेश्या जीवन वितान के लिए इसलिये विवश बताया कि वह अपनी लड़की को सम्य व मुशिक्षित बनाने के लिये धन व्यय कर सके। राक्षस का मन्दिर' में वेश्या समस्या का आधार आर्थिक नहीं बताया गया है बरन् शिक्षित व सम्य लोगों की दूषित मनोवृत्ति पर व्यय किया गया है।

'मुक्ति का रहस्य' (१९३३) नाटक में मिश्रजी ने प्रेम में प्रतिस्पर्द्धा तथा उसके दुष्परिणामों का वर्णन किया है। उमाशंकर असहयोग-आन्दोलन के समय अपने पद से त्यागपत्र देकर दो वर्ष के लिए जेल जाते हैं। जेल से छूट कर आने पर वे आशा देवी नामक युवती के साथ रहने लगते हैं। उमाशंकर चाचा के श्रेण से उद्धार होने के लिए अपनी पत्नी सम्पत्ति उन्हें प्रदान कर देते हैं। आशा देवी उमाशंकर के मित्र डाक्टर त्रिभुवन की सहायता से उमाशंकर की पत्नी को जहर दे देती है। आशा देवी की इस दुःखता का लाभ उठा कर त्रिभुवन उसका कौमार्य भग कर देता है। आशा देवी आत्म ग्लानि से विधुव्य हो जहर खा लेती है। त्रिभुवन उसका उपचार करके उसे बचा लेता है और वह आशा देवी से क्षमा याचना करता है। त्रिभुवन के अन्त-यवहार से आशा देवी प्रभावित होती है। वह त्रिभुवन के साथ विवाह कर त्रिभुवन को व स्वयं को पतन से बचा लेना चाहता है। किन्तु इसके लिये वह उमाशंकर से अनुमति चाहती है। वह उमाशंकर को यह भी बता देती है कि उसकी पत्नी को उसी न विष दिया था तथा अब उसका त्रिभुवन के साथ संबंध संबंध था चुका है। उमाशंकर यह रहस्योद्घाटन होने पर व्यथित होकर पिस्तौल से आत्म हत्या करने का उत्तर हो जाते हैं किन्तु आशा देवी के आग्रह करने से वह मनोहर के प्रति वात्सल्य के कारण व आत्म हत्या करने से रुक जाते हैं। मिश्रजी ने इस नाटक में एक और स्वच्छंद प्रेम की असावधानी की ओर इंगित किया है किन्तु दूसरी ओर आशा देवी को त्रिभुवन के साथ विवाह संबंध में बधा कर भारतीयता

की रंगा की है। भारतीय नारी का हिन्दी भी पुष्टर व गाय जिस स्थिति में योन
सम्बन्ध हो जाता है वह उन्नी की जीवन रागिनी हास्य रहनी है। मिश्रजी ने इन्नी
मायता को 'मुक्ति का रहस्य' में प्रतिपादित किया है। भाशा देवी का उमात्रार की
अपन अयय सम्बन्ध के बारे में जातकारों द्वारा बुद्धिवादी दृष्टिकोण से
यथाथ समस्या का समाधान करना सूचित करना है। इस प्रकार, मिश्रजी व नाटका में
पूव व पश्चिम व विचारों का अयय सम्बन्ध पाया जाता है। मिश्रजी का कथन है
"बुद्धिवाद किसी तरह का ही किसी काटिका हो समाज या साहित्य की हानि नहीं
कर सकता, बुद्धिवाद में शुगर बोटेड कुनेन की अयय है ही नहीं वह ता तीक्ष्ण
सत्य है" X

मिश्रजी के 'सिन्दूर का होली' (१९३४) नाटक में सम्पत्ति के लिये भगवे,
विधवा विवाह एवं रिश्वतखोरी की समस्याओं को अंकित किया गया है। मजिस्ट्रेट
मुरारीलाल आठ सहस्र रुपया के लिए अपने मित्र की हत्या कर देता है किंतु इससे
उसका मन अनात रहता है और उसी की शांति के लिए वह उस मित्र के लड़के
मनोजशकर का लालन पालन करता है तथा इससे भी अधिक धन उस पर अयय
कर देता है। मुरारीलाल एक ऐसे व्यक्ति से चानास सहस्र रुपय रिश्वत नेता है जो
अपने पट्टीदार रजनीकांत की हत्या कर उसका धन हड़प जाता है। मजिस्ट्रेट
मुरारीलाल की कया चन्द्रकला रजनीकांत के चित्र को देख कर मन में अनेक संकल्प
विकल्प करती है और अंत में मृत रजनीकांत के हाथों से अपनी भाग में सिन्दूर
भर लती है तथा आज्ञा में अविवाहित रह कर अपने पिता से दूर रहती है।
मनोजशकर को भी यह बात ही जाता है कि मुरारीलाल ने धन के लिये उसके पिता
की हत्या की थी। प्रस्तुत नाटक में लेखक मुरारीलाल के रूप में उस समय समाज
के लोगों की दुष्प्रवृत्तियों का चित्रण करता है जो ऊपर से सम्य दिखाई देते हैं पर
द्विप कर नीच कृत्य करने में भी नहीं हिचकते हैं। नाटककार बुद्धिवादी दृष्टिकोण
से प्रेरित होकर इन गुण समस्याओं पर तीव्र भेदी प्रकाश डालता है।
वह किसी भी प्रकार की विकृति को अनदेखा नहीं करता। मनारमा के रूप
में नाटककार ने भारतीय नारी का समुज्ज्वल रूप प्रस्तुत किया है। वह विधवा
विवाह का विरोध करती है क्योंकि इससे तलाक की समस्या उत्पन्न हो जायेगी जिस
प्रेमी के मुख को भी उसने नहीं देखा उसके रूप की कल्पना कर वह उसे मन आलो
में बसाये है। मिश्रजी ने पश्चिम के बुद्धिवादी दृष्टिकोण को अपना कर उसमें भार
तीय आदर्शों को प्रतिष्ठित किया है।

मिश्रजी का 'भाषी रात' (१९३६) नाटक पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण
करनेवाली नारी पर अयय है। इसमें ऐसी नारी का चित्रण है जो पाश्चात्य सभ्यता

X लक्ष्मीनारायण मिश्र—'मुक्ति का रहस्य' (में बुद्धिवादी कयो भूमिका)

की नारी स्वतंत्रता की भावना से प्रेरित होकर पुरुषों के प्राधिकारों को ललकारती है किन्तु अंत में भारतीय नारी के आदर्शों की श्रेष्ठता उसके लिए स्पृहणीय बन जाती है। वह कहती है “अपनी आत्मा से, अपने हृदय से उन सभी सत्कारों को निकाल रही हूँ जिनका मोह इस जन्म में प्रबल रहा है। मैं चाहती हूँ जिस समय मैं मरने लूँ एक अषट गवार स्त्री रहूँ।” =

यद्यपि मिश्रजी इब्सन (Ibsen) की विचारधारा के बुद्धिवादी पक्ष से तथा उसकी रंगमंचीय कला से प्रभावित हैं किन्तु उन्होंने भारतीय सामाजिक आदर्शों की अपने नाटकों में स्थापना की है। यही कारण है उन्हें अपने नाटकों में भारतीयता की स्थापना के लिए सांस्कृतिक नाटक लिखने पड़े जिनकी विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव नहीं है। मिश्रजी के अतिरिक्त सेठ गोविन्ददास एव उपेन्द्रनाथ अशक ने भी समस्यात्मक नाटकों का प्रणयन किया है। सेठजी के नाटकों में राजनीतिक एव अशकजी के नाटकों में मध्यमवर्गीय सामाजिक समस्याएँ मुख्य हैं। रंगमंचीय शली की दृष्टि से सेठ गोविन्ददास एव उपेन्द्रनाथ अशक इब्सन या जाज बर्नार्ड शॉ से प्रभावित हैं किन्तु मिश्रजी की तरह व्यक्ति की समस्याओं का उनके नाटकों में समावेश नहीं हुआ।

(३) प्रयोगवाद

हिन्दी साहित्य में पिछले दस पाँचहू वर्षों (अथ पञ्चवीं) में नयीन काव्य प्रवृत्ति का विकास होने लगा है जिसे प्रयोगवाद (अथ नयी कविता) के नाम से परिचित किया जाता है। वस्तुतः प्रयोग' शब्द जमा कि इस वाद के प्रवर्तक अनेयजी का अग्रह था अपने व्यापक अर्थ में प्रयुक्त नहीं हो सका एव एक विशेष प्रकार की व्यक्तित्वता एव बौद्धिकता प्रधान शैलीगत काव्य प्रयोगों के लिए काम में लाया जाने लगा है। हिन्दी में प्रयोगवादी कविता का जन्म तार-सप्तक' के प्रकाशन (सन् १९४३) से माना जाता है। इस कविता-मग्रह के सम्पादक स० ही० वात्स्यायन अज्ञेय हैं। उनके सम्पादकत्व में 'दूसरा सप्तक' (१९५१) और हाल ही में 'तीसरा सप्तक' का इसी परम्परा में प्रकाशन हो चुका है। इन सग्रहों के अतिरिक्त प्रतीक" 'पाटल' "दृष्टिकोण" आदि पत्रों में प्रयोगवादी कविता को विशेष प्रोत्साहन दिया गया।

प्रयोगवाद वस्तुतः व्यक्तित्वता से संबंधित शैलीगत वाद है। अज्ञेय जी ने साधारणीकरण की समस्या को इस प्रसंग में उठाया है यह आज क कवि की सबसे बड़ी समस्या है। या समस्याएँ अनेक हैं—काव्य विषय की, सामाजिक उत्तरदायित्व की, संवेचना व पुन संस्कार की आदि किन्तु उन सब का स्थान इसके पीछे है क्योंकि वह कवि काव्य की मौलिक समस्या है, साधारणीकरण और (Comm

unication) (नियंत्रण) की समस्या है।" × अतः प्रयोगवादी कवि कविता को विषय में अधिक महत्त्व देते हैं। उनके सामने व्यक्ति के अनुभूत को समष्टि तक पहुँचाने का प्रश्न ही प्रधान है। इसके लिए ये भाषा का नया प्रयोग करते हैं। परन्तु प्रश्न है यह कविता—सा महत्तर व्यक्ति सत्य है जिग समष्टि तक पहुँचाना अभिप्रेत है। इस समय में 'तार-सप्तक' के सात कवियों के कृत्यों से कुछ पता नहीं लगता। इन कवियों में साम्यवादी एवं व्यक्तिवादी दोनों प्रकार के कवि सम्मिलित हैं। डा० रामविलास के 'किसान-कवि और उसका पुत्र' कविता में खेतों को किसान की तरह प्यार करने की भावना प्रकट होती है तो अज्ञेय के "सावन मेघ" में यौन-प्रतीकों की अभिव्यक्ति मिलती है। "तार सप्तक" के कवि किसी एक राजनैतिक मतवाद को माननेवाले नहीं हैं जीवन आदर्शों के प्रति भी उनकी भावनाओं में समानता नहीं मिलती। इसी से स्पष्ट है कि यह शैलीगत वाद है। परन्तु इस प्रकार के शैलीगत प्रयोगों का प्रगतिवाद से कोई अभिवाय संभव नहीं या अतः 'तार सप्तक' के प्रकाशन के कुछ समय बाद ही साम्यवादी विचारधारा को माननेवाले कवियों ने इस प्रयोगशीलता से अपना सम्बंध विच्छेद कर लिया।

डा० देवराज के अनुसार—'हिंदी प्रयोगवाद केवल युग से प्रभावित नहीं है, वह बहुत हद तक इलियट पाउण्ड आदि के अनुकरण में उपस्थित हुआ है।' + वस्तुतः किसी भाषा के साहित्य पर विदेशी साहित्य का प्रभाव प्रायः देर से पड़ता है। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् आंग्ल कविता का नेतृत्व इलियट व पाउण्ड के हाथों में आया था, युद्ध के स्वस से पीड़ित ससार ने कविता की आशाओं को खो दिया था तथा शांति की किरण वही नहीं दिखाई पड़ती थी। इलियट ने वेस्ट लैंड (Waste Land) (१९२२) में युग की अनास्था को वाणी दी। इलियट की निराशा भी स्वानुभूति प्रेरित न होकर चेष्टापूर्ण थी। भारत का युद्ध से द्वितीय विश्व युद्ध से भी निकट संवध नहीं रहा इस दृष्टि से कि युद्ध के बादल भारत का दरवाजा खटखटा कर ही चले गये। अतः युद्धजनित निराशा की वाणी प्रयोगवादी कविता में नहीं पायी जाती परन्तु, जैसे कि इलियट की कविता दुःख की उसी प्रकार प्रयोगवादी कविता का शैलीगत संस्कार स्वानुभूति प्रेरित न होकर चेष्टा जनित है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में—'एक गहन बौद्धिकता इन कवियों पर शीघ्र के अंत की तरह जमती जाती है। छायावाद के रंगीन कल्पना बंधन और सूक्ष्म तरल भावना चिंतन के स्थान पर यहाँ ठोस बौद्धिक तत्व का बोधीलापन है।'

× अज्ञेय (सपा) "तार सप्तक" प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली १९४३ पृ० ७५

+ डा० देवराज प्रयोगवादी कवि एक चेतावनी शीपक लेख
नई कविता प्रथम अंक

% डा० नगेन्द्र 'आधुनिक कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ' गीतम बुक डिपो, दिल्ली
सं० २००८ पृष्ठ १२०

द्वितीयतः प्रयोगवादी कवियों में प्रगतिवाद के 'समष्टि-सत्य' के विरुद्ध व्यक्ति-सत्य' की स्थापना का आग्रह पाया जाता है। इस आग्रह के मूल में साम्यवाद के अधिनायकत्व के विपरीत व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति पायी जाती है। प्रयोगवादी कविता पर मनोविज्ञान का प्रभाव भी गहरा पड़ा है। यौन-प्रतीकों की बहुलता, उलझी हुई संवेदना की अभिव्यक्ति, अतदशन एव शब्दों में अभिधाथ से अधिक अर्थ भरने की चेष्टा मनोविज्ञान के प्रभाव की दर्शाती है। प्रयोगवादी कविता में व्यक्तित्व की विशिष्टता एव क्षण की लघुता में आस्था पायी जाती है। नये कवि समष्टि जीवन के प्रति अपने उत्तरदायित्व का भी निभाने के लिए तत्पर जान पड़ते हैं कि तु अपनी व्यक्ति-विशिष्टता के आत्म गौरव के साथ

यह दीप अकेला स्नेह भरा

है गर्मी भरा भद्रमाता पर, इसकी भी पत्ति को दे नो

यह वह विश्वास नहीं जा अपनी लघुता में भी कापा

यह वह पीडा जिसकी गहराई को स्वयं उची ने नापा

जिनासु प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय इसको भक्ति को दे दो।

(अज्ञेय)

लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में 'उदीयमान नये कवि का स्वर उसके समक्ष अपने अकल्पित और अपनी व्यक्तित्व ग्रहण-यता को स्वीकार करते हुए अपनी आस्था को प्रतिष्ठित करने के प्रति जागरूक है।' X

परंतु इस आस्था का समष्टि जीवन से कोई संबंध नहीं दिखायी देता। प्रयोगवादी कवियों की विचार धारा अत्यंत अस्पष्ट और घूमिल है। इस दृष्टि से उनके प्रयोगों का मूल्य केवल एक प्रवृत्ति के रूप में भी अधिक काल तक नहीं ठहर सकता। वस्तुतः इन नवीन काव्य प्रयोगों की अपेक्षा युग का युद्ध जन्म उत्पीडन दिनकर के 'कुच्छेत्र' अथवा घमवीर भारती के "अथा युग" प्रबंध काव्यों में अधिक सबलता से व्यक्त हुआ है।

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् योरूप में ज्या पात्र सात्र का अस्तित्ववाद का दर्शन अपनी अनास्था मूलक प्रवृत्ति के कारण आकषक हो गया था। प्रयोगवाद के प्रवक्त अज्ञेय के "नी के द्वीप" उपन्यास में इस दर्शन की प्रेरणा मिलती है।

X लक्ष्मीकांत वर्मा 'नयी कविता के प्रतिमान', भारती-प्रेस प्रकाशन इलाहाबाद पृष्ठ ५४

अस्तित्ववाद (Existentialism) का प्रभा

अनास्था की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति

सामयिक पाश्चात्य साहित्य, विशेषतः द्वितीय महायुद्ध के बाद के साहित्य में अस्तित्ववाद (Existentialism) के जीवन वस्तुवाद (Sur-realism) के खण्डित चेतना के मनोविज्ञान का उल्लेख से पाया जाता है। निवनाारायण राय ने अपने निबन्ध 'द फार्मलिटी चर,' में लिखा है "अस्तित्ववाद" के ऊपर के मनोविज्ञान तथा अर्थव्यवस्था ने मानव-जीवन के बहुधा अंश को घेर लिया है। इनका उद्देश्य है अस्तित्ववाद के प्रवर्तक तक ही सीमित नहीं रहा है। नवयुग का कोई भी प्रमुख कलाकार इन प्रभावों से अपने को मुक्त नहीं है।" × सामयिक हिन्दी साहित्य में भी अस्तित्ववाद ही वही मनोविज्ञान की वलागत सम्भावनाएँ प्रतिफलित हुई हैं।

अस्तित्ववाद (Existentialism) पश्चिम का प्राचीन दार्शनिक आरम्भ ग्रीक दार्शनिकों से ही माना जाता है। अस्तित्ववाद दार्शनिक आदर्शवाद (Objective Idealism) की परम्परा का विरोध कर (Subjective) के सत्य को अपनाता है। उन्नीसवीं सदी में बहिर्मुखिता थी अतः उसके विरोध में अस्तित्ववाद आधुनिक दर्शन प्रतीत होता

आधुनिक युग में भी अस्तित्ववाद की दो शाखाएँ पायीं जिनका नाम कार्ल यास्पर्स (Karl Jaspers) और गैब्रियल मार्सेल (Gabriel Marcel) अस्तित्ववाद जो मनुष्य के आदिम पाप (Original Sin) को उसका कारण मानता है। आदिम पाप के कारण मनुष्य का अस्तित्व सामान्य का रूप है उसे अलग एकाकी ही गया है तथा सामान्य से भिन्न उसकी विशेष (Particular) स्थिति ही उसकी ऊँचता का कारण है। ईसाई अस्तित्ववाद धार्मिकता व रहस्यवात्मकता छोड़ देता है। इसमें अस्तित्ववाद की दूसरी शाखा नास्तिकता में ऊँचता का भाव मनुष्य जाति के प्रति उत्तरदायित्व की भावना से उत्पन्न की आन्तरिक सत्यता को वह स्वयं सिद्ध स्वीकार कर लेते हैं। अस्तित्ववाद के मुख्य प्रवर्तक मार्टिन हेइडेगर् (Martin Heidegger) तथा जमा पात्र (Paul Sartre) हैं। उनकी लोक-प्रियता की श्रेय मात्र को ही है। नवनामकवाद के युग में दर्शन-शास्त्र की पुस्तकों से बाहर मात्र ने अस्तित्ववादी स्वतंत्रता के दर्शन के रूप में अपने नाटकों, उपन्यासों, मनोविज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकों, होटलों में होनेवाले विवादों आदि के द्वारा लोकप्रिय

युद्ध पीडित योद्धा की तत्कालीन मानसिक स्थिति में सात्र का अस्तित्ववाद वहा की जनता द्वारा अपनाया जाना स्वभाविक था जिसमें अनास्था पीड, सबमाय विश्वास के अभाव में व्यक्तिगत खोज ही प्रमुख तत्व थे। सात्र का अस्तित्ववाद युद्ध-पीडित ससार की मानसिक स्थिति के इतना अनुकूल है कि शीघ्र ही फ्रांस से वह सारे योरूप तथा यीरूप से बाहर के देशों में भी लोकप्रिय बन गया।

सात्र का अस्तित्ववाद मूलतः स्वतंत्रता का दर्शन है। अधिनायकवाद के युग में सात्र ने स्वतंत्रता की रक्षा का उत्तरदायित्व पूरा करने के कर्तव्य पर रखा। अस्तित्ववाद का मूलाधार यह सिद्धांत है कि मनुष्य का अस्तित्व सार रूप से पहले है (Existence precedes Essence) मानव इतिहास पूर्व निर्धारित तथ्य नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्व स्वतंत्रता को लेकर है। अपने जीवन के लिए जीवन को किस रूप में वह जीता है इसके लिए व्यक्ति स्वयं उत्तरदायी है। व्यक्ति का जीवन स्वयं उसके नियमों या चुनावों का परिणाम है। मनुष्य की प्रकृति भी किसी रूप में निश्चित नहीं है। मनुष्य के कार्यों का सफलता ही उसकी प्रवृत्ति है। इस प्रकार मनुष्य का अस्तित्व उसके सार-रूप से पहले है।

मनुष्य विकल्पों के समार में रहता है—यह या वह, उसके सामने सदैव एक से अधिक रास्ते रहते हैं और किसी एक रास्ते को उसे अपनाना होता है। अपने नियमों के सही होने का उसके पास कोई विश्वास नहीं है। फिर भी ऐसा नहीं हो सकता कि वह नियम न ले। यह नियम चुनाव या वरण ही उसका अस्तित्व है। उसका अस्तित्व तो स्वतंत्रता को लेकर है किंतु यह स्वतंत्रता नियमों लेने के प्रति अक्षम्य बनने की स्वतंत्रता नहीं देती। नियम न लेने का भी उसके अस्तित्व को नियम लेना होगा।

एक व्यक्ति का नियम केवल उस व्यक्ति का नियम नहीं है, उसकी ओर से वह समस्त मानवता के लिए नियम है। व्यक्ति का नियम दूसरों को प्रभावित करता है। व्यक्ति का अपना नियम मानव अस्तित्व को उसकी देन है। वह मानवता के भाग्य का निर्माता बनता है।

परंतु अपने छोटे-छोटे कामों द्वारा मानवता के भाग्य निर्माण की भावना उस पर व्यर्थ उत्तरदायित्व का बोझ बन कर झूलती है जिससे उसके लिए छुटकारा नहीं है। यह उसकी ऊब या व्यथा का कारण है।

पर एक कारण और है। वह कि मनुष्य की कोई निश्चित प्रकृति नहीं है अतः एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से वास्तविक सम्पर्क नहीं है। अतः व्यक्ति अकेला है—सब। अकेला नियम या वरण के बिना उसका अस्तित्व नहीं है। वरण सही होने का उसके पास विश्वास नहीं है। उसका नियम अन्य व्यक्तियों के भाग्य को प्रभावित करता है जिनसे उनका वास्तविक सम्पर्क सम्भव



केवल समय है, सत्य तभी है जब भीतर से उद्भूत हों।" * रेखा एक और दूसरे एक व्यक्ति जीवन को ही सत्य मानती है। सम्पूर्ण अथवा मानवता का भाव उसकी दृष्टि में युक्ति सत्य ही है अपने आप में कुछ नहीं, केवल एक काल्पनिक योगफल। गौरा भी अस्तित्ववाद की व्यक्ति मूलक स्वतन्त्रता के लिए अपने को ट्रेन करती है। चन्द्रमाधव के पारुष्यवास के समय वह उसे एक पत्र में लिखती है, "स्वाधीनता केवल सामाजिक गुण नहीं है। वह एक दृष्टिकोण है व्यक्ति के मानस की एक प्रवृत्ति है। हम कहते हैं कि समाज हम स्वाधीनता नहीं देता, पर समाज व कसे ? हमी तो अपने दृष्टिकोण से समाज बनाते हैं। मैं अपने आप को बद्ध नहीं मानती हूँ और स्वाधीनता के लिए अपने मन को ट्रेन करती हूँ।" X गौरा की पढाई समाप्त हान के बाद उसका विवाह का प्रश्न उठने पर जब वह भुवन को बुलाती है तो भुवन का उत्तर कि अतत नियम की उत्तरदायी वही है, वह विवाह न करने का नियम लेती है। 'शेखर एक जीवनी' में भी जेल से शेखर ने शशि को स्वयं नियम लेने को लिखा था तब शशि ने आत्म बलिदान का पय चुना पर नदी के द्वीप की गौरा, (भुवन ने जिस माता पिता की भक्ति को स्वाधीन जीवन की अपात्रता का प्रतीक बताया के विरुद्ध व बाद में विरोध न होने के कारण इतना विरुद्ध भी नहीं) स्वाधीन नियम लेती है। रह जाता है केवल एक पात्र चन्द्रमाधव जो अस्तित्ववाद की स्वतन्त्रता के विरोध में हमारे सामने आता है। वस्तुतः अस्तित्ववाद को विवेच्य स्वाधीनता साहसी का धम है। पर उस साहस का माहा चन्द्रमाधव में नहीं है। अपनी विवाहिता पत्नी से असन्तुष्ट इसलिए कि वह विवाहिता है, वह रेखा की और उन्मुख होता है। पर उसकी वासना ही निराशा का कारण बनती है। रेखा से निराश गौरा की और उन्मुख होता है पर असफल ही रहता है। अपने कुण्ठित व्यक्तित्व का दयनीय रूप लेकर वह अन्त में कम्बुनिष्ठ बन जाता है और भुवन के अनुसार "वन मोर ट्रायम्फ फार डेविल्स एंड सारी फार ए जेक्स" सिद्ध होता है। वह अस्तित्ववाद की भाषा में आत्म-वचना (Mauvaise foi) में पूरा जीवन का उदाहरण है।

जीवन एक बार का वरण नहीं है वह अनन्त वरण है प्रत्येक क्षण हम स्वीकार और परिहार करते चलते हैं। ✓

'कर्म को जड़ करना मैंने छोड़ दिया है भीतर से जो प्रेरणा है—अगर उसके साथ ही पाप का बोध जुड़ा नहीं हुआ है तो वही ठीक है वही नतिक है। यह नतिकता अंधूरी ही मन्त्री है—पर इगलिए कि उस दन वाला व्यक्तित्व अंधूरा

* अन्वय वही, पृष्ठ ३-५,

X वही, पृष्ठ ७०

✓ वही पृ १३

है। उस व्यक्ति की तो वह सर्वोच्च रचना है—उनी की कल्याणकामी, कल्याण प्रद सम्भावनामा की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति ।”*

‘जीवन के सारे महत्वपूर्ण निष्पन्न व्यक्ति प्रयत्न में करता है, सारे दद प्रकृति भोगता है—प्रौर तो प्रौर, प्यार के चरम आत्म समपण का सबसे बड़ा दद भी मिलने में जो विरह का परम रस होता है तुम जानते हो उसे ? समपण के घघकते क्षण में जब यह पान चीत्कार कर उठता है कि हम मलग ही हैं देना सम्पूर्ण नहीं हुआ, कि मिटने में भी मैं हूँ तू तू है मैं तू नहीं हूँ—प्रौर हमारी माग बाकी है— इतना अभिन्न मिलन क्या हो सकता है कि माग बाकी न रहे ?” X

उपयुक्त उद्धरण व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखते। अस्तित्ववाद के पूर्व विवेचन के साथ यह रस कर पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है—‘नदी के द्वीप’ में अस्तित्ववाद की विचारधारा ही अतः सलिला की तरह बह रही है। वही यक्ति का प्रकृतिपन, वरण की अनिवायता, वरण में सही होने का अनिश्चय और एक से दूसरे के पूर्ण अनिष्ट की असमाप्यता तथा इनके सम्मिलित प्रभाव जय उत्पन्न ऊब या व्यथा की अनुभूति मात्र के अस्तित्ववाद व अज्ञेय के ‘नदी के द्वीप’ उपन्यास की विचारधारा के समान तथ्य है। किंचित् सा भेद यही है, जब कि सात्र की ‘ऊब’ या ‘यथा’ का भाव अभिश्रित है, अज्ञेय उस व्यथा में भी मान्य भाव की अवस्थिति देखते हैं क्योंकि यह ‘यथा’ आत्म वरण है। रेखा का प्रेम भुवन के प्रति समर्पित है। रेखा का पति हेमेट्र प्राने वाले जीव को लायना दे सके, यह रेखा के लिए असह्य बन जाता है। तब वह स्वयं ही भ्रूण हत्या करा लेती है जिसकी व्यथा में भुवन का जीवन ही अनमना हो गया है। पति से तलाक के बाद रेखा भुवन का अनमनापन पहचानती है पर वह भुवन के प्रति गौरा की भावना जानती है और जानती है गौरा भुवन को सुखी भी रख सकेगी। तब डाक्टर रमेशचन्द्र द्वारा विवाह का प्रस्ताव किये जाने पर रेखा उसे स्वीकार कर लेती है यद्यपि भुवन से गम स्थापन व गम निपात की बात कह देती है। अस्तु, यह आकस्मिक नहीं है कि ‘नदी के द्वीप’ में भुवन रेखा को दब कर उसके चरित्र की सात्र की नायिका के रूप में अपनी मानसिक कल्पना में सगति बैठाता है। सात्र के नाटक ‘उपन्यास और कहानियाँ के पात्रों की तरह अज्ञेय के ‘नदी के द्वीप’ के पात्र भी गत्यात्मक हैं तथा सतत स्वप्ररित कार्यों द्वारा अपने पुनरोद्भव में सलग्न हैं। अज्ञेय के अपने अपने अजनबी’ तथा कतिपय अन्य हिन्दी उपन्यासों में अस्तित्ववादी दृष्टि के नये आयाम प्रकट हुए हैं किन्तु वे दृष्टियाँ प्रस्तुत अध्ययन की काल-मीमा में समाविष्ट नहीं होनीं।

* वही पृष्ठ २३८

X वही, पृष्ठ २३९

उपसंहार

आधुनिक हिंदी साहित्य की विचारधारा के विकास के मूल में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य पाश्चात्य विचारधाराओं का प्रभाव है। हिंदी साहित्य की इस युग की विभिन्न प्रवृत्तियाँ पाश्चात्य सभ्यता के प्रति हमारे देश की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को प्रकट करती हैं। इतिहास-ग्रम के अनुसार पाश्चात्य सभ्यता के प्रति भारते दु युग में तत्कालिक प्रतिक्रिया, द्विवदी-युग में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से सतुलन, छायावाद के विकास के समय पश्चिम के प्रति नैकट्य का अनुभव एवं मुक्त प्रभाव ग्रहण तथा प्रगतिवाद मनाविश्नेयण धारा आदि विविध वादों के युग में पश्चिम के विविध रंगों के ग्रहण की प्रवृत्ति पाई जाती है। हिंदी साहित्य की धारा एक अविरल प्रवाह है, उसकी विभिन्न विचारधाराएँ अथवा प्रवृत्तियाँ प्रवाह में उठने वाली लहरियाँ हैं, पाश्चात्य प्रभाव एक प्रकाश स्तम्भ के सदृश है जिसने विभिन्न रंगों की किरणें विकीर्ण होकर प्रवाह में उठनेवाली लहरों को विभिन्न रंग प्रदान कर दी हैं।

भारते-दु-युग के साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ धर्म-निषेधता, समाज-सुधार, सामंती तत्वों का विरोध एवं देश भक्ति की भावना हैं। इस युग में पाश्चात्य सभ्यता के ऐहिकतापरक रूप के कारण आध्यात्मिकता के बदले लौकिक समृद्धि की भावना का उदय हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र व बालकृष्ण भट्ट ने भक्ति व वेदांत-दर्शन की अकमप्यता फैलानेवाला बतलाया। आध्यात्मिकता का स्वर मन्द पड़ने लगा। प्रतापनारायण मिश्र ने चराम्य की भावना की उपेक्षा कर ईश्वर से देश-कल्याण की याचना की। दूसरा परिवर्तन तरकानीन धार्मिक अवस्था में सुधार की माँग के रूप में प्रकट हुआ। ईसाई मिशनर भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करते समय हिंदुओं की धार्मिक बुराईयाँ की घोर व्यापारक इ गित करते थे। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप हिंदुओं के धार्मिक संस्थाओं में सुधार की आवश्यकता अनुभव की गयी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा प्रतापनारायण मिश्र ने मंदिरों में व्याप्त व्यवहार के विरुद्ध लिखा। भारत दु की 'प्रेमयोगिनी' नाटिका में तीर्थों में व्याप्त पंडितों के दुराचरण का रहस्योद्घाटन किया गया। धर्म की भाँट में मंदिरों पान, मांस भक्षण तथा इद्रिय भोग की कुप्रवृत्तियों को रोकने पर इस युग के साहित्यकारों ने लक्ष दिया। यह प्रवृत्तियाँ अंग्रेजों के अंधानुकरण से अत्यधिक फल रही थीं। भारतेन्दु ने 'यदिकी हिंसा हि सा न भवति' ग्रहण में 'ग्रहण समाज की भी इहीं प्रवृत्तियों के कारण निन्दा की। भारतेन्दु तथा प्रतापनारायण मिश्र ने धार्मिक उत्सवों पर होनेवाली पशु बलि के भी विरुद्ध लिखा। बालकृष्ण भट्ट व राधाचरण गोस्वामी ने धार्मिक अंध-विश्वासों व जाति-पाति के भेद भाव का विरोध किया। धार्मिक मत-मतांतरों से परे भारतेन्दु-युग के लेखक प्रेम की ही धर्म का मूल-तत्व मानते हैं जिस पर सम्भवतः ईसाई धर्म की प्रेम भावना का प्रभाव प्रतिफलित हुआ है। भारतेन्दु युग के साहित्य में समाज सुधार का मूल स्वर नारी स्वातंत्र्य की भावना है। भारतेन्दु की पश्चिम की नारी जाति की स्वतंत्रता से इस

सम्प्रदाय में प्रेरणा मिली थी जिसे उन्होंने 'वीनोवी' की भूमिका में स्वीकार किया है। गरीब जाति की हताशता के लिए इन युग के लेखकों ने श्रेष्ठ वर्ग प्रथा व बाल विवाह का विरोध तथा विरोध विवाह का गमपन किया। इन युग के साहित्य में परिष्कृत गमपन के साथ ही उन्नत श्रुतियों तथा पण्डित मण्डल, प्रांग मण्डल श्रुतियाँ, जुधा धर्मिकार श्रुति के विरुद्ध निगा गया। भारतगु युग के लेखकों द्वारा धर्मन में धार्मिक शासन का स्थापन किया गया तथा उन्होंने मुसलमानी धर्मकारों से सतोंप की मांग ली। भारतगु हरिषण बन्दीनारायण चौधरी प्रेमधन' प्रतापनारायण मिश्र की कविताया तथा भारतगु के मीनिकर 'नीलेश्वरी', राधाचरण गोस्वामी के 'धर्मरसिंह राणोठ' व 'सती चण्डाली' नाटकों में मुस्लिम विरोधी भावनाएँ पाई जाती हैं। भारतगु 'बाणसाहस्यण' में धर्मन शासन की सुराईयों को स्वीकार करते हुए भी उन्हे धर्मकारों मुस्लिम शासन से श्रयस्कर मानने हैं। किन्तु भारतगु युग की मुस्लिम विरोधी भावना विगत युग के मुस्लिम शासन के धर्म्याचारों की भ्रमना तथा विरोध की साक्षिक स्थिति तक ही सीमित है। ब्रिटिश शासन द्वारा किये जाने वाले धार्मिक शोषण व राजनतिक पराधीनता की चेतना जगने पर भारतगु युग में ही हिन्दु मुस्लिम एकता का स्वर छेड़ा गया। १८५७ के विद्रोह के सम्प्रदाय में भारतगु युग के लेखकों का दृष्टिकोण धर्मियों के प्रति राजमन्त्रि-पूण ही था। उन्होंने उन्हे राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के रूप में न देख कर मृत सामन्तवाण के धर्म व रूप में देखा। इस धारणा की पुष्टि भारतगु की सामन्तवाद विरोधी प्रवृत्ति में भी होनी है। 'अधेर नगरी' विषय विषमोपधम्' दिल्ली दरबार दपण 'लेवी प्राण लेवी' आदि में भारतगु ने देशी नरेशों की सांस्कृतिक हीनता व वायरपन की भीठी चुटकिया ली हैं। गदर के पश्चात् महारानी विक्टोरिया की घोषणा से जिसमें भारतीय प्रजा पर पुत्रवत् शासन करने का आश्वासन दिया गया था भारतगु युग के साहित्यकारों में नवीन आशाओं का संचार हुआ। भारतगु ने बहुत सी कविताओं में अधर्मी राज परिवार के लोगों के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए देश की दुब्यवस्था की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। बंगला कवि हेमचन्द्र बनर्जी की एक कविता का भावानुवाद भारतगु की भारत भिक्षा कविता इसी भावना से पूण है। पर भारतगु युग के साहित्यकारों की भाषा शीघ्र ही निराशा में परिणत हो गई। इंग्लैण्ड की पालिय मण्ड में कजरवेटिव दल के स्थान पर लिबरल आने पर भी वह आशा पुन फलवती न हो सकी। भारतगु युग के साहित्य में धर्मन शासन का सर्वांगिक विरोध देश के धार्मिक शोषण के कारण पाया जाता है। भारतगु ने भारत दुदशा व 'अधेर नगरी' नाटकों तथा बन्दीनारायण चौधरी प्रेमधन' ने 'हृषीकेश' कविता में धर्मन शासन के धार्मिक शोषण का विरोध किया। इस युग के लेखकों ने विदेशों से आनेवाले माल पर आयात कर लगाने की मांग की ब्रिटिश सरकार द्वारा लगे गये अधगान व अधीसीनिघा युद्धों के खर्च का बोझ भारत पर लाद कर युद्ध-काल व टक्कत लगान का विरोध किया एवं

की धार्मिक दुःशा का चित्रण किया। भारते-दु-युग के लेखकों में तीव्र विरोध मानवना जगने के अग्र्य मनोवैज्ञानिक कारण अग्रजों की रगभेद नीति, भारतीयों स्वतंत्रता का अग्रहरण व हिंदुओं के धार्मिक विश्वासों की शासकों द्वारा उपेक्षा करना था। भारते-दु हरिश्चन्द्र तथा बन्दीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने भारतीयों को 'बाला' कहने पर अग्रजों के प्रति व्यंग्य किया। प्रतापनारायण मिश्र ने अग्रजों को भारतीयों से न मिलने के व्यवहार की आलोचना की। भारते-दु हरिश्चन्द्र प्रतापनारायण मिश्र बन्दीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' आदि ने आम्स एक्ट व प्रेस एक्ट का विरोध किया। भारते-दु युग के लेखकों में राजनैतिक चेतना का आरम्भिक संस्फुटन पाया जाता है। इस युग के लेखकों ने देश के औद्योगिकरण विदेशी माल का बहिष्कार कर स्वदेशी को अपनाने हिंदु मुस्लिम एकता इस्लाम की पालियामण्ट में भारतीय प्रतिनिधि भेजने आदि विचारों का समर्थन किया। प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी तथा बन्दीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यक्रम का भी अपनी रचनाओं द्वारा समर्थन किया। पार्श्वत्य सम्प्रदाय के तत्कालिक प्रतिनिधि स्वरूप भारतीय संस्कृति की रचनात्मक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर सांस्कृतिक पुनर्जायन के अग्रजों में प्रकट हुए।

पार्श्वत्य सम्प्रदाय के प्रति तत्कालिक प्रतिक्रिया के पश्चात् द्विवेदी युग के साहित्यकारों में नवजागत सम्प्रदाय से अनुभव स्वीकार करने की प्रवृत्ति गयी जाती है जिसके परिणामस्वरूप मानविक गठन में नया परिवर्तन दृष्टिगत होता है। इस युग की मुख्य चार विचारधाराएँ बुद्धिवाद मानववाद, राष्ट्रवाद एवं स्वच्छन्दवाद हैं। बुद्धिवाद पश्चिम की प्रमुख विचारधारा है जिसने धार्मिक अंधविश्वासों व बाह्याङ्गियों का अन्त कर सत्य के पान का माग खोला था। बुद्धिवाद की सबसे तीव्र प्रतिक्रिया धार्मिक क्षेत्र में पायी जाती है। भारते-दु युग की धर्म निर्देशता एवं धार्मिक सुधार की भावना द्विवेदी युग में बुद्धिवाद की प्रवृत्ति के रूढ़ि म विकसित हुई। इस युग के साहित्यकारों ने परलोक के बन्ने इन्होकर की संपत्ति की अधिक महत्त्व दिया। श्रीधर पाठक व रायकृष्णदास के काव्य व गद्य गीतों में लालकैला व रवी द्रनाम के प्रभावस्वरूप परलोक के बदले इन्होकर के प्रति प्रेम व विश्वास की भावना मिलती है। मूर्ति पूजा व मत-मतांतरा की कट्टरता के बन्ने भक्ति एक सामान्य आध्यात्मिक प्रवृत्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुई। यह बुद्धिवाद का ही प्रभाव था कि इस युग के मैथिलीशरण गुप्त व हरिऔध जैसे साहित्यकारों ने जहाँ एत आधोर प्रवृत्तियों में अग्रजों के विश्वास को किसी प्रकार के हेतुवाद (Rationalisation) से बचाये रक्ते हैं वहाँ व अग्रजों के चरितनायक ईश्वरदास वठारों की जीवन प्रवृत्तियों से प्रतिगहन प्रवृत्ति को हटा कर जगम स्वभाविकता का समावेश करने के लिए पूरा सचेष्ट प्रयास देने हैं। मैथिलीशरण गुप्त के राम व हरिऔध के कृष्ण प्रवृत्तियों से संपन्न नहीं है वरन् मानवी शक्तियों के संचालन ही संचालन प्रयास देते हैं। बुद्धिवाद का दूसरा प्रभाव यह हुआ कि काव्य में

वल्लिण चरित्रों को सामान्य मान्यता की भूमि पर विनित किया जाने लगा तथा सुरे जो प्रतिपाद्यत य सम्पूणत बुरा नहीं माना गया । बगला कवि मधुसूदन दत्त त्रिदशने स्वयं पाश्चात्य कवियों की काव्यधारा में प्रवेश करने विद्या था क काव्य के माध्यम में यह प्रवृत्ति मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में विरसित हुई । गुप्तजी का रायण राम से भी अधिक सद् य चित्रित किया गया है तथा ककयी के चरित्र की रक्षा करने के लिए उन्हें मयरा की जीम पर स्वयं स सम्भवती को बुला कर नहीं बैठता । पहा बरन् मनोयोगानिक आधार अपनाया गया है । बुद्धिवाक् के प्रभावस्वरूप धार्मिक क्षेत्र में एत समय प्रवृत्ति प्रतिशय चारित्रिक नैतिक मान्यता का समावेश हुआ । भारतीय जीवन में मध्ययुग की कुत्सित विलासिता न पौराणिक ईश्वरावतारों को भी विलासिता के ऐसे रंग में चित्रित कर दिया था कि निम्न विचार भी साधारण मनुष्य की बुद्धि के लिए कुत्साजनक बन गया । नवयुग की बुद्धिमानी प्रवृत्ति स प्रेरित होकर हरिप्रोष 'प्रिय प्रवास में कृष्ण के चारित्रिक लक्षण को दूर करने के लिए प्रत्यधिक सचेष्ट दिखाई देते हैं । बुद्धिवाक् की प्रेरणा से पौराणिक कथाओं को भी प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया । द्विवेदा युग की दूसरी विचारधारा मानववाद है जिस पर प्रासिद्धी दार्शनिक काम्ने के पाजिटिविस्ट दशन तथा टर्की साम्राज्य के पतन के कारण सब इस्लामवाद के प्रसार से भारतीय मुसलमानों में उत्पन्न जागृति का प्रभाव है । मानव सेवा को ही ईश्वर सेवा मानने की पाजिटिविस्ट दशन की धारणा द्विदी में विवेकानंद अरविन्द व रवीन्द्र नाथ टगोर के माध्यम द्वारा बगला से आई । रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय के काव्य का केन्द्र मानव सेवा भावना है । 'मिलन' की नायिका विजया तथा 'प्रिय प्रवास' के राधा और कृष्ण मानव सेवा आदर्श को ही जीवन में अपनाते हैं । मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद व मुकुटधर पाण्डेय की स्फुट कविताओं में ईश्वर सेवा के बदले मानव सेवा का महत्व दर्शाया गया । लोकसेवा को जीवन आदर्श के रूप में अपनाने में गांधीवादी विचारदर्शन का भी सचेष्ट प्रभाव रहा किन्तु, स्वयं गांधीवादी विचार दर्शन विभिन्न पाश्चात्य प्रभावों से अनुप्रेरित था । मानव सेवा को जीवन आदर्श मानने से दीन दुखियों के प्रति सहानुभूति का भाव जगना स्वाभाविक था । महावीर प्रसाद द्विवेदी मैथिलीशरण गुप्त व प्रेमचंद उद्दू साहित्य में प्रतिबिम्बित भारतीय मुसलमानों की जागृति जो सब इस्लामवाद के प्रसार का परिणाम थी से समाज सुधार की ओर प्रेरित हुए । समाज सुधार के क्षेत्र में भारते-दु-युग से चली आनवाली नारी उत्थान की प्रवृत्ति का द्विवेदी-युग में और प्रसार हुआ । राजनतिक सघष में महात्मा गांधी द्वारा नारी का योगदान आवश्यक बतलाने पर नारी उत्थान के प्रयत्नों को बल मिला । हिन्दी लेखकों ने नारी को केवल घर की सीमा में ही बंधी नहीं देखा बरन् उन्होंने उसकी सामाजिक स्थिति का उठाने की ओर ध्यान दिया । अत स्त्री शिक्षा की आवश्यकता बतलायी गयी । फिर भी उन्होंने भारतीय संस्कृति की रक्षणार्थक

प्रभृति से प्रेरित होकर तन्नाम की पदा का प्रयत्न बुरा बताया। नारी में पति
 पन घम क पालन की छाया है। रंगोवाले पुण्य समाज ने स्वयं परतीव्रत पालन क
 महत्व को दर्शाया। शिव-नीतरण गुप्त ने साकेत तथा हरिषीय ने बहरी-वावात
 म एक पनीव्रत भाव का आत्म महिमागित किया। प्रेमच- ने तथा सन्म' म
 वेस्यावृति क मौलिक कारणों को गोजने हुए उम सामाजिक व्यवस्था की बुराई
 तथा नारी के प्रति पुण्य समाज क अत्याचार का परिणाम बताया। द्विपदी-युग क
 साहित्य म नारी की उच्चता की भावना अभिव्यक्त हुई है। नारी केवल पुण्य की
 सहयोगिनी ही निहित नहीं की गयी है वरन् उसे भावमयतानुसार पुण्य का कर्तव्य
 सुभानेवाली प्रेरक शक्ति रूप में प्रतिष्ठित किया गया। नारी का त्याग पुण्य के त्याग
 स महानतर बताया गया। 'साकेत' की उमिना, 'यशोधरा' की गोपा 'प्रिय प्रवात
 की राधा अपने त्यागमय रूप में भव्य हैं। सद्मण, मिठाय और कपल
 का त्याग इन महिलाओं के त्याग के सामन कीजा गिवाई दता है।
 मानवदानी भावना समाज-गुहार की धारणा और राष्ट्रीय-चेतना की
 आवश्यकता क कारण प्रह्लोदार और कितानो की दयनीय दशा क चित्रण
 की प्रवृत्ति का भी स्फुरण हुआ। द्विपदी युग की तीव्र विचारधारा
 राष्ट्रीयता की है जिस पर पाश्चात्य प्रभाव की छाप गहरी अंकित हुई है। आधुनिक
 राष्ट्रीयता का भाव सामान्य देश-प्रेम की भावना से भिन्न अपने दश को अ-य देश
 से अलग व अछेठ समझने एव किसी भी बाह्य शक्ति की आधीनता स्वीकार न करने
 के रूप में पश्चिमी राष्ट्रों म पोप के धार्मिक आधिपत्य को समाप्त कर विकसित हुआ
 था। एक मिल आदि अ प्रोजेक्ट के अध्ययन रूप पर जापान की विजय, रूप
 की अन्वयन शक्ति की सफलता आदि अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं, मैक्समूलर, शापेन-
 हॉर शेटे, कनल टाड प्रभृति पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत प्राचीन भारतीय
 संस्कृति के अध्ययन, फ्रांसिसी आशानिक काम्ते क पाजिटिविस्ट दशन क अनु रूप मांस्कु-
 तिक विमिष्टता की देन सम्बन्धी विचारधारा आदि के सम्मिलित प्रभाव तथा अ प्रेजी
 साम्राज्य के विरुद्ध राजनतिक आन्दोलन के परिणामस्वरूप हमारे देश में राष्ट्रीयता
 का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिक हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना तीन रूपों में
 पाई जाती है। हिन्दी की राष्ट्रभाषा रूप म प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्न भारतीय सभ्यता
 व संस्कृति की नवागत पाश्चात्य सभ्यता स अछेठता प्रतिपादन एव राजनतिक आ-
 लन के अनुकूल स्वतंत्रता व राष्ट्रीय एकता क भावों की अभिव्यक्ति के रूप म। हिन्दी
 की राष्ट्रभाषा का प्रश्न भारतीय राष्ट्रीयता का अंग बन गया यह इसी तथ्य से
 स्पष्ट है कि स्वामी दयानंद सरस्वती, एनी बेसन्ट बाल गंगाधर तिलक, महात्मा
 गांधी शारदाचरण मित्र अहिन्दी भाषियों ने भी दश के लिए एक राष्ट्रभाषा और
 वह हिन्दी को ही राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए अन्वयत प्रयत्न किया। य- प्रयत्न
 हिन्दी को राज भाषा का स्थान दिलाने के लिए नहीं था वरन् राष्ट्रीय आ-
 लन की अभिव्यक्ति हिन्दी के माध्यम स करने के रूप में रहा। अधर पाठक व मद्राबोर-

प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी के विभाग की भावना को राष्ट्रीयता की भावना के प्रतिपादन का रूप में देखा। राष्ट्रीय रूप धारण करने के कारण स्वभावतः हिन्दी का अन्य प्रादेशिक भाषाभाषा से सम्पर्क बढ़ा तथा उच्च भाषा में जो एक प्रकार का अनगढ़न था गया उस महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'मरहत्त्व' के रूप में दूर कर हिन्दी गद्य का टांगनी रूप निमित्त किया। इस युग के साहित्यकारों द्वारा गद्य के समान पद्य की भाषा भी गरीब बोली अपनायी गयी जिसमें भाषा की एकलता की स्थापना हुई। पारंपरिक विद्वानों की प्रेरणा से प्राचीन भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादन की गयी। मैथिलीशरण गुप्त, हरिप्रोथ व प्रसाद के साहित्य में सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना परिलक्षित होती है। प्रासिमी शक्तिवादी के पांडित्यविश्व दशन के अनुसृत सांस्कृतिक विविधता की देन सबसे विचारणा बगला कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के माध्यम से हिन्दी साहित्य में प्रकट हुई। मैथिलीशरण गुप्त व रामनरेश त्रिपाठी की कविता में यह प्रवृत्ति पायी जाती है जो न राजनीतिक राष्ट्रिय स्वरूप राष्ट्रीय चेतना का सर्वाधिक विकास हुआ दमन व अतिशय शासन के रूप में सामान्य शत्रु के विरुद्ध राष्ट्रीय एकता की भावना संगठित हुई। बालकृष्ण गुप्त की रचनाओं में अतिशय साम्राज्यवादी नीति के विरुद्ध गहरा असंतोष पाया जाता है। तथापि राय देवीप्रसाद पूरा जैसे उदारवादी लेखक वैधानिक रीति से राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति में विश्वास रखते हैं। फ्रांस के 'मार्सेलस' व अन्य पश्चिमीय राष्ट्रों के राष्ट्र-गीतों के समान बगला नाटककार कविप्रचंद्र के 'वदे मातरम्' गीत को राष्ट्र-गीत के रूप में अपनाया गया। बगला के माध्यम से हिन्दी में राष्ट्रगीत की भावना का प्रसार हुआ तथा 'वदे मातरम्' की भावना हिन्दी की बहुत-सी कविताओं में व्यक्त हुई। राजनीतिक आवश्यकता की दृष्टि से हिन्दु मुस्लिम एकता की भावना भी व्यक्त हुई मैथिलीशरण गुप्त प्रेमचंद सियारामशरण गुप्त, जयशकरप्रसाद प्रभृति साहित्यकारों की रचनाओं में गान्धीवाद के तत्त्व अहिंसा, सत्याग्रह, छाती प्रेम, अछूतोंद्वारा आदि प्रकट किये गये। पुनरुत्थान युग की अन्य महत्वपूर्ण प्रवृत्ति स्वच्छन्दवाद है जो अपने प्रारम्भिक व आगे के काल में ही प्राचीन साहित्य के रोमांटिक आन्दोलन से प्रभावित रही है। इस युग की कविता पर आंग्ल रोमांटिक आन्दोलन का प्रभाव कुछ अंश में बगला के माध्यम से प्रतिफलित हुआ किन्तु अधिकतर सीधा ही दिखाई दिया। रीतिकालीन वायिक शृंगारिकता का विरोध कर आंग्ल रोमांटिक कवियों के अनुसरण में नवीन विषयों को अपनाया गया। विद्यानाथ मिश्र के 'कवि कृत य' तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'कवि और कविता' शीघ्र लेखों में स्वच्छन्दवाद की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि निर्मित हुई। इस युग में आंग्ल रोमांटिक कवियों के हिन्दी में सर्वाधिक अनुवाद हुए। अनुवादों में मूल भावों के विस्तार व भारतीय वातावरण के समावेश की प्रवृत्ति पायी जाती है जिससे कि हिन्दी कविता में नवीन

भाव व विषयों का प्रवेश द्वार खुला। स्वच्छन्दवादी प्रवृत्ति मूलतः ग्राम्य सस्कृति के विघटन तथा नागरिक सभ्यता के विकास के कारण उत्पन्न अतीत के माह का परिणाम है। श्रीधर पाठक व बानमुकुन्द गुप्त ने ग्राम्य सस्कृति के विघटन पर दुःख व्यक्त किया। ग्राम्य सस्कृति के प्रति माह के कारण प्रकृति, जिसने विविध रूपों के मण्डार ग्राम ही हैं, के वणन की प्रधानता हुई। टामसन व गोल्डस्मिथ की कविताओं का इस युग में प्रकृति-वणन की कविताओं पर विशेष रूप से प्रभाव लक्षित हुआ। प्रकृति के घानन्ददायक व भयकर दोनों रूपों का चित्रण किया गया, सुनासुनाया व पीयी पान के आधार पर प्रकृति वणन करने के बदले देखे हुए दृश्या का कल्पना-समन्वित वणन किया जाने लगा। प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति भी प्रकाश हुई। प्रकृति वणन का यह रूप पुनरुत्थान युग की कविता में आरम्भिक रूप में ही पाया जाता है जिसका छायावादी कविता में पूर्ण विकास हुआ। प्रकृति वणन के साथ ही प्रेम भावना भी स्वच्छन्दवाद का प्रमुख तत्व है। स्वच्छन्दवाद में प्रेम का उपातकृत रूप का ही चित्रण मिलता है। श्रीधर पाठक रामनरेश त्रिपाठी, प्रसाद व पद के प्रेमकथात्मक काव्यात्मक प्रेम के वासनात्रय स्वरूप का छोट प्रेम भावना का राष्ट्र-प्रेम, विश्व-प्रेम मानवता प्रेम आदि के रूप में उदयन हुआ है। स्वच्छन्दवाद के अंतर्गत एक अन्य प्रवृत्ति लोक गीतों की ओर रुचि भी उल्लेखनीय है जो घागल रोमांटिक काव्य के प्रभाव को प्रकट करती है। पुनरुत्थान-युग में श्रीधर पाठक व बानमुकुन्द गुप्त की कविता में यह प्रवृत्ति लक्षित होती है।

राजनतिक सन्नति युग का साहित्य कल्पना व वास्तव के सघर्ष का साहित्य है। इस युग की विचारधारा अमूर्त व यथाय दो भिन्न दृष्टिकोणों में प्रकट हुई है। राष्ट्रीय आन्दोलनों की अफलता के कारण उदयन निराशा का वातावरण में जहाँ कवि ने यथाय जीवन में पराड मुख हो साहित्यिक रूपाओं में सन्नति उपस्थित की वहाँ जीवन की नग्न वास्तविकता भी इस युग के साहित्यकार की लेखनी में प्रकट हुए बिना न रही। यह दोनों प्रवृत्तियाँ तरफालीन युग का साहित्य में पद्य व गद्य के अन्तर्गत साहित्यिक आगों में प्रकट हुई है।

निराशाजनक वातावरण में साहित्यकार प्रायः जीवन की अथगता साहित्य आगों में प्रेरणा लेता है। आगल रोमांटिक काव्य में व्यक्त मानसिक स्थिति बहुत आगों में अथनी मनोदशा के अनुकूल पाकर हिन्दी के कवियाँ न उमी से प्रेरणा ली। किन्तु यह मनोरञ्जक समीग है कि स्वयं योरपीय रोमांटिक काव्य के प्रेरणा स्रोतों में भारत का प्रति आकषण भी एक आग रहा है। एव उमके मूल जमनी इंग्लैण्ड व फ्रांस का रोमांटिक आन्दोलन में पाये जाने हैं। हिन्दी की छायावादी कविता पर आगल रोमांटिक काव्य जमन आध्यात्मवाद ईमाई सतों का रहस्यमय तथा प्राथमिकी प्रतीकवादी का प्रत्यय या पराई रूप में प्रभाव प्रतिफलित हुआ है।

छायावादी कविता पर प्राग्जन्म रामांटिक काव्य का प्रभाव इतना गहरा है कि वह प्रायः उमकी छाया भी अनुभवनी प्रतीत होती है। पूर्वयुगीन काव्य परम्परा का विरोध प्रकृति चित्रण आध्यात्मिक विद्रोह, सौन्दर्यवादी मन्त्र प्रवृत्ताद, अलौकिक तत्त्व प्रतीत का शान्तिमय मनोरम चित्रण प्राग्जन्म रामांटिक काव्य व हिन्दी छायावादी काव्य की समान विशेषताएँ हैं। मानसिक स्थिति की भिन्नता के कारण छायावादो कविता में प्रवृत्ताद व वेदना का रंग अधिक गहरा है तथा उनके स्वप्न प्रस्पष्ट व घूमिल हैं। छायावादी कविता के अन्तर्गत रहस्यवादी काव्य द्वारा परम जन्म आध्यात्मवाद का प्रभाव विशेष रूप से पाया जाता है। प्राचीन रहस्यवाद व आधुनिक रहस्यवाद का भेद जीवन के प्रति दृष्टिकोण का है। प्राचीन रहस्यवाद सांसारिकता का दूरवर प्राप्ति के माग में बाधक मानता था। जन्म दाशनिक हेगेल के आध्यात्मवाद के प्रभाव-स्वरूप परिवर्तनशील जगत् में परम सत्ता के व्यक्त सौन्दर्य का दर्शन करना आधुनिक रहस्यवाद की प्रमुख विशेषता है। जन्म दाशनिक शापेनहार के दुःखवादी दर्शन से छायावादी कविता में वे ना प्रेम की समानता पायी जाती है। ईसाई सत्ता के आत्मा व परमात्मा के पत्नी पति सम्बन्धी प्रतीको का छायावादी कविता में बहुलता से प्रयोग हुआ है तथा फ्रांसिसी प्रतीकवाद के प्रभाव से इसमें सांगीतिकता व चित्रात्मकता का शलीगत समावेश हुआ है। छायावादी काव्य पर यद्यपि प्राग्जन्म रामांटिक काव्य का प्रभाव सीधा लम्बित होता है किन्तु उस पर अय विविध पाश्चात्य प्रभाव बगला कविता विशेषतया रवीन्द्रनाथ की कविता के माध्यम से प्रतिफलित हुए हैं।

छायावादी कविता में मूलतः पाँच प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं (१) प्राचीन काव्य रूढियों के प्रति विद्रोह (२) सौन्दर्य भावना (३) आध्यात्मिकता (४, वेदना प्रेम व निराशा तथा (५) नवीन भावनाएँ।

काव्य रूढियों के प्रति विद्रोह विषय व शली दोनो रूपों में प्रकट हुआ है। रीतिशालीन शृंगारिकता नारी के बाह्य सौन्दर्य तक सीमित थी एवं उसमें भाव सौन्दर्य के लिए स्थान नहीं था। इसके विपरीत छायावादी कविता में समीप चित्रों का अभाव है तथा शृंगार भावना को पवित्र भाव सौन्दर्य किया गया है। जयशंकर प्रसाद के 'प्रेम अधिक', 'प्रलय की छाया सुमित्रानन्दन पंत के 'मासू', भगवत निराला की कविताओं में नारी के प्रति पवित्रता की भावना का दर्शन होता है। काव्य रूप की दृष्टि से द्विवेदी युग की प्रवृत्त काव्य पद्धति जिसमें आख्यान वस्तु चरित्र सृष्टि व विचार साम्प्रदाय की प्रधानता थी सन्निहित छायावादी काव्य पद्धति गीतिपूण है जो कवि के भावात्मक एवं अन्तर्मुखी दृष्टिकोण को प्रकट करती है। प्रसाद की कामायनी में प्रवृत्त शिथिलता इसी दृष्टिकोण का परिणाम है। छायावाद ने अन्विष्टजना के नवीन प्रकारों को प्रपनाया जिनमें सहज अन्विष्टक,

धरों के वदन से मुक्ति, सांगीतिकता व चित्रात्मकता प्रमुख हैं। पत, निराला व महादेवी की कविता में यह प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं। छायावादी कविता में नवीन सौन्दर्य भावना का समावेश हुआ है। इस युग की कविता में बाह्य-सौन्दर्य निरूपण के बदले अन्तर्मुखी सौन्दर्य चेतना प्रकृति व नारी के सौन्दर्य अरु मन के रूप में व्यक्त हुई है।

छायावादी सौन्दर्य दृष्टि आंग्ल रोमांटिक काव्य के सौन्दर्य चित्रण से पूर्णतः प्रभावित है। रोमांटिक कवियों की तरह यह कवि प्रकृति को स्वतन्त्र सजीव सत्ता के रूप में देखते हैं। प्रसाद की 'झरना' व 'किरण' पत की 'प्रथम राशि', 'पव प्रवेश म पावम' 'लहरों का गीत', निराला की 'बादल राग' आदि कविताओं में प्रकृति स्वतन्त्र सजीव रूप में चित्रित की गयी है। फ्रांसिसी दार्शनिक रूसो ने प्रकृति के सम्पर्क में रहनेवाले मनुष्यों पर प्रकृति के सुखद प्रभाव का सिद्धांत प्रतिपादित किया। अंग्रेजी रोमांटिक कवि बड्सवथ की कविता में प्रकृति सम्बन्धी यही विचारधारा व्यक्त हुई है। हिन्दी के छायावादी कवियों ने भी प्रकृति के साहचर्य से उठनेवाले शन शन विचारों का उद्घाटन किया है। पत की 'एक तारा' व नौका बिहार' कविताओं में प्रकृति के मानव मन पर पड़नेवाले प्रभाव का चित्रण मिलता है। निराला व महादेवी की कविता में प्रकृति के सौम्य प्रभाव का वर्णन है। प्रसाद की 'वामायनी' में प्रकृति मानवता को सौम्य देती है, पत व महादेवी में प्रकृति से शिक्षा-ग्रहण की प्रवृत्ति पायी जाती है। छायावादी कवि प्रकृति के साहचर्य से मानव मन पर पड़नेवाले प्रभाव को ही नहीं चित्रित करते बल्कि प्रकृति से तादात्म्य अनुभव करते हैं। पत, महादेवी व नरेन्द्र की कविताओं में यह तादात्म्य भाव प्रमुख रूप से पाया जाता है। आंग्ल रोमांटिक कविता के प्रभाव से छायावादी कविता में प्रकृति के उग्र रूप का चित्रण भी हुआ यद्यपि यह प्रवृत्ति व्यापक नहीं है। प्रसाद की 'वामायनी' में कतिपय स्थानों पर पत की 'परिवर्तन नरेन्द्र की जेठ का मध्याह्न आदि कविताओं में प्रकृति के उग्र रूप का चित्रण हुआ है। आंग्ल रोमांटिक उपन्यासकार वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों की तरह छायावादी कविता में प्रकृति की वस्तुएँ ऐतिहासिक अनुभवों को जगाती हैं। निराला व दिनकर की कविता में यह प्रवृत्ति पायी जाती है। कीट्स शैली स्विनबन प्रभृति आंग्ल रोमांटिक कवियों की तरह छायावादी कविता में प्रकृति चित्रण के रूपों में प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति विद्यमान है। प्रसाद की 'किरण' 'किरण', पत की 'बादल' 'छाया आदि' सशेख गीतियों प्रसाद की 'वामायनी' व 'वाम सग' में रजनी के चित्रण, प्रसाद के 'नहर' क गीतों पत के 'गुजन' में 'घादनी' व 'संध्या' के चित्रण निराला की 'झरोके की कनो', 'गच्छाविका', 'संध्या सुन्दरी' महादेवी की 'वसंत रजनी', 'अग्नि तथा धन कथनास', 'सय गीत मंदिर

घमर' गीतों, गरेन्द्र शर्मा के 'छायावादी' प्रकृति कविताओं में प्रकृति का गुंथर मानवीकरण किया गया है। बडमवय की कविता की तरह छायावादी कविता में प्रकृति के साहचर्य में रहनेवाले लोगों के सरन जीवन का सौन्दर्य व्यक्त किया गया है। पत की 'बगल बाना व गरेन्द्र की 'मनोके की सुरती में बडमवय की 'रीवर की छाया भागित होती है।

छायावादी कविता की सौन्दर्यवृत्ति प्रकृति विषय के प्रतिरिक्त नारी सौन्दर्य चित्रण के रूप में प्रयोजनयोग्य शक्त हुई है। रीतिकालीन बाल्य-सौन्दर्य वलन के विपरीत छायावादी कविता में भाव-सौन्दर्य की प्रयोजना पायी जाती है। नारी के बाल्य-सौन्दर्य के रूप में नी उत्तर भन सौन्दर्य की ही छायावादी कविता में प्रतिरिक्त हुई है। छायावादी कवियों ने नारी के बाल्य-सौन्दर्य चित्रण में रीतिकालीन उपमानों का महिपार कर आंग्ल रोमांटिक कवियों की तरह प्रकृति से उपमान ग्रहण किये हैं। प्रसाद की 'कामायनी' में धटा के सौन्दर्य चित्रण में प्रकृति से उपमान ग्रहण की प्रवृत्ति के साथ सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रण मिलता है। पत की 'मावी पत्नी के प्रति' कविता में प्रकृति से उपमान ग्रहण किये गये हैं प्रकृति नारी भगों को सौन्दर्य प्रदान करती है तथा कभी प्रकृति नारी भगों से सौन्दर्य ग्रहण करते हुए चित्रित की गयी है। इस कविता में नारी के एन्द्रिय सौन्दर्य का चित्रण भी हुआ है। बडमवय, बीटस व शैली के नारी सौन्दर्य चित्रण की विशेषताएँ पत को 'मावी पत्नी के प्रति' कविता में समाहित रूप में मिलती हैं। छायावादी कविता में नारी सौन्दर्य चित्रण की प्रवृत्ति आंग्ल रोमांटिक काव्य में नारी सौन्दर्य वलन से अत्यधिक प्रभावित है तथा कतिपय कविताओं यथा, पत की 'भनग' व बीटस की 'मोड टु माइके', इलाबद जोशी की 'विजनवती' व कोटम की 'ला बेल डेम सा मर्सी', पत की 'अप्सरा' व रवीन्द्रनाथ की 'उवशी' एवं स्विनबन की 'एटनेण्टा इन केलीडोन' में प्रति निकट भाव साम्य मिलता है।

छायावाद की अन्तमु खी काव्य दृष्टि के कारण छायावादी कवि सामान्य जीवन की समस्याओं से ऊपर उठ कर स्वभावतः जीवन व जगत् के सबंध में सोचने लगता है जिससे उसमें आध्यात्मिकता व रहस्यात्मिकता का समावेश हो जाता है। रवीन्द्रनाथ की कविताओं के माध्यम से छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति रहस्यवादी काव्य धारा पर विविध पार्श्वात्य प्रभाव प्रतिफलित हुए जिनमें हेगेलियन आध्यात्मवाद, आंग्ल रोमांटिक काव्य में प्रतिपादित बाल्य जीवन के प्रति पवित्रता का भाव, सर्वात्मवाद दर्शन तथा ईसाई सतों के दाम्पत्य प्रेम प्रतीक हैं। पत की 'परिवर्तन' कविता में हेगेलियन आध्यात्मवाद के अनुसार परिवर्तन को ही नित्य सत्य, परम भाव की विश्व की प्राणभूत सत्ता तथा आत्म जान को सर्वोच्च ज्ञान दर्शा माना गया है। प्रसाद की 'कामायनी' में यद्यपि अशावगमों के अनुकूल विश्व में बदल

धर्म की सत्ता स्वीकार की गयी है किन्तु, परिवर्तनमय जगत् की नित्यता में स्पष्ट विश्वास व सामाजिक दशन रूप में इस सिद्धांत की मायता हेगेलीय दशन के अनुरूप प्रतीत होती है। हेगेलीय आध्यात्मवाद के प्रकाश में भारतीय विचार-धारा के पुनर्जन्म सिद्धांत की नवीन रूप में अभिव्यक्ति हुई है। हेगेलीय दशन में काल की अनन्तता का भाव जीवन व मृत्यु को नवीन सम्बन्ध में प्रस्तुत करता है। पत की "परिवर्तन" कविता में जीवन अनन्त काल के रूप में चित्रित किया गया है जिसमें मृत्यु व जीवन नेत्रोन्मीलन रूप में उदमासित होते हैं। प्रसाद महादेवी व निराला के काव्य में मृत्यु का चित्रण प्राचीन रहस्यवादी कविता के तरह जीवन की निस्सारता सिद्ध करने के लिए नहीं बल्कि क्षणिक जीवन व अनन्त काल की एकता को दर्शाने अर्थात् मोहक रूप में किया गया है। आंग्ल रोमांटिक कवियों (वुड्सवर्थ व ब्लेक) तथा रवीन्द्रनाथ द्वारा चित्रित बालक के सरल जीवन में पवित्रता व स्वर्गिक ज्ञान की भावना के अनुरूप पत की कविता में बालक के प्रति पवित्रता व स्वर्गिक भावना का आरोप मिलता है। आंग्ल रोमांटिक कवियों की तरह छायावादी कवियों ने भी रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को साधन रूप में अपनाया है। अतः छायावादी कविता का दार्शनिक आधार सर्वात्मवाद है। पत प्रकृति के व्यवस्त प्रसार में आनन्द मग्न रहते हैं जब कि प्रसाद व महादेवी प्रकृति को ब्रह्म प्राप्ति में बाधक समझते हैं। यह बाधा केवल सतह पर ही प्रतीत होती है और अन्ततः प्रकृति रहस्यवादी को साधना का अंग बन कर उसे परोक्ष सत्ता का संकेत करती स्वयं साधना के भावों में रगी चित्रित की गयी है। ईसाई रहस्यवादियों की तरह रहस्यवादी काव्य धारा में दाम्पत्य प्रेम के प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। जीव व ब्रह्म के प्रणय संबंध की मधुर भावना परोक्ष प्रियतम के विरह की तीव्र अनुभूति विरह-वेदना में सांसारिक सुखों से बृद्ध कर साधना, मिलन की अघेरी रात्रि का आह्वान एवं स्मृति, स्वप्न संकेत अभिसार मिलन उत्कण्ठा आदि प्रेम की नाना अनुभूतियों का प्रसाद महादेवी निराला पत रामकुमार वर्मा की कविता में चित्रण हुआ है। महादेवी की कविता में विरह वेदना साधन न रह कर साध्य ही प्रतीत होती है तथा मिलन में भी उनकी व्यक्तित्व चेतना अत्यधिक सजग रहती है। रामकुमार वर्मा की कविता में भी व्यक्तित्व का अभिज्ञान रहते हुए आध्यात्मिक मिलन की आनन्दानुभूति की आकांक्षित व्यक्त हुई है।

तथापि छायावादी काव्य में मद भ्रवसाद व निराशा का भाव प्रधानतः मिलता है जिसका कारण आध्यात्मिक दृष्टिकोण, धैर्यविकृत निराशा भावना एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों के पराजय की अनुभूति है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण भौतिक जीवन की नश्वरता के चित्र महादेवी व रामकुमार वर्मा की कविता में उभर आये हैं। छायावादी कवि प्रसाद निराला, महादेवी आदि भौतिक जीवन की व्यथता से

अमर' गीतो, नरेन्द्र शर्मा के 'भापाड' प्रभृति कविताओं में प्रकृति का सुन्दर मानवीकरण किया गया है। बडसवय की कविता की तरह छायावादी कविता में प्रकृति के साहचर्य में रहनेवाले लोग के सरन जीवन का सौंदर्य व्यक्त किया गया है। पत की 'बपरू बाला व नरेन्द्र की 'अन्मोडे की युवती' में बडसवय की 'रीपर' की छाया भासित होती है।

छायावादी कवियों की सौंदर्यवृत्ति प्रकृति चित्रण के प्रतिरिक्त नारी सौंदर्य चित्रण के रूप में प्रधानतया व्यक्त हुई है। रीतिकालीन बाह्य सौंदर्य वणन के विपरीत छायावादी कविता में भाव-सौंदर्य की प्रधानता पायी जाती है। नारी के बाह्य-सौंदर्य के रूप में भी उसके अंतःसौंदर्य की ही छायावादी कविता में प्रतिबिम्बित हुई है। छायावादी कवियों ने नारी के बाह्य सौंदर्य चित्रण में रीतिकालीन उपमानों का बहिष्कार कर भांगल रोमांटिक कवियों की तरह प्रकृति से उपमान ग्रहण किये हैं। प्रसाद की 'कामायनी' में श्रद्धा के सौंदर्य चित्रण में प्रकृति से उपमान ग्रहण की प्रवृत्ति के साथ सूक्ष्म सौंदर्य चित्रण मिलता है। पत की 'मागी पत्नी के प्रति कविता में प्रकृति से उपमान ग्रहण किये गये हैं, प्रकृति नारी अंगों को सौंदर्य प्रदान करती है तथा कभी प्रकृति नारी अंगों से सौंदर्य ग्रहण करते हुए चित्रित की गयी है। इस कविता में नारी के एंड्रिय सौंदर्य का चित्रण भी हुआ है। बडसवय, कीटस व शैली के नारी सौंदर्य चित्रण की विशेषताएँ पत की 'मागी पत्नी के प्रति कविता में समन्वित रूप में मिलती हैं। छायावादी कविता में नारी सौंदर्य चित्रण की प्रवृत्ति भांगल रोमांटिक काव्य में नारी सौंदर्य वणन से अत्यधिक प्रभावित है तथा कतिपय कविताओं यथा, पत की 'अनग' व कीटस की 'मोड टु साइक' इलाचन्द जोशी की 'विजयवती' व कीटस की 'ला बेल डेम सा मर्सी', पत की 'अप्सरा व रवीन्द्रनाथ की 'उवशी एव स्विनवन की 'एटलेष्टा इन केलीडोन' में प्रति निकट भाव साम्य मिलता है।

छायावाद की अन्तर्मुखी काव्य दृष्टि के कारण छायावादी कवि सामान्य जीवन की समस्याओं से ऊपर उठ कर स्वभावतः जीवन व जगत् के सत्य में सोचने लगता है जिससे उसमें आध्यात्मिकता व रहस्यवादीता का समावेश हो जाता है। रवीन्द्रनाथ की कविताओं के माध्यम से छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति रहस्यवादी काव्य धारा पर विविध पाश्चात्य प्रभाव प्रतिफलित हुए जिनमें हर्गलियन आध्यात्मवाद, भांगल रोमांटिक काव्य में प्रतिपादित बाल्य जीवन के प्रति पवित्रता का भाव, सवात्मवाद दान तथा ईसाई सत्यों के दाम्पत्य प्रेम प्रतीक हैं। पत की परिवर्तन कविता में हेनेनियस आध्यात्मवाद के अनुसार परिवर्तन का ही नित्य सत्य, परम भाव की विश्व की प्राणभूत सत्ता तथा आत्म नान का सर्वोच्च ज्ञान-दशा माना गया है। प्रसाद की 'कामायनी' में यद्यपि अवागमों के अनुकूल विश्व में कवित

पत्रप को ज्ञाता स्वीकार की गयी है किन्तु, परिवर्तनमय जगत् की नित्यता में सत्य विश्वास व सामाजिक दर्शन रूप में इस सिद्धांत की मायता हेगेलीय दर्शन के अनुरूप प्रतीत होती है। हेगेलीय आध्यात्मवाद के प्रकाश में भारतीय विचार धारा के पुनर्जन्म सिद्धान्त की नवीन रूप में अभिव्यक्ति हुई है। हेगेलीय दर्शन में ज्ञान की अनन्तता का भाव जीवन व मृत्यु को नवीन सम्बन्ध में प्रस्तुत करता है। पत की "परिवर्तन" कविता में जीवन अनन्त काल के रूप में चित्रित किया गया है जिसमें मृत्यु व जीवन नवीन-मौलन रूप में उदमासित होते हैं। प्रसाद, महादेवी व निराला के काव्य में मृत्यु का चित्रण प्राचीन रहस्यवादी कविता के तरह जीवन की निस्सारता सिद्ध करने के लिए नहीं बल्कि क्षणिक जीवन व अनन्त ज्ञान की एकता को दर्शाने अत्यन्त मोहक रूप में किया गया है। आगल रोमांटिक कवियों (वडसवय व श्लोक) तथा रवीन्द्रनाथ द्वारा चित्रित बालक के सरस जीवन में परिवर्तन व स्वर्गिक ज्ञान की भावना के अनुरूप पत की कविता में बालक के प्रति परिवर्तन व स्वर्गिक भावना का आरोप मिलता है। आगल रोमांटिक कवियों की तरह छायावादी कवियों ने भी रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को ज्ञान रूप में धरनाया है। अतः छायावादी कविता का दार्शनिक आधार सर्वात्मकता है। पत प्रकृति के ध्येय प्रसार में आनन्द मग्न रहते हैं जब कि प्रसाद व महादेवी प्रकृति को ब्रह्म प्राप्ति में बाधक समझते हैं। यह बाधा केवल सतह पर ही प्रतीत होती है और अन्ततः प्रकृति रस्यवादी को साधना का अंग धन कर उसे पराग सत्ता का सकेत करती स्वयं साधना के मार्गों में रगी चित्रित की गयी है। इसी रहस्यवादी की तरह रहस्यवादी काव्य धारा में दाम्पत्य प्रेम के प्रतीकों का प्रयोग मिलता है। जीव व ब्रह्म के प्रणय सवय की मधुर भावना, परोक्ष प्रियतम, वैरिह की तीव्र अनुभूति विरह-वेदना में सांसारिक सुखों से बच कर सात्वता, मिनन की अचेरी रात्रि का आह्वान एवं स्मृति स्वप्न सकेत अभिस्तार मिलन-उत्कण्ठा आदि प्रेम की नाना अनुभूतियों का प्रसाद महादेवी निराला पत रामकुमार वर्मा की कविता में चित्रण हुआ है। महादेवी की कविता में विरह वेदना साधन न रह कर साध्य ही प्रतीत होती है तथा मिलन में भी उनकी व्यक्तित्व केतना अभ्याधिक सन्नग रहनी है। रामकुमार वर्मा की कविता में भी स्मृति का अभिमान रहने हुए आध्यात्मिक मिनन की आनन्दानुभूति की आर्तना व्यक्त हुई है।

तथापि छायावादी काव्य में मद भवमाद व निराशा का भाव प्रधानन मिनन है जिसका कारण आध्यात्मिक दृष्टिकोण अर्थात् निराशा भावना एवं राशीय आनन्दना के पराजय की अनुभूति है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण मीनन जीवन की नश्वरता के विरुद्ध महादेवी व रामकुमार वर्मा की कविता में उभर आ है। छायावादी कवि प्रसाद, निराला, महादेवी आदि शैक्षिक जीवन की ध्येयता

जाता है उसमें इतिहास की दिशासमान प्रक्रिया में शक्ति की श्रेणी को समुचित रूप में स्वीकार नहीं किया जाता एवं कभी सिद्धांत व प्रयोजन व्यक्तित्व चेतना को बुझित कर देते हैं। यशपाल के 'दादा कामरेड' व 'मनुष्य के रूप' तथा अज्ञेय के 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास, अज्ञेय व नरेंद्र की कविताओं में व्यक्तित्व चेतना व सामाजिक विचारधारा का संघर्ष भूतल है। व्यक्तिक मनुभूति के प्रकाशन की आवश्यकता के साथ मनोवैज्ञानिक चित्रण का प्रश्न स्वभावतः संबद्ध है। समाज की धार्मिक व्यवस्था के संघर्ष में मौन रहने के कारण प्रगतिवादी प्रायः फायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत के विरोधी हैं। प्रगतिवादियों का एक बग मारम व फायड के विचारों को मिलाने का पक्षपाती है और उनकी कविता में यौन प्रतीका व सामाजिक 'याय की मांग साथ साथ प्रकट होती है। सामाजिक दायित्व के प्रति प्रतिशय जागरूकता के कारण कुछ कवि अपनी रोमांटिक प्रवृत्ति के प्रति अपनी आत्मा को दोषी मान बैठते हैं। फायड की विचारधारा का विरोध करने पर भी प्रगतिवादियों पर उसका दो रूपों में प्रभाव पड़ा है। प्रथमतः फायड के समान प्रगतिवादियों ने यौन-नतिक्रमता का विरोध कर काम वासना को सहज प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है। यशपाल ने 'दादा कामरेड' में यौन सम्बंधों की स्वच्छ-शुद्धता व गम निवारण की आवश्यकता को भी दर्शाया है। द्वितीयतः प्रगतिवादी साहित्य में यौन विकृतियों का अधिक चित्रण हुआ है तथा नारी के प्रति सहज स्वभाविक स्वस्थ सतुलित भाव नहीं पाया जाता। जहां नारी को शक्ति पथ की राहों व स्वयं शक्तित्वरूपा चित्रित किया गया है वहां वास्तविक उद्गार, यौन प्रतीक व स्पष्ट अश्लील चित्रण भी प्रगतिवादी साहित्य में सहज प्राप्य हैं।

काइबेल के समान प्रगतिवादियों की दृष्टि में सामाजिक (धार्मिक) संघर्षों का भावात्मक पहलू ही प्रेम है। प्रेम का कोई शाश्वत रूप नहीं है तथा उसका आधार धार्मिक है। यशपाल के 'दादा-कामरेड', 'दशद्रोही', 'मनुष्य के रूप' प्रभृति उपन्यासों में प्रेम का आधार धार्मिक दर्शाया गया है। आत्म निर्भर प्रेम ही सच्चा प्रेम है जिसमें आश्रय की मांग न हो।

प्रगतिवादियों की दृष्टि में ईश्वर व धर्म संबंधी प्रचलित मान्यताएं धार्मिक वैषम्यपूर्ण समाज को बनाए रखनेवाली साधन हैं अतः प्रगतिवादी साहित्यकार इनका खण्डन करता है। अचल, तिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', केदारनाथ अप्रवाल प्रभृति कवियों की कविताओं में तथा प्रेमचंद के 'गोदान' व यशपाल के 'दादा कामरेड' उपन्यास में मनीश्वरवाद में भास्या तथा रुद्रिणी धार्मिक दिशाओं का विरोध व्यक्त हुआ है। प्रेमचंद व यशपाल मनुष्य की सद्बलियों में विश्वास रखते हैं तथा धर्म निर्पेक्ष नतिक्रमता का प्रतिपादन करते हैं।

छायावादी कविता के सौन्दर्याभास के विरुद्ध प्रगतिवादी साहित्य में वस्तु-परक सत्य की मांग प्रकट हुई है। पत, दिनकर, भारतभूषण भद्रवाल, नैमिचन्द्र की कविताओं में छायावादी कल्पना विलासिता का विरोध व नित्य प्रति जीवन की वास्तविक समस्याओं के दर्शन की स्पष्ट आवश्यकता बतलायी गई है। सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन प्रगतिवादी साहित्य रचना का ध्येय है अतः उसमें समाज की प्रचलित मान्यताओं के प्रति आक्रोश पाया जाता है एवं उन्हें ढहते हुए रूप में चित्रित किया गया है। पूजावादी व्यवस्था में सदाचार, सम्मता, शिक्षा, 'याय कला, आदि का रूप गृहित तथा शोषण व्यवस्था को बनाम रखनेवाला है। प्रगतिवादी इन निष्ठाओं का मूल्यांकन जनहित के आधार पर करता है। पत, निराला दिनकर प्रेमचंद प्रभाकर माचवे आदि ने आधुनिक सम्मता पर व्याप्य किये हैं, प्रेमचंद, अज्ञेय व रामविलास शर्मा आधुनिक शिक्षा को जनहित की दृष्टि से हेय दर्शाते हैं। प्रेमचंद व यशपाल पूजावादो व्यवस्था के अतगत मिलनेवाले कानून व 'याय को इस व्यवस्था की रक्षा के लिए निमित्त ढोग दर्शाते हैं। प्रेमचंद, यशपाल अज्ञेय उपेन्द्रनाथ अशक, भवानीप्रसाद मिश्र, घमवीर भारती की दृष्टि में पूजावादी व्यवस्था के अतगत कलाकार का अस्तित्व स्वतंत्र नहीं रहता, कला पूजा के हाथों विक जाती है। अतः सम्मता व संस्कृति की रक्षा के पूजावादी व्यवस्था का अत चाहते हैं।

माक्सवादी जीवन-दर्शन अपनाते के कारण प्रगतिवादी वर्तमान मानव समाज को पूजावादी वग व संहारा वग में विभाजित देखते हैं तथा उनके अनुसार यह दोनों वग सतत संघर्ष में लीन हैं एव पूजावादी वग को नष्ट कर वगहीन समाज की स्थापना करना उनका लक्ष्य है। समाज में व्याप्त वग संघर्ष में प्रगतिवादियों की सहानुभूति संहारा वग के प्रति रहती है। यद्यपि हिन्दी के बहुत से साहित्यकारों ने दलित व संहारा के प्रति सहानुभूति प्रकट की किन्तु, छायावाद के प्रतिश्रिया रूप में केवल 'सौन्दर्य-पूजा' के भाव से हट सामाजिक न्याय की मांग के आन्दोलन रूप में आरम्भ होकर प्रगतिवाद निश्चित सद्धान्तिक मतवाद में परिणत हो गया एव इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, वग संघर्ष साम्यवादी व्यवस्था में विश्वास आदि सद्धान्तिक मान्यताएँ प्रगतिवाद ने प्रमुख लक्षण स्वीकर किये गए। प्रेमचंद के 'गोदान' में आभास रूप में तथा यशपाल के 'उपयासों में स्पष्टतः वग संघर्ष की सत्यता को प्रतिपादित किया गया। यशपाल के 'उपयासों के पात्र स्वयं भी वग-संघर्ष की चेतना के प्रति जागरूक चित्रित किये गए हैं। पत निराला भारतभूषण भद्रवाल, प्रभाकर माचवे गजानन भाषव मुखितबोध की कविताओं में पूजावादी व्यवस्था को निष्प्रयोजन शोषक, विभेदक व प्रवचक माना गया है।

पूजावादी व्यवस्था में कितानों व मजदूरों का सर्वाधिक आर्थिक शोषण

व जीवन सुविधाओं के प्रति कठोर नहीं बनने देना चाहते। 'त्याग पत्र' में गस्टाव वादी मनोवैज्ञानिक पद्धति के आधार पर नवीन मूल्य सत्त्वों की खोज का प्रयत्न सक्षित होता है। जीवन को समग्र रूप में देखा गया है तथा जो सस्थाएँ व नियम स्वामाविक जीवन विकास में बाधक हो उन्हें खण्डित कर स्वामाविक जीवन को प्रवहमान बनाने को प्रेरणा दी गयी है। कलईवाले सदाचार का विरोध किया गया है। बाहर व भीतर समग्र सच्चाई की आवश्यकता बतलायी गयी है एवं इस रूप में विवाह बंधन धन सचय की प्रवृत्ति को आदर्श सामाजिक संगठन के गत्यात्मक चुनाव में अवरोध बताया गया है। अथ मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में इलाचन्द जोशी की 'पदों की रानी' उपन्यास में विवाह सस्था की आड़ में व्यक्ति के मन की दुष्प्रवृत्ति के पोषण पर व्यंग्य किया गया है। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' में वैवाहिक जीवन की एकरसता, व उसके आधार के सूनपन का निर्देशन हुआ है। डा० देवराज 'पथ की खोज' में विवाह को उच्चादर्श की खोज या प्राप्ति का साधन न मान काम वासना का शीला क्षेत्र भयवा प्रजनन यत्र मात्र बतलाते हैं तथा उसे ही हिन्दू विवाह की सफलता का कारण ठहराते हैं।

हिन्दी के उपन्यासों में 'शेखर एक जीवनी' प्रथम भाग में बाल-मन का चित्रण किया गया है जिसका आधार आधुनिक मनोविज्ञान की सामग्री है। अज्ञेय ने इस उपन्यास में बाल-मन के अध्ययन के महत्व को दर्शाया है। ये बच्चों के व्यक्तित्व के स्वामाविक व स्वतंत्र विकास के पक्षपाती हैं तथा बच्चों के प्रति उदासीन रहने व उन्हें अवोध समझ उनके सामने अवरोधक हरकतें कर जाने की प्रवृत्ति को घातक ठहराते हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुकूल अज्ञेय ने शिशु-मन पर जन्म के अवसर एवं मानव विकास की परम्परा में पढ़नेवाले प्रभावों का उल्लेख किया है। अह, संकस व अथ की मूल प्रवृत्तियों को शेखर के व्यक्तित्व का निर्माण में अत्यधिक महत्वपूर्ण दर्शाया गया है एवं शेखर के बाल-जीवन व युवाकाल में इन्हीं प्रवृत्तियों का मिश्रित प्रभाव से उसके व्यक्तित्व का गठन हुआ है। 'शेखर एक जीवनी' में अथ सधि अवस्था के मनोविज्ञान का भी चित्रण किया गया है। अथ सधि काल का विद्रोह भाव, आत्म-त्रोषणामिता, शारीरिक परिवर्तनों का भान, विजातीय रति एवं व्यक्ति मात्र का प्रति घृणा व विद्रोह-काल के प्रेम की शक्ति का अथ सधि काल के चित्रण में मनोवैज्ञानिक रूप में अभिव्यक्ति किया गया है। मनोविज्ञान के सिद्धांतों का अनुकूल अथर के व्यक्तित्व में उसके परिवार के लोगों व परिवेश का महती योग रहा है। पिता के प्रभाव से उसमें जीवन के प्रति आत्म-भाव माता के प्रभाव से विद्रोह भावना, परिवार के वातावरण में अज्ञानियों का शान्त न हो पाने के कारण तीव्र बौद्धिकता एवं प्रकृति का साहचर्य तथा सरस्वती, शारदा व शक्ति का सम्पर्क में रहने से सौन्दर्य चेतना जागृत हुई है।

प्राधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में शिष्ट शारीरिक दूरी बनाए रखते हुए भाई के बहिन के प्रति आकर्षण का चित्रण करने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिसे रति भाव की सजा दी जा सकती है। इलाचन्द के 'पृष्णामयी', अनेय के 'शेखर एक जीवनी' डा० देवराज के 'प्य की खोज' में बहिन के रति भाव का चित्रण किया गया है जिसे मनोविश्लेषण सिद्धांत के आधार पर समझना कठिन नहीं है।

द्वितीय महायुद्ध के समय पश्चिम में लोकप्रिय अस्तित्ववाद की विचारधारा व मनोविज्ञान का अजेय के 'नदी के द्वीप' उपन्यास में चित्रण हुआ है। 'नदी के द्वीप' में अस्तित्ववाद के अनुकूल व्यक्ति के अकेलेपन व केवल अपने प्रति उत्तरदायी होने, निरंतर वरण की अनिवायता, वरण के सही होने का अनिश्चय, व्यक्ति व्यक्ति के पूरा साहित्य की असमाव्यता एव तदजनित जीवन से ऊब का वरण किया गया है एव सभ्यता की रक्षा व व्यक्ति स्वातंत्र्य की समस्या को अस्तित्ववाद की विचारधारा के आलोक में समझा गया है। इलाचन्द के उपन्यासों में मानसिक प्रणियों का चित्रण विशेष रूप से मिलता है। प्राधुनिक उपन्यासों व कविता में प्रेम के क्षेत्र में स्त्री व पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता का चित्रण मिलता है जिस पर डी एच लारेंस का प्रभाव है। मानसिक प्रणियों के प्रतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक क्रियाओं यथा प्रक्षेपण, आरोपण सांकेतिक चेटाए, अकारण मय स्वप्न आदि का यत्र-तत्र वरण किया गया है। मनोविश्लेषण विचारधारा के कारण प्राधुनिक साहित्य में शौचीगत व्यापक प्रभाव भी प्रतिफलित हुआ जिससे प्रतीकात्मकता, मुक्त-भास्य व अतट्टिभय व्याख्या की प्रधानता हो गयी है।

अस्तु हमारे साहित्य पर पश्चात्य विचारधाराओं का गहरा प्रभाव प्रतिफलित हुआ है और विषय व शली दोनों दृष्टि से प्राधुनिक साहित्य परिवर्तित दिखाई देता है। पश्चात्य विचारधाराओं को अपनाया कहा तक हिन्दी साहित्य के लिए उपयोगी है यह तो इतने से ही स्पष्ट हो जाता है कि प्राधुनिक हिन्दी साहित्य की विविधता उन विचारधाराओं के परिणाम की ही छोटक है। साहित्य में स्थायी रूप केवल वे ही विचारधाराएँ जा सकती हैं जिनका मानव जीवन के विकास के लिए भी कोई उपयोग रहा हो। किसी विचारधारा के उपयोग के नष्ट होने पर वह अनुकरणीय नहीं रहती। इन दृष्टि से पश्चात्य विचारधाराओं का अनुकरण मात्र श्लाघनीय नहीं यद्यपि उनका गहरा परिचय हमारे अपने विचार-निर्माण के लिए आवश्यक है क्योंकि विचारों की दुनिया में दोबारें नहीं होतीं। प्राधुनिक विचारधारा की श्रेष्ठता की कसौटी मानवी गरिमा की स्थापना है और मानव-स्वातंत्र्य की खोज प्राधुनिक साहित्य का केन्द्र है। मानव जीवन के प्रस्फुटन में सहाय्यी होनेवाली विचारधाराएँ हमारे साहित्य की समृद्धि में भी सहायक होंगी।

व जीवन सुविधाया के प्रति कठोर नहीं बनने देना चाहते । 'त्याग पत्र' में गैस्टाल्ट वादी मनोवैज्ञानिक पद्धति के आधार पर नवीन मूल्य सत्त्वों की खोज का प्रयत्न लक्षित होता है । जीवन को समग्र रूप में देखा गया है तथा जो सत्त्वाएँ व नियम स्वामाविक जीवन विकास में बाधक हो उन्हें खण्डित कर स्वामाविक जीवन को प्रबलमान बनाने की प्रेरणा दी गयी है । कलईवाले सदाचार का विरोध किया गया है । बाहर व भीतर समग्र सत्त्वाई की आवश्यकता बतलायी गयी है । एग इस रूप में विवाह बंधन धन मध्य की प्रवृत्ति का आदेश सामाजिक समूहों के गत्यात्मक चुनाव में अवश्य बतलाया गया है । अथ मनावैज्ञानिक उपवासकारों में इलाचन्द जोशी की 'पदों की रानी' उपन्यास में विवाह सत्त्वा की भाव में व्यक्ति के मन की दुष्प्रवृत्ति के पोषण पर ध्यान दिया गया है । अज्ञेय के 'नयी के द्वीप' में वैवाहिक जीवन की एकरसता, व उसके आधार के सूनपन का निर्देशन हुआ है । डा० देवराज 'पय की खाज' में विवाह को उच्चादश की खाज या प्राप्ति का साधन न मान काम वासना का क्रीडा क्षेत्र अथवा प्रजनन यत्र मात्र बतलाते हैं तथा उसे ही हिन्दू विवाह की सफलता का कारण ठहराते हैं ।

हिन्दी के उपवासों में 'शेखर एक जीवनी' प्रथम भाग में बाल मन का चित्रण किया गया है जिसका आधार प्रायुक्तिक मनोविज्ञान की सामग्री है । अज्ञेय ने इस उपवास में बाल-मन व अल्पवय के महत्व को दर्शाया है । ये बच्चों के व्यक्तित्व के स्वामाविक व स्वतंत्र विकास के पक्षपाती हैं तथा बच्चों के प्रति उदासीन रहने व उन्हें अबाध समझ उनके सामने अजरणीय हरकतें कर जाने की प्रवृत्ति को घातक ठहराते हैं । प्रायुक्तिक मनोवैज्ञानिक व अनुकूल अज्ञेय ने शिशु मन पर जन्म के अवसर एवं मानव विकास की परम्परा में पहचानने वाले प्रभावों का उल्लेख किया है । अह, संकलन व अथ की प्रथम प्रवृत्तियों को शेखर के व्यक्तित्व के निर्माण में अत्यधिक महत्वपूर्ण दर्शाया गया है एवं अंतर के बाल-जीवन व युवावस्था में इन्हीं प्रवृत्तियों के विविध प्रभावों से अपने व्यक्तित्व का गठन हुआ है । अथ 'एक जीवनी' में अथ अथ अथ के मनोविज्ञान का भी चित्रण किया गया है । अथ अथ अथ के विरोध भाव, आत्म-अज्ञानता, शारीरिक परिवर्तनों का मान विनाशकारी रति एवं व्यक्ति मात्र व प्रति पूरा व विद्व-आत्म के प्रेम की उत्तर व अथ अथ अथ के चित्रण में मनावैज्ञानिक रूप में अथव्यक्ति दिया गया है । मनाविज्ञान के सिद्धांतों के अनुकूल अथ के व्यक्तित्व में उत्तम परिवार के लोगों व परिवेश का महती योग रहा है । अथ के प्रभाव व अपने जीवन के प्रति अथ अथ अथ के प्रभाव से विवाह अथ, परिवार के आचारण में अथव्यक्ति के अथ न हा जाने के कारण अथ अथ अथ एवं अथ के आदर्श अथ अथ अथ, अथ व अथ के अथ में रहने से अथ अथ अथ अथ अथ है ।

प्राधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में शिष्ट शारीरिक दूरी बनाए रखते हुए माई के बहिन के प्रति आकर्षण को चित्रित करने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिसे रति भाव की सना दी जा सकती है। इलाचन्द के 'धृष्ट्यामयी', अनेय के 'शेखर एक जीवनी' डा० देवराज के 'पथ की खोज' में बहिन के रति भाव का चित्रण किया गया है जिसे मनोविश्लेषण सिद्धान्त के आधार पर समझना कठिन नहीं है।

द्वितीय महायुद्ध के समय पश्चिम में लोकप्रिय अस्तित्ववाद की विचारधारा का मनोविज्ञान का अनेय के 'नदी के द्वीप' उपन्यास में चित्रण हुआ है। 'नदी के द्वीप' में अस्तित्ववाद के अनुकूल व्यक्ति के अकेलेपन व केवल अपने प्रति उत्तरदायी होने, निरंतर वरण की अनिवार्यता, वरण के सती होने का अनिश्चय, व्यक्ति व्यक्ति के पूरा सांनिध्य की असमाप्तिता एव तद्जनित जीवन से ऊब का वरण किया गया है एव सस्कृति की रक्षा व व्यक्ति स्वातंत्र्य की समस्या को अस्तित्ववाद की विचारधारा के आगे में समझा गया है। इलाचन्द के उपन्यासों में मानसिक ग्रन्थियों का चित्रण विशेष रूप से मिलता है। प्राधुनिक उपन्यासों व कविता में प्रेम के क्षेत्र में स्त्री व पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता का चित्रण मिलता है जिस पर डी एच लारेंस का प्रभाव है। मानसिक ग्रन्थियों के अतिरिक्त अन्य मनोवैज्ञानिक क्रियाओं यथा प्रक्षेपण, आरोपण साकेतिक चेतनाएँ, अकारण भय स्वप्न आदि का यत्र-तत्र वरण किया गया है। मनोविश्लेषण विचारधारा के कारण प्राधुनिक साहित्य में शलीगत व्यापक प्रभाव भी प्रतिफलित हुआ जिससे प्रतीकात्मकता मुक्त-भासग व अतट्ट प्तिमय व्याख्या की प्रचानता हाँ गयी है।

अस्तु हमारे साहित्य पर पारश्चात्य विचारधाराओं का गहरा प्रभाव प्रतिफलित हुआ है और विषय व शली दोनों दृष्टि से प्राधुनिक साहित्य परिवर्तित दिखाई देता है। पारश्चात्य विचारधाराओं को अपनाना कहा तक हिन्दी साहित्य के लिए उपयोगी है यह तो इनसे से ही स्पष्ट हो जाता है कि प्राधुनिक हिन्दी साहित्य की विविधता उन विचारधाराओं के परिणाम की ही द्योतक है। साहित्य में स्थायी रूप केवल वे ही विचारधाराएँ पा सकती हैं जिनका मानव जीवन व विकास के लिए भी कोई उपयोग रहा हो। किसी विचारधारा के उपयोग के नष्ट होने पर वह अनुकरणीय नहीं रहती। इस दृष्टि से पारश्चात्य विचारधाराओं का अनुकरण मात्र श्लाघनीय नहीं यद्यपि उनका गहरा परिचय हमारे अपने विचार-निर्माण के लिए आवश्यक है क्योंकि विचारों की दुनिया में दीवारें नहीं होतीं। प्राधुनिक विचारधारा की श्रेष्ठता की बसोटी मानवी गरिमा की स्थापना है और मानव स्वातंत्र्य की खोज प्राधुनिक साहित्य का केन्द्र है। मानव जीवन के प्रस्तुतन में सहयोगी होनेवाली विचारधाराएँ हमारे साहित्य की समृद्धि में भी सहायक होंगी।

कोई एक विचारधारा फिर चाहे वह राष्ट्रीयता हो या मानववाद, मार्क्सवाद हो या मनोविश्लेषण सिद्धान्त मतपरकता का आग्रह लेकर साहित्य में माय नहीं हो सकती । हमारे साहित्य की जड़े जीवन में गहरी होनी चाहिए । वस्तुतः जीवन का वक्षः सदब हृद्य मरी रहना है । युग विशेष में प्रचलित विचारधारा उन पत्तों की तरह होती है जो वसत में खिल कर पनकड़ में डुर्भा जाते हैं । अतः किसी एक विचारधारा को सम्पूर्ण मानने के बदले मानव हित को केन्द्र मानकर उन विचारधाराओं के उपयोगी तत्वों को आत्मसात् करा ही साहित्य व साहित्यकार की महत्ता घोषित करते हैं ।

